चतुरसेन गुप्त
प्रबन्धक
महाभारत कार्यालय
दिल्ली



मुद्रकः—
पं० काशीप्रसाद वाजपेई
प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स बाजार सीताराम
दिल्ली।

# निवेदन

यूरोपीय वर्तमान विश्वव्यापी महासमर ने भारतीय विश्वव्यापी महायुद्ध की स्मृति को फिर से दोहरा दिया है। राजाओं के स्वार्थ की चिनगारी किस प्रकार ऊँची उठकर संसार को भस्मसात् कर देती है-यह बात इस वर्तमान युद्ध में देख सकते हो या यों कहो, कि इस महाभारत में पढ़ सकते हो।

यदि आप महाभारत को ध्यान से पढ़ोगे-तो इस युद्ध और महाभारत युद्ध में कई बड़ी विलक्षणताएँ देखोगे। आज से पांच हजार वर्ष पूर्व भिन्न २ देशों के राजा महाराज अपनी २ सेना लेकर कुरुक्षेत्र के मैदान में जा डटे, जो जङ्गल काट कर युद्ध के लिए ही साफ कराया गया था। वहां न किसी नगर के नष्ट होने की आशङ्का थी और न निरपराध किसी बूढ़े, बच्चे और स्त्री के मारे जाने का सन्देह था। वहाँ तो राजाओं की वीरता की परीक्षा करनी थी। आजकल की सभ्य जातियों के तुल्य तटस्थ नरसंहार की उस भारतीय युद्ध में चर्चा ही नहीं थी।

आज भी युद्ध होते हैं और वीर पुरुष मैदान में डट २ कर कटते भी हैं, परन्तु राजा लोग खड़े २ तमाशा देखते हैं और अन्त में हथियार डाल कर चल देते हैं। बेचारी प्रजा और वेतनभोजी सेना का नाश हो जाता है और ये गगनचुम्बी महलों में आनन्द की नींद लेने वाले आजकल के राजा महाराज तक्षक की भांति फिर भी

बचे ही रहते हैं। महाभारत में सेना से पूर्व उसके स्वामी राजा ने युद्ध करके वीरगति प्राप्ति की है। भारतीय और योरोपीय युद्ध का यह एक महत्व पूर्ण भेद है। महाभारत में आए हुए राजाओं में से बचकर एक भी नहीं निकला और न अन्त तक कि सीने हथियार डाले।

महाभारत में न्याय, अन्याय या बलाबल की सर्वत्र परीक्षा देखी जा रही है, कहीं भी किसी राजा के राज्य को निगला नहीं गया, परन्तु आज क्या जर्मन, क्या अंग्रेज, क्या रूस और क्या इटली-सबको राज्यलोलुपता बुरी तरह व्याकुल कर रही है।

तैमूरलङ्ग और नादिरशाह की चढ़ाई की चर्चा के दिन गए, जिनमें प्रजा गाजर मूली की तरह व्यर्थ काट दी जाती थी-यह सब कुछ है परन्तु आज भी प्रजा निश्चिन्त नहीं है और पीपल के पत्ते की तरह नहीं, तो केले के पत्ते की तरह अवश्य काँप रही है। महाभारत की सभ्यता से आज की सभ्यता मिलाओ, कि एक ओर विश्वव्यापी युद्ध हो रहा है, तो दूसरी ओर किसान अपना आनन्द में हल चला रहा है। जब यह बात है, तो फिर भारत क्यों न अपना शिर हिमालय के साथ ऊँचा उठाए खड़ा रहेगा।

महाभारत के अस्त्र-शस्त्र लोगों को एक तिलस्मी जादूगरी सी दिखाई देते थे, परन्तु इस युद्ध ने सिद्ध कर दिया, कि आजकल की उन्नति से भी कहीं चढ़ बढ़ कर अस्त्रविद्या में भारत चढ़ चुका था। जहाँ विज्ञान की उन्नति होती है, वहीं अस्त्र-शस्त्रों की रचना होती है और वहीं स्थान युद्ध का केन्द्र भी बनता है। आज

यूरोप विज्ञान में बढ़ा है, तो वहां अस्त्र-शस्त्र चमक रहे हैं और कभी भारत विज्ञान में बढ़ चढ़ रहा था, तो यहाँ ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, पाशुपतास्त्र और संमोहनास्त्र जैसे अस्त्र चमकते थे। आज यूरोप उन्नत होने के कारण लड़ाई का केन्द्र बना है-तो कभी भारत लड़ाई का केन्द्र बनकर अपनी उन्नति की सूचना दे रहा था।

यह सब कुछ होने पर भी एक बात ऐसी है, जिसमें पाश्चात्य निवासी हमसे कहीं बढ़ चढ़ कर हैं। वे लोग अपने वीरों की पूजा करना जानते हैं। सन् १८५७ के राजविद्रोह में वीरगति को प्राप्त हुए अंग्रेजों की स्मृतियाँ दिल्ली आदि शहरों में आकर देखो, कि किस आदर के साथ उन वीरों की स्मृति में अंग्रेज जाति ने चैत्यालयों की रचना करवाई है, परन्तु हम भारतवासी लक्ष्मीबाई का नाम भी नहीं जानते, कि वह कौन थी और उस वीराङ्गना ने किस प्रकार राजविद्रोह के समय भारत की लज्जा को बचाया। इस मर्दानी रानी ने अपनी सहेलियों के साथ भारत की स्वतन्त्रता के लिए किस प्रकार डट कर युद्ध किया और अन्त में अकेले रह जाने पर भी अपनी सहेली तलवार को अपने हाथ से नहीं डाला। आज १८ जून उसी वीराङ्गना की वीरगति का दिवस है। अपने-वीरों की स्मृति को कायम रखना तो दूर रहा-आज तो अभागी भारतीय मूर्ख जनता महाभारत के घर में रखने या पाठ करने में भी भयभीत होतीहै। जब भारतीय जनता की यह कायर दशा हो गई है, तो इस पर जो कष्ट

आवें, वे थोड़े हैं। इन कष्टों से इनकी कोई भी रक्षा नहीं कर सकेगा। अपने वीरों की स्मृति ने पाश्चात्य-जातियों को सबसे ऊंचा उठा दिया और हम कायर प्रतिदिन अवनति के गड्ढे में गिरते जाते हैं। जिस जाति में वीरता नहीं या अपने पूर्वज वीरों के चरित सुनने की आकाँक्षा नहीं, वह जाति तो यदि कल नहीं मरी, तो आज अवश्य मर कर रहेगी-इसमें सन्देह नहीं है।

ता० १८ जून १६४० | गङ्गाप्रसाद शास्त्री

देहली



॥ ॐ ॥

# महाभारत भाग ११ वाँ

## द्रोणपर्व अध्याय ४२ से अध्याय १३१ तक

## की विषयानुक्रमणिका

### अभिमन्युवधपर्व



### प्रतिज्ञापर्व

## जयद्रथवधपर्व

महाभारत चित्र संख्या ८२



कौरव दल के वीर सेनापति
गुरु द्रोणाचार्य



# महाभारत

## भाग ११ वां

## द्रोणपर्व

—※—※—

## बयालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

बालमत्यन्तसुखिनं स्वबाहुबलदर्पितम् ।
युद्धेषु कुशलं वीरं कुलपुत्रं तनुत्यजम् ॥१॥

गाहमानमनीकानि सदश्वैश्च त्रिहायनैः ।
अपि यौधिष्ठिरात्सैन्यात्कश्चिदन्वपतद्बली ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! अत्यन्त सुख के योग्य, और बाहुबल के अभिमानी, युद्ध में कुशल वीर, कुलीन, प्राणों का मोह नहीं करने वाले, तीन वर्ष के युवा अश्वों को लेकर कौरवसेना

के आलोडक, बालक अभिमन्यु के पीछे २ राजा युधिष्ठिर की सेना में से किस महाबली वीरने उसका अनुगमन किया ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

युधिष्ठिरो भीमसेनः शिखण्डी सात्यकिर्यमौ ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च द्रुपदश्च सकेकयः ॥३॥
धृष्टकेतुश्च संरब्धो मत्स्याश्चाऽभ्यपतन्रणे ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, शिखण्डी, सात्यकि, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, केकय, धृष्टकेतु और मत्स्यवीर आवेश में भरकर रणमें उसके पीछे २ लपके ॥३॥

तेनैव तु पथा यान्तः पितरो मातुलैः सह ॥४॥
अभ्यद्रवन्परीप्सन्तो व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
तान्दृष्ट्वा द्रवतः शूरांस्त्वदीया विमुखाऽभवन् ॥५॥

इसी मार्ग से इसके पितृपक्ष और मातुलपक्ष के प्रहार करने में कुशल वृष्णिवीर सेना का व्यूह बना कर इसकी रक्षा के निमित्त दौड़े। उन शूरवीरों को झपटते देखकर तुम्हारे बहुत से महारथी रण से भाग निकले ॥४-५॥

ततस्तद्विमुखं दृष्ट्वा तव सूनोर्महद्बलम् ।
जामाता तव तेजस्वी संस्तंभयिषुराद्रवत् ॥६॥
सैन्धवस्य महाराज पुत्रो राजा जयद्रथः ।
स पुत्रगृद्धिनः पार्थान्सहसैन्यानवारयत् ॥७॥

हे महाराज ! इस समय तुम्हारे पुत्रों की सेना को रण से विमुख होकर भागती देखकर तुम्हारा तेजस्वी जामाता, सिन्धुराज का पुत्र राजा जयद्रथ, इस कुरुसेना के स्थिर करने को दौड़ा। इस ने ही अभिमन्यु की रक्षा के अभिलाषी पाण्डवों को सेना के सहित आगे बढ़ने से रोक दिया था ॥६-७॥

उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ।
वार्धक्षत्रिरुपासेधत्प्रवणादिव कुञ्जरः ॥८॥

उग्रधनुषधारी दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करता हुआ महारथी वृद्धक्षत्र का पुत्र राजा जयद्रथ, हाथी की तरह अपने सन्मुख आये हुए पाण्डवों को रोकने लगा ॥८॥

धृतराष्ट्र उवाच—

अतिभारमहं मन्ये सैन्धवे सञ्जयाऽऽहितम् ।
यदेकः पाण्डवान्क्रुद्धान्पुत्रप्रेप्सूनवारयत् ॥९॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! इस समय जो सिन्धुराज जयद्रथ पर बहुत बोझा आ पड़ा-मैं ऐसा समझता हूं, जोकि उसने अपने पुत्र अभिमन्यु के बचाने के इच्छुक क्रोधाविष्ट पाण्डवों को अकेले ही रोकना चाहा ॥९॥

अत्यद्भुतमहं मन्ये बलं शौर्यं च सैन्धवे ।
तस्य प्रब्रूहि मे वीर्यं कर्म चाऽग्र्यं महात्मनः ॥१०॥

मुझे तो अब पता लगा, कि सिन्धुराज में अत्यन्त अद्भुत बल और पराक्रम है। अब तुम उस महावीर के सर्वोत्कृष्ट बल और विक्रम को मुझे सुनाओ ॥१०॥

किं दत्तं हुतमिष्टं वा किं सुतप्तमथो ततः
सिन्धुराजो हि येनैकः पाण्डवान्समवारयत् ॥११॥

सिन्धुराज ने पूर्वजन्म में क्या दान, हवन, यज्ञ या तप किया था, जो वह अकेला ही पाण्डवों के रोकने में समर्थ हो सका ॥११॥

सञ्जय उवाच—

द्रौपदीहरणे यत्तद्भीमसेनेन निर्जितः ।
मानात्स तप्तवान्राजा वरार्थी सुमहत्तपः ॥१२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! द्रौपदी के हरण के समय राजा जयद्रथ को भीमसेनने बुरी तरह पराजित किया था। इस अपमान से लज्जित होकर उसने वर की अभिलाषा से बड़ा घोर तप कर डाला है ॥१२॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः संनिवर्त्य सः ।
क्षुत्पिपासातपसहः कृशो धमनिसन्ततः ॥१३॥

इसने अपनी इन्द्रियों को उन २ के प्रिय विषयों से खैंच लिया। यह भूख-प्यास आदि द्वन्द्वों को सहता हुआ बड़ा ही कृश हो गया। इसकी नसें दिखाई देने लगी। यह सनातन ब्रह्म भगवान् शङ्कर की स्तुति करके उनको प्रसन्न करने में तत्पर हुआ ॥१३॥

देवमाराधयच्छर्वं गृणन्ब्रह्म सनातनम् ।
भक्तानुकम्पी भगवांस्तस्य चक्रे ततो दयाम् ॥१४॥
स्वप्नान्तेऽप्यथ चैवाऽऽह हरः सिन्धुपतेः सुतम् ।
वरं वृणीष्व प्रीतोऽस्मि जयद्रथ किमिच्छसि ॥१५॥

हे राजन्! भगवान् शङ्कर तो भक्तों पर दया करने वाले ही ठहरे। उन्होंने उस पर दया की और स्वप्न में दर्शन देकर सिंधुराज के पुत्र से कहा—हे जयद्रथ! मैं तुझ पर प्रसन्न हो गया हूं। अब तू वर मांगले। बोल! क्या चाहता है ॥१४-१५॥

एवमुक्तस्तु शर्वेण सिन्धुराजो जयद्रथः।
उवाच प्रणतो रुद्रं प्राञ्जलिर्नियतात्मवान् ॥१६॥
पाण्डवेयानहं संख्ये भीमवीर्यपराक्रमान्।
वारयेयं रथेनैकः समस्तानिति भारत ॥१७॥

हे भारत! जब भगवान् शङ्कर ने इतना कहा-तो जितेन्द्रिय, सिन्धुराज जयद्रथ हाथ जोड़ कर और शिर झुकाकर भगवान् शंकर से बोला—कि मैं रण में अकेला ही भीषण पराक्रम कर दिखाने वाले सारे पाण्डवों को रण में रोकने में समर्थ हो सकूं।

एवमुक्तस्तु देवेशो जयद्रथमथाऽब्रवीत्।
ददामि ते वरं सौम्य विना पार्थं धनञ्जयम् ॥१८॥

देवों के स्वामी शङ्कर ने जयद्रथ से कहा—हे सौम्य! मैं तुझे वरदान देता हूं, परन्तु तू अर्जुन को नहीं जीत सकेगा ॥१८॥

वारयिष्यसि संग्रामे चतुरः पाण्डुनन्दनान्।
एवमस्त्विति देवेशमुक्त्वाऽबुध्यत पार्थिवः ॥१९॥

जब रण में तेरे सन्मुख इकट्ठे होकर भी चारों पाण्डव आवेंगे-तो भी तू उन चारों के रोकने में समर्थ हो सकेगा। जयद्रथ ने कहा-अच्छा? इतना कहते ही राजा जयद्रथ की आंखें खुल गई ॥१९॥

स तेन वरदानेन दिव्येनाऽस्त्रबलेन च ।
एकः संवारयामास पाण्डवानामनीकिनीम् ॥२०॥

हे राजन्! उसी वरदान के प्रभाव से अकेला ही सिन्धुराज जयद्रथ, सारे पाण्डवों की सेना के रोकने में समर्थ हो सका ॥२०॥

तस्य ज्यातलघोषेण क्षत्रियान्भयमाविशत् ।
परांस्तु तव सैन्यस्य हर्षः परमकोऽभवत् ॥२१॥

सिन्धुराज के धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) के शब्द को सुनते ही तुम्हारे शत्रु क्षत्रियों को भय और तुम्हारे पक्ष के वीरों को अत्यन्त हर्ष होने लगा ॥२१॥

दृष्ट्वा तु क्षत्रिया भारं सैन्धवे सर्वमाहितम् ।
उत्क्रुश्याऽभ्यद्रवन्राजन्येन यौधिष्ठिरं बलम् ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

हे राजन्! जब तुम्हारे पक्ष के वीरों ने सारा भार वीरश्रेष्ठ सिन्धुराज पर देखा तो वे उत्साह में भरकर गर्जना करते हुए उधर को दौड़े, जिधर राजा युधिष्ठिर की सेना थी ॥२२॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्यु वधपर्व में जयद्रथ का बयालीसवां अध्याय समाप्त हुआ

# तेतालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच

यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सिन्धुराजस्य विक्रमम् ।
शृणु तत्सर्वमाख्यास्ये यथा पाण्डूनयोधयत् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! आपने सिन्धुराज जयद्रथ के पराक्रम के विषय में प्रश्न किया है। जिस तरह राजा जयद्रथ ने सारे पाण्डवों से युद्ध किया-अब मैं सारा वृत्तान्त तुम्हें सुनाता हूं।

तमूहुर्वाजिनो वश्याः सैन्धवाः साधुवाहिनः ।
विकुर्वाणा बृहन्तोऽश्वाः श्वसनोपमरंहसः ॥२॥

इस समय राजा जयद्रथ के रथ में सारथि के संकेत में चलने वाले अच्छी तरह दौड़ने में समर्थ, सिन्धुदेशोद्भव, बड़े २ अश्व उसके रथ में जुते हुए थे, जो अपने वेग से वायु के वेग को भी हीन बना रहे थे ॥२॥

गन्धर्वनगराकारं विधिवत्कल्पितं रथम् ।
तस्याऽभ्यशोभयत्केतुर्वाराहो राजतो महान् ॥३॥

राजा जयद्रथ का रथ गन्धर्वनगर के समान सुन्दर और विशाल विधिपूर्वक बनाया गया था। इस रथ पर वराह के चिन्ह से अङ्कित विशाल चांदी की ध्वजा लगी हुई थी ॥१३॥

श्वेतच्छत्रपताकाभिश्चामरव्यजनेन च ।
स बभौ राजलिङ्गैस्तैस्तारापतिरिवाऽम्बरे ॥४॥

सिन्धुराज का रथ, श्वेत २ छत्र, पताका, चामर और व्यजन (पंखे) आदि राजचिह्नों से आकाश में चन्द्रमा के तुल्य सुन्दर प्रतीत होता था ॥४॥

मुक्तावज्रमणिस्वर्णैर्भूषितं तमयस्मयम् ।
वरूथं विबभौ तस्य ज्योतिर्भिः खमिवाऽऽवृतम् ॥५॥

मुक्ता, वज्रमणि, सुवर्ण आदि से जटित होने के कारण, उसका लोहमय वरूथ (छतरी) तारों से प्रदीप्त आकाश की तरह सुशोभित था ॥५॥

स विस्फार्य महच्चापं किरन्निषुगणान्बहून् ।
तत्खण्डं पूरयामास यद्व्यदारयदार्जुनिः ॥६॥

राजा जयद्रथ ने अपने विशाल धनुष को चढ़ा कर इतने बाण फेंके कि चक्रव्यूह के जिस भाग को अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने तोड़ दिया था, उसको उसने पाण्डवसेना को पीछे हटाकर शीघ्र ठीक कर लिया ॥६॥

स सात्यकिं त्रिभिर्बाणैरष्टभिश्च वृकोदरम् ।
धृष्टद्युम्नं तथा षष्ट्या विराटं दशभिः शरैः ॥७॥
द्रुपदं पञ्चभिस्तीक्ष्णैः सप्तभिश्च शिखण्डिनम् ।
केकयान्पञ्चविंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥८॥
युधिष्ठिरं तु सप्तत्या ततः शेषानपानुदत् ।
इषुजालेन महता तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥९॥

इसने सात्यकि पर तीन, वृकोदर भीम पर आठ, धृष्टद्युम्न पर साठ, विराट पर दश, राजा द्रुपद पर पांच, शिखण्डी पर सात, केकय राजकुमारों पर पचीस, द्रौपदी-पुत्रों पर तीन २ और राजा युधिष्ठिर पर सत्तर तीक्ष्ण बाण छोड़े । इसने बाणों की झड़ी लगाकर अन्य भी बहुत से महारथियों को पीछे हटा दिया, यह बड़ा ही अद्भुत दृश्य था ॥७-६॥

अथाऽस्य शितपीतेन भल्लेनाऽऽदिश्य कार्मुकम् ।
चिच्छेद प्रहसन्राजा धर्मपुत्रः प्रतापवान् ॥१०॥

इसके अनन्तर प्रतापी राजा युधिष्ठिर ने हँसते २ अपने तीक्ष्ण विषमें बुझे हुए बाण से इसके धनुष को लक्ष्य करके उसे काट डाला ॥१०॥

अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध दशभिः पार्थं तांश्चैवाऽन्यांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥

आंख झपकने के तुल्य क्षण में ही सिन्धुराज ने दूसरा धनुष उठा लिया और इसने उस धनुष पर बाण चढ़ा कर कुन्ती-पुत्र धर्मराज पर दश बाण छोड़कर उन्हें आहत कर दिया और अन्य महारथियों के भी तीन २ बाण मारे ॥११॥

तत्तस्य लाघवं ज्ञात्वा भीमो भल्लैस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
धनुर्ध्वजं च छत्रं च क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥१२॥

राजा जयद्रथ की इस प्रकार शीघ्रता (फुर्ती) देखकर भीम-ने तीन २ बाण मार कर इसका धनुष ध्वजा और छत्र, शीघ्र पृथिवी पर गिरा दिया ॥१२॥

सोऽन्यदादाय बलवान्सज्जं कृत्वा च कार्मुकम् ।
भीमस्याऽपातयत्केतुं धनुरश्वांश्च मारिष ॥१३॥

हे आर्य ! बलवान् राजा जयद्रथ ने फिर दूसरा धनुष उठाया और इस पर डोरी खैंचकर इतने वेग से बाण छोड़े, कि जिनसे भीमसेन की ध्वजा, धनुष और अश्व कट कर गिर गए ॥१३॥

स हताश्वादवप्लुत्य च्छिन्नधन्वा रथोत्तमात् ।
सात्यकेराप्लुतो यानं गिर्यग्रमिव केसरी ॥१४॥

भीमसेन का धनुष कट गया और अश्व मर गए। इस समय यह अपने उत्तम रथ से कूद कर पर्वत पर सिंह के सदृश उछ्ट कर सात्यकि के रथ पर जा बैठा ॥१४॥

ततस्त्वदीयाः संहृष्टाः साधु साध्विति वादिनः ।
सिन्धुराजस्य तत्कर्म प्रेच्याऽश्रद्धेयमद्भुतम् ॥१५॥

इस समय सिन्धुराज जयद्रथ के इस विक्रमशाली अद्भुत कर्म को देखकर तुम्हारे पक्ष के वीर धन्य २ की ध्वनि करने लगे। इनको सिन्धुराज के पराक्रम पर इतनी श्रद्धा और भरोसा नहीं था ॥१५॥

संक्रुद्धान्पाण्डवानेको यद्धाराऽस्त्रतेजसा ।
तत्तस्य कर्म भूतानि सर्वाण्येवाऽभ्यपूजयन् ॥१६॥

सिन्धुराज ने अपने अस्त्र के तेज से सारे क्रोध में भरे हुए पाण्डवों को आगे बढ़ने से रोक दिया। इसके इस विक्रमशाली कर्म की सारे वीरों ने प्रशंसा की ॥१६॥

सौभद्रेण हतैः पूर्वं सोत्तरायोधिभिर्द्विपैः ।
पाण्डूनां दर्शितः पन्थाः सैन्धवेन निवारितः ॥१७॥

अपने २ गजारोहियों के साथ बहुत से हाथियों को मार कर जो मार्ग प्रथम सुभद्रापुत्र अभिमन्यु ने कौरवों के चक्रव्यूह में बना दिया था, सिन्धुराज जयद्रथ ने उसे फिर रोक दिया ॥१७॥

यतमानास्तु ते वीरा मत्स्यपञ्चालकेकयाः ।
पाण्डवाश्चाऽन्वपद्यन्त प्रतिशेकुर्न सैन्धवम् ॥१८॥

इस समय मत्स्य, पञ्चाल, केकय वीर और पाण्डवों ने बड़ा ही बल अभिमन्यु के पीछे २ चले जाने को लगाया, परन्तु जयद्रथ के आगे उनकी एक नहीं चली ॥१८॥

यो यो हि यतते भेत्तुं द्रोणानीकं तवाऽहितः ।
तं तमेव वरं प्राप्य सैन्धवः प्रत्यवारयत् ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

अब जो २ तुम्हारे शत्रु पाण्डव महारथी, द्रोणाचार्य के बनाये हुए चक्रव्यूह के तोड़ने का प्रयत्न करते थे, उन सबको अकेला सिन्धुराज पीछे हटा देता था ॥१९॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में जयद्रथ के युद्ध का तेतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

# चवालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

सैन्धवेन निरुद्धेषु जयगृद्धिषु पाण्डुषु ।

सुघोरमभवद्युद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! जब सिन्धुराज ने विजयाभिलाषी पाण्डवों को रोक दिया-तो इस समय तुम्हारे और पाण्डवों के वीरों में बड़ा घोर युद्ध होने लगा ॥१॥

प्रविश्याऽथाऽऽर्जुनिः सेनां सत्यसन्धो दुरासदः ।

व्यक्षोभयत तेजस्वी मकरः सागरं यथा ॥२॥

सत्य प्रतिज्ञाधारी, तेजस्वी, दुर्धर्ष, अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु, कौरव सेना में प्रविष्ट होकर समुद्र को मकर की तरह उसे आलोडित करने लगा ॥२॥

तं तथा शरवर्षेण क्षोभयन्तमरिन्दमम् ।

यथा प्रधानाः सौभद्रमभ्ययू रथसत्तमाः ॥३॥

इस प्रकार बाणवर्षा से क्षुभित करते हुए अरिमर्दन अभिमन्यु को देखकर बड़े २ प्रधान कौरव महारथी, अभिमन्यु पर झपटे ॥३॥

तेषां तस्य च सम्मर्दो दारुणः समपद्यत ।

सृजतां शरवर्षाणि प्रसक्तममितौजसाम् ॥४॥

हे राजन्! लगातार बाण-वर्षा करते हुए तेजस्वी, कौरव वीर और अभिमन्यु के मध्य में बड़ा ही दारुण संग्राम होने लगा ॥४॥

रथव्रजेन संरुद्धस्तैरमित्रैस्तथाऽऽर्जुनिः ।
वृषसेनस्य यन्तारं हत्वा चिच्छेद कार्मुकम् ॥५॥

उन तुम्हारे पक्ष के वीर जो अभिमन्यु के शत्रु थे, उन्होंने अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु को बुरी तरह घेर लिया। इस रथ समूह से घिर कर भी राजा वृषसेन के सारथि को मार कर उसके धनुष को काट गिराया ॥५॥

तस्य विव्याध बलवाञ्शरैरश्वानजिह्मगैः ।
वातायमानैरथ तैरश्वैरपहृतो रणात् ॥६॥

इस बलवान् अभिमन्यु ने अपने सीधे जाने वाले बाणों से वृषसेन के अश्वों को भी घायल कर दिया। वे अश्व वायु के समान वेग से दौड़ कर उसे झटपट रण से ले भागे ॥६॥

तेनाऽन्तरेणाऽभिमन्योर्यन्ताऽपासारयद्रथम् ।
रथव्रजास्तथो हृष्टाः साधुसाध्विति चुक्रुशुः ॥७॥

इसी अन्तर में अभिमन्यु के सारथि ने अपना रथ आगे बढ़ा दिया, जिसको देखकर सारा रथियों का समूह उल्लास में भर कर उच्च-स्वर से धन्य २ की ध्वनि करने लगा ॥७॥

तं सिंहमिव संक्रुद्धं प्रमथ्नन्तं शरैररीन् ।
आरादायान्तमभ्येत्य वसातीयोऽभ्ययाद् द्रुतम् ॥८॥

सिंह के समान क्रोध में भरे हुए और शत्रुओं को मथते हुए, अभिमन्यु को समीप आता देखकर वसाति संज्ञक वीरों के राजा ने उस पर आक्रमण किया ॥८॥

सोऽभिमन्युं शरैः षष्ट्या रुक्मपुङ्खैरवाकिरत् ।
अब्रवीच्च न मे जीवञ्जीवतो युधि मोक्ष्यसे ॥९॥

इसने अभिमन्यु के ऊपर सुवर्ण मूलधारी साठ बाण छोड़े और कहा कि मेरे जीवित रहने पर तुम जीते ही बच कर यहां से नहीं निकल सकते ॥९॥

तमयस्मयवर्माणमिषुणा दूरपातिना ।
विव्याध हृदि सौभद्रः स पपात व्यसुः क्षितौ ॥१०॥

यद्यपि वसातिराज ने लोह का कवच पहन रक्खा था, तो भी अभिमन्यु ने दूर तक पहुंचने वाले तीव्रगामी बाण से उसके हृदय में ऐसा प्रहार किया, कि वह मर कर पृथिवी में गिर गया ॥१०॥

वसातीयं हतं दृष्ट्वा क्रुद्धाः क्षत्रियपुङ्गवाः ।
परिवव्रुस्तदा राजंस्तव पौत्रं जिघांसवः ॥११॥

वसातियों के राजा को मरा हुआ देखकर सारे तुम्हारे क्षत्रिय वीर प्रज्वलित होउठे। हे राजन् ! इन्होंने तुम्हारे पौत्र अभिमन्यु को मार डालने के लिये घेर लिया ॥११॥

विस्फारयन्तश्चापानि नानारूपाण्यनेकशः ।
तद्युद्धमभवद्रौद्रं सौभद्रस्याऽरिभिः सह ॥१२॥

ये वीर अनेक आकार के अद्भुत २ धनुषों को खैंच रहे थे । इस समय सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु का अपने शत्रुओं के साथ बड़ा ही घोर युद्ध हो रहा था ॥१२॥

तेषां शरान्सेष्वसनाञ्शरीराणि शिरांसि च ।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि क्रुद्धश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥१३॥

अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु क्रोध में भर कर इन वीरों के बाण, धनुष, शरीर, कुण्डलों सहित शिर और मालाओं को काट २ कर गिराने लगा ॥१३॥

सखड्गाः सांगुलित्राणाः सपट्टिशपरश्वधाः ।
अपश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥१४॥

खड्ग, अंगुलित्राण, पट्टिश, और परशु आदि शस्त्रों से समन्वित तथा सुवर्ण के आभूषणों से विभूषित, कटी हुई भुजाएँ रण भूमि में छागई ॥१४॥

स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पातितैश्च महाभुजैः ।
वर्मभिश्चर्मभिर्हारैर्मुकुटैश्छत्रचामरैः ॥१५॥

उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥१६॥

अनुकर्षैः पताकाभिस्तथा सारथिवाजिभिः ।
रथैश्च भग्नैर्नागैश्च हतैः कीर्णाऽभवन्मही ॥१७॥

हे राजन् ! माला, आभूषण, वस्त्र, काट कर गिराई हुई भुजा, कवच, चर्म (ढ़ाल) हार, मुकुट, छत्र, चामर, उपस्कर (रथ के काष्ठ) वैठने की शय्या ईषा, (पेटी) ऊँचे नीचे दण्ड, अनुकर्ष (रथ के नीचे के काष्ट) पताका, सारथि, अश्व, टूटे हुए रथ तथा मारे हुए हाथियों से सारी रणभूमि व्याप्त होगई ॥१५-१७॥

निहतैः क्षत्रियैः शूरैर्नानाजनपदेश्वरैः ।
जयगृद्धैर्वृता भूमिर्दारुणा समपद्यत ॥१८॥

हे राजन् ! अनेक देशों के आये हुए और मारे हुए जयाभिलाषी शूरवीर क्षत्रियों से भरी हुई रणभूमि बड़ी दारुण दिखाई देने लगी ॥१८॥

दिशो विचरतस्तस्य सर्वांश्च प्रदिशस्तथा ।
रणेऽभिमन्योः क्रुद्धस्य रूपमन्तरधीयत ॥१९॥

हे राजन् ! रणभूमि में दिशा विदिशाओं में इधर उधर घूमते हुए क्रुद्ध अभिमन्यु की मूर्ति, बार २ अदृश्य हो जाती थी ॥१९॥

काञ्चनं यद्यदस्याऽऽसीद्वर्म चाऽऽभरणानि च ।
धनुषश्च शराणां च तदपश्याम केवलम् ॥२०॥

हे भरतर्षभ ! इस अभिमन्यु के जो सुवर्ण के बने हुए कवच और आभूषण थे तथा जो धनुष और बाणों में जटित सुवर्ण था, वही उस गाढान्धकार में चमक कर हमें बार २ दिखाई देता था ॥२०॥

तं तदा नाऽऽशकत्कश्चिच्चक्षुर्भ्यामभिवीक्षितुम् ।
आददानं शरैर्योधान्मध्ये सूर्यमिव स्थितम् ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

हे राजन्! ललाटन्तप मध्यान्ह काल के सूर्य की तरह देदीप्यमान, बाणों से कौरव वीरों के नाश करने वाले, इस अभिमन्यु को इस समय कोई वीर आंखों से देख भी नहीं सकता था ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में अभिमन्यु के पराक्रम के वर्णन का चवालीसवां अध्याय समाप्त हुआ

# पैंतालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

आददानस्तु शूराणामायूंष्यभवदार्जुनिः ।
अन्तकः सर्वभूतानां प्राणान्काल इवाऽऽगते ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ! समय आने पर मृत्यु जैसे समस्त प्राणियों के प्राणों का अपहरण करता है, इसी तरह अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु भी शूरवीरों की आयु का अपहरण करता हुआ रणभूमि में घूमने लगा ॥१॥

स शक्र इव विक्रान्तः शक्रसूनोः सुतो बली ।
अभिमन्युस्तदाऽनीकं लोडयन्समदृश्यत ॥२॥

अर्जुन-पुत्र महाबली अभिमन्यु, इन्द्र के तुल्य पराक्रमी था। वह कौरवसेना में घुस कर उसे बुरी तरह आलोडित करने लगा ॥२॥

प्रविश्यैव तु राजेन्द्र क्षत्रियेन्द्रान्तकोपमः ।
सत्यश्रवसमादत्त व्याघ्रो मृगमिवोल्बणः ॥३॥

हे राजेन्द्र! उत्तम २ क्षत्रिय वीरों को काल के तुल्य महाबली अभिमन्यु, कौरव सेना के मध्य में पहुंच कर मृगों पर उत्कट बलशाली सिंह की तरह महारथी सत्यश्रवा पर झपटा ॥३॥

सत्यश्रवसि चाऽऽक्षिप्ते त्वरमाणा महारथाः।
प्रगृह्य विपुलं शस्त्रमभिमन्युमुपाद्रवन् ॥४॥

ज्योंही अभिमन्यु ने सत्यश्रवा पर आक्रमण किया त्योंही कौरव महारथी बड़े २ शस्त्र लेकर बड़ी शीघ्रता से अभिमन्यु पर दौड़े ॥४॥

अहं पूर्वमहं पूर्वमिति क्षत्रियपुङ्गवाः।
स्पर्धमानाः समाजग्मुर्जिघांसन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥५॥

इस समय अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु पर कौरव क्षत्रिय वीर, स्पर्धा (होड) लगा २ कर "मैं प्रथम प्रहार करूंगा" "मैं प्रथम प्रहार करूंगा" इस प्रकार उसके मारने के निमित्त आगे बढ़ने लगे ॥५॥

क्षत्रियाणामनीकानि प्रद्रुतान्यभिधावताम्।
जग्राह तिमिरासाद्य क्षुद्रमत्स्यानिवाऽर्णवे ॥६॥

दौड़ २ कर आगे बढ़ने वाली कौरव क्षत्रिय वीरों की सेना को समुद्र में क्षुद्र मत्स्यों को बड़े जलचर जन्तु की भांति अभिमन्यु ग्रसने लगा ॥६॥

ये केचन गतास्तस्य समीपमपलायिनः।
न ते प्रतिन्यवर्त्तन्त समुद्रादिव सिन्धवः ॥७॥

जो रण से पीछे नहीं हटने वाले वीर अभिमन्यु के सन्मुख पहुंच गए, वे समुद्र में पहुंची हुई नदियों की तरह लौट कर नहीं आ सके ॥७॥

महाग्राहगृहीतेव वातवेगभयार्दिता ।
समकम्पत सा सेना विभ्रष्टा नौरिवाऽर्णवे ॥८॥

बड़े भारी ग्राह से पकड़ी हुई, वायु वेग के भय से पीड़ित, समुद्र में नौका की तरह कौरव सेना कांपने लगी ॥८॥

अथ रुक्मरथो नाम मद्रेश्वरसुतो बली ।
त्रस्तामाश्वासयन्सेनामत्रस्तो वाक्यमब्रवीत् ॥९॥

इस समय मद्रेश्वर राजा शल्य का पुत्र, महाबली रुक्मरथ निर्भीकता से इस भयातुर सेना को सान्त्वना देता हुआ कहने लगा ॥९॥

अलं त्रासेन वः शूरा नैष कश्चिन्मयि स्थिते ।
अहमेनं ग्रहीष्यामि जीवग्राहं न संशयः ॥१०॥

हे शूरवीरों ! तुम डरो मत । मेरे अतिरिक्त अन्य किसी वीर में इस अभिमन्यु के पकड़ने की शक्ति नहीं है । मैं इसको अभी जीता ही पकड़ लेता हूं-तुम इसमें सन्देह न समझो ॥१०॥

एवमुक्त्वा तु सौभद्रमभिदुद्राव वीर्यवान् ।
सुकल्पितेनोह्यमानः स्यन्दनेन विराजता ॥११॥

इतना कहकर वीर्यवान् रुक्मरथ, सुन्दर बने हुए चमकीले रथ पर बैठ कर सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु पर झपटा ॥११॥

सोऽभिमन्युं त्रिभिर्बाणैर्विध्वा वक्षस्यथाऽनदत् ।
त्रिभिश्च दक्षिणे बाहौ सव्ये च निशितैस्त्रिभिः ॥१२॥

इस रुक्मरथ ने अभिमन्यु के वक्षस्थल में तीन बाण मारे। तीन दांयी ओर, तीन तीक्ष्ण बाण बांयी भुजा में मार कर वह बड़े वेग से गर्जना करने लगा ॥१२॥

स तस्येष्वसनं छित्वा फाल्गुनिः सव्यदक्षिणौ ।
भुजौ शिरश्च स्वक्षिभ्रु क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥१३॥

अर्जुनपुत्र अभिमन्यु ने रुक्मरथ का धनुष और उसकी बांयी दांयी दोनों भुजाओं को काटकर सुन्दर आंख और भ्रुकुटी से सुशोभित उसके मस्तक को काटकर बड़ी शीघ्रता से रणभूमि में गिरा दिया ॥१३॥

दृष्ट्वा रुक्मरथं रुग्णं पुत्रं शल्यस्य मानिनम् ।
जीवग्राहं जिघृक्षन्तं सौभद्रेण यशस्विना ॥१४॥
संग्रामदुर्मदा राजन्राजपुत्राः प्रहारिणः ।
वयस्याः शल्यपुत्रस्य सुवर्णविकृतध्वजाः ॥१५॥
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ।
आर्जुनिं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयन् ॥१६॥

हे राजन् ! जब युद्धदुर्मद, प्रहार करने में कुशल, सुवर्ण की उज्ज्वल ध्वजा के धारण करने वाले, रुक्मरथ के मित्र, महाबली राजपुत्रों ने यशस्वी अभिमन्यु को जीवित पकड़ने की इच्छा वाले, अभिमन्यु द्वारा शल्य-पुत्रको इस प्रकार मरते देखकर

अपने ताल वृक्षके तुल्य बड़े २ धनुष खैंचकर अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु पर बाणों की झड़ी लगा दी ॥१४-१६॥

शूरैः शिक्षावलोपेतैस्तरुणैरत्यमर्षणैः ।
दृष्ट्वैकं समरे शूरं सौभद्रमपराजितम् ॥१७॥

छाद्यमानं शरव्रातैर्हृष्टो दुर्योधनोऽभवत् ।
वैवस्वतस्य भवनं गतं ह्येनममन्यत ॥१८॥

राजा दुर्योधन अत्यन्त क्रोध में भरे हुए, युद्ध विद्या में कुशल, युवा, शूरवीर इन राजपुत्रों द्वारा युद्ध में पराजित नहीं होने वाले अकेले अभिमन्यु को शरसमूह से आच्छादित देख कर बड़ा सन्तुष्ट हुआ इसने इस समय तो अभिमन्यु को यमराज के भवन में पहुंच जाने वाला ही समझा ॥१७-१८॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नानालिङ्गैः सुतेजनैः ।
अदृश्यमार्जुनिं चक्रुर्निमेषात्ते नृपात्मजाः ॥१९॥

हे राजन् ! उन राजपुत्रों ने क्षण भर में अर्जुनपुत्र अभिमन्यु को अपने सुवर्ण के मूल से सुशोभित, अनेक प्रकार तीक्ष्ण बाणों से आच्छादित कर दिया ॥१९॥

ससूताश्वध्वजं तस्य स्यन्दनं तं च मारिष ।
आचितं समपश्याम श्वाविधं शललैरिव ॥२०॥

हे आर्यगुण सम्पन्न ! राजन् ! इस समय हम लोगों ने अभिमन्यु और उसके सारथि, अश्व, ध्वजा और रथ को बाणों

से इस प्रकार व्याप्त देखा, जैसे श्वाविधजन्तु ( सेह ) अपने कांटों से व्याप्त होता है ॥२०॥

स गाढविद्धः क्रुद्धश्च तोत्रैर्गज इवाऽर्दितः ।
गान्धर्वमस्त्रमायच्छद्रथमायां च भारत ॥२१॥

हे भारत ! जब राजपुत्रों द्वारा अभिमन्यु बहुत ही आहत कर दिया गया, तो वह तोत्र (गजमर्दनदण्ड) शस्त्र द्वारा आहत हाथी की तरह व्याकुल हो उठा । उसने अब गन्धर्वास्त्र का प्रयोग करके रथ की शिक्षा दिखाना आरम्भ किया ॥२१॥

अर्जुनेन तपस्तप्त्वा गन्धर्वेभ्यो यदाहृतम् ।
तुम्बुरुप्रमुखेभ्यो वै तेनाऽमोहयताऽहितान् ॥२२॥

अर्जुन ने बड़ा तप करके तुम्बुरु आदि गन्धर्वों से यह गन्धर्वास्त्र प्राप्त किया था । अभिमन्यु ने उससे सारे प्रतिपक्षियों को मोहित कर दिया ॥२२॥

एकधा शतधा राजन्दृश्यते स्म सहस्रधा ।
अलातचक्रवत्संख्ये क्षिप्रमस्त्राणि दर्शयन् ॥२३॥

हे राजन् ! अभिमन्यु कभी एक, कभी सौ और कभी सहस्रों प्रकार से रण में अपने अस्त्र कौशल को दिखाता हुआ घूमते हुए अलातचक्र ( पलीते ) की तरह दिखाई दे रहा था ॥२३॥

रथचर्यास्त्रमायाभिर्मोहयित्वा परन्तपः ।
बिभेद शतधा राजञ्शरीराणि महीक्षिताम् ॥२४॥

हे राजन् । इस शत्रुतापी अभिमन्यु ने अपने रथ के चलाने के कौशल और अस्त्र चलाने की लघुता (फुर्ती) से बहुत से शत्रुओं के शरीर के सैंकड़ों टुकड़े कर डाले ॥२४॥

प्राणाः प्राणभृतां संख्ये प्रेषिता निशितैः शरैः ।
राजन्प्रापुरमुं लोकं शरीराण्यवनिं ययुः ॥२५॥

हे राजन ! अभिमन्यु के तीक्ष्ण बाणों से बहुत से वीरों के प्राण पखेरू उड़ २ कर स्वर्गलोक पहुंच गए और उसके साथ ही उनके शरीर धराशायी हुए ॥२५॥

धनूंष्यश्वान्नियन्तॄंश्च ध्वजान्बाहूंश्च साङ्गदान् ।
शिरांसि च शितैर्बाणैस्तेषां चिच्छेद फाल्गुनिः ॥२६॥

अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने अपने सहस्रों विरोधियों के धनुष, अश्व, सारथि, ध्वजा, अङ्गदों सहित बाहु और शिरों को तीक्ष्ण बाणों से काट कर गिरा दिया ॥२६॥

चूतारामो यथा भग्नः पञ्चवर्षः फलोपगः ।
राजपुत्रशतं तद्वत्सौभद्रेण निपातितम् ॥२७॥

फलों से लदा हुआ, पांच वर्ष का आमों के उपवन में जैसे आम्र फलों का ढेर लग जाता है, उसी तरह सैंकड़ों राजपुत्रों को सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने मार गिराये ॥२७॥

क्रुद्धाशीविषसङ्काशान्सुकुमारान्सुखोचितान् ।
एकेन निहतान्दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनोऽभवत् ॥२८॥

क्रुद्ध हुए सर्प के तुल्य भीषण, सुख के योग्य, अनेक युवा राजपुत्रों को अकेले अभिमन्यु द्वारा आहत देखकर राजा दुर्योधन बड़ा भयभीत हुआ ॥२८॥

रथिनः कुञ्जरानश्वान्पदातींश्चापि मज्जतः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनः क्षिप्रमुपायात्तममर्षितः ॥२६॥

राजा दुर्योधन ने सहस्रों रथी, हाथी, अश्व और पैदल सैनिकों को इस रण समुद्र में जब डूबते देखा-तो वह क्रोध में भर कर बड़े वेग से अभिमन्यु पर झपटा ॥२६॥

तयोः क्षणमिवाऽऽपूर्णः संग्रामः समपद्यत ।
अथाऽभवत्ते विमुखः पुत्रः शरशताहतः ॥३०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुर्योधनपराजये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

थोड़ी देर तक इन दोनों का घोर संग्राम होता रहा, परन्तु अभिमन्यु के सैंकड़ों बाणों से आहत होकर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन रण से पराङ्मुख होकर पीछे हट गया ॥३०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में राजा दुर्योधन के पराजय का पैंतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

—*—*—

# छयालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

यथा वदसि मे सूत एकस्य बहुभिः सह ।
संग्रामं तुमुलं घोरं जयं चैव महात्मनः ॥१॥
अश्रद्धेयमिवाऽऽश्चर्यं सौभद्रस्याऽथ विक्रमम् ।
किन्तु नाऽत्यद्भुतं तेषां येषां धर्मो व्यपाश्रयः ॥२॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सूतपुत्र ! तुमने जो अभिमन्यु का पराक्रम बताया, कि वह अकेला ही बहुतों के साथ घोर युद्ध करता रहा और उसी महावीर की विजय होती रही, परन्तु मुझे सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु के इस पराक्रम में विश्वास नहीं होता। इसको सुनकर तो अचम्भा सा होता है, परन्तु जिन्होंने धर्म का आश्रय ले रखा है, उनके लिए कोई बात असम्भव भी नहीं है ॥१-२॥

दुर्योधने च विमुखे राजपुत्रशते हते ।
सौभद्रे प्रतिपत्तिं कां प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥३॥

जब दुर्योधन युद्ध से पीछे हट गया और सैकड़ों राजपुत्र मारे गए, तो उस समय हमारे पक्ष के राजा या वीर लोगों की क्या गति हुई ॥३॥

सञ्जय उवाच—

संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना लोमहर्षणाः ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥४॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! इस समय तुम्हारे वीरों के मुख सूख गए। उनकी आंखें पतरा गईं, इनके स्वेद झलक आया और रोमाञ्च खड़े हो गए। ये शत्रु के जीतने में निरुत्साह भागने की चेष्टा करने लगे ॥४॥

हतान्भ्रातॄन्पितॄन्पुत्रान्सुहृत्सबन्धिबान्धवान् ।
उत्सृज्योत्सृज्य सञ्जग्मुस्त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥५॥

ये अपने मरे हुए भाई, पिता, पुत्र, सुहृद् बन्धु, बान्धव तथा हाथी-घोड़ों को रणभूमि में ही पड़े छोड़कर भाग निकले ॥५॥

तान्प्रभग्नांस्तथा दृष्ट्वा द्रोणो द्रौणिर्बृहद्बलः ।
कृपो दुर्योधनः कर्णः कृतवर्माऽथ सौबलः ॥६॥

अभ्यधावन्सुसंक्रुद्धाः सौभद्रमपराजितम् ।
ते तु पौत्रेण ते राजन्प्रायशो विमुखीकृताः ॥७॥

हे राजन्! इस समय कौरववीरों को भागते देखकर द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, कृतवर्मा और शकुनि क्रोध में भरकर पराजित नहीं होने वाले अभिमन्यु पर एक दम झपटे, परन्तु तुम्हारे पौत्र अभिमन्यु ने प्रायः सबको रण में पीछे हटा दिया ॥६-७॥

एकस्तु सुखसंवृद्धो बाल्याद्दर्पाच्च निर्भयः ।
इष्वस्त्रविन्महातेजा लक्ष्मणोऽर्जुनिमभ्ययात् ॥८॥

उस समय बचपन या अपनी वीरता के घमण्ड में भरा हुआ, सुख के साथ पोषित किया गया, बाणविद्या में कुशल, महातेजस्वी दुर्योधन-पुत्र अकेला अभिमन्यु के सन्मुख डटा रहा ॥८॥

तमन्वगेवाऽस्य पिता पुत्रगृद्धी न्यवर्त्तत ।
अनुदुर्योधनं चाऽन्ये न्यवर्त्तन्त महारथाः ॥९॥

इसके पीछे ही अपने पुत्र की रक्षा में तत्पर राजा दुर्योधन चल रहे थे और दुर्योधन की रक्षा के निमित्त बहुत से अन्य कौरवपक्ष के महारथी भी आ गए ॥९॥

तं तेऽभिपिपिचुर्बाणैर्मेघा गिरिमिवाऽम्बुभिः ।
स तु तान्प्रममाथैको विष्वग्वातो यथाऽम्बुदान् ॥१०॥

इन सारे महारथियों ने मिलकर उस अकेले अभिमन्यु को पर्वत को जलधारा से मेघों की भांति बाणों से आच्छादित करना आरम्भ किया, परन्तु प्रबल वायु से बादलों की तरह उस अकेले अभिमन्यु ने इन सारे महारथियों को इधर उधर बखेर दिया ।१०॥

पौत्रं तव च दुर्धर्षं लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् ।
पितुः समीपे तिष्ठन्तं शूरमुद्यतकार्मुकम् ॥११॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धं धनेश्वरसुतोपमम् ।
आससाद रणे कार्ष्णिर्मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥१२॥

अब कृष्ण ( अर्जुन ) पुत्र अभिमन्यु ने अपने पिता राजा दुर्योधन के साथ स्थित, अत्यन्त सुख में बढ़े हुए, कुबेर के पुत्र के तुल्य वैभवशाली, शूरवीर, धनुष उठाए हुए तुम्हारे दुर्धर्ष पौत्र

सुन्दर लक्ष्मण पर मदोन्मत्त हाथी पर दूसरे मदोन्मत्त हाथी की तरह बड़े वेग से आक्रमण किया ॥११-१२॥

लक्ष्मणेन तु सङ्गम्य सौभद्रः परवीरहा ।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥१३॥

शत्रुवीर नाशक सुभद्रापुत्र अभिमन्यु ने लक्ष्मण के सन्मुख पहुंचकर अपने तीक्ष्ण बाणों से उसकी भुजा और छाती में बड़ा तीव्र प्रहार किया ॥१३॥

संक्रुद्धो वै महाराज दण्डाहतइवोरगः ।
पौत्रस्तव महाराज तव पौत्रमभाषत ॥१४॥

हे महाराज! इस समय दण्ड से आहत सर्प की तरह तुम्हारा पौत्र अभिमन्यु कुपित हो रहा था। तुम्हारे इसी पौत्र अभिमन्यु ने तुम्हारे दूसरे पौत्र लक्ष्मण से कहा— ॥१४॥

सुदृष्टः क्रियतां लोको ह्यमुं लोकं गमिष्यसि ।
पश्यतां बान्धवानां त्वां नयामि यमसादनम् ॥१५॥

हे लक्ष्मण! अब तुम इस संसार को अच्छी तरह देख लो। मैं तुम्हारे बन्धु-बान्धवों के देखते २ तुम्हें अभी यमलोक भेज रहा हूं ॥१५॥

एवमुक्त्वा ततो भल्लं सौभद्रः परवीरहा ।
उद्बबर्ह महाबाहुर्निर्मुक्तोरगसन्निभम् ॥१६॥

हे महाराज! इतना कहकर महाबाहु शत्रुवीर-नाशक, सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने कांचुली से रहित सर्प की तरह भीषण बाण धनुष पर चढ़ाया ॥१६॥

स तस्य भुजनिर्मुक्तो लक्ष्मणस्य सुदर्शनम् ।
सुनसं सुभ्रुकेशान्तं शिरोऽहार्षीत्सकुण्डलम् ॥१७॥

अभिमन्यु की भुजाओं द्वारा छोड़े हुए इस बाण ने लक्ष्मण के सुन्दर नासिका, भौंहें और केश तथा कुण्डलों से युक्त शिर को काट गिराया ॥१७॥

लक्ष्मणं निहतं दृष्ट्वा हाहेत्युच्चुक्रुशुर्जनाः ।
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः प्रिये पुत्रे निपातिते ॥१८॥
हतैनमिति चुक्रोश क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।

लक्ष्मण के मरते ही कौरवसेना में हाहाकार मच गया। अपने प्रिय पुत्र के मरते ही राजा दुर्योधन तो क्रोध से उबल उठा और अपने पक्ष के क्षत्रियों को इसके मारने की आज्ञा दी ॥१८॥

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रोणपुत्रो बृहद्बलः ॥१६॥
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड्रथाः पर्यवारयन् ।

अब द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और हृदिकपुत्र कृतवर्मा इन छः महारथियों ने अभिमन्यु को घेर लिया ॥१६॥

तांस्तु विध्वा शितैर्बाणैर्विमुखीकृत्य चाऽऽर्जुनिः ।२०।
वेगेनाऽभ्यपतत्क्रुद्धः सैन्धवस्य महद्बलम् ।

अर्जुन पुत्र अभिमन्यु ने उनको अपने तीखे बाणों से बींध कर रण से पराङ्मुख कर दिया और फिर वह बड़े वेग से सिन्धुराज जयद्रथ की सेना में घुस गया ॥२०॥

आवव्रुस्तस्य पन्थानं गजानीकेन दंशिताः ॥२१॥
कलिङ्गाश्च निषादाश्च क्राथपुत्रश्च वीर्यवान् ।

अभिमन्यु के मार्ग को बड़ी शक्ति से सम्पन्न कलिङ्ग देश के वीर, निषाद और पराक्रमी क्राथ-पुत्र ने अपनी २ गज सेना के द्वारा रोका ॥२१॥

तत्प्रसक्तमिवाऽत्यर्थं युद्धमासीद्विशाम्पते ॥२२॥
ततस्तत्कुञ्जरानीकं व्यधमद्धृष्टमार्जुनिः ।

हे विशाम्पते ! इस समय लगातार बड़ा घोर युद्ध हुआ । अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने इस मदोन्मत्त हाथियों की सेना को बहुत ही बुरी तरह मथ डाला ॥२२॥

यथा वायुर्नित्यगतिर्जलदाञ्शतशोऽम्बरे ॥२३॥
ततः क्राथः शरव्रातैरार्जुनिं समवाकिरत्

आकाश में सदा चलने वाला वायु जैसे मेघों को सैंकड़ों तरह से इधर उधर फैंकता है, इसी तरह क्राथपुत्र ने अपने बाण समूह से अभिमन्यु को आच्छादित कर दिया ॥२३॥

अथेतरे सन्निवृत्ताः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥२४॥
परमास्त्राणि धुन्वानाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः ॥

इसी समय अन्य द्रोणाचार्य आदि महारथी भी लौट पड़े। अपने २ बड़े धनुष कँपाते हुए इन महारथियों ने सुभद्रापुत्र अभिमन्यु पर बड़े वेग से आक्रमण किया ॥२४॥

तान्निवार्याऽऽर्जुनिर्बाणैः क्राथपुत्रमथाऽर्दयत् ॥२५॥
शरौघेणाऽप्रमेयेण त्वरमाणो जिघांसया ।

अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने उन महारथियों को फिर पीछे हटा कर क्राथ-पुत्र पर विचार में नहीं आने वाले अपने बाण समूह से आक्रमण किया। यह इस समय इसकी समाप्ति ही कर देना चाहता था ॥२५॥

सधनुर्बाणकेयूरौ बाहू समुकुटं शिरः ॥२६॥
सच्छत्रध्वजयन्तारं रथं चाऽश्वान्न्यपातयत् ।

अभिमन्यु ने धनुष, बाण और भूषणों से युक्त इसके बाहुओं तथा मुकुट सहित मस्तक तथा चक्र, ध्वजा, सारथि, रथ और अश्वों को काट कर भूमि में गिरा दिया ॥२६॥

कुलशीलश्रुतिबलैः कीर्त्या चाऽस्त्रबलेन च ।
युक्ते तस्मिन्हते वीराः प्रायशो विमुखाऽभवन्॥ २७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि लक्ष्मणवधे
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

कुल, शील, शास्त्र बल, कीर्ति और अस्त्रबल से सम्पन्न इस महारथी क्राथपुत्र के मार लेने पर प्रायः सारे कौरव वीर रण से विमुख हो गए ॥२७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में लक्ष्मण के वध का छियालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



# सैंतालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

तथा प्रविष्टं तरुणं सौभद्रमपराजितम् ।
कुलानुरूपं कुर्वाणं संग्रामेष्वपराजितम् ॥१॥
आजानेयैः सुबलिभिर्यान्तमश्वैस्त्रिहायनैः ।
प्लवमानमिवाऽऽकाशे के शूराः समवारयन् ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! इस प्रकार जयद्रथ की सेना में घुसे हुए, किसी से पराजित नहीं होने वाले, तरुण, किसी से नहीं किये जाने वाले कुलानुरूप अद्भुत कर्म कर दिखाने वाले और बलवान् तीन वर्ष के आजनेय ( उत्तम जाति के ) अश्वों द्वारा आकाश में उड़ते हुए से अभिमन्यु को किन २ कौरव वीरों ने रोका ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

अभिमन्यु प्रविश्यैतांस्तावकान्निशितैः शरैः ।
अकरोत्पार्थिवान्सर्वान्विमुखान्पाण्डुनन्दनः ॥३॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! पाण्डु-पुत्रों को आनन्द बढ़ाने वाले, अभिमन्यु ने तुम्हारी सेना में घुस कर अपने तीक्ष्ण बाणों से तुम्हारे पक्ष के सारे वीरों को प्रायः रण से विमुख कर दिया ॥३॥

तं तु द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिश्च सबृहद्बलः ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड्रथाः पर्यवारयन् ॥४॥

अब अभिमन्यु को उन्हीं द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और हृदिक पुत्र कृतवर्मा-इन छःओं महारथियों ने फिर घेर लिया ॥४॥

दृष्ट्वा तु सैन्धवे भारमतिमात्रं समाहितम् ।
सैन्यं तव महाराज युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥५॥

हे महाराज ! जब तुम्हारे सैनिकों ने राजा जयद्रथ पर बहुत भार हुआ देखा-तो वे सारे मिलकर राजा युधिष्ठिर पर झपटे ॥५॥

सौभद्रमितरे वीरमभ्यवर्षञ्शराम्बुभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ॥६॥
तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्सर्वविद्यासु निष्ठितान् ।
व्यष्टम्भयद्रणे बाणैः सौभद्रः परवीरहा ॥७॥

दूसरे तुम्हारे पक्ष के महावीर सैनिकों ने तालवृक्ष के तुल्य विशाल धनुषों को खैंच कर बाणधाराओं की अभिमन्यु पर झड़ी लगा दी। परन्तु इन सारे अस्त्रविद्या में कुशल धनुर्धरों को रण में शत्रुवीर नाशक सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने अपने बाणों से वहीं रोक दिया ॥६-७॥

द्रोणं पञ्चाशताऽविध्यद्विंशत्या च वृहद्बलम् ।
अशीत्या कृतवर्माणं कृपं षष्ट्या शिलीमुखैः ॥८॥
रुक्मपुङ्खैर्महावेगैराकर्णसमचोदितैः ।
अविध्यद्दशभिर्बाणैरश्वत्थामानमार्जुनिः ॥९॥

अभिमन्यु ने द्रोणाचार्य को पचीस, बृहद्बल को बीस, कृतवर्मा को अस्सी, कृपाचार्य को साठ और अश्वत्थामा को दश सुवर्ण की जड़ से विभूषित महावेग वाले कान तक खैंचे हुए बाणों से बींध दिया ॥८-९॥

स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन च शितेन च ।
फाल्गुनिर्द्विपतां मध्ये विव्याध परमेषुणा ॥१०॥

इसके अनन्तर अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने कान तक खैंचे और विष में बुझे हुए तीक्ष्ण बाण से सारे शत्रुओं के देखते २ अङ्गराज कर्ण के कान पर प्रहार किया ॥१०॥

पातयित्वा कृपस्याऽश्वांस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥११॥

अभिमन्यु ने कृपाचार्य के अश्व, पार्ष्णि (पृष्ठ) रक्षक और सारथि को मारकर फिर उसको भी दश बाण मारकर क्षत-विक्षत कर दिया ॥११॥

ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्द्धनम् ।
पुत्राणां तव वीराणां पश्यतामवधीद्बली ॥१२॥

इसके अनन्तर कौरवों की कीर्ति के बढ़ाने वाले, वृन्दारक नामक महाबली वीर को तुम्हारे महारथी पुत्रों के देखते २ महाबली अभिमन्यु ने मार गिराया ॥१२॥

तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ।
वरं वरममित्राणामारुजन्तमभीतवत् ॥१३॥

जब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अभिमन्यु को कौरव वीरों को चुन २ कर निर्भीक भाव से मारते देखा-तो उसने अभिमन्यु पर पचीस बाण छोड़े ॥१३॥

स तु बाणैः शितैस्तूर्णं प्रत्यविध्यत मारिष ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणामश्वत्थामानमार्जुनिः ॥१४॥

हे आर्य ! अभिमन्यु ने शीघ्र ही अपने तीक्ष्ण बाणों से राजा दुर्योधनादि के देखते २ अश्वत्थामा को बींध डाला ॥१४॥

षष्ट्या शराणां तं द्रौणिस्तिग्मधारैः सुतेजनैः ।
उग्रैर्नाऽकम्पयद्विध्वा मैनाकमिव पर्वतम् ॥१५॥

अश्वत्थामा ने फिर तीखी धार के धारी साठ तीक्ष्ण बाण छोड़े, परन्तु मैनाक पर्वत के सदृश दृढ़ उस अभिमन्यु को वह इन उग्र बाणों से भी विचलित नहीं कर सका ॥१५॥

स तु द्रौणिं त्रिसप्तत्या हेमपुङ्खैरजिह्मगैः ।
प्रत्यविध्यन्महातेजा बलवानपकारिणम् ॥१६॥

महातेजस्वी, बलवान् अभिमन्यु ने भी अपने अपकार के करने वाले अश्वत्थामा को सुवर्णपुङ्ख से विभूषित, सीधे जाने वाले तेहत्तर बाणों से बींध लिया ॥१६॥

तस्मिन्द्रोणो बाणशतं पुत्रगृद्धी न्यपातयत् ।
अश्वत्थामा तथाऽष्टौ च परीप्सन्पितरं रणे ॥१७॥

अपने पुत्र की रक्षा के निमित्त द्रोणाचार्य ने अभिमन्यु पर सैंकड़ों बाण छोड़े। अश्वत्थामा ने भी पिता की सहायता में अभिमन्यु पर रण में आठ बाणों द्वारा प्रहार किया ॥१७॥

कर्णो द्वाविंशतिं भल्लान्कृतवर्मा च विंशतिम् ।
बृहद्बलस्तु पञ्चाशत्कृपः शारद्वतो दश ॥१८॥

अब कर्ण ने बाईस, कृतवर्मा ने बीस, बृहद्बल ने पचास, शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य ने दश बाण अभिमन्यु पर छोड़े ॥१८॥

तांस्तु प्रत्यवधीत्सर्वान्दशभिर्दशभिः शरैः ।
तैरर्द्यमानः सौभद्रः सर्वतो निशितैः शरैः ॥१९॥

इनके तीक्ष्ण बाणों से क्षत-विक्षत हुए भी सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने उन सारे महारथियों को दश २ बाण मारकर व्याकुल कर दिया ॥१९॥

तं कोसलानामधिपः कर्णिनाऽताडयद्धृदि ।
स तस्याऽश्वान्ध्वजं चापं सूतं चाऽपातयत्क्षितौ ॥२०॥

इसके अनन्तर कोशल देश के अधिपति बृहद्बल ने कान तक बाण खैंच कर अभिमन्यु के हृदय में प्रहार किया। अभिमन्यु ने भी इसके अश्व, ध्वजा, धनुष और सारथि को पृथिवी में गिरा दिया ॥२०॥

अथ कोसलराजस्तु विरथः खड्गचर्मभृत् ।
इयेष फाल्गुनेः कायाच्छिरो हर्त्तुं सकुण्डलम् ॥२१॥

जब कोसलराज रथ से विहीन हो गया—तो इसने खड्ग और चर्म ( ढ़ाल-तलवार ) हाथ में लेकर कुण्डलों से विभूषित अभिमन्यु के शिर को शरीर से पृथक् कर देना चाहा ॥२१॥

स कोसलानामधिपं राजपुत्रं बृहद्बलम् ।
हृदि विव्याध बाणेन स भिन्नहृदयोऽपतत् ॥२२॥

अभिमन्यु ने कोसलदेश के अधिपति राजपुत्र बृहद्बल के वक्षस्थल में तीक्ष्ण बाण मारा, जिससे आहत होकर वह रण-भूमि में गिर गया ॥२२॥

बभञ्ज च सहस्राणि दश राज्ञां महात्मनाम् ।
सृजतामशिवा वाचः खड्गकार्मुकधारिणाम् ॥२३॥

ढ़ाल तलवार लेकर अभिमन्यु पर झपटने तथा कटु वचनों का व्यवहार करने वाले दश हजार महावीर राजाओं को अभिमन्यु ने रण में पीछे हटा दिया ॥२३॥

तथा बृहद्बलं हत्वा सौभद्रो व्यचरद्रणे ।
व्यष्टम्भयन्महेष्वासो योधांस्तव शराम्बुभिः ॥२४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि बृहद्बलवधे
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

इस प्रकार कोसलाधिपति बृहद्बल को मारकर सुभद्रा-पुत्र, महाधनुर्धर अभिमन्यु, तुम्हारे योद्धाओं को बाणवर्षा से व्याकुल करने लगा ॥२४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में बृहद्बल के वध का सैंतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

---

# अड़तालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

स कर्णं कर्णिना कर्णे पुनर्विव्याध फाल्गुनिः।
शरैः पञ्चाशता चैनमविध्यत्कोपयन्भृशम् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने फिर कान तक धनुष खैंच कर कर्ण के कान को बींधा तथा पचास बाणों से बींध कर अभिमन्यु ने कर्ण को अत्यन्त ही कुपित कर दिया ॥१॥

प्रतिविव्याध राधेयस्तावद्भिरथ तं पुनः।
शरैराचितसर्वाङ्गो बह्वशोभत भारत ॥२॥

हे भारत! इसके अनन्तर राधा-पुत्र कर्ण ने भी उतने ही (पचास) बाण छोड़ कर आहत किया। इन बाणों से अभिमन्यु का शरीर छिद गया और वह बड़ा ही सुशोभित दिखाई देने लगा ॥

कर्णं चाऽप्यकरोत्क्रुद्धो रुधिरोत्पीडवाहिनम्।
कर्णोऽपि विबभौ शूरः शरैश्छिन्नोऽसृगाप्लुतः ॥३॥

क्रोधातुर हुए अभिमन्यु ने कर्ण को रुधिर की धार से व्याप्त करके रक्त की माला पहना दी । बाणों से व्याप्त होकर रुधिर में भीगा हुआ कर्ण बहुत सुन्दर प्रतीत होता था ॥३॥

तावुभौ शरचित्राङ्गौ रुधिरेण समुक्षितौ ।
बभूवतुर्महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥४॥

ये दोनों वीर कर्ण और अभिमन्यु, बाणों से व्याप्त हो रहे थे और रक्त में भीगे हुए थे। ये दोनों महावीर, खिले हुए किंशुक ( ढ़ाक ) वृक्ष के समान सुन्दर प्रतीत होते थे ॥४॥

अथ कर्णस्य सचिवान्षट् शूरांश्चित्रयोधिनः ।
साश्वसूतध्वजरथान्सौभद्रो निजघान ह ॥५॥

अब अभिमन्यु ने विचित्र ढ़ंग से युद्ध करने वाले, कर्ण के छः सचिवों को अश्व, सारथि, ध्वजा और रथ के साथ मार गिराया ॥५॥

तथेतरान्महेष्वासान्दशभिर्दशभिः शरैः ।
प्रत्यविध्यदसम्भ्रान्तस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥६॥

इसी प्रकार अन्य भी महाधनुर्धरों को बिना किसी घबराहट के अभिमन्यु ने बींध दिया। यह दृश्य बड़ा ही आश्चर्य कारक माना गया ॥६॥

मागधस्य तथा पुत्रं हत्वा षड्भिराजिह्मगैः ।
साश्वं ससूतं तरुणमश्वकेतुमपातयत् ॥७॥

इसके अनन्तर सीधे जाने वाले छः बाण छोड़कर अभिमन्यु ने मगधराज के पुत्र तथा अश्व, सारथि के साथ युवा राजा अश्वकेतु को भी रणभूमि में मार गिराया ॥७॥

मार्तिकावतकं भोजं ततः कुञ्जरकेतनम् ।
क्षुरप्रेण समुन्मथ्य ननाद विसृजञ्शरान् ॥८॥

आगे चलकर अभिमन्यु ने हाथी के चिन्ह से सुशोभित, ध्वजा वाले राजा मर्तिकावतक भोज को क्षुर के समान तीक्ष्ण शस्त्र से व्याकुल करके बड़ी भारी गर्जना की ॥८॥

तस्य दौःशासनिर्विध्वा चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
सूतमेकेन विव्याध दशभिश्चाऽर्जुनात्मजम् ॥९॥

अब रण में दुःशासन का पुत्र आगे बढ़ा और उसने अभिमन्यु के चारों ओर एक बाण से सारथि को वींध कर दश बाणों से अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु को क्षत-विक्षत कर दिया ॥९॥

ततो दौःशासनिं कार्ष्णिर्विध्वा सप्तभिराशुगैः ।
संरम्भाद्रक्तनयनो वाक्यमुच्चैरथाऽब्रवीत् ॥१०॥
पिता तवाऽऽहवं त्यक्त्वा गतः कापुरुषो यथा ।
दिष्ट्या त्वमपि जानीषे योद्धुं न त्वद्य मोक्ष्यसे ॥

कृष्ण ( अर्जुन ) पुत्र अभिमन्यु ने शीघ्रगामी बाण छोड़कर दुःशासन के पुत्र को वींध दिया। इस समय अभिमन्यु की क्रोध से आंखें लाल हो रही थी। यह बड़ी गर्जना के साथ उससे कहने लगा, कि तेरा पिता दुःशासन तो कायर पुरुष की तरह रण

छोड़कर खिसक गया। यह बड़ा ही हर्ष का विषय है, कि तू भी युद्ध करना जानता है। आज तू मेरे सामने से बचकर नहीं जा सकेगा ॥१०-११॥

एतावदुक्त्वा वचनं कर्मारपरिमार्जितम् ।
नाराचं विससर्जाऽस्मै तं द्रौणिस्त्रिभिराच्छिनत् ।१२।

इतना वचन कहकर यन्त्र पर तीक्ष्ण किये हुए बाण को अभिमन्यु ने दुःशासन पुत्र पर छोड़ा, परन्तु द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने तीन बाण छोड़कर उसे बीच में ही काट डाला ॥१२॥

तस्याऽऽर्जुनिर्ध्वजं छित्वा शल्यं त्रिभिरताडयत् ।
तं शल्यो नवभिर्बाणैर्गाध्रपत्रैरताडयत् ॥१३॥
हृदयसम्भ्रान्तवद्राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।

हे राजन्! अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने अश्वत्थामा की ध्वजा काट गिराई और तीन बाण शल्य पर छोड़े। शल्य ने भी गृध्र पक्षी के पंखों से विभूषित नौ बाणों से अभिमन्यु की छाती पर प्रहार किया-परन्तु वह अविचल रूप से खड़ा रहा। यह बड़ा ही अद्भुत दृश्य था ॥१३॥

तस्याऽऽर्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा हत्वोभौ पार्ष्णिसारथी ॥
तं विव्याधाऽऽयसैः षड्भिः सोऽपाक्रामद्रथान्तरम् ।

अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने अश्वत्थामाकी भी ध्वजा काट कर उसके पार्ष्णि (एड़ी) रक्षक और सारथि को मार गिराया तथा शल्य पर भी छः लोह के बाणों से प्रहार किया। वह अपने रथ को छोड़कर दूसरे रथ पर जा चढ़ा ॥१४॥

शत्रुञ्जयं चन्द्रकेतुं मेघवेगं सुवर्चसम् ॥१५॥
सूर्यभासं च पञ्चैतान्हत्वा विव्याध सौबलम् ।

अब अभिमन्यु ने शत्रुञ्जय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा और सूर्यभास इन पांचों राजाओं का वध करके सुबल-पुत्र शकुनि को बाणों से आच्छादित कर दिया ॥१५॥

तं सौबलस्त्रिभिर्विध्वा दुर्योधनमथाऽब्रवीत् ॥१६॥
सर्व एनं विमथ्नीमः पुरैकैकं हिनस्ति नः ।

सुबल-पुत्र शकुनि ने तीन बाण अभिमन्यु के मार कर राजा दुर्योधन से कहा-कि सब लोग मिलकर प्रथम अभिमन्यु को मार लें, नहीं तो यह एक २ करके सबको मार लेगा ॥१६॥

अथाऽब्रवीत्पुनर्द्रोणं कर्णो वैकर्तनो रणे ॥१७॥
पुरा सर्वान्प्रमथ्नाति ब्रूहास्य वधमाशु नः ।

उधर सूर्य-पुत्र कर्ण ने द्रोणाचार्य से कहा, कि यह अभिमन्यु तो रण में अभी सबको मारे लेता है, तुम इसके वध का उपाय बताओ ॥१७॥

ततो द्रोणो महेष्वासः सर्वांस्तान्प्रत्यभाषत ॥१८॥
अस्ति वाऽस्याऽन्तरं किञ्चित्कुमारस्याऽथ पश्यत ।

महाधनुर्धर द्रोणाचार्य, उन सब महारथियों से कहने लगे-कि तुम लोग तनिक यह तो देखो, कि इस राजकुमार के बाण छोड़ने के समय यह कोई प्रहार का अवसर ही नहीं छोड़ता है ॥१८॥

अण्वप्यस्याऽन्तरं ह्यद्य चरतः सर्वतोदिशम् ॥१६॥
शीघ्रतां नरसिंहस्य पाण्डवेयस्य पश्यत ।

बताओ? क्या अस्त्रप्रहार के समय इसके अणु भर भी अन्तर पड़ता है। तुम पाण्डु-पुत्र अर्जुन के पुत्र इस अभिमन्यु की शीघ्रता तो देखो ॥१६॥

धनुर्मण्डलमेवाऽस्य रथमार्गेषु दृश्यते ॥२०॥
सन्दधानस्य विशिखाञ्शीघ्रं चैव विमुञ्चतः ।

रथों के मार्ग पर बाणों को चढ़ाते और शीघ्र २ छोड़ते हुए इसके धनुष का कैसा मण्डलाकार बन जाता है ॥२०॥

आरुजन्नपि मे प्राणान्मोहयन्नपि सायकैः ॥२१॥
प्रहर्षयति मां भूयः सौभद्रः परवीरहा ।

शत्रु विजयी अभिमन्यु, अपने बाणों से मेरे प्राणों को पीड़ित और मोहित कर रहा है, परन्तु फिर भी यह वीर मेरे आनन्द को बढ़ा रहा है ॥२१॥

अति मां नन्दयत्येष सौभद्रो विचरन्रणे ॥२२॥
अन्तरं यस्य संरब्धा न पश्यन्ति महारथाः ।

रण में निर्भीकता से घूमता हुआ, सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु मुझे बहुत ही आनन्दित कर रहा है, जो बड़े २ कुपित हुए महारथी भी इस पर प्रहार का अवसर नहीं पा सकते हैं ॥२२॥

अस्यतो लघुहस्तस्य दिशः सर्वा महेषुभिः ॥२३॥
न विशेषं प्रपश्यामि रणे गाण्डीवधन्वनः ।

बड़े २ बाणों द्वारा सारी दिशाओं को व्याप्त करते हुए शीघ्रताकारी अभिमन्यु में और गाण्डीवधनुषधारी अर्जुन में मुझे तो कुछ भी तारतम्य ( फर्क ) दिखाई नहीं देता है ॥२३॥

अथ कर्णः पुनर्द्रोणमाहाऽर्जुनिशराहतः ॥२४॥
स्थातव्यमिति तिष्ठामि पीड्यमानोऽभिमन्युना ।

अभिमन्यु के बाण से आहत हुए कर्ण ने फिर द्रोणाचार्य से कहा—कि मैं तो अभिमन्यु के बाणों से अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ। युद्ध से भागना नहीं चाहिए-इसी कारण से मैं यहां जैसे तसे ठहरा हुआ हूँ ॥२४॥

तेजस्विनः कुमारस्य शराः परमदारुणाः ॥२५॥
क्षिण्वन्ति हृदयं मेऽद्य घोराः पावकतेजसः ।

इस तेजस्वी कुमार के बाण बहुत ही दारुण और अग्नि के तुल्य घोर हैं, जो मेरे हृदय को आज चीरे डालते हैं ॥२५॥

तमाचार्योऽब्रवीत्कर्णं शनकैः प्रहसन्निव ॥२६॥
अभेद्यमस्य कवचं युवा चाऽऽशुपराक्रमः ।

आचार्य द्रोण मुस्कुराते हुए कर्ण से धीरे २ कहने लगे-कि इसका कवच बड़ा अभेद्य और यह स्वयं बड़ा पराक्रमी है ॥

उपदिष्टा मया चाऽस्य पितुः कवचधारणा ॥२७॥
तामेष निखिलां वेत्ति ध्रुवं परपुरञ्जयः ।

जो कवच पहनने का ढंग मैंने इसके पिता अर्जुन को सिखाया था, शत्रु-पुर-विजयी अभिमन्यु उन सारे ढंगों को अच्छी तरह जान चुका है ॥२७॥

शक्यं त्वस्य धनुश्छेत्तुं ज्यां च बाणैः समाहितैः ॥
अभिपूँश्च हयांश्चैव तथोभौ पार्ष्णिसारथी।
एतत्कुरु महेष्वास राधेय यदि शक्यते ॥२९॥

यदि नहीं चूकने वाले बाण छोड़ सको—तो उन बाणों से इसका धनुप और धनुप की डोरी काटी जा सकती है । हे महाधनुर्धर ! कर्ण ! यदि तुम यह कर सको—तो कर दो ॥२८-२९॥

अथैनं विमुखीकृत्य पश्चात्प्रहरणं कुरु।
सधनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुरासुरैः ॥३०॥
विरथं विधनुष्कं च कुरुष्वैनं यदीच्छसि।

इस प्रकार इसको प्रहार करने से विमुख करके इस पर प्रहार करना। जब तक इसके हाथ में धनुप है-यह सुर और असुरों से भी नहीं जीता जा सकता है । यदि तुम पसन्द करो-तो इसको रथ और धनुप से हीन कर दो ॥३०॥

तदाचार्यवचः श्रुत्वा कर्णो वैकर्त्तनस्त्वरन् ॥३१॥
अस्यतो लघुहस्तस्य पृषत्कैर्धनुराच्छिनत्।

आचार्य द्रोण के ये वचन सुनकर सूर्य-पुत्र, कर्ण ने बड़ी शीघ्रता से शीघ्र २ बाण फैंकने वाले अभिमन्यु के धनुष को काट गिराया ॥३१॥

अश्वानस्याऽवधीद्भोजो गौतमः पार्ष्णिसारथी ॥३२॥
शेषास्तु च्छिन्नधन्वानं शरवर्षैरवाकिरन्।

भोजराज कृतवर्मा ने इसके अश्व और गौतमवंशोद्भव कृपाचार्य ने इसके पार्ष्णि ( एड़ी ) रक्षक तथा सारथि को मार गिराया। शेष महारथियों ने धनुषहीन अभिमन्यु पर बाणवर्षा करना आरम्भ किया ॥३२॥

त्वरमाणास्त्वराकाले विरथं षण्महारथाः ॥३३॥
शरवर्षैरकरुणा बालमेकमवाकिरन् ।

यह समय बड़ी शीघ्रता करने का था, इससे छःओं महारथी रथहीन अकेले बालक अभिमन्युको बाणवर्षा से ढकने लगे ॥३३॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ॥३४॥
खड्गचर्मधरः श्रीमानुत्पपात विहायसा ।

अभिमन्यु, धनुष और रथ से हीन हो चुका था, परन्तु फिर भी वह कान्तिमान् अपने धर्म की पालना के निमित्त खड्ग-चर्म ( ढाल तलवार ) लेकर भूमि से ऊपर आकाश में उछलने लगा ॥

मार्गैः स कौशिकाद्यैश्च लाघवेन बलेन च ॥३५॥
आर्जुनिर्व्यचरद्व्योम्नि भृशं वै पक्षिराडिव ।

अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु कौशिक आदि तलवारके हाथ दिखाता हुआ लाघव ( फुर्ती ) और बल के द्वारा आकाश में गरुड़ पक्षी की तरह उछलने लगा ॥३५॥

मय्येव निपतत्येष सासिरित्यूर्ध्वदृष्टयः ॥३६॥
विव्यधुस्तं महेष्वासं समरे छिद्रदर्शिनः ।

इस संकट की प्रतीक्षा करने वाले विरोधी वीर यह सोच कर, कि कहीं यह तलवार लेकर मुझ पर ही न टूट पड़े-ऊपर दृष्टि करके इस महाधनुर्धर अभिमन्यु को अत्यन्त आहत करने लगे ॥३६॥

तस्य द्रोणोऽच्छिनन्मुष्टौ खड्गं मणिमयत्सरुम् ॥३७॥
क्षुरप्रेण महातेजास्त्वरमाणः सपत्नजित् ।
राधेयो निशितैर्बाणैर्व्यधमच्चर्म चोत्तमम् ॥३८॥

शत्रु विजयी महातेजस्वी द्रोणाचार्य ने क्षुर के तुल्य तीक्ष्ण बाण से बड़े वेग के साथ अभिमन्यु के मणिमय मूठवाले खड्ग को मूठ पर से काट गिराया। राधा-पुत्र कर्ण ने तीक्ष्ण बाणों से अभिमन्यु की उत्तम ढ़ाल काट दी ॥३७-३८॥

व्यसिचर्मेषुपूर्णाङ्गः सोऽन्तरिक्षात्पुनः क्षितिम् ।
आस्थितश्चक्रमुद्यम्य द्रोणं क्रुद्धोऽभ्यधावत ॥३९॥

अब अभिमन्यु की ढ़ाल तलवार भी कट चुकी। इसका सारा शरीर बाणों से छिदा हुआ था। यह फिर आकाश से नीचे पृथिवी पर उतरा, इसने चक्र ग्रहण करके द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया।

स चक्ररेणूज्ज्वलशोभिताङ्गो बभावतीवोज्ज्वलचक्रपाणिः ।
रणेऽभिमन्युः क्षणमास रौद्रः स वासुदेवानुकृतिं प्रकुर्वन् ॥

अभिमन्युका शरीर चक्रकी रेणु से धूसरित हो रहा था। चक्र धारण किये हुए अभिमन्यु बहुत ही सुन्दर प्रतीत हुए। इस समय

वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण का सा आकार धारण करके अभिमन्यु क्षण भर रणमें विकराल रूप धारी प्रतीत हुआ ॥४०॥

सुतरुधिरकृतैकरागवस्त्रो भ्रुकुटिपुटाकुलितोऽतिसिंहनादः ।
प्रभुरमितबलो रणेऽभिमन्युर्नृपवरमध्यगतो भृशं व्यराजत् ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युविरथकरणे
अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

इसके शरीर से निकलने वाले रक्त से इसके सारे वस्त्र रंग गए थे। इसके भ्रुकुटीपुट मुंदे जा रहे थे-तो भी यह सिंह की सी गर्जना कर रहा था। यह अत्यन्त शक्तिशाली बालक अभिमन्यु रण में राजाओं के मध्य में बहुत ही सुन्दर दिखाई देता था ॥४१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में अभिमन्यु के रथ हीन करने का अड़तालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



# उनंचासवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

विष्णोः स्वसुर्नन्दकरः स विष्ण्वायुधभूषणः ।
रराजाऽतिरथः संख्ये जनार्दन इवाऽपरः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! श्रीकृष्ण की भगिनी सुभद्रा के आनन्द का बढ़ाने वाला चक्रधारी महारथी अभिमन्यु, रण में द्वितीय जनार्दन कृष्ण सा प्रतीत होता था ॥१॥

मारुतोद्धूतकेशान्तमुद्यतारिवरायुधम् ।
वपुः समीक्ष्य पृथ्वीशा दुःसमीक्ष्यं सुरैरपि ॥२॥
तच्चक्रं भृशमुद्विग्नाः सञ्चिच्छिदुरनेकधा ।

बाल बिखरे हुए, देवों को भी देखने में चकाचौंध करने वाले, शत्रु पर शस्त्र उठाए हुए अभिमन्यु के भीषण शरीर को देखकर राजा लोगों ने उसके चक्र के टुकड़े २ कर डाले ॥२॥

महारथस्ततः कार्ष्णिः स जग्राह महागदाम् ॥३॥
विधनुःस्यन्दनासिस्तैर्विचक्रश्चाऽरिभिः कृतः ।
अभिमन्युर्गदापाणिरश्वत्थामानमार्दयत् ॥४॥

अब कृष्ण ( अर्जुन ) पुत्र महारथी अभिमन्यु ने गदा उठाई । शत्रुओं ने इसे धनुष, रथ, खड्ग और चक्र से विहीन कर रखा था । अभिमन्यु ने गदा हाथ में लेकर अश्वत्थामा पर आक्रमण किया ।

स गदामुद्यतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमशनीमिव ।
अपाक्रामद्रथोपस्थाद्विक्रमांस्त्रीन्नरर्षभः ॥५॥

अश्वत्थामा ने वज्र के तुल्य भीषण गदा को जब उठी हुई देखी-तो वह नरवीर रथ से कूद कर तीन पद पीछे हट गया ॥५॥

तस्याऽश्वान्गदया हत्वा तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
शराचिताङ्गः सौभद्रः श्वाविद्वत्समदृश्यत ॥६॥

अभिमन्यु ने गदा से अश्वत्थामा के अश्व और पार्ष्णिरक्षक तथा सारथि को मार गिराया। सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु, इस समय बाणों से छिदा हुआ श्वावित् ( सिंह ) पशु के तुल्य दिखाई देने लगा ॥६॥

ततः सुबलदायादं कालिकेयमपोथयत् ।
जघान चाऽस्याऽनुचरान्गान्धारान्सप्तसप्ततिम् ॥७॥

इसके अनन्तर अभिमन्यु ने प्रथम सुबलपुत्र कालिकेय को मार डाला और पीछे उसके साथी सतहत्तर गान्धार वीरों को मारकर परलोक भेज दिया ॥७॥

पुनश्चैव वसातीयाञ्जघान रथिनो दश ।
केकयानां रथान्सप्त हत्वा च दश कुञ्जरान् ॥८॥
दौःशासनिरथं साश्वं गदया समपोथयत् ।

फिर इसने वसाति संज्ञक क्षत्रियों के दश महारथी मार डाले और केकयों के सात महारथी और हाथी मार कर दुःशासन के पुत्र के रथ को अश्वों सहित चकनाचूर कर दिया ॥८॥

ततो दौःशासनिः क्रुद्धो गदामुद्यम्य मारिष ॥९॥
अभिदुद्राव सौभद्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।

हे आर्य ! अब दुःशासन-पुत्र क्रोध में भर गया और उसने गदा उठाकर सुभद्रा-पुत्र पर आक्रमण किया। और कहा, कि तनिक ठहरा रह ॥९॥

तावुद्यतगदौ वीरावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥१०॥
भ्रातृव्यौ सम्प्रजहाते पुरेव त्र्यम्बकान्धकौ ।

अब दोनों ही वीरों ने गदा उठा ली और ये दोनों चचेरे भाई, एक दूसरे के मारने की इस तरह चेष्टा करने लगे जैसे पूर्व काल में महादेव और अन्धकासुर का संग्राम हुआ था ॥१०॥

तावन्योन्यं गदाग्राभ्यामाहत्य पतितौ क्षितौ ॥११॥
इन्द्रध्वजाविवोत्सृष्टौ रणमध्ये परन्तपौ ।

इन दोनों ने गदा के अग्रभाग से इस तरह से प्रहार किया, कि दोनों परन्तप वीर, इन्द्र ध्वजा की तरह रणभूमि में गिर गए ॥

दौःशासनिरथोत्थाय कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥१२॥
उत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्यताडयत् ।

कौरवों के वंश की कीर्ति का बढ़ाने वाला, दुःशासन-पुत्र उठ खड़ा हुआ और उसने उठते २ सुभद्रा-पुत्र 'अभिमन्यु' के शिर पर बुरी तरह गदा का प्रहार किया ॥१२॥

गदावेगेन महता व्यायामेन च मोहितः ॥१३॥
विचेता न्यपतद्भूमौ सौभद्रः परवीरहा ।

शत्रुवीरनाशक अभिमन्यु युद्ध करते २ बहुत थक चुका था, वह इस भारी गदा के प्रहार से अचेत होकर भूमि में गिर गया ॥

एवं विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे ॥१४॥
क्षोभयित्वा चमूं सर्वां नलिनीमिव कुञ्जरः ।
अशोभत हतो वीरो व्याधैर्वनगजो यथा ॥१५॥

हे राजन् ! इस प्रकार अनेक कौरव महारथियों ने मिलकर अकेले अभिमन्यु को मार लिया । अभिमन्यु ने कौरवसेना को कमलिनी के वन के हाथी की तरह मथ डाला था। इस समय मारा हुआ अभिमन्यु व्याधों से मारे हुए वन के गजराज की तरह रणभूमि में सुशोभित हो रहा था ॥१४-१५॥

तं तथा पतितं शूरं तावकाः पर्यवारयन् ।
दावं दग्ध्वा यथा शान्तं पावकं शिशिरात्यये ॥१६॥

इस प्रकार गिरे हुए उस वीर अभिमन्यु को कौरवपक्ष के वीर घेर कर खड़े हो गए। ये ग्रीष्मकाल में वन को दग्ध करके शान्त अग्नि को घेर कर खड़े हुए जन्तु से प्रतीत होते थे ॥१६॥

विमृद्य नगशृङ्गाणि सन्निवृत्तमिवाऽनिलम् ।
अस्तङ्गतमिवाऽऽदित्यं तप्त्वा भारतवाहिनीम् ॥१७॥

हे भारत ! वृक्षोंकी चोटियों को छिन्नभिन्न करके शान्त हुए वायु या अस्त हुए सूर्य की तरह सेना को सन्तप्त करके अभिमन्यु शान्त हो गया ॥१७॥

उपप्लुतं यथा सोमं संशुष्कमिव सागरम् ।
पूर्णचन्द्राभवदनं काकपक्षवृताक्षिकम् ॥१८॥

अभिमन्यु राहु से ग्रसित चन्द्रमा और सूखे हुए सरोवर सा प्रतीत होने लगा। उसका मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर था और आंखें काकपक्षों (शिर के बालों) से ढकी हुई थी ॥१८॥

तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा तावकास्ते महारथाः ।
मुदा परमया युक्ताश्चुक्रुशुः सिंहवन्मुहुः ॥१९॥

तुम्हारे महारथी, अभिमन्यु को भूमि में पड़ा हुआ देखकर बड़े प्रसन्न हुए और सिंह की तरह गर्जना करने लगे ॥१९॥

आसीत्परमको हर्षस्तावकानां विशाम्पते ।
इतरेषां तु वीराणां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥२०॥

हे विशाम्पते ! इस समय तुम्हारे पुत्रों को बड़ा ही हर्ष हुआ तथा तुम्हारे पक्ष के वीरों के तो नेत्रों से हर्ष का जल गिरने लगा॥

अन्तरिक्षे च भूतानि प्राक्रोशन्त विशाम्पते ।
दृष्ट्वा निपतितं वीरं च्युतं चन्द्रमिवाऽम्बरात् ॥२१॥

हे विशाम्पते ! आकाश से टूटकर पड़े हुए चन्द्रमा की तरह गिरे हुए इस वीर अभिमन्यु को देखकर आकाशचारी प्राणी बड़ा विलाप करने लगे ॥२१॥

द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्त्तराष्ट्रमहारथैः ।
एकोऽयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः ॥२२॥

आकाशचारी देवता तो यह कह रहे थे, कि द्रोण, कर्ण आदि छः कौरव पक्ष के महारथियों ने मिलकर अभिमन्यु को मारा है, जो सनातनधर्म नहीं है ॥२२॥

तस्मिन्विनिहते वीरे व्यशोभत मेदिनी ।
द्यौर्यथा पूर्णचन्द्रेण नक्षत्रगणमालिनी ॥२३॥

जब अभिमन्यु मारा जा चुका-तो पूर्णचन्द्र और नक्षत्रमाला से व्याप्त आकाश की भांति पृथिवी शान्त होकर सुशोभित होने लगी ॥२३॥

रुक्मपुङ्खैश्च सम्पूर्णा रुधिरौघपरिप्लुता ।
उत्तमाङ्गैश्च शूराणां भ्राजमानैः सकुण्डलैः ॥२४॥
विचित्रैश्च परिस्तोमैः पताकाभिश्च संवृता ।
चामरैश्च कुथाभिश्च प्रविद्धैश्चाऽम्बरोत्तमैः ॥२५॥
तथाऽश्वनरनागानामलङ्कारैश्च सुप्रभैः ।
खड्गैः सुनिशितैः पीतैर्निर्मुक्तैर्भुजगैरिव ॥२६॥
चापैश्च विविधैश्छिन्नैः शक्त्यृष्टिप्रासकम्पनैः ।
विविधैश्चाऽऽयुधैश्चाऽन्यैः संवृता भूरशोभत ॥२७॥

इस समय रणभूमि, सुवर्ण के मूल वाले, बाणों और रुधिर के समूह से व्याप्त होगई, शूरवीरों के कुण्डलों सहित चमकीले, मस्तक, विचित्र २ परिस्तोम और पताकाओं से सब ओर भर गई। चामर, झूल, फटे हुए उत्तम २ वस्त्र, अश्व, नर, हाथियों के

चमकीले आभूषण, कांचुलीहीन सर्प की भांति विष भरे हुए तीक्ष्ण खड्ग, अनेक टूटे फूटे शक्ति ऋष्टि, प्रास, कम्पन और धनुष तथा बहुत प्रकार के आयुधों से व्याप्त हुई रणभूमि सुशोभित होरही थी ॥२४-२७॥

वाजिभिश्चापि निर्जीवैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः ।
सारोहैर्विषमा भूमिः सौभद्रेण निपातितैः ॥२८॥

सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु द्वारा मार २ कर गिराये हुए, अश्व या रक्त में भीगे हुए सवारों समेत सिसकते हुए अश्वों से रणभूमि बहुत ही विषम हो रही थी ॥२८॥

सांकुशैः समहामात्रैः सवर्मायुधकेतुभिः ।
पर्वतैरिव विध्वस्तैर्विशिखैर्मथितैर्गजैः ॥२९॥

पृथिव्यामनुकीर्णैश्च व्यश्वसारथियोधिभिः ।
ह्रदैरिव प्रक्षुभितैर्हतनागै रथोत्तमैः ॥३०॥

पदातिसङ्घैश्च हतैर्विविधायुधभूषणैः ।
भीरूणां त्रासजननी घोररूपाऽभवन्मही ॥३१॥

अंकुश, महावत, शस्त्र, ध्वजा से युक्त, बाणोंसे आहत किये हुए इधर उधर पर्वतों के सदृश पड़े हुए हाथी तथा पृथिवी पर बिखरे हुए अश्व, सारथि और योधाओंसे आलोडित ह्रद (तालाब) की तरह हाथियों से हीन हुए महारथी, मरे हुए तथा अनेक शस्त्र और भूषणों से युक्त पैदल सैनिकों से पृथिवी इतनी घोर दिखाई देती थी, कि जिसको देखकर कायरोंको बड़ा ही भय प्रतीत होने लगता था ।

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् ।
तावकानां परा प्रीतिः पाण्डूनां चाऽभवद्व्यथा ॥३२॥

चन्द्र और सूर्य के तुल्य कान्तिधारी अभिमन्यु को भूमि में पड़ा हुआ देखकर तुम्हारे पक्ष के वीरों को बड़ी प्रीति और पाण्डव पक्ष को बड़ी व्यथा होने लगी ॥३२॥

अभिमन्यौ हते राजञ्शिशुकेऽप्राप्तयौवने ।
सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा धर्मराजस्य पश्यतः ॥३३॥

हे राजन्! अभी पूरे युवावस्था को नहीं प्राप्त हुए बालक अभिमन्यु के मार लेने पर धर्मराज युधिष्ठिर के देखते २ सारी पाण्डवसेना, भाग खड़ी हुई ॥३ ॥

दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा सौभद्रे विनिपातिते ।
अजातशत्रुस्तान्वीरानिदं वचनमब्रवीत् ॥३४॥

सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु के मारे जाने पर अपनी सेना को भागती देखकर अजातशत्रु धर्मराज यह वचन बोला ॥३४॥

स्वर्गमेष गतः शूरो यो हतो न पराङ्मुखः ।
संस्तम्भयत मा भैष्ट विजेष्यामो रणे रिपून् ॥३५॥

हे वीरो! तुम देखते नहीं हो, कि यह वीर बालक मर कर स्वर्ग चला गया, परन्तु युद्ध से पराङ्मुख नहीं हुआ। अब तुम लोग भी डटे रहो—डरो नहीं—हम शत्रु को जीत कर रहेंगे ॥

इत्येवं स महातेजा दुःखितेभ्यो महाद्युतिः ।
धर्मराजो युधां श्रेष्ठो ब्रुवन्दुःखमपानुदत् ॥३६॥

इस प्रकार दुःखित हुए अपने वीरों को योधाओं में श्रेष्ठ, धर्मराज ने समझा कर उनका दुःख दूर किया ॥३६॥

युद्धे ह्याशीविषाकारान्राजपुत्रान्रणे रिपून् ।
पूर्वं निहत्य संग्रामे पश्चादार्जुनिरभ्ययात् ॥३७॥

हे महारथियो ! सर्प के तुल्य भीषण, शत्रुभूत राजपुत्रों को प्रथम रण में मार कर पीछे अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने वीर गति प्राप्त की है ॥३७॥

हत्वा दशसहस्राणि कौसल्यं च महारथम् ।
कृष्णार्जुनसमः कार्ष्णिः शक्रलोकं गतो ध्रुवम् ।३८।

दश सहस्र वीर कोशल देशाधिपति, महारथी बृहद्बल को मार कर श्रीकृष्ण और अर्जुन के तुल्य पराक्रमी, अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु स्वर्गलोक को गए हैं ॥३८॥

रथाश्वनरमातङ्गान्विनिहत्य सहस्रशः ।
अवितृप्तः स संग्रामादशोच्यः पुण्यकर्मकृत् ।
गतः पुण्यकृतांल्लोकाञ्शाश्वतान्पुण्यनिर्जितान् ॥३९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधे
एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

रथी, अश्व, नर और गजों को सहस्रों की संख्या में मार कर संग्राम से अतृप्त हुआ ही पुण्यात्मा अभिमन्यु चल बसा ।

उसका कुछ शोक करना उचित नहीं है । इसने तो पुण्यात्माओं के पुण्य से प्राप्त किये जाने वाले सनातन लोकों को प्राप्त किया है ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में अभिमन्यु के वध का उनंचासवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



# पचासवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

वयं तु प्रवरं हत्वा तेषां तैः शरपीडिताः ।
निवेशायाऽभ्युपायामः सायाह्ने रुधिरोक्षिताः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! हम लोग उनके प्रधान शत्रु को मारकर उनके बाणों से पीड़ित हुए तथा रक्त में भीगे हुए सायंकाल होने पर अपने शिविर की ओर चल दिये ॥१॥

निरीक्षमाणास्तु वयं परे चाऽऽयोधनं शनैः ।
अपयाता महाराज ग्लानिं प्राप्ता विचेतसः ॥२॥

हे महाराज ! हम लोग और प्रतिपक्षी पाण्डव युद्धस्थल को देखते हुए धीरे २ चल दिए । इस समय हम सबके चित्त बड़े ही खिन्न हो रहे थे ॥२॥

ततो निशाया दिवसस्य चाऽशिवः,
शिवारुतैः सन्धिरवर्तताऽद्भुतः ।
कुशेशयापीडनिभे दिवाकरे,
विलम्बमानेऽस्तमुपेत्य पर्वतम् ॥३॥

रक्तकमल के समान लाल वर्णधारी, सूर्य के अस्ताचल पर पहुंचने पर दिन और रात की सन्धि हो गई। इस समय शृगाल अपना अकल्याणकारी शब्द करने लगे ॥३॥

वरासिशक्त्यृष्टिवरूथचर्मणां,
विभूषणानां च समाक्षिपन्प्रभाः ।
दिवं च भूमिं च समानयन्निव,
प्रियां तनुं भानुरुपैति पावकम् ॥४॥

उत्तम खड्ग, शक्ति, ऋष्टि, रथ के आवरण, ढाल तथा आभूषणों की कान्तियों को अपहरण तथा आकाश और भूमि को एक करता हुआ सूर्य, अपने प्रिय शरीर को मानो तप करने के निमित्त अग्नि में डाल रहा है ॥४॥

महाभ्रकूटाचलशृङ्गसन्निभैर्गजैरनेकैरिव वज्रपातितैः ।
सवैजयन्त्यंकुशवर्मयन्तृभिर्निपातितैर्नष्टगतिश्चिता क्षितिः ॥

बड़े २ पर्वत की अचलचोटी के तुल्य आकारधारी, वज्र से गिराए हुए, अपनी माला, अंकुश, कवच और सवारों के साथ पड़े हुए हाथियों से पृथिवी घिर गई और उसमें घूमना भी कठिन हो गया ॥५॥

हतेश्वरैश्चूर्णितपत्त्युपस्करैर्हताश्वसूतैर्विपताककेतुभिः ।
महारथैर्भूः शुशुभे विचूर्णितैः पुरैरिवाऽमित्रहतैर्नराधिप ॥

हे राजन् ! शत्रुओं द्वारा नष्ट किये हुए पुरों की भांति, अपने २ आरोहियों सहित नष्ट हुए गज, चकनाचूर हुए पैदल और युद्ध सामग्री, अश्व, तथा सारथि पताका और केतु एवं नष्ट-भ्रष्ट हुए महारथियों से रणभूमि व्याप्त हो गई ॥६॥

रथाश्ववृन्दैः सह सादिभिर्हतैः प्रविद्धभाण्डाभरणैः पृथग्विधैः
निरस्तजिह्वादशनान्त्रलोचनैर्धरा बभौ घोरविरूपदर्शना ॥

सवारों के साथ मारे हुए रथ और अश्वों के समूह के समूह पड़े थे, जिनके युद्ध के सामान और आभूषण दूर जा पड़े थे। इन अश्वादि की आंखें, जीभ, दांत और आंत निकले पड़े थे। इस प्रकार सारी रणभूमि बड़ी ही घोर दिखाई दे रही थी ॥७॥

प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधा विपन्नहस्त्यश्वरथानुगा नराः ।
महार्हशय्यास्तरणोचितास्तदा क्षितावनाथा इव शेरते हताः

कवच, आभरण, वस्त्र और आयुध जिनके छिन्न भिन्न हो चुके थे। हाथी, अश्व, रथ और अनुचर चकना-चूर हो गए, वे बड़ी २ अमूल्य शय्याओं या सोने योग्य वीर मर कर रणभूमि में अनाथ की तरह पड़े दिखाई दे रहे थे ॥८॥

अतीव हृष्टाः श्वशृगालवायसा बकाः सुपर्णाश्च वृकास्तरक्षवः
वयांस्यसृक्पान्यथरक्षसां गणाः पिशाचसङ्घाश्च सुदारुणा रणे।

इस समय रणभूमि में कुत्ते, गीदड, कव्वे, बक, गीध, भेड़िये, तरक्षु (तेंदुआ) तथा अन्य रक्त पीने वाले पक्षी एवं भयानक राक्षस और पिशाचों के गण ही दिखाई देते थे ॥९॥

त्वचो विनिर्भिद्य पिबन्वसामसृक्,
तथैव मज्जाः पिशितानि चाऽश्नुवन् ।
वपां विलुम्पन्ति हसन्ति गान्ति च,
प्रकर्षमाणाः कुणपान्यनेकशः ॥१०॥

ये भीषण जन्तु, त्वचा को चीर देते थे और वसा तथा रक्त को पी जाते और मज्जा एवं मांस को खा जाते थे। ये मांस की चिकनाई को चूस कर हंसते और गाते थे तथा लोगों को इधर उधर खैंच ले जाते थे ॥१०॥

शरीरसङ्घातवहा ह्यसृग्जला रथोडुपा कुञ्जरशैलसङ्कटा ।
मनुष्यशीर्षोपलमांसकर्दमा प्रविद्धनानाविधशस्त्रमालिनी ॥

शरीरों के समूह को बहा ले जाने वाली, रक्त रूपी जल से परिपूर्ण, रथों रूपी नौकाओं से समन्वित, हाथियों रूपी पर्वतों से भरी हुई, मनुष्यों के मस्तक के पत्थर, मांस की कीचड़ से युक्त और टूटे फूटे हुए शस्त्रों की तरङ्गों से सहित रणभूमि में भयानक नदी बह चली ॥११॥

भयावहा वैतरणीव दुस्तरा प्रवर्त्तिता योधवरैस्तदा नदी ।
उवाह मध्येन रणाजिरे भृशं भयावहा जीवमृतप्रवाहिनी ।

यह वैतरणी बड़ी दुस्तर और भयानक थी, जिसको बड़े २ शूरवीरों ने प्रचलित किया था। यह भीषण रणाङ्गण के मध्य में बही जा रही थी, जिसमें अनेक मृत वीर बहे जा रहे थे ॥१२॥

पिबन्ति चाऽश्नन्ति च यत्र दुर्दृशाः,
पिशाचसङ्घास्तु नदन्ति भैरवाः।
सुनन्दिताः प्राणभृतां भयङ्कराः,
समानभक्ष्याः श्वसृगालपक्षिणः ॥१३॥

इस समय अनेक भीषण पिशाचों के समूह रक्त को पी रहे थे और मांस को खा रहे थे। ये इतने भयानक दिखाई देते थे, कि इनको कोई देख भी नहीं सकता था। एक साथ खाने वाले कुत्ते, शृगाल और काक आदि पक्षी बड़े प्रसन्न थे, जिनको देख कर साधारण मनुष्यों को तो भय खड़ा हो जाता था ॥१३॥

तथा तदायोधनमुग्रदर्शनं निशामुखे पितृपतिराष्ट्रवर्धनम्।
निरीक्षमाणाः शनकैर्जहुर्नराः समुत्थिता नृत्तकबन्धसंकुलम् ॥

यमराज के राष्ट्र को बढ़ाने वाला यह युद्धस्थल बड़ा ही उग्र दिखाई देता था। इसमें अभी तक कबन्ध नाच रहे थे। सारे वीर चलने को तय्यार हो गए और वे इसको देखते हुए धीरे २ चल पड़े ॥१४॥

अपेतविध्वस्तमहार्हभूषणं निपातितं शक्रसमं महाबलम्।
रणेऽभिमन्युं ददृशुस्तदा जना व्यपोढहव्यं सदसीव पावकम्

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि तृतीयदिवसावहारे समरभूमिवर्णने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

बड़े २ अमूल्य आभूषण जिसके नष्ट भ्रष्ट हो चुके हैं, ऐसे इन्द्र के समान वैभवशाली महाबली अभिमन्यु को वीर लोग देखने लगे। यह यज्ञशाला में हविहीन अग्नि के तुल्य रणभूमि में पड़ा था ॥१५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में तीसरे दिन के युद्ध की समाप्ति पचासवां अध्याय समाप्त हुआ।

---

## इक्यावनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

हते तस्मिन्महावीर्ये सौभद्रे रथयूथपे।
विमुक्तरथसन्नाहाः सर्वे निक्षिप्तकार्मुकाः ॥१॥
उपोपविष्टा राजानं परिवार्य युधिष्ठिरम्।
तदेव युद्धं ध्यायन्तः सौभद्रगतमानसाः ॥२॥

सञ्जय ने कहा—महापराक्रमशाली, रथियों के यूथ के स्वामी सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु के मारे जाने पर पाण्डवपक्ष के वीर अपने रथों को छोड़, कवच उतार और धनुषों को दूर रख कर राजा युधिष्ठिर को घेर कर बैठ गए। इनका ध्यान युद्ध के दृश्यों

पर ही लगा हुआ और इनका मन अभी तक अभिमन्यु की वीरता-पूर्ण चेष्टाओं में ही अटका था ॥१-२॥

ततो युधिष्ठिरो राजा विललाप सुदुःखितः ।
अभिमन्यौ हते वीरे भ्रातुः पुत्रे महारथे ॥३॥

अपने भाई के पुत्र महारथी वीर अभिमन्यु के मारे जाने से दुःखी होकर राजा युधिष्ठिर विलाप करने लगा ॥३॥

द्रोणानीकमसम्बाधं मम प्रियचिकीर्षया ।
भित्वा व्यूहं प्रविष्टोऽसौ गोमध्यमिव केसरी ॥४॥

किसी प्रकार के भी छिद्र से रहित द्रोण की सेना में मेरी विजय की अभिलाषा से चक्रव्यूह को तोड़ कर गौओं के मध्य में सिंह की तरह वीर अभिमन्यु घुस गया था ॥४॥

यस्य शूरा महेष्वासाः प्रत्यनीकगता रणे ।
अभग्ना विनिवर्त्तन्ते कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥५॥

इस समय जो भीषण युद्ध हुआ, उसमें शत्रु की ओर से युद्ध-दुर्मद, अस्त्र विद्या में कुशल महाधनुर्धर वीर भी भयभीत होकर अभिमन्यु के सामने से भाग निकले थे ॥५॥

अत्यन्तशत्रुरस्माकं येन दुःशासनः शरैः ।
क्षिप्रं ह्यभिमुखः संख्ये विसंज्ञो विमुखीकृतः ॥६॥

हाय ! इस अभिमन्युने तो हमारे अत्यन्त शत्रु, वीर दुःशासन को रणमें सन्मुख पड़ने पर अपने बाणोंसे अचेत कर दिया, जिस से वह रण से भी खसक गया ॥६॥

स तीर्त्वा दुस्तरं वीरो द्रोणानीकमहार्णवम् ।

प्राप्य दौःशासनिं कार्ष्णिः प्राप्तो वैवस्वतक्षयम् ॥७॥

इस वीर अभिमन्यु ने द्रोण की सेना रूपी महासमुद्र का अतिक्रमण कर लिया था, परन्तु रण में दुःशासन-पुत्र का सामना पाकर आप ही यमराज के लोक को चला गया ॥७॥

कथं द्रक्ष्यामि कौन्तेयं सौभद्रे निहतेऽर्जुनम् ।

सुभद्रां वा महाभागां प्रियं पुत्रमपश्यतीम् ॥८॥

अब सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु के मारे जाने पर मैं कुन्ती-पुत्र अर्जुन को कैसे मुंह दिखाऊंगा तथा प्रियपुत्र से रहित महाभागा सुभद्रा से मैं क्या कहूँगा ॥८॥

किं स्विद्वयमपेतार्थमश्लिष्टमसमञ्जसम् ।

तावुभौ प्रतिवक्ष्यामो हृषीकेशधनञ्जयौ ॥९॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन से इस अस्पष्ट, नहीं कहे जानेवाले, दुःखदायी, सिद्धिनाशक सम्वाद को कैसे सुनाऊंगा ॥९॥

अहमेव सुभद्रायाः केशवार्जुनयोरपि ।

प्रियकामो जयाकांक्षी कृतवानिदमप्रियम् ॥१०॥

मुझे ही मेरे विजय की लालसा आतुर कर रही थी। मैं अपना ही स्वार्थ बनाना चाहता था, इसीसे पुत्र अभिमन्यु मारा गया। इस दशा में तो सुभद्रा, श्रीकृष्ण और अर्जुन की इस अप्रिय बात का कर्ता मैं ही हूं ॥१०॥

न लुब्धो बुध्यते दोषांल्लोभान्मोहात्प्रवर्त्तते ।
मधुलिप्सुर्हि नाऽपश्यं प्रपातमहमीदृशम् ॥११॥

लोभी लालच में होने वाली बुराईयों को नहीं देख पाता है। वह तो लोभ और मोह से आगे बढ़ा चला जाता है। मैंने मधु (शहद) के लालची की तरह इस ऊंचे से गिरने का विचार भी नहीं किया ॥११॥

यो हि भोज्ये पुरस्कार्यो यानेषु शयनेषु च ।
भूषणेषु च सोऽस्माभिर्बालो युधि पुरस्कृतः ॥१२॥

जिस बालक को अभी भोजन, यान, शयन और भूषणों से सुखी करना था, हाय ! उसको हमने स्वार्थवश युद्ध में धकेल दिया ॥१२॥

कथं हि बालस्तरुणो युद्धानामविशारदः ।
सदश्व इव सम्बाधे विषमे क्षेममर्हति ॥१३॥

युद्ध के दावपेचों को नहीं जानने वाला बालक या नवयुवा, वीर अभिमन्यु, उत्तम युवा अश्व की भांति संकटमयी विकट सेना में फंस कर कैसे सुरक्षित रह सकता था ॥१३॥

नो चेद्धि वयमप्येनं महीमनुशयीमहि ।
बीभत्सोः कोपदीप्तस्य दग्धाः कृपणचक्षुषा ॥१४॥

जो हम लोग भी अभिमन्यु के साथ ही युद्ध करके रणभूमि में नहीं गिर सके-तो कोप से प्रदीप्त, अर्जुन के कातर नेत्रों से अब दग्ध होकर गिरेंगे ॥१४॥

अलुब्धो: मतिमान्हीमान्क्षमावान्रूपवान्बली।
वपुष्मान्मानकृद्वीरः प्रियः सत्यपराक्रमः ॥१५॥

अर्जुन किसी प्रकार का लालची नहीं है। वह बुद्धिमान्, लज्जाशील, क्षमावान, सुन्दर, महाबली, सुन्दर आकारधारी, मनस्वी, सबका प्रिय, पराक्रमी वीर है ॥१५॥

यस्य श्लाघन्ति विबुधाः कर्माण्यूर्जितकर्मणः ।
निवातकवचाञ्जघ्ने कालकेयांश्च वीर्यवान् ॥१६॥

जिस महापराक्रमी के वीरकर्मों की देवता भी प्रशंसा करते हैं, उसी महावीर ने निवातकवच और कालकेय राक्षसों को मार गिराया है ॥१६॥

महेन्द्रशत्रवो येन हिरण्यपुरवासिनः।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण पौलोमाः सगणा हताः ॥१७॥

इसी अर्जुन ने इन्द्र के शत्रु, हिरण्यपुर निवासी पौलोम संज्ञक राक्षसों के गणों को आंख झपकाने मात्र काल में ही मार गिराया था ॥१७॥

परेभ्योऽप्यभयार्थिभ्यो यो ददात्यभयं विभुः ।
तस्यास्माभिर्न शकितस्त्रातुमप्यात्मजो बली ॥१८॥

जो शक्तिशाली अर्जुन, शरणागत शत्रुओं को भी अभयदान दे देता है, उस वीर के बली पुत्र की भी हम लोग रक्षा नहीं कर सके ॥१८॥

भयं तु सुमहत्प्राप्तं धार्तराष्ट्रान्महाबलान् ।
पार्थः पुत्रवधात्क्रुद्धः कौरवाञ्शोषयिष्यति ॥१६॥

अब महाबली धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधनादि को महाभय उपस्थित हो गया समझो-क्योंकि अपने पुत्र के वध से कुपित हुआ अर्जुन अब इन कौरवों को नष्ट करके ही छोड़ेगा ॥१६॥

क्षुद्रः क्षुद्रसहायश्च स्वपक्षक्षयकारकः ।
व्यक्तं दुर्योधनो दृष्ट्वा शोचन्हास्यति जीवितम् ॥२०॥

अब क्षुद्रबुद्धि दुर्योधन, अपने नीच सहायकों की सहायता पाकर अपने पक्ष का नाश करके रहेगा-इसमें सन्देह नहीं है। वह अपने पक्ष के नाश की चिन्ता में ही घुल कर अपने प्राण छोड़ देगा ॥२०॥

न मे जयः प्रीतिकरो न राज्यं न चाऽमरत्वं न सुरैः सलोकता।
इमं समीक्ष्याऽप्रतिवीर्यपौरुषं निपातितं देववरात्मजात्मजम् ।

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि युधिष्ठिरप्रलापे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

इन्द्र-पुत्र अर्जुन के पुत्र महापराक्रमी अभिमन्यु के मारे जाने पर आज मुझे विजय, राज्य-प्राप्ति, देवपदवी, स्वर्गोपलब्धि आदि कुछ भी सुखकारी प्रतीत नहीं होते हैं ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में राजा युधिष्ठिर के विलाप का इक्यावनवां अध्याय समाप्त हुआ।



# बावनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अथैनं विलपन्तं तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
कृष्णद्वैपायनस्तत्र आजगाम महानृषिः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! इस प्रकार कुन्ती-पुत्र, युधिष्ठिर विलाप कर रहे थे, कि उसी समय महर्षि कृष्णद्वैपायन वहां आ पहुंचे ॥१॥

अर्चयित्वा यथान्यायमुपविष्टं युधिष्ठिरः ।
अब्रवीच्छोकसन्तप्तो भ्रातुः पुत्रवधेन च ॥२॥

राजा युधिष्ठिर ने विधि-पूर्वक महर्षि व्यास का सत्कार किया, इसके बाद जब वे बैठ गए-तो अपने भ्राता के पुत्र के वध से शोकातुर होकर उनसे यह वचन बोले ॥२॥

अधर्मयुक्तैर्बहुभिः परिवार्य महारथैः ।
युध्यमानो महेष्वासैः सौभद्रो निहतो रणे ॥३॥

हे भगवन् ! आज अनेक महारथियों ने अधर्म के साथ वीर अभिमन्यु को घेर कर मार दिया। यह महावीर अभिमन्यु भी बड़े २ धनुर्धरों के साथ युद्ध करता हुआ रणभूमि में गिर गया ॥

बालश्च बालबुद्धिश्च सौभद्रः परवीरहा ।
अनुपायेन संग्रामे युध्यमानो विशेषतः ॥४॥

यद्यपि सुभद्रा-पुत्र, बालक अभिमन्यु अनुभवहीन था, तो भी शत्रु वीरों के मारने में बड़ा ही कुशल निकला। जब इसके पास कोई भी उपाय नहीं रहा-तो भी यह बड़ी उत्तमता से युद्ध करता रहा ॥४॥

मया प्रोक्तः स संग्रामे द्वारं सञ्जनयस्व नः ।
प्रविष्टेऽभ्यन्तरे तस्मिन्सैन्धवेन निवारिताः ॥५॥

मैंने ही उससे कहा था, कि तू इस चक्रव्यूह में द्वार बना दे। वह द्वार बनाकर भीतर घुस गया, परन्तु हम लोगों को सिन्धुराज जयद्रथ ने भीतर नहीं जाने दिया ॥५॥

ननु नाम समं युद्धमेष्टव्यं युद्धजीविभिः ।
इदं चैवाऽसमं युद्धमीदृशं यत्कृतं परैः ॥६॥

युद्ध करने वाले वीरों का यह नियम है, कि वे समान के साथ युद्ध करते हैं, परन्तु यह जो विरोधियों ने युद्ध किया है, यह उस नियम के विरुद्ध असमान युद्ध था ॥६॥

तेनाऽस्मि भृशसन्तप्तः शोकबाष्पसमाकुलः ।
शमं नैवाऽधिगच्छामि चिन्तयानः पुनः पुनः ॥७॥

मुझे इतना अभिमन्यु के मारे जाने का शोक नहीं है, जितना मैं उसके साथ हुए अन्याय से दुःखी और शोकातुर हूं। इस घटना से मैं अत्यन्त सन्तप्त और शोक के अश्रुओं से व्याप्त हो रहा हूं। इस बात को सोचते २ मुझे शान्ति प्राप्त नहीं होती है ॥७॥

सञ्जय उवाच—

तं तथा विलपन्तं वै शोकव्याकुलमानसम् ।
उवाच भगवान्व्यासो युधिष्ठिरमिदं वचः ॥८॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब इस प्रकार शोक से व्याकुल मन वाले होकर धर्मराज विलाप कर रहे थे, तो उससे भगवान् वेद-व्यास यह वचन कहने लगे ॥८॥

व्यास उवाच—

युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
व्यसनेषु न मुह्यन्ति त्वादृशा भरतर्षभ ॥९॥

व्यासजी बोले—हे समस्त शास्त्रों के ज्ञाता ! महाबुद्धिमान् ! भरतवंशश्रेष्ठ ! युधिष्ठिर ! तुम जैसे महानुभावों को विपत्ति में मोहित नहीं होना चाहिए ॥९॥

स्वर्गमेष गतः शूरः शत्रून्हत्वा बहून्रणे ।
अबालसदृशं कर्म कृत्वा वै पुरुषोत्तमः ॥१०॥

शूरवीर अभिमन्यु तो रण में बहुत से शत्रुओं को मार कर स्वर्ग गया है । यह पुरुष-प्रवीर तो बालक से नहीं होने वाले कर्मों को करके मृत्यु को प्राप्त हुआ है ॥१०॥

अनतिक्रमणीयो वै विधिरेष युधिष्ठिर ।
देवदानवगन्धर्वान्मृत्युर्हरति भारत ॥११॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! युधिष्ठिर ! मरने-जीने के क्रम का कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता है । मृत्यु तो देव, दानव और गन्धर्वों को भी जा दबाती है ॥११॥

युधिष्ठिर उवाच—

इमे वै पृथिवीपालाः शेरते पृथिवीतले ।
निहताः पृतनामध्ये मृतसंज्ञा महाबलाः ॥१२॥

धर्मराज बोले—हे महर्षे ! आप देखिए ? ये सेना के मध्य में मरे हुए महावीर क्षत्रिय पृथिवी पर पड़े हैं ॥१२॥

नागायुतबलाश्चाऽन्ये वायुवेगबलास्तथा ।
त एते निहताः संख्ये तुल्यरूपा नरैर्नराः ॥१३॥

इनमें बहुत से तो दश २ सहस्र हाथियों के बल के धारी हैं, कुछ वायु के तुल्य वेगशील हैं । इन वीरों को इनके ही समान महाबली वीरों ने रणभूमि में मार गिराया है ॥१३॥

नैषां पश्यामि हन्तारं प्राणिनां संयुगे कंचित् ।
विक्रमेणोपसम्पन्नास्तपोबलसमन्विताः ॥१४॥

इन वीरों को रण में मारने वाला तो कोई दिखाई ही नहीं देता था । ये सारे पराक्रम से सुसम्पन्न और तपोबल से समन्वित थे ॥

जेतव्यमिति चाऽन्योन्यं येषां नित्यं हृदि स्थितम् ।
अथ चेमे हताः प्राज्ञाः शेरते विगतायुषः ॥१५॥

अब अपनी आयु को समाप्त करके ये बुद्धिमान् वीर मृत होकर रणभूमि में पड़े हैं । इनके हृदय में सदा यही रहता था, कि हम किसी प्रकार अन्य शत्रु को जीत लेवें ॥१५॥

मृता इति च शब्दोऽयं वर्त्तते च ततोऽर्थवत् ।
इमे मृता महीपालाः प्रायशो भीमविक्रमाः ॥१६॥

आज मृत शब्द सार्थक हो रहा है, जो ये महापराक्रमी राजा मर कर भूमि में पड़े हैं ॥१६॥

निश्चेष्टा निरभीमानाः शूराः शत्रुवशङ्गताः ।
राजपुत्राश्च संरब्धा वैश्वानरमुखं गताः ॥१७॥

बहुत से शूरवीर अपने अभिमान से हीन हुए निश्चेष्ट शत्रु के वश में हुए यहां पड़े हैं तथा बहुत से राजपुत्र आवेश में रहते हुए भी आज अग्नि के मुख में गिर गए ॥१७॥

अत्र मे संशयः प्राप्तः कुतः संज्ञा मृता इति ।
कस्य मृत्युः कुतो मृत्युः कथं संहरते प्रजाः ॥१८॥
हरत्यमरसङ्काश तन्मे ब्रूहि पितामह ।

इस विषय में मुझे संशय हो रहा है, कि ये मृत कैसे हो रहे हैं। यह मृत्यु किसकी हुई और यह कहां से आती है तथा कैसे यह मनुष्यों का नाश कर देती है। हे देवतुल्य ! पितामह ! आप मेरे इस सन्देह का नाश करो ॥१८॥

सञ्जय उवाच—

तं तथा परिपृच्छन्तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
आश्वासनमिदं वाक्यमुवाच भगवानृषिः ॥१९॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! जब कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने इतना पूछा तो भगवान् वेदव्यास उसको सांत्वनादायी यह वचन बोले ॥१९॥

व्यास उवाच—

अत्राऽप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
अकम्पनस्य कथितं नारदेन पुरा नृप ॥२०॥

हे राजन् ! एक पुरातन इतिहास है, जिसका कथन इस समय उपयोगी है । पूर्वकाल में इस राजा अकम्पन के वृत्तान्त को नारदजी ने सुनाया था ॥२०॥

स चापि राजा राजेन्द्र पुत्रव्यसनमुत्तमम् ।
अप्रसह्यतमं लोके प्राप्तवानिति मे मतिः ॥२१॥

हे राजेन्द्र ! इस अकम्पन राजा को भी असह्य पुत्र-मृत्यु का संकट उपस्थित हो गया था-यह हमने सुना है ॥२१॥

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि मृत्योः प्रभवमुत्तमम् ।
ततस्त्वं मोक्ष्यसे दुःखात्स्नेहबन्धनसंश्रयात् ॥२२॥

इसी उदाहरण के द्वारा मृत्यु की कहां से उत्पत्ति होती है, तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर सुनाऊंगा; उसको सुनकर आप स्नेह के बन्धन रूप दुःख से पार हो जाओगे ॥२२॥

समस्तपापराशिघ्नं शृणु कीर्तयतो मम ।
धन्यमाख्यानमायुष्यं शोकघ्नं पुष्टिवर्धनम् ॥२३॥
पवित्रमरिसङ्घघ्नं मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
यथैव वेदाध्ययनमुपाख्यातमिदं तथा ॥२४॥
श्रवणीयं महाराज प्रातर्नित्यं नृपोत्तमैः ।
पुत्रानायुष्मतो राज्यमीहमानैः श्रियं तथा ॥२६॥

अब तुम समस्त पापराशि के नाशक, आश्चर्यजनक, शोकापहारी, पुष्टि और वृद्धि करने वाले, उत्तम आख्यान को मुझ से सुनो। यह बड़ा पवित्र, अरिसमूह नाशक और मङ्गलों का बड़ा मङ्गल है। जितना पवित्र वेदाध्ययन है, उतना ही यह उपाख्यान पवित्र है। हे महाराज! श्रेष्ठ राजाओं को अपने पुत्रों की आयु और राज्यलक्ष्मी की वृद्धि के निमित्त इसे प्रातःकाल सुनना चाहिए ॥२३-२५॥

पुरा कृतयुगे तात आसीद्राजा ह्यकम्पनः।
स शत्रुवशमापन्नो मध्ये संग्राममूर्धनि ॥२६॥
तस्य पुत्रो हरिर्नाम नारायणसमो बले।
श्रीमान्कृतास्त्रो मेधावी युधि शक्रोपमो बली ॥२७॥

हे तात! पूर्वकाल में कृत युग में एक अकम्पन नाम के राजा हुए हैं। किसी युद्ध में उनका पुत्र शत्रु के वश में पड़ गया। उस पुत्र का नाम हरि था, जो नारायण के समान महाबली था। यह श्रीमान् अस्त्र विद्या में कुशल, मेधावी और युद्ध में इन्द्र के तुल्य पराक्रमी था ॥२६-२७॥

स शत्रुभिः परिवृतो बहुधा रणमूर्धनि।
व्यस्यन्बाणसहस्राणि योधेषु च गजेषु च ॥२८॥
स कर्म दुष्करं कृत्वा संग्रामे शत्रुतापनः।
शत्रुभिर्निहतः संख्ये पृतनायां युधिष्ठिर ॥२९॥

इसने अनेक प्रकार से रण में सहस्रों बाण छोड़कर योधा और गजों को आहत कर दिया। थोड़ी देर में शत्रुओं ने इसे घेर लिया। शत्रुतापी हरि ने संग्राम में बड़े २ दुष्कर कर्म कर दिखाए। हे महाराज ! अन्त में सेना के मध्य में ही उसे शत्रुओं ने रणभूमि में मार गिराया ॥२६-२६॥

स राजा प्रेतकृत्यानि तस्य कृत्वा शुचाऽन्वितः ।
शोचन्नहनि रात्रौ च नाऽलभत्सुखमात्मनः ॥३०॥
तस्य शोकं विदित्वा तु पुत्रव्यसनसम्भवम् ।
आजगामाऽथ देवर्षिर्नारदोऽस्य समीपतः ॥३१॥

राजा अकम्पन ने उसका बड़ा शोक किया और अन्त में उसके सारे प्रेतकृत्य किए, परन्तु इसके चित्त में पुत्र के शोक का इतना शंकु गड गया, कि उसे रात दिन चैन ही नहीं पड़ता था। पुत्र की मृत्यु से उत्पन्न शोक को देखकर महर्षि नारद इसके पास पहुंचे ॥३१॥

स तु राजा महाभागो दृष्ट्वा देवर्षिसत्तमम् ।
पूजयित्वा यथान्यायं कथामकथयत्तदा ॥३२॥

महा ऐश्वर्यशाली राजा ने विधिपूर्वक देवर्षि नारद की पूजा करके उसे अपने पुत्र की मृत्यु का सारा वृत्तान्त सुनाया ॥३२॥

तस्य सर्वं समाचष्ट यथावृत्तं नरेश्वरः ।
शत्रुभिर्विजयं संख्ये पुत्रस्य च वधं तथा ॥३३॥

राजा ने आदि से लेकर अन्त तक अपने पुत्र की मृत्यु और शत्रुओं के विजय का सारा समाचार नारदजी को कह दिया ॥

मम पुत्रो महावीर्य इन्द्रविष्णुसमद्युतिः ।
शत्रुभिर्बहुभिः संख्ये पराक्रम्य हतो बली ॥३४॥

उसने कहा—हे भगवन् ! मेरा पुत्र, महाशक्तिशाली और इन्द्र तथा विष्णु के तुल्य महाकान्तिमान् था । इस महाबली पुत्र को बहुत से शत्रुओं ने मिल कर मार गिराया ॥३४॥

क एष मृत्युर्भगवन्कि वीर्यबलपौरुषः ।
एतदिच्छामि तत्त्वेन श्रोतुं मतिमतां वर ॥३५॥

हे भगवन् ! यह मृत्यु क्या है और इसमें कितना बल और पराक्रम है । हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! मैं यह सुनना चाहता हूं, तुम इसका ठीक २ वर्णन करो ॥३५॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदो वरदः प्रभुः ।
आख्यानमिदमाचष्ट पुत्रशोकापहं महत् ॥३६॥

राजा के यह वचन सुनकर वर देने वाले शक्तिशाली नारद मुनिने पुत्र के शोक को नाश करने वाले इस उपाख्यान को सुनाया ॥३६॥

नारद उवाच—

शृणु राजन्महाबाहो आख्यानं बहुविस्तरम् ।
यथावृत्तं श्रुतं चैव मयाऽपि वसुधाधिप ॥३७॥

नारदजी बोले—हे महाबाहो ! राजन ! मैं तुमको एक बहुत विस्तृत इतिहास सुनाता हूं । हे वसुधाधिप ! मैंने भी इस वृत्तान्त को पूर्वकाल में सुना था ॥३७॥

प्रजाः सृष्ट्वा तदा ब्रह्मा आदिसर्गे पितामहः ।
असंहृतं महातेजा दृष्ट्वा जगदिदं प्रभुः ॥३८॥
तस्य चिन्ता समुत्पन्ना संहारं प्रति पार्थिव ।

हे राजन्! सृष्टि के आदि में प्रजा की रचना करके पितामह ब्रह्मा ने देखा, कि यह सारा जगत् बढ़ा ही चला जाता है और इसका संहार नहीं होता है। हे राजन्! इस प्रकार ब्रह्माजी की जगत् के संहार की चिन्ता बढ़ती चली गई ॥३८॥

चिन्तयन्न ह्यसौ वेद संहारं वसुधाधिप ॥३९॥
तस्य रोषान्महाराज खेभ्योऽग्निरुदतिष्ठत ।
तेन सर्वा दिशो व्याप्ता सान्तर्देशा दिधक्षता ॥४०॥

हे वसुधाधिप! वे बार २ सोचते थे, परन्तु, जगत के संहार की कोई युक्ति उनके ध्यान में नहीं आती थी। हे महाराज! ब्रह्मा जी के रोष से आकाश में आग उत्पन्न हो गई। यह अग्नि सारे देशों को दग्ध करता हुआ सारी दिशाओं में फैलने लगा॥

ततो दिवं भुवं चैव ज्वालामालासमाकुलम् ।
चराचरं जगत्सर्वं ददाह भगवान्प्रभुः ॥४१॥

अब आकाश और भूलोक आग की लपटों से व्याप्त हो गया। इस प्रकार शक्तिशाली अग्नि चराचर जगत् को जलाने लगा॥

ततो हतानि भूतानि चराणि स्थावराणि च ।
महता क्रोधवेगेन त्रासयन्निव वीर्यवान् ॥४२॥

इस समय चर, अचर, प्राणी समूह नष्ट होने लगे। वीर्यवान् अग्नि बड़े क्रोध से भयभीत करता हुआ सा फैल रहा था ॥४२॥

ततो रुद्रो जटी स्थाणुर्निशाचरपतिर्हरः।

जगाम शरणं देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥४३॥

अब जटाधारी, निशाचरों के स्वामी भगवान् शङ्कर परमेष्ठी ब्रह्मा की शरण में पहुंचे ॥४३॥

तस्मिन्नापतिते स्थाणौ प्रजानां हितकाम्यया।

अब्रवीत्परमो देवो ज्वलन्निव महामुनिः ॥४४॥

प्रजा के हित की कामना से भगवान् शङ्कर के ब्रह्माजी के पास आने पर अग्नि के समान क्रोध से प्रज्वलित महामुनि ब्रह्मा बोले।

किं कुर्म कामं कामार्ह कामाज्जातोऽसि पुत्रक।

करिष्यामि प्रियं सर्वं ब्रूहि स्थाणो यदिच्छसि ॥४५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

हे कामना की प्राप्ति के योग्य ! पुत्र ! तुम अपनी इच्छा से उत्पन्न हुए हो। बताओ ? तुम्हारा क्या कार्य सम्पादन करें। तुम अपने अभीष्ट का कथन करो-मैं तुम्हारी सारी प्रिय कामनाओं को पूर्ण करूंगा ॥४५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में वेदव्यासजी के आने का बावनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

# तरेपनवां अध्याय

स्थाणुरुवाच—

प्रजासर्गनिमित्तं हि कृतो यत्नस्त्वया विभो ।
त्वया सृष्टाश्च वृद्धाश्च भूतग्रामाः पृथग्विधाः ॥१॥

महादेवजी बोले—हे विभो ! तुमने तो प्रजा की रचना के निमित्त तप किया था, तुम्हारे रचना करने के अनन्तर बहुत से पृथक् २ प्राणी बढ़ गए ॥१॥

तास्तवेह पुनः क्रोधात्प्रजा दह्यन्ति सर्वशः ।
ता दृष्ट्वा मम कारुण्यं प्रसीद भगवन्प्रभो ॥२॥

अब तुम ही क्रोध करके प्रजा को जला रहे हो-इनको देखकर मुझे बड़ी दया आ रही है। हे भगवन् ! तुम प्रसन्न हो जाओ और कृपा करो ॥२॥

ब्रह्मोवाच—

संहर्त्तुं न च मे काम एतदेवं भवेदिति ।
पृथिव्या हितकामं तु ततो मां मन्युराविशत् ॥३॥

ब्रह्माजी बोले-मेरी इच्छा संसार को नाश करने की नहीं है। पृथिवी के हित की कामना से ही मुझे यह क्रोध हो गया है ॥३॥

इयं हि मां सदा देवी भारार्त्ता समचूचुदत् ।
संहारार्थं महादेव भारेणाऽभिहता सती ॥४॥

हे महादेव ! यह पृथिवी इनके भार सहने में असमर्थ हो गई-इससे उसने ही मुझे इनके संहार के लिए प्रेरणा की है ॥४॥

ततोऽहं नाऽधिच्छामि तथा बहुविधं तदा ।
संहारमप्रमेयस्य ततो मां मन्युराविशत् ॥५॥

मेरे बहुत कुछ सोचने पर भी इस बहुत बढ़े हुए जगत् के संहार का ढंग समझ में नहीं आया-इससे मुझे क्रोध उत्पन्न हो गया ॥५॥

इन्द्र उवाच—

संहारार्थं प्रसीदस्व मा रुषो वसुधाधिप ।
मा प्रजाः स्थावराश्चैव जङ्गमाश्च व्यनीनशः ॥६॥

महादेव बोले—हे वसुधा के अधीश्वर ! अब तुम क्रोध न करो और प्रसन्न होकर क्रोध करना छोड़ दो । अब स्थावर जङ्गम प्रजा का नाश नहीं होना चाहिए ॥६॥

तव प्रसादाद्भगवन्निदं वर्त्तेत्त्रिधा जगत् ।
अनागतमतीतं च यच्च सम्प्रति वर्तते ॥७॥

हे भगवन ! आपकी कृपा से ही यह सारा जगत् भूत, भविष्यत् और वतेमान रूप में विद्यमान है । आपने ही भूतकाल में रचा, आगे रचोगे और अब पालन कर रहे हो ॥७॥

भगवन्क्रोधसन्दीप्तः क्रोधादग्निमवासृजत् ।
स दहत्यश्मकूटानि द्रुमांश्च सरितस्तथा ॥८॥
पल्वलानि च सर्वाणि सर्वे चैव तृणोलपाः ।
स्थावरं जङ्गमं चैव निःशेषं कुरुते जगत् ॥९॥

हे भगवन् ! आप क्रोध से प्रज्वलित हो उठे और आपके क्रोध से आग उत्पन्न हो गई। वह आग पर्वत के शिखर, वृक्ष, नदी, तलाई और घासफूस आदि सारे चराचर जगत को भस्म कर रही है और इसे निःशेप कर देना चाहती है ॥८-९॥

तदेतद्भस्मसाद्भूतं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
प्रसीद भगवन्स त्वं रोषो न स्याद्वरो मम ॥१०॥

अब यह सारा स्थावर जङ्गमरूप जगत् भस्म हो गया है। हे भगवन् ! आप प्रसन्न हो जाइए और इसे ही मेरा वरदान समझिए ॥१०॥

सर्वे हि सृष्टा नश्यन्ति तव देव कथञ्चन ।
तस्मान्निवर्त्यतां तेजस्त्वय्येवेदं प्रलीयताम् ॥११॥

हे देव ! आपकी बनाई हुई चीजें कभी तो नष्ट होनी ही है। आप अपने तेज का संहार करें और इसको अपने में ही लीन कर लें ॥११॥

तत्पश्य देव सुभृशं प्रजानां हितकाम्यया ।
यथेमे प्राणिनः सर्वे निवर्त्तेरंस्तथा कुरु ॥१२॥

हे देव ! आप प्रजा के हित की कामना से अच्छी तरह दृष्टि डालें। जिस प्रकार इन प्राणियों का दुःख से छुटकारा हो-वही उपाय करो ॥१२॥

अभावं नेह गच्छेयुरुत्सन्नजननाः प्रजाः ।
आदिदेव नियुक्तोऽस्मि त्वया लोकेषु लोककृत् ॥१३॥

उत्पत्ति से हीन हुई प्रजा नितान्त अभाव को प्राप्त न हो जावे। हे आदिदेव ! लोक के संहार के लिए-तो आपने मुझे उत्पन्न किया है ॥१३॥

मा विनश्येज्जगन्नाथ जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
प्रसादाभिमुखं देवं तस्मादेवं ब्रवीम्यहम् ॥१४॥

हे जगन्नाथ ! यह स्थावर जङ्गम रूप जगत् नष्ट न होवे-आप ऐसा ही करें। आपने प्रसन्न होकर मुझे वरदान दिया-इससे मैं यह कह रहा हूं ॥१४॥

नारदउवाच—

श्रुत्वा हि वचनं देवः प्रजानां हितकारणे ।
तेजः सन्धारयामास पुनरेवाऽन्तरात्मनि ॥१५॥

नारदजी बोले-हे राजन् ! ब्रह्मदेव ने प्रजा के हित के निमित्त महादेवजी के वचन सुनकर अपने तेज को फिर अन्तरात्मा में स्थापित कर लिया ॥१५॥

ततोऽग्निमुपसंहृत्य भगवाँल्लोकसत्कृतः ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च कथयामास वै प्रभुः ॥१६॥

लोक में सत्कार प्राप्त भगवान् ब्रह्मदेव ने अग्नि का उपसंहार करके उसके प्रवृत्त और निवृत्त होने की कथा को सुनाया ॥१६॥

उपसंहरतस्तस्य तमग्निं रोपजं तथा ।
प्रादुर्बभूव विश्वेभ्यो गोभ्यो नारी महात्मनः ॥१७॥

जब ब्रह्माजी उस अपनी क्रोधाग्नि को समेट रहे थे, तो उस समय उस महात्मा की इन्द्रियों के छिद्र से एक नारी उत्पन्न हुई ।१७

कृष्णरक्ता तथा पिङ्गरक्तजिह्वास्यलोचना ।
कुण्डलाभ्यां च राजेन्द्र तप्ताभ्यां तप्तभूषणा ॥१८॥

इस स्त्री का रंग, जीभ मुख और आंखें पीली तथा कुछ लाल थी। हे राजेन्द्र! यह उज्ज्वल सुवर्ण के कुण्डलों से चमचमा रही थी ॥१८॥

सा निःसृत्य तथा खेभ्यो दक्षिणां दिशमाश्रिता ।
स्मयमाना च साऽवेक्ष्य देवौ विश्वेश्वरावुभौ ॥१९॥

यह नारी ब्रह्माजी के इन्द्रिय रन्ध्रों से निकल कर दक्षिण की ओर खड़ी हो गई। इसने कुछ मुस्कुरा कर इन दोनों विश्व के स्वामी ब्रह्माजी और भगवान् शंकर की ओर देखा ॥१९॥

तामाहूय तदा देवो लोकादिनिधनेश्वरः ।
मृत्यो इति महिपाल जहि चेमाः प्रजा इति ॥२०॥

हे महीपाल! संसार के उत्पन्न और संहार करने वाले ब्रह्माजी ने उस नारी का मृत्यु नाम से आह्वान किया और कहा, कि तुम संसार में समय पर इस प्रजा का नाश किया करो ॥२०॥

त्वं हि संहारबुद्ध्याऽथ प्रादुर्भूता रुषो मम ।
तस्मात्संहर सर्वास्त्वं प्रजाः सजडपण्डिताः ॥२१॥
मम त्वं हि नियोगेन ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ।

हे देवि! तुम संसार के संहार के लिए मेरे क्रोध से उत्पन्न हुई हो-अब तुम मूर्ख और विद्वान् जो भी हो-समय पर सबका संहार करते रहना-मेरी तुमको यही आज्ञा है। इस प्रकार तुम्हारा भी कल्याण होगा ॥२१॥

एवमुक्ता तु सा तेन मृत्युः कमललोचना ॥२२॥
दध्यौ चाऽत्यर्थमबला प्ररुरोद च सुस्वरम् ।

जब ब्रह्माजी ने मृत्यु से इस प्रकार कहा-तो कमल के तुल्य वाली वह नारी बहुत कुछ विचार करके उच्च स्वर से रोने लगी ।२२

पाणिभ्यां प्रतिजग्राह तान्यश्रूणि पितामहः ।
सर्वभूतहितार्थाय तां चाऽप्यनुनयत्तदा ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युकथने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

पितामह ब्रह्मा ने अपने हाथों से मृत्यु के अश्रु पोंछे और समस्त प्राणियों के हित के लिए ब्रह्माजी ने उसकी अनुनय (खुशामद) करके उसे शान्त किया ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में मृत्यु की उत्पत्ति का तरेपनवां अध्याय समाप्त हुआ

## चौवनवां अध्याय

नारद उवाच—

विनीय दुःखमबला आत्मन्येव प्रजापतिम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा लतेवाऽऽवर्जिता पुनः ॥१॥

नारदजी ने कहा—हे राजन्! इस अबला रूपधारी मृत्यु ने अपने शोक को अपने भीतर लीन करके प्रजापति ब्रह्मा से कहा। इस समय यह नारी कटी हुई लता की तरह मुरझा सी रही थी।

मृत्युरुवाच—

त्वया सृष्टा कथं नारी ईदृशी वदतां वर।
क्रूरं कर्माऽऽहितं कुर्यां तदेव किन्तु जानती ॥२॥
बिभेम्यहमधर्माद्धि प्रसीद भगवन्प्रभो।

मृत्यु बोली–हे विद्वानों में श्रेष्ठ! ब्रह्मन्! तुमने मुझे नारी का स्वरूप देकर उत्पन्न किया है, परन्तु तुमने मुझे ऐसे अनुचित क्रूर कर्म में लगाया है, कि जिसको मैं जानती हुई कभी भी नहीं कर सकती हूं। हे भगवन्! मैं अधर्म से डरती हूं। हे प्रभो! आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइये ॥२॥

प्रियान्पुत्रान्वयस्यांश्च भ्रातॄन्मातॄः पितॄन्पतीन् ॥३॥
अपध्यास्यन्ति मे देव मृतेष्वेभ्यो बिभेम्यहम्।

हे देव! मैं जिनके प्रिय पुत्र, मित्र, भाई, माता, पिता और पतियों का संहार करूंगी-वे उनके मरने से मेरे अकल्याण की कामना करेंगे-मैं संसार के इस शाप से ही डरती हूं ॥३॥

कृपणानां हि रुदतां ये पतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥४॥
तेभ्योऽहं भगवन्भीता शरणं त्वाऽहमागता।
यमस्य भवनं देव गच्छेयं न सुरोत्तम ॥५॥

जब दुःख में भरे हुए विचारे रो २ कर अश्रु छोड़ेंगे-मैं उन से डरती हूं। हे भगवन्! इससे डर कर ही तुम्हारी शरण में

आई हूं । हे सुरोत्तम ! देव ! मैं यमराज के भवन पर नहीं जाना चाहती हूं ॥४-५॥

कायेन विनयोपेता मूर्ध्नोदग्रनखेन च ।

एतदिच्छाम्यहं कामं त्वत्तो लोकपितामह ॥६॥

हे लोकपितामह ! मैं विनय पूर्वक अपने शरीर, मस्तक और उन्नत नखों को झुका कर तुमसे प्रार्थना करती हूं, कि तुम मेरी इस कामना को पूर्ण करो ॥६॥

इच्छेयं त्वत्प्रसादाद्धि तपस्तप्तुं प्रजेश्वर ।

प्रदिशेमं वरं देव त्वं मह्यं भगवन्प्रभो ॥७॥

हे प्रजेश्वर ! यदि आपकी कृपा हो-तो मैं तप करना चाहती हूं । हे भगवन् ! प्रभो ! आप केवल मुझे प्रसन्न होकर यही वरदान दें ॥७॥

त्वया ह्युक्ता गमिष्यामि धेनुकाश्रममुत्तमम् ।

तत्र तप्स्ये तपस्तीव्रं तवैवाऽऽराधने रता ॥८॥

यदि आप आज्ञा दे दें-तो मैं धेनुकाश्रम में जाना चाहती हूं वहीं ईश्वराराधन करती हुई तप करने की मेरी अभिलाषा है

न हि शक्ष्यामि देवेश प्राणान्प्राणभृतां प्रियान् ।

हर्तुं विलपमानानामधर्मादभिरक्ष माम् ॥९॥

हे देवेश ! मैं तो रोते चिल्लाते हुए प्राणियों के प्रिय प्राणों का अपहरण करना नहीं चाहती हूं । हे भगवन् ! आप मुझे इस अधर्म से बचाइए ॥९॥

ब्रह्मोवाच—

मृत्यो सङ्कल्पिताऽसि त्वं प्रजासंहारहेतुना ।
गच्छ संहर सर्वास्त्वं प्रजा मा ते विचारणा ॥१०॥

ब्रह्माजी बोले—हे मृत्यो ! हमने तो तुम्हारी रचना ही प्रजा के संहार के ध्यान से की है । अब तुम जाओ और प्रजा का संहार करो-तुमको पाप-पुण्य का कुछ विचार नहीं करना चाहिए ।

भविता त्वेतदेवं हि नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
भवत्वनिन्दिता लोके कुरुष्व वचनं मम ॥११॥

अब तो जो होना था-सो हो चुका । तुम्हारी इसमें कोई निन्दा नहीं होगी । तुम मेरे वचन को पूरा करो ॥११॥

नारद उवाच—

एवमुक्ताऽभवत्प्रीता प्राञ्जलिर्भगवन्मुखी ।
संहारे नाऽकरोद् बुद्धिं प्रजानां हितकाम्यया ॥१२॥

नारदजी बोले—हे राजन् ! ब्रह्माजी के इस प्रकार कहने पर मृत्यु देवी कुछ प्रसन्न हो गई और हाथ जोड़कर भगवान् ब्रह्मा के सन्मुख खड़ी हुई, परन्तु फिर भी उसने प्रजा के हित की कामना के कारण प्रजा का संहार करना स्वीकार नहीं किया ॥१२॥

तूष्णीमासीत्तदा देवः प्रजानामीश्वरेश्वरः ।
प्रसादं चाऽगमत्क्षिप्रमात्मनैव प्रजापतिः ॥१३॥

अब प्रजा के स्वामी ब्रह्मदेव चुप हो गये और वे प्रजापति अपने आप सब पर प्रसन्न हो गए ॥१३॥

स्मयमानश्च देवेशो लोकान्सर्वानवेक्ष्य च।
लोकास्त्वासन्यथापूर्वं दृष्टास्तेनाऽपमन्युना ॥१४॥

देवों के स्वामी ब्रह्माजी ने अब कुछ मुस्कुरा कर सारे लोकों की ओर देखा। क्रोध हीन होकर देखने पर सारे लोक अपनी पूर्व अवस्था में स्थित हो गए ॥१४॥

निवृत्तरोषे तस्मिंस्तु भगवत्यपराजिते।
सा कन्याऽपि जगामाऽथ समीपात्तस्य धीमतः ॥१५॥

सर्वशक्तिशाली भगवान् ब्रह्मा के शान्त हो जाने पर वह मृत्यु रूपी कन्या भी उनके पास से चली गई ॥१५॥

अपसृत्याऽप्रतिश्रुत्य प्रजासंहरणं तदा।
त्वरमाणा च राजेन्द्र मृत्युर्धेनुकमभ्यगात् ॥१६॥

हे राजन्! मृत्यु ने अभी तक प्रजा का संहार करना अच्छी तरह स्वीकार नहीं किया था। यह ब्रह्माजी के पास से चल दी और बड़ी शीघ्रता से धेनुकाश्रम में पहुंची ॥१६॥

सा तत्र परमं तीव्रं चचार व्रतमुत्तमम्।
सा तदा ह्येकपादेन तस्थौ पद्मानि षोडश ॥१७॥
पञ्च चाऽब्दानि कारुण्यात्प्रजानां तु हितैषिणी।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः सन्निवर्त्य सा ॥१८॥

वहां पहुंचकर उसने बड़ा तीव्र तप किया। वह धेनुकाश्रम में एक पाद से स्थिर होकर सोलह और पांच अर्थात् इक्कीस पद्म वर्ष पर्यन्त खड़ी रही। इसने यह सब करुणा के वश में होकर प्रजा

के हित के लिए किया था। इसने अपनी इन्द्रियों को अपने २ प्रिय विषयों से दूर हटा कर तप किया ॥१७-१८॥

ततस्त्वेकेन पादेन पुनरन्यानि सप्त वै ।
तस्थौ पद्मानि षट् चैव सप्त चैकं च पार्थिव ॥१९॥

हे राजन्! इसके अनन्तर फिर दुबारा एक चरण से खड़ी रह कर मृत्यु ने सात, छः, सात और एक अर्थात् इक्कीस पद्म वर्ष तक तप किया ॥१९॥

ततः पद्मायुतं तात मृगैः सह चचार सा ।
पुनर्गत्वा ततो नन्दां पुण्यां शीतामलोदकाम् ॥२०॥

हे तात! फिर स्त्री रूप धारी मृत्यु ने दश सहस्र पद्म वर्ष तक मृग की सी वृत्ति धारण की। इसके अनन्तर यह शीतल और निर्मल जल वाली पवित्र नन्दा नामक नदी पर पहुंची ॥२०॥

अप्सु वर्षसहस्राणि सप्त चैकं च साऽनयत् ।
धारयित्वा तु नियमं नन्दायां वीतकल्मषा ॥२१॥

इसने नियमों को धारण करके नन्दा नदी के जल में आठ सहस्र पद्म वर्ष तक तपस्या की, जिससे यह सारे मलों से रहित हो गई ॥२१॥

सा पूर्वं कौशिकीं पुण्यां जगाम नियमैधिता ।
तत्र वायुजलाहारा चचार नियमं पुनः ॥२२॥

वह इस प्रकार नियमों में परायण हुई पवित्र कौशिकी नदी पर पहुंची, वहां उसने वायु और जल के आहार का नियम ग्रहण किया ॥२२॥

पञ्चगङ्गासु सा पुण्या कन्या वेतसकेषु च ।
तपोविशेषैर्बहुभिः कर्षयद्देहमात्मनः ॥२३॥

इसके अनन्तर इस पवित्र मृत्यु रूपी कन्या ने पञ्च गङ्गा और वेतस तीर्थ पर गमन किया। यहां यह अनेक प्रकार के विशेष २ तप करके अपने देह को सुखाने लगी ॥२३॥

ततो गत्वा तु सा गङ्गां महामेरुं च केवलम् ।
तस्थौ चाऽश्मेव निश्चेष्टा प्राणायामपरायणा ॥२४॥

अब यह गङ्गा, नदी और मेरु पर्वत पर पहुंची-यहां इसने प्राणायाम करके समाधि लगाई और पत्थर की तरह निश्चल हो गई ॥२४॥

पुनर्हिमवतो मूर्ध्नि यत्र देवाः पुराऽयजन् ।
तत्राऽङ्गुष्ठेन सा तस्थौ निखर्वं परमा शुभा ॥२५॥

फिर यह हिमालय पर्वत पर गई, जहां देवों ने पूर्वकाल में यजन किया था। वहां पर यह निखर्व वर्ष पर्यन्त एक अंगुष्ठ के आधार पर खड़ी रही ॥२५॥

पुष्करेष्वथ गोकर्णे नैमिषे मलये तथा ।
अपाकर्षत्स्वकं देहं नियमैर्मानसप्रियैः ॥२६॥

यह मन को खैंचने वाले नियमों में परायण होकर पुष्कर, गोकर्ण, नैमिष और मलय पर्वत आदि तीर्थ स्थानों में भ्रमण कर अपने देह को सुखाने लगी ॥२६॥

अनन्यदेवता नित्यं दृढभक्ता पितामहे ।
तस्थौ पितामहं चैव तोषयामास धर्मतः ॥२७॥

यह किसी अन्य देवता को जानती ही नहीं थी, केवल पितामह ब्रह्मा की दृढ़ भक्ति के साथ आराधना करती रहती थी। इस प्रकार धर्मानुसार आराधना करके उन्होंने पितामह ब्रह्मा को सन्तुष्ट कर लिया ॥२७॥

ततस्तामब्रवीत्प्रीतो लोकानां प्रभवोऽव्ययः ।
सौम्येन मनसा राजन्प्रीतः प्रीतमनास्तदा ॥२८॥

हे राजन्! लोकों के रचना करने वाले ब्रह्माजी जब प्रसन्न हो गए-तो उन्होंने प्रसन्न होकर शुद्ध मन से यह वचन कहा।

मृत्यो किमिदमत्यन्तं तपांसि चरसीति ह ।
ततोऽब्रवीत्पुनर्मृत्युर्भगवन्तं पितामहम् ॥२९॥

हे मृत्यो! तुम इतना घोर तप क्यों कर रही हो। यह सुनकर फिर मृत्यु ने भगवान् पितामह ब्रह्मा से कहा ॥२९॥

नाऽहं हन्यां प्रजा देव स्वस्थाश्चाऽऽक्रोशतीस्तथा ।
एतदिच्छामि सर्वेश त्वत्तो वरमहं प्रभो ॥३०॥

हे देव! मैं सुख से रहने वाली प्रजा को मारना नहीं चाहती हूं, इस तरह उनका रोना चिल्लाना मुझे बहुत ही अखरता है। हे प्रभो! मैं तो आप से केवल यही वरदान चाहती हूं ॥३०॥

अधर्मभयभीताऽस्मि ततोऽहं तप आस्थिता ।
भीतायास्तु महाभाग प्रयच्छाऽभयमव्ययम् ॥३१॥

हे महाभाग! मैं तो अधर्म के भय से डरी हुई हूं, इसी से तप कर रही हूं। मुझ भयभीत की आपको रक्षा करनी उचित है। आप अक्षय अभयता मुझे प्रदान करें ॥३१॥

आर्त्ता चाऽनागसी नारी याचामि भव मे गतिः ।
तामब्रवीत्ततो देवो भूतभव्यभविष्यवित् ॥३२॥

मैं निरपराध, दुःखित नारी हूं-आप से प्रार्थना करती हूं । आप मेरा कल्याण करें । अब मृत्यु से भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल की गति जानने वाले ब्रह्मदेव बोले ॥३२॥

अधर्मो नाऽस्ति ते मृत्यो संहरन्त्या इमाः प्रजाः ।
मया चोक्तं मृषा भद्रे भविता न कथञ्चन ॥३३॥

हे मृत्यो ! इस प्रजा के संहार करने में तुमको कोई अधर्म नहीं होगा । हे भद्रे ! मेरी कही हुई बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती है ॥३३॥

तस्मात्संहर कल्याणि प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ।
धर्मः सनातनश्च त्वां सर्वथा पावयिष्यति ॥३४॥

हे कल्याणि ! तुमको इस जरायुज आदि चारों प्रकार की प्रजा के संहार करने में संकोच नहीं करना चाहिए। प्रत्येक सृष्टि का यही सनातन क्रम है-यह धर्म तुमको पवित्र रखेगा ॥३४॥

लोकपालो यमश्चैव सहाया व्याधयश्च ते ।
अहं च विबुधाश्चैव पुनर्दास्याम ते वरम् ॥३५॥
यथा त्वमेनसा मुक्ता विरजाः ख्यातिमेष्यसि ।

लोकपाल यम तथा सारी व्याधियां तेरी सहायक सेना होगी। हम और देवता भी आगे चलकर समय २ पर तुमको वरदान देते रहेंगे, जिससे तुम पापों से मुक्त रह कर शुद्ध रूप में संसार में विख्यात होओगी ॥३५॥

सैवमुक्त्वा महाराज कृताञ्जलिरिदं विभुम् ॥३६॥
पुनरेवाऽब्रवीद्वाक्यं प्रसाद्य शिरसा तदा ।

हे महाराज ! जब ब्रह्माजी ने इतना कहा-तो मृत्यु ने हाथ जोड़ कर और शिर झुका कर ब्रह्माजी को प्रसन्न किया और यह वाक्य कहा ॥३६॥

यद्येवमेतत्कर्तव्यं मया न स्याद्विना प्रभो ॥३७॥
तवाऽऽज्ञा मूर्ध्नि मे न्यस्ता यत्ते वक्ष्यामि तच्छृणु ।

हे प्रभो ! यदि आपकी यही इच्छा है और मेरे बिना कार्य न हो सके और आपने अपनी आज्ञा मेरे शिर पर ही लाद दी-तो मैं एक वचन कहती हूं-तुम उसे सुनो ॥३७॥

लोभः क्रोधोऽभ्यसूयेर्ष्या द्रोहो मोहश्च देहिनाम् ॥३८॥
अह्रीश्चाऽन्योन्यपरुषा देहं भिन्द्युः पृथग्विधाः ।

लोभ, क्रोध, निन्दा, ईर्ष्या, द्रोह, मोह, निर्लज्जता और परस्पर कठोर वचन-ये प्रथम पृथक् २ प्राणियों के शरीरों को जर्जर कर दें ॥३८॥

ब्रह्मोवाच—

तथा भविष्यते मृत्यो साधु संहर भोः प्रजाः ॥
अधर्मस्ते न भविता नाऽपध्यास्याम्यहं शुभे ॥३९॥

ब्रह्माजी बोले—हे मृत्यो ! हम यही कर देंगे-परन्तु अब तुम भली प्रकार प्रजा का संहार करो। हे शुभे ! इस प्रकार तुम्हें कुछ भी अधर्म का सम्पर्क नहीं होगा और न मैं ही तुम्हारा कुछ अनुचित सोचूँगा ॥३९॥

यान्यश्रुबिन्दूनिकरेममाऽऽसंस्तेव्याधयःप्राणिनामात्मजाताः
ते मारयिष्यन्ति नरान्गतासून्नाऽधर्मस्ते भविता मास्मभैषीः

हे मृत्यो ! जितने तेरे अश्रुबिन्दु मेरी अञ्जलि में गिरे हैं-वे सब व्याधियाँ बन जावेंगे, जो स्वयं प्राणियों के शरीरों में उत्पन्न हुआ करेंगे। ये ही प्राणियों को जर्जर करके मार डालेंगे-जिससे तुमको कुछ भी अधर्म नहीं होगा- तुम डरो नहीं ॥४०॥

नाऽधर्मस्ते भविता प्राणिनां वैत्वंवै धर्मस्त्वंहिधर्मस्य चेशा
धर्म्याभूत्वाधर्मनित्या धरित्री तस्मात्प्राणान्सर्वथेमान्नियच्छ

हे मृत्यो ! तुमको प्राणियों के प्राणापहरण में कुछ भी अधर्म नहीं होगा-तुम स्वयं धर्म हो या धर्म की स्वामिनी हो। तुम धर्म रूप या नित्य धर्म के धारण करने वाली हो-इससे इन प्राणियों के प्राणों के संहार का तुम्हीं प्रबन्ध करो ॥४१॥

सर्वेषां वै प्राणिनां कामरोषौ सन्त्यज्यत्वंसंहरस्वेहजीवान् ।
एवं धर्मस्त्वांभविष्यत्यनन्तोमिथ्या वृत्तान्मारयिष्यत्यधर्मः

हे मृत्यो ! तुम काम-क्रोध (रागद्वेष) को छोड़ कर प्राणियों के जीवात्मा का अपहरण किया करो। इस कार्य के करने से तुमको महान् धर्म की प्राप्ति होगी। जो दुराचारी होंगे-उनको तो उनका अधर्म ही मार डालता रहेगा ॥४२॥

तेनाऽऽत्मानं पावयस्वाऽऽत्मना त्वं,
पापेऽऽत्मानं मज्जयिष्यन्त्यसत्यात् ।
तस्मात्कामं रोपमप्यागतं त्वं,
सन्त्यज्याऽन्तः संहरस्वेति जीवान् ॥४३॥

अब तुम अपने आप अपनी आत्मा को पवित्र समझो। यदि तुम असत्य राग द्वेष से इस कर्म में प्रवृत्त होती, तो अपने को पाप कर्म में डालती। अब तुम काम और क्रोध को छोड़कर शरीरों में अनहित जीवों का अपहरण करते रहना ॥४३॥

नारद उवाच—

सा वै भीता मृत्युसंज्ञोपदेशाच्छापाद्भीता बाढमित्यब्रवीत्ताम्
सा च प्राणं प्राणिनामन्तकाले कामक्रोधौत्यज्यहरत्यसक्ता

नारदजी बोले-हे राजन्! यद्यपि वह कन्या अपना नाम मृत्यु रखने से भयभीत हुई, परन्तु ब्रह्मा के शाप से डरकर उसने कुछ भी नहीं कहा, किन्तु प्राणियों के प्राणों का अपहरण कर लेना स्वीकार कर लिया। अब मृत्यु कन्या, राग-द्वेष (काम क्रोध) छोड़कर निर्लिप्त भाव से अन्तकाल में प्राणियों के प्राणों को हरती रहती है ॥४४॥

मृत्युस्त्वेषां व्याधयस्तत्प्रसूता व्याधीरोगो रुज्यते येनजन्तुः
सर्वेषां च प्राणिनां प्रायणान्तेतस्माच्छोकंमाकृथानिष्फलंत्वम्

हे राजन्! इस प्रकार प्राणियों की मृत्यु और उससे व्याधियाँ उत्पन्न हुई। व्याधि को रोग कहते हैं, क्योंकि इससे ही प्राणी पीड़ित होते हैं। जब सारे प्राणियों को एक दिन अवश्य परलोक गमन करना है, तो फिर तुम्हें निष्फल शोक नहीं करना चाहिए ॥४५॥

सर्वे देवाः प्राणिभिः प्रायणान्तेगत्वावृत्ताःसन्निवृत्तस्तथैव।
एवं सर्वे प्राणिनस्तत्र गत्वा वृत्ता देवा मर्त्यवद्राजसिंह ॥

महाभारत चित्र संख्या ८३




**अर्जुन की प्रतिज्ञा**

महाभारत द्रोणपर्व अध्याय ७२ । ८०

हे राजेन्द्र ! प्राणियों के तुल्य सारे देवों का भी एक दिन अन्त होना ही है। ये परलोक जाकर फिर लौटते हैं और फिर गमन करते हैं। जाना और लौटना यही दशा देवों की तरह सारे प्राणियों की होती रहती है ॥४६॥

वायुर्भीमो भीमनादोमहौजाभेत्तादेहान्प्राणिनां सर्वगोऽसौ
नो वाऽऽवृत्तिर्नैववृत्तिं कदाचित्प्राप्नोत्युग्रोऽनन्ततेजोविशिष्टः

हे राजन् ! यह वायु बड़ा भयङ्कर शब्द करने वाला स्वयं भीषण और महा ओजस्वी है। यह प्राणियों की देह का भेदन करने वाला सर्वत्र गमन करता है। इसको आवागमन का चक्कर न लगा हो-यह बात नहीं है। चाहे यह कितना ही उग्र और अनन्त तेज से युक्त क्यों न हो ॥४७॥

सर्वे देवा मर्त्यसंज्ञाविशिष्टास्तस्मात्पुत्रं मा शुचोराजसिंह ।
स्वर्गं प्राप्तो मोदते ते तनूजो नित्यं रम्यान्वीरलोकानवाप्य

हे राजसिंह ! इन कारणों से सारे देवों को भी अमर्त्य ही कहना चाहिये । हे पुत्र ! इन सब बातों को सोच कर तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। तेरा पुत्र स्वर्ग में पहुँच गया है और वहाँ बड़े आनन्द से निवास करता है, क्योंकि उसने सुन्दर वीर-गति को प्राप्त किया है ॥४८॥

त्यक्त्वा दुःखं सङ्गतःपुण्यकृद्भिरेषा मृत्युर्दैवदिष्टाप्रजानाम्
प्राप्ते काले संहरन्ती यथावत्स्वयं कृता प्राणहराप्रजानाम्

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र का सारा दुःख नाश हो चुका है और वह पुण्यात्माओं के साथ रहता है। यह मैंने तुमको परमात्मा

की प्रेरणा से प्राणियों को प्राप्त होने वाली मृत्यु की कथा सुनाई। जब प्राणी का समय आ जाता है, तब यह भी प्राणों का अपहरण करती है। ब्रह्मा ने इसे अपनी इच्छा से प्राण हरनेवाली बनाकर रचा है ॥४६॥

आत्मानंवै प्राणिनो घ्नन्तिसर्वेनैतान्मृत्युर्दण्डपाणिर्हिनस्ति
तस्मान्मृतान्नाऽनुशोचन्तिधीरामृत्युंज्ञात्वानिश्चयंब्रह्मसृष्टम् ।
इत्थं सृष्टिं देवक्लृप्तां विदित्वा पुत्रान्नष्टाञ्छोकमाशु त्यजस्व

हे राजन्! प्राणी तो अधर्म का आचारण करके अपने आपको स्वयं मारता है। यह मृत्यु, दण्ड हाथ में लेकर प्राणियों को नहीं मारती है। धीर लोग, ब्रह्मा द्वारा रची हुई, अवश्य आने वाली मृत्यु के तत्व को समझ कर मरे हुए पुरुषों का शोक नहीं करते हैं। इस प्रकार यह सारी सृष्टि ब्रह्मा से रची गई है और उसी ने मृत्यु को रचा है-यह सब कुछ जानकर अपने मृत हुए पुत्र का शोक छोड़ दो ॥५०॥

द्वैपायन उवाच—

एतच्छ्रुत्वाऽर्थवद्वाक्यं नारदेन प्रकाशितम् ।
उवाचाऽकम्पनो राजा सखायं नारदं तथा ॥५१॥

व्यासजी बोले—हे धर्मराज! इस प्रकार नारदजी के कहे हुए अर्थ गम्भीर वचनों को सुनकर राजा अकम्पन अपने सखा भूत ब्रह्मर्षि नारद से कहने लगा ॥५१॥

व्यपेतशोकः प्रीतोऽस्मि भगवन्नृषिसत्तम ।
श्रुत्वेतिहासं त्वत्तस्तु कृतार्थोऽस्म्यभिवादये ॥५२॥

हे ऋषिसत्तम ! मेरा शोक नष्ट हो गया और मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। आप से इस इतिहास को सुनकर बड़ा कृतार्थ हो गया हूँ। मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥५२॥

तथोक्तो नारदस्तेन राज्ञा ऋषिवरोत्तमः।
जगाम नन्दनं शीघ्रं देवर्षिरमितात्मवान् ॥५३॥

राजा अकम्पन के इस प्रकार कृतज्ञता प्रकट करने पर ऋषि श्रेष्ठ, अत्यन्त आत्मज्ञानी देवर्षि नारद शीघ्र ही नन्दन बन को चल दिए ॥५३॥

पुण्यं यशस्यं स्वर्ग्यं च धन्यमायुष्यमेव च।
अस्येतिहासस्य सदा श्रवणं श्रावणं तथा ॥५४॥

इस इतिहास का सुनना सुनाना, बड़ा पवित्र, यशकारी, स्वर्गदायी, धन और आयु को देने वाला है ॥५४॥

एतदर्थपदं श्रुत्वा तदा राजा युधिष्ठिरः।
क्षत्रधर्मं च विज्ञाय शूराणां च परां गतिम् ॥५५॥

राजा युधिष्ठिर भी इस इतिहास के तत्वार्थ को समझ कर तथा क्षत्रिय धर्म के गौरव को जानकर और अभिमन्यु के वीरगति जैसे पद को प्राप्त करने से शान्त हो गया ॥५५॥

सम्प्राप्तोऽसौ महावीर्यः स्वर्गलोकं महारथः।
अभिमन्युः परान्हत्वा प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ॥५६॥
युध्यमानो महेष्वासो हतः सोऽभिमुखो रणे।
असिना गदया शक्त्या धनुषा च महारथः ॥५७॥

यह महाशक्ति धनुर्धर महारथी अभिमन्यु सारे धनुर्धरों के सन्मुख और शत्रुवीरों को मारकर युद्ध करता हुआ वीरों के सन्मुख ही रण में मारा जाकर स्वर्ग चला गया। इस महारथी पर शत्रु महारथियों ने खड्ग, गदा, शक्ति और धनुष से एक दम प्रहार किया ॥५६-५७॥

विरजाः सोमसूनुः स पुनस्तत्र प्रलीयते ।
तस्मात्परां धृतिं कृत्वा भ्रातृभिः सह पाण्डव ।
अप्रमत्तः सुसन्नद्धः शीघ्रं योद्धुमुपाक्रम ॥५८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युप्रजापतिसंवादे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

हे युधिष्ठिर ! यह अभिमन्यु तो विरजा नामक चन्द्रमा का पुत्र था। अब फिर यह वहीं चन्द्रलोक में चला गया। हे पाण्डु-पुत्र ! अब तुम अच्छी तरह धैर्य धारण करके अपने भाइयों के साथ बड़ी सावधानी से तय्यार होकर शीघ्र युद्ध के लिए गमन करो ॥५८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में मृत्यु और प्रजापति के सम्वाद का चौवनवाँ अध्याय समाप्त हुआ



# पचपनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

श्रुत्वा मृत्युसमुत्पत्तिं कर्माण्यनुपमानि च ।
धर्मराजः पुनर्वाक्यं प्रसाद्यैनमथाऽब्रवीत् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! धर्मराज व्यासजी से मृत्यु की उत्पत्ति और उसके अनुपम कर्मों को सुनकर उनकी प्रसन्नता के अनुसार फिर व्यासजी से कहने लगे ॥१॥

युधिष्ठिर उवाच—

गुरवः पुण्यकर्माणः शक्रप्रतिमविक्रमः
स्थाने राजर्षयो ब्रह्मन्ननघाः सत्यवादिनः ॥२॥
भूय एव तु मां तथ्यैर्वचोभिरभिबृंहय ।
राजर्षीणां पुराणानां समाश्वासय कर्मभिः ॥३॥

हे ब्रह्मन्! गौरवशाली, पुण्यात्मा, पापरहित, सत्यवादी, इन्द्र के तुल्य पराक्रमी राजर्षियों ने जो कुछ कर दिखाया है-वह बहुत ही उत्तम किया है। अब तुम अपने सत्य इतिहास के कथन करने वाले वचनों तथा प्राचीन राजर्षियों के कर्मों से मेरे चित्त के उत्साह को बढ़ाइए ॥२-३॥

कियन्त्यो दक्षिणा दत्ताः कैश्च दत्ता महात्मभिः ।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिस्तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ॥४॥

वे कौन २ महात्मा राजर्षि हुए हैं, जिन्होंने उत्तम यज्ञ किए।

उन पुण्यशाली राजर्षियों ने क्या २ दक्षिणा दान में दी। आप यह सब कुछ मुझे सुनाइये ॥४॥

व्यास उवाच—

शैब्यस्य नृपतेः पुत्रः सृञ्जयो नाम नामतः।
सखायौ तस्य चैवोभौ ऋषी पर्वतनारदौ ॥५॥

व्यासजी ने कहा—हे धर्मराज ! राजा शैब्य के पुत्र का नाम सृञ्जय था। उसके दो ऋषि पर्वत और नारद सखा थे ॥५॥

तौ कदाचिद् गृहं तस्य प्रविष्टौ तद्दिदृक्षया।
विधिवच्चाऽर्चितौ तेन प्रीतौ तत्रोषतुः सुखम् ॥६॥

वे दोनों ब्रह्मर्षि कभी राजा सृञ्जय से मिलने के लिये उसके घर पर आये। राजा ने उनकी विधिपूर्वक पूजा की। वे भी सुख के साथ प्रसन्न होकर वहां ठहर गये ॥६॥

तं कदाचित्सुखासीनं ताभ्यां सह शुचिस्मिता।
दुहिताऽभ्यागमत्कन्या सृञ्जयं वरवर्णिनी ॥७॥

राजा सृञ्जय, उन दोनों ब्रह्मर्षियों के साथ एक बार बैठे हुये थे, कि उनकी सुन्दर मुस्कुराने वाली सुन्दरी कन्या वहां आ पहुंची ॥७॥

तयाऽभिवादितः कन्यामभ्यनन्दद्यथाविधि।
तत्सलिङ्गाभिराशीर्भिरिष्टाभिरभितः स्थिताम् ॥८॥

कन्या ने आकर पिता को प्रणाम किया। पिता ने भी हाथ के संकेत के साथ अभिमत आशीस देकर उसको प्रसन्न किया। वह इस समय सन्मुख खड़ी थी ॥८॥

तां निरीक्ष्याऽब्रवीद्वाक्यं पर्वतः प्रहसन्निव ।
कस्येयं चञ्चलापाङ्गी सर्वलक्षणसम्मता ॥९॥
उताऽहो भाः स्विदर्कस्य ज्वलनस्य शिखा त्वियम्।
श्रीर्ह्रीः कीर्तिर्धृतिः पुष्टिः सिद्धिश्चन्द्रमसः प्रभा ॥

इस कन्या को देख कर पर्वत मुनि हंसते २ बोले, कि सब लक्षणों से सम्पन्न, सुन्दर नेत्र प्रान्तवाली यह किसकी कन्या है। यह तो सूर्य की कान्ति और आग की लपट सी दिखाई देती है। यह तो श्री, ह्री, कीर्ति, धृति, पुष्टि, सिद्धि और चन्द्रमा की ज्योति सी प्रतीत हो रही है ॥९-१०॥

एवं ब्रुवाणं देवर्षिं नृपतिः सृञ्जयोऽब्रवीत् ।
ममेयं भगवन्कन्या मत्तो वरमभीप्सति ॥११॥

जब देवर्षि पर्वत ने यह कहा-तो राजा सृञ्जय बोले-हे भगवन ! यह मेरी कन्या है और मुझ से वरदान चाहती है ॥११॥

नारदस्त्वब्रवीदेनं देहि मह्यमिमां नृप ।
भार्यार्थं सुमहच्छ्रेयः प्राप्तुं चेदिच्छसे नृप ॥१२॥
ददानीत्येव संहृष्टः सृञ्जयः प्राह नारदम् ।

अब राजा से नारदजी ने कहा—कि तुम इस कन्या को भार्या बनाने के निमित्त मुझे प्रदान करो- तुम्हारा इसी में अधिक कल्याण होगा। सृञ्जय ने बड़ी प्रसन्नता के साथ नारदजी से कहा-अच्छी बात है-मैं इसे आपको समर्पित करूंगा ॥१२॥

पर्वतस्तु सुसंक्रुद्धो नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥
हृदयेन मया पूर्वं वृतां वै वृतवानसि ।

यस्मादवृता त्वया विप्र मा गाः स्वर्गं यथेप्सया ॥

पर्वत भी बड़ा कुपित हुआ और नारद मुनि से कहने लगा, कि इस कन्या को प्रथम मैंने अपने हृदय में वरा है-उसी को तुमने मांग लिया। हे विप्र! तुमने मेरी मांग को मुझसे पूर्व वर लिया, इससे तुम इच्छानुसार स्वर्ग नहीं जा सकोगे। १३-१४॥

एवमुक्तो नारदस्तं प्रत्युवाचोत्तरं वचः।
मनोवाग्बुद्धिसम्भाषादत्ता चोदकपूर्वकम् ॥१५॥
पाणिग्रहणमन्त्राश्च प्रथितं वरलक्षणम्।
न त्वेषां निश्चिता निष्ठा निष्ठा सप्तपदी स्मृता ॥१६॥

जब पर्वत मुनि ने इस प्रकार कहा-तो नारद मुनि उसको उत्तर देने लगे-हे ब्रह्मन्! मन, वाणी, बुद्धि, वचन, जल लेकर सङ्कल्प, पाणिग्रहण के मन्त्रों का उच्चारण-ये सब बातें कन्या के पति हो जाने की है, परन्तु इनके हो जाने पर भी यदि सप्तपदी किसी प्रकार नहीं हो सकी हो, तो पूरा विवाह नहीं माना जाता है। उपर्युक्त बातों के हो जाने पर पतित्व प्राप्त नहीं हो सकता है।१६।

अनुत्पन्ने च कार्यार्थे मां त्वं व्याहृतवानसि।
तस्मात्त्वमपि न स्वर्गं गमिष्यसि मया विना ॥१७॥
अन्योन्यमेवं शप्त्वा वै तस्थतुस्तत्र तौ तदा।

जब तेरा पूर्ण कार्य हुआ ही नहीं, तो तुझे ऐसा नहीं कहना चाहिये। इतना होने पर भी यदि तूने यह शाप दिया, तो मैं भी कहता हूं, कि तू भी मेरे साथ के बिना स्वर्ग नहीं जा सकेगा।

हे राजन्! इस प्रकार दोनों ऋषि परस्पर एक दूसरे को शाप देकर वहीं स्थित रहे ॥१७॥

अथ सोऽपि नृपो विप्रान्पानाच्छादनभोजनैः ॥१८॥
पुत्रकामः परं शक्त्या यत्नाच्चोपाचरच्छुचिः ।

अब बड़ा पवित्र राजा सृञ्जय, पुत्र की कामना से बड़े अच्छे २ भोजन-पान आदि से बड़े प्रयत्न के साथ ब्राह्मणों की सेवा करने लगा ॥१८॥

तस्य प्रसन्ना विप्रेन्द्राः कदाचित्पुत्रमीप्सवः ॥१९॥
तपःस्वाध्यायनिरता वेदवेदाङ्गपारगाः ।
सहिता नारदं प्राहुर्देह्यस्मै पुत्रमीप्सितम् ॥२०॥

ये ब्राह्मण प्रसन्न हो गए और पुत्र प्रदान की इच्छा से एक होकर नारदजी से बोले—कि आप इस राजा को पुत्र प्रदान कीजिए। ये सारे ब्राह्मण, तप और स्वाध्याय में सलग्न तथा वेद-वेदाङ्ग में पारगामी थे ॥१९-२०॥

तथेत्युक्त्वा द्विजैरुक्तः सृञ्जयं नारदोऽब्रवीत् ।
तुभ्यं प्रसन्ना राजर्षे पुत्रमीप्सन्ति ब्राह्मणाः ॥२१॥

जब ब्राह्मणों ने इतना कहा-तो नारदजी ने ब्राह्मणों से पुत्र प्रदान करना स्वीकार करके राजा सृञ्जय से कहा-हे राजर्षे! ये ब्राह्मण तुम पर प्रसन्न हो गए है और अब ये तुमको पुत्र प्रदान करना चाहते हैं ॥२१॥

वरं वृणीष्व भद्रं ते यादृशं पुत्रमीप्सितम् ।
तथोक्तः प्राञ्जली राजा पुत्रं वव्रे गुणान्वितम् ॥२२॥
यशस्विनं कीर्तिमन्तं तेजस्विनमरिन्दमम् ।

हे राजन् ! अब तुम जैसा पुत्र चाहते हो-वह वरदान मांगो। नारदजी के इतना कहने पर राजा ने बड़ी प्रसन्नता से हाथ जोड़कर गुणवान्, यशस्वी, कीर्तिमान, तेजस्वी और अरि-विजयी पुत्र की याचना की ॥२२॥

यस्य मूत्रं पुरीषं च क्लेदः स्वेदश्च काञ्चनम् ॥२३॥
सुवर्णष्ठीविरित्येवं तस्य नामाऽभवत्कृतम् ।

राजा सृञ्जय ने यह भी कहा, कि इस पुत्र का मूत्र, पुरीष, स्वेद (पसीना) और कफ आदि सारा सुवर्ण होवे-मैं तो उसका नाम ही सुवर्णष्ठीवी रखना चाहता हूं ॥२३॥

तस्मिन्वरप्रदानेन वर्धयत्यमितं धनम् ॥२४॥
कारयामास नृपतिः सौवर्णं सर्वमीप्सितम् ।

नारदजी ने यही वरदान दे दिया, तो इस वर प्रदान के कारण राजा के पुत्र से बहुत सा सुवर्ण प्राप्त हुआ। राजा को जितने सुवर्ण की इच्छा थी, उसने उतना ही इकट्ठा कर लिया ॥२४॥

गृहप्राकारदुर्गाणि ब्राह्मणावसथान्यपि ॥२५॥
शय्यासनानि यानानि स्थालीपिठरभाजनम् ।
तस्य राज्ञोऽपि यद्वेश्म बाह्याश्चोपस्कराश्च ये ॥२६॥
सर्वं तत्काञ्चनमयं कालेन परिवर्धितम् ।

राजा ने अपने महल, प्राकार (परकोटा) दुर्ग, ब्राह्मणों के भवन, शय्या, आसन, यान, थाली, पतीली आदि पात्र तथा अन्य सामान सब सोने का बना लिया। इस प्रकार कुछ ही समय में राजा का सारा महल सुवर्ण से भर गया ॥२५-२६॥

अथ दस्युगणाः श्रुत्वा दृष्ट्वा चैनं तथाविधम् ॥२७॥
सम्भूय तस्य नृपतेः समारब्धाश्चिकीर्षितुम् ।

जब चोर और लुटेरों ने राजा की यह दशा सुनी और उसे सुवर्ण से भरा हुआ देखा-तो इकट्ठे होकर उस राजा के सुवर्ण चुराने के लिए उद्यत हुए ॥२७॥

केचित्तत्राऽब्रुवन्राज्ञः पुत्रं गृह्णीम वै स्वयम् ॥२८॥
सोऽस्याऽऽकरः काञ्चनस्य तस्य यत्नं चरामहे ।

कुछ चोरों ने तो अपना यही विचार प्रकट किया, कि हम लोग राजा के पुत्र का ही अपहरण कर लें। वही तो इस सारे सुवर्ण की खान है। हम लोगों को तो इसके ही चुराने का प्रयत्न करना उचित है ॥२८॥

ततस्ते दस्यवो लुब्धाः प्रविश्य नृपतेर्गृहम् ॥२९॥
राजपुत्रं तथाऽऽजह्रुः सुवर्णष्ठीविनं बलात् ।

ये लालची चोर एक रात राजा के महल में घुस गए और बलपूर्वक राजपुत्र सुवर्णष्ठीवी को उठा लाए ॥२९॥

गृहीत्वैनमनुपायज्ञा नीत्वाऽरण्यमचेतसः ॥३०॥
हत्वा विशस्य चाऽपश्यँल्लुब्धा वसु न किञ्चन ।
तस्य प्राणैर्विमुक्तस्य नष्टं तद्वरदं वसु ॥३१॥

उन मूर्ख चोरों ने उस राजपुत्र को वन में ले जाकर मार डाला और काट २ कर देखा, परन्तु इनको उसमें कहीं भी सुवर्ण नहीं मिला, क्योंकि ये सुवर्ण लेने का ढंग ही नहीं जानते थे।

जब राजकुमार मर गया, तो राजा का धन भी नष्ट होने लगा, क्योंकि वह धन तो वरदान के कारण ही था ॥३०-३१॥

दस्यवश्च तदाऽन्योन्यं जघ्नुर्मूर्खा विचेतसः ।
हत्वा परस्परं नष्टाः कुमारं चाऽद्भुतं भुवि ॥३२॥
असम्भाव्यं गता घोरं नरकं दुष्टकारिणः ।

उन मूर्ख दस्युओं में राजकुमार के वध पर झगड़ा हो गया और वे आपस में लड़कर मारे गए। इन मूर्खों ने इस अद्भुत राजकुमार का तो बहुत ही खेदजनक अन्त कर डाला। इसके अनन्तर इस पाप के कारण ये दुराचारी चोर महाघोर नरक में पहुंचे ॥३२॥

तं दृष्ट्वा निहतं पुत्रं वरदत्तं महातपाः ॥३३॥
विललाप सुदुःखार्त्तो बहुधा करुणं नृपः ।

महातपस्वी राजा ने अपने वरदायी पुत्र के वध को सुनकर बहुत दुःख के साथ करुणापूर्ण स्वर में विलाप किया ॥३३॥

विलपन्तं निशम्याऽथ पुत्रशोकहतं नृपम् ॥३४॥
प्रत्यदृश्यत देवर्षिर्नारदस्तस्य सन्निधौ ।
उवाच चैनं दुःखार्तं विलपन्तमचेतसम् ॥३५॥

पुत्र के शोक से व्याकुल राजा को विलाप करते देखकर देवर्षि नारद उसके पास आए और मोहातुर दुःखी राजा को विलाप करते देखकर उससे बोले ॥३४-३५॥

सृञ्जयं नारदोऽभ्येत्य तन्निबोध युधिष्ठिर ।
कामानामवितृप्तस्त्वं सृञ्जयेह मरिष्यसि ॥३६॥
यस्य चैते वयं गेहे उषिता ब्रह्मवादिनः ।

हे धर्मराज ! राजा सृञ्जय से नारदजी ने वहां आकर जो कुछ कहा-वह मैं तुमको सुनाता हूं-तुम ध्यान से सुनो। नारदजी बोले-हे सृञ्जय ! हम जैसे ब्रह्मवादी मुनियों ने तुम्हारे घर पर निवास किया है, फिर भी तुम अपनी कामनाओं के विना तृप्त हुए संसार से जाओगे-यह तो बड़ी चिन्ता की बात है ॥३६॥

आविक्षितं मरुत्तं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ॥३७॥
संवर्त्तो याजयामास स्पर्धया वै बृहस्पतेः ।
यस्मै राजर्षये प्रादाद्धनं स भगवान्प्रभुः ॥३८॥

हे सृञ्जय ! मैंने अविक्षित के पुत्र, राजा मरुत्त की भी मृत्यु का वृत्तान्त सुना है। बृहस्पति की स्पर्धा से संवर्त मुनि ने उसको यज्ञ करवाया। इसी तेजस्वी शक्तिशाली संवर्तक ने इस राजा को बहुत धन की प्राप्ति कराई थी ॥३७-३८॥

हैमं हिमवतः पादं यियक्षोर्विविधैः सवैः ।
यस्य सेन्द्रामरगणा बृहस्पतिपुरोगमाः ॥३९॥

जब यह राजा यज्ञ करना चाहता था, तो अनेक प्रकार से यज्ञ सम्पादन करने को इन्द्रादि देव और बृहस्पति आदि आचार्य हिमालय के सुवर्ण मय प्रदेश पर उपस्थित हुए थे ॥३९॥

देवा विश्वसृजः सर्वे यजनान्ते समासते ।
यज्ञवाटस्य सौवर्णाः सर्वे चाऽऽसन्परिच्छदाः ॥४०॥

संसार की रचना पालन आदि करने वाले ब्रह्मादि देव भी यज्ञ काल में उपस्थित होते रहे। इसके यज्ञ के सारे उपकरण (सामान) सुवर्ण के थे ॥४०॥

यस्य सर्वं तदा ह्यन्नं मनोभिप्रायगं शुचि ।
कामतो बुभुजुर्विप्राः सर्वे चाऽन्नार्थिनो द्विजाः ॥४१॥
पयो दधि घृतं क्षौद्रं भक्ष्यं भोज्यं च शोभनम् ।

राजा मरुत्त के यज्ञ में बड़ा उत्तम, मन को प्रिय, अन्न भक्षण के लिए प्राप्त होता था। उस अन्न को जिस ब्राह्मण या क्षत्रिय आदि द्विजाति की इच्छा होती थी, वही प्रेम पूर्वक भक्षण करता था। भोजन के लिए दूध, दही, घृत, मधु आदि किसी भी भक्षण के पदार्थ की कमी नहीं थी।४१॥

यस्य यज्ञेषु सर्वेषु वासांस्याभरणानि च ॥४२॥
ईप्सितान्युपतिष्ठन्ते प्रहृष्टान्वेदपारगान् ।

इसके इन यज्ञों में बड़े बड़े उत्तम वस्त्र, आभूषण उपस्थित थे। उनको अपनी २ इच्छा के अनुसार वेदपाठी ब्राह्मण प्राप्त करते थे ॥४२॥

मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्याऽभवन्गृहे ॥४३॥
आविक्षितस्य राजर्षेर्विश्वे देवाः सभासदः ।

अविक्षित के पुत्र राजर्षि मरुत्त के घर पर यज्ञ में अन्न परोसने वाले देवता और इसके यज्ञ के विश्वेदेवा सभासद् हुए ॥४३॥

यस्य वीर्यवतो राज्ञः सुवृष्ट्या सस्यसम्पदः ॥४४॥
हविर्भिस्तर्पिता येन सम्यक्क्लृप्तैर्दिवौकसः ।

इस पराक्रमी राजा मरुत्त के राज्य में अन्न की बहुत ही

उत्पत्ति होती थी, क्योंकि इसने वेदानुकूल ढंग से हवि प्रदान करके देवों को तृप्त किया था ॥४४॥

ऋषीणां च पितृणां च देवानां सुखजीविनाम् ॥४५॥
ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः सर्वैर्दानैश्च सर्वदा ।

ऋषि, पितर और सुख से रहने वाले देवों को ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन सब तरह के दानों से उस राजा ने सन्तुष्ट किया ॥४५॥

शयनासनपानानि स्वर्णराशीश्च दुस्त्यजाः ॥४६॥
तत्सर्वममितं वित्तं दत्तं विप्रेभ्य इच्छया ।

शयन, आसन, पान, दुस्त्यज स्वर्ण की राशि, अमित धन, अपनी इच्छानुसार राजा मरुत्त ने ब्राह्मणों को दान में दिया ॥४६॥

सोऽनुध्यातस्तु शक्रेण प्रजाः कृत्वा निरामयाः ॥४७॥
श्रद्दधानो जिताँल्लोकान्गतः पुण्यदुहोऽक्षयान् ।

इन्द्र आदि देवता इसकी प्रजा पर सुख बरसाते रहते थे । जब इस श्रद्धावान को इन्द्र ने अपने नगर स्वर्ग में बुलाया तो यह उसके आह्वान पर पुण्य से प्राप्त होने वाले अक्षय लोकों में पहुँचा ॥४७॥

सप्रजः सनृपामात्यः सदारापत्यबान्धवः ॥४८॥
यौवनेन सहस्राब्दं मरुत्तो राज्यमन्वशात् ।

राजा मरुत्त ने अपनी प्रजा, सामन्त, स्त्री, पुत्र, बान्धवों के साथ युवा रहकर एक सहस्र वर्ष तक राज्य किया ॥४८॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥४९॥

पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥५०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

हे सृञ्जय ! जो तुम से सब ओर से गौरवशाली था, वह भी काल के गाल में चला गया। यह तुम्हारे पुत्र से भी पुण्यात्मा था। अब तुमको पुत्र का सन्ताप नहीं करना चाहिए। हे अभिश्वैत्य ! इस तेरे पुत्र ने तो यज्ञ भी नहीं किए और यह न किसी प्रकार भी यज्ञ में दक्षिणा ही दे सका था ॥४६-५०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में राजा मरुत्त की कथा का पचपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

---

## छप्पनवां अध्याय

नारद उवाच—

सुहोत्रं नाम राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
एकवीरमशक्यं तममरैरभिवीक्षितुम् ॥१॥

नारदजी कहने लगे—हे सृञ्जय ! इसी प्रकार हमने एक राजा सुहोत्र की मृत्यु का वृत्तान्त सुना है। यह राजा सर्वश्रेष्ठ वीर था, जिसकी ओर देवता भी आँख उठा कर नहीं देख सकते थे ॥१॥

यः प्राप्य राज्यं धर्मेण ऋत्विग्ब्रह्मपुरोहितान् ।
अपृच्छदात्मनः श्रेयः पृष्ट्वा तेषां मते स्थितः ॥२॥

इसने धर्मानुसार राज्य प्राप्त करके अपने ऋत्विक् और पुरोहितों से अपने कल्याण की बात पूछी और जो कुछ उन्होंने बताया उसके अनुसार आचरण करने लगा ॥२॥

प्रजानां पालनं धर्मो दानमिज्या द्विषज्जयः ।
एतत्सुहोत्रो विज्ञाय धर्मेणैच्छद्धनागमम् ॥३॥

राजा सुहोत्र को यही शिक्षा मिली, कि प्रजा का पालन, धर्म, दान, यज्ञ और शत्रु विजय-ये ही राजा के कर्तव्य हैं। उसने इन्हीं धर्मानुसार कर्मों द्वारा धनार्जन का मार्ग स्वीकार किया ॥३॥

धर्मेणाऽऽराधयन्देवान्बाणैः शत्रूञ्जयंस्तथा ।
सर्वाण्यपि च भूतानि स्वगुणैरप्यरञ्जयत् ॥४॥

इसने यज्ञादि धर्म के आचरण से देवों की आराधना और बाण के बल से शत्रुओं पर विजय किया एवं अपनी सारी प्रजा को अपने गुणों से सन्तुष्ट कर लिया है ॥४॥

यो भुक्त्वेमां वसुमतीं म्लेच्छाटविकवर्जिताम् ।
यस्मै ववर्ष पर्जन्यो हिरण्यं परिवत्सरान् ॥५॥

इसने सारी पृथिवी को म्लेच्छ और लुटेरों से रहित करके उपभोग किया। इसके राज्य में प्रतिवर्ष ही मेघ सुवर्ण की वर्षा करते थे ॥५॥

हैरण्यास्तत्र वाहिन्यः स्वैरिण्यो व्यवहन्पुरा ।
ग्राहान्कर्कटकांश्चैव मत्स्यांश्च विविधान्बहून् ॥६॥

सारी नदियाँ सुवर्ण पूर्ण जल से स्वतन्त्र वहने लगी, जिनमें अनेक भांति के ग्राह, कर्कटक और मत्स्य थे ॥६॥

कामान्वर्षति पर्जन्यो रूपाणि विविधानि च ।
सौवर्णान्यप्रमेयाणि वाप्यश्च क्रोशसम्मिताः ॥७॥

इसके राज्य में मेघ, अनेक प्रकार के भोगों तथा अपरमित सुवर्ण की वर्षा करते थे । इन जलों से कोश भर चौड़ी वावड़ियां भरी हुई थीं ॥७॥

सहस्रं वामनान्कुब्जान्नक्रान्मकरकच्छपान् ।
सौवर्णान्विहितान्दृष्ट्वा ततोऽस्मयत वै तदा ॥८॥

यह राजा, सुवर्ण के वामन, कुब्ज, नक्र, मकर, कच्छपों को देखकर सदा मुस्कुराया करता था ॥८॥

तत्सुवर्णमपर्यन्तं राजर्षिः कुरुजाङ्गले ।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥९॥

इस राजर्षि ने कुरुजाङ्गल-प्रदेश (कुरुक्षेत्र) में बड़े २ विस्तृत यज्ञ किए और उनमें उस सुवर्ण को बहुत से ब्राह्मणों को दान कर दिया ॥९॥

सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
पुण्यैः क्षत्रिययज्ञैश्च प्रभूतवरदक्षिणैः ॥१०॥
काम्यनैमित्तिकाजस्रैरिष्टां गतिमवाप्तवान् ।

इसने सहस्रों राजसूय और सैकड़ों अश्वमेध यज्ञ कर डाले, जो क्षत्रिय-श्रेष्ठ राजाओं के करने योग्य थे, उनमें इसने बहुत ही अधिक दक्षिणा प्रदान की। इसने अनेक सकाम और नैमित्तिक यज्ञ किये, जिनसे अन्त में अभिलषित गति प्राप्त हुई ॥१०॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥११॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥१२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वण्यभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

हे सृञ्जय ! जो यह धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य में तुम्हारे पुत्र से सब तरह श्रेष्ठ और पवित्र था, वह भी मर गया, तो अब तुम यज्ञ नहीं करने वाले या किसी प्रकार की दक्षिणा नहीं देने वाले अपने पुत्र का सोच न करो। तुम तो अपने उत्तम पिता अभिश्वैत्य के पुत्र हो-तुमको सब कुछ विचार होना चाहिये।

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में राजा सुहोत्र की कथा का छप्पनवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



# सत्तावनवां अध्याय

नारद उवाच—

राजानं पौरवं वीरं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।

सहस्रं यः सहस्राणां श्वेतानश्वानवासृजत् ॥१॥

नारद जी बोले—हे सृञ्जय! इसी तरह हमने वीर राजा पौरव की मृत्यु सुनी है । जिसने दश लाख श्वेत अश्वों को ब्राह्मणों के लिए दान किया था ॥१॥

तस्याऽश्वमेधे राजर्षेर्देशाद्देशात्समीयुषाम् ।

शिक्षाक्षरविधिज्ञानां नाऽऽसीत्संख्या विपश्चिताम् २॥

इस राजा पौरव के अश्वमेध यज्ञ में अनेक देशों से आने वाले वेद की शिक्षा के ज्ञाता, विद्वानों की गणना नहीं हो सकती थी ॥२॥

वेदविद्याव्रतस्नाता वदान्याः प्रियदर्शनाः ।

सुभिक्षाच्छादनगृहाः सुशय्यासनभोजनाः ॥३॥

वेद और विद्याव्रतस्नातक ब्राह्मण, बड़े २ उदार और सुन्दर स्वरूपधारी थे । इसने इनको उत्तम २ वस्त्र, घर, शय्या, आसन, भोजन आदि से बड़ा सन्तुष्ट किया ॥३॥

नटनर्तकगन्धर्वैः पूर्णकैर्वर्धमानकैः ।

नित्योद्योगैश्च क्रीडद्भिस्तत्र स्म परिहर्षिताः ॥४॥

नट, नर्तक, गन्धर्व आदि गान विद्या में कुशल, सुवर्ण की मूढ़ा बनाकर एवं दीपक को थाली में रखकर नाचने वाले कलाधर पुरुषों द्वारा और नित्य के उद्योग और खेल कूद से ब्राह्मणों को बहुत ही प्रसन्न किया ॥४॥

यज्ञे यज्ञे यथाकालं दक्षिणाः सोऽत्यकालयत् ।
द्विपा दशसहस्राख्याः प्रमदाः काञ्चनप्रभाः ॥५॥
सध्वजाः स पताकाश्च रथा हेममयास्तथा ।
यः सहस्रं सहस्राणि कन्या हेमविभूषिताः ॥६॥
धूर्युक्ताश्वगजारूढाः सगृहक्षेत्रगोशताः ।
शतं शतसहस्राणि स्वर्णमाली महात्मनाम् ॥७॥
गवां सहस्रानुचरान्दक्षिणामत्यकालयत् ।
हेमशृंग्यो रौप्यखुराः सवत्साः कांस्यदोहनाः ॥८॥

इसने प्रत्येक यज्ञ मेंसमय २ पर उत्तम दक्षिणाएँ प्रदान की। दस हजार हाथी, सुवर्ण के तुल्य कान्तिधारी सुन्दर प्रमदा, ध्वजा, पताका, सुवर्ण के रथ, सुवर्ण से विभूषित दश लाख कन्यायें, दश लाख ब्राह्मणों को दान में दी। इनको अश्व और हाथी के रथों में चढ़ाकर सैंकड़ों गाएँ और भूमिदान करके घर भेजा। सुवर्ण की माला पहिने हुए लाखों की संख्या में महात्मा ब्राह्मण दिखाई देते थे। इनको सहस्रों की संख्या में गायों की सेवा करने वाले सेवक भी साथ ही प्रदान किए। इन गौओं के

सुवर्ण से जटित सींग, चांदी के खुर और दूध दोहने के काँसी के पात्र थे तथा सबके साथ बछड़े थे ॥५-८॥

दासीदासखरोष्ट्रांश्च प्रादादाजाविकं बहु ।
रत्नानां विविधानां च विविधांश्चाऽन्नपर्वतान् ॥९॥
तस्मिन्संवितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
तत्राऽस्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥

इसी तरह दास, दासी, गर्दभ, ऊँट, भेड़, बकरी, जो जिसको अभीष्ट थी, दान में दी। अनेक प्रकार के रत्न, अन्न के पर्वत उस विस्तृत यज्ञ में उसने लुटाए। प्राचीन इतिहास के जानने वाले इन सब कथाओं को गाते रहते हैं ॥९-१०॥

अङ्गस्य यजमानस्य स्वधर्माधिगताः शुभाः ।
गुणोत्तरास्तु क्रतवस्तस्याऽऽसन्सार्वकार्मिकाः ॥११॥

हे राजन्! अङ्गराज पौरव के अपने धर्म के अनुसार बड़े उत्तम ढंग से सम्पादित किये हुए यज्ञ, सारे मनुष्यों की कामना के पूर्ण करने वाले सिद्ध हुए॥११॥

स चेन्ममार सञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥१२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

हे सृञ्जय ! ज्ञान वैराग्य आदि चारों साधनों में श्रेष्ठ तथा यज्ञ नहीं करने वाले और न दक्षिणा देने वाले तेरे पुत्र से बहुत ही उत्तम राजा पौरव भी जब स्वर्ग चला गया—तो हे अभिश्वैत्य ! अब तुझे कुछ भी अपने पुत्र का शोक नहीं करना चाहिए ॥१२॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में सोलह राजाओं के उपाख्यान में राजा पौरव के उपाख्यान का सत्तावनवां अध्याय समाप्त हुआ ।



# अट्ठावनवां अध्याय

नारद उवाच—

शिविमौशीनरं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
य इमां पृथिवीं सर्वां चर्मवत्पर्यवेष्टयत् ॥१॥

नारदजी ने कहा—हे सृञ्जय ! हमने उशीनर के पुत्र राजा शिवि को भी मृत्यु के अधीन होता सुना है। जिसने इस सारी पृथिवी को चर्म की तरह लपेट दिया था ॥१॥

साद्रिद्वीपार्णववनां रथघोषेण नादयन् ।
स शिविर्वै रिपून्नित्यं मुख्यान्निघ्नन्सपत्नजित् ॥२॥
तेन यज्ञैर्बहुविधैरिष्टं पर्याप्तदक्षिणैः ।

यह शत्रु-विजेता शिबि, पर्वत, द्वीप, समुद्र और वन के सहित सारी पृथिवी को अपने रथ के घोष से शब्दायमान करके सारे प्रधान २ शत्रुओं को जीतता हुआ घूमा करता था। इसने पर्याप्त दक्षिणा वाले बहुत से यज्ञों से यजन कर रखा था ॥२॥

स राजा वीर्यवान्धीमानवाप्य वसु पुष्कलम् ॥३॥
सर्वमूर्धाभिषिक्तानां सम्मतः सोऽभवद्युधि ।

इस बुद्धिमान् और महापराक्रमी राजा ने बहुत सा धन इकट्ठा कर लिया। यह युद्ध में बड़े २ वीर राजाओं से भी शक्तिशाली था ॥

अयजच्चाऽश्वमेधैर्यो विजित्य पृथिवीमिमाम् ॥४॥
निरर्गलैर्बहुफलैर्निष्ककोटिसहस्रदः ।

इसने सारी पृथिवी को जीत कर बहुत फल देने वाले, विघ्न रहित अश्वमेध यज्ञ किए। करोड़ों की संख्या में सुवर्ण मुद्रा दान में दी ॥४॥

हस्त्यश्वपशुभिर्धान्यैर्मृगैर्गोजाविभिस्तथा ॥५॥
विविधां पृथिवीं पुण्यां शिबिर्ब्राह्मणसात्करोत् ।

राजा शिबि ने हाथी, अश्व, गवादिपशु, धान्य, गौ, भेड़, बकरी तथा आवश्यक खरादि जन्तु और अनेक प्रकार की पवित्र भूमि ब्राह्मणों को प्रदान की ॥५॥

यावत्यो वर्षतो धारा यावत्यो दिवि तारकाः ॥६॥
यावत्यः सिकता गाङ्ग्यो यावन्मेरोर्महोपलाः ।
उदन्वति च यावन्ति रत्नानि प्राणिनोऽपि च ।
तावतीरददद्गा वै शिबिरौशीनरोऽध्वरे ॥७॥

राजा शिवि ने अपने यज्ञ में जितनी वर्षा की धारा, जितने आकाश में तारे, जितनी गङ्गा के रजकण, जितने मेरु पर्वत के पत्थर, जितने समुद्र के रत्न, जितने पृथिवी पर प्राणी थे, उतनी ही गायें प्रदान की ॥६-७॥

नो यन्तारं धुरस्तस्य कञ्चिदन्यं प्रजापतिः ।
भूतं भव्यं भवन्तं वा नाऽध्यगच्छन्नरोत्तमम् ॥८॥

ब्रह्मा ने उसकी तरह राज्य की धुर को धारण करने वाला, भूत, भविष्यत और वर्तमान काल में कोई उत्तम राजा नहीं देखा ॥८॥

तस्याऽऽसन्विविधा यज्ञाः सर्वकामैः समन्विताः ।
हेमयूपासनगृहा हेमप्राकारतोरणाः ॥९॥

इसने ब्राह्मणों की सारी कामना के पूर्ण करने वाले अनेक यज्ञ कर डाले, जिनमें सुवर्ण के यूप (खम्भे) आसन और यज्ञ मण्डप रचे गए तथा सुवर्ण के ही प्रकार (परकोटे) और तोरण (द्वार) बनाए गए थे ॥९॥

शुचि स्वाद्वन्नपानं च ब्राह्मणाः प्रयुतायुताः ।
नानाभक्ष्यैः प्रियकथाः पयोदधिमहाह्रदाः १०॥

हजारों लाखों की संख्या में ब्राह्मण, उत्तम २ स्वादिष्ट अन्न-पान और भक्ष्यभोज्य का भोजन कर रहे थे तथा बड़ी २ प्रिय कथा करते और दूध-दही के सरोवरों में स्नान-पान करते थे ॥१०॥

तस्याऽऽसन्यज्ञवाटेषु नद्यः शुभ्रान्नपर्वताः ।
पिबत स्नात खादध्वमिति यद्रोचते जनाः ॥११॥

इसकी यज्ञशाला में ही नदी बह रही थी और अन्न के पर्वत पड़े थे। राजसेवक ब्राह्मणों से यही कह रहे थे, कि तुम "पीओ" "खाओ" और "स्नान करो" जैसी तुम्हारी इच्छा हो—वह कर सकते हो ॥११॥

यस्मै प्रादाद्वरं रुद्रस्तुष्टः पुण्येन कर्मणा।

अक्षयं ददतो वित्तं श्रद्धा कीर्तिस्तथा क्रियाः ॥१२॥

इसके पुण्य कर्म से प्रसन्न हुए रुद्र देवता ने इसको वरदान दिया था। इसने राजा को अक्षय धन, श्रद्धा, कीर्ति और यज्ञ-क्रिया सम्पादन करने का वरदान दिया ॥१२॥

यथोक्तमेव भूतानां प्रियत्वं स्वर्गमुत्तमम्।

एतांल्लब्ध्वा वरानिष्टाञ्शिबिः काले दिवं गतः ॥१३॥

जैसा-इस राजा ने वरदान मांगा, उसीके अनुसार रुद्र ने उसे समस्त प्राणियों का प्रिय, उत्तम स्वर्ग प्राप्ति का वरदान भी दिया। इन सब वरों को पाकर राजा शिबि भी अन्त में स्वर्ग गया ॥१३॥

स चेन्ममार सञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया।

पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥१४॥

अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥१५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

हे सृञ्जय ! दान आदि उत्तम २ ऐश्वर्यों से सम्पन्न जब राजा शिवि भी मर गया-जो तुम्हारे पुत्र से अत्यन्त श्रेष्ठ था। हे अभिश्वैत्य ! तेरे पुत्र ने तो कोई यज्ञ नहीं किया और न कोई उत्तम दक्षिणाएँ प्रदान की। अब तुमको अपने पुत्र का शोक छोड़ देना चाहिए ॥१४-१५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में सोलह राजाओंके उपाख्यानके भीतर राजा शिविके उदाहरण का अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

---

## उनसठवां अध्याय

नारद उवाच—

रामं दाशरथिं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
यं प्रजा अन्वमोदन्त पिता पुत्रानिवौरसान् ॥१॥

नारदजी कहने लगे—हे सृञ्जय ! हमने दशरथ-पुत्र राम की भी मृत्यु सुनी है। इसने प्रजा का इतना उत्तम पालन किया, जैसे पिता पुत्र की पालना करता है ॥१॥

असंख्येया गुणा यस्मिन्नासन्नमिततेजसि।
यश्चतुर्दश वर्षाणि निदेशात्पितुरच्युतः ॥२॥
वने वनितया सार्धमवसल्लक्ष्मणाग्रजः।

इस अत्यन्त तेजस्वी राम में असङ्ख्य गुण थे। इसने पिता की आज्ञा से अपनी भार्या सीता और लक्ष्मण के साथ चौदह वर्ष पर्यन्त वनवास किया ॥२॥

जघान च जनस्थाने राक्षसान्मनुजर्षभः ॥३॥
तपस्विनां रक्षणार्थं सहस्राणि चतुर्दश।

इस मनुजश्रेष्ठ राम ने जनस्थान में तपस्वी मुनियों की रक्षा के निमित्त चौदह सहस्र राक्षसों का नाश किया ॥३॥

तत्रैव वसतस्तस्य रावणो नाम राक्षसः ॥४॥
जहार भार्यां वैदेहीं सम्मोहैनं सहानुजम्।

जब यह वन में निवास करते थे-तो इनकी भार्या सीता को रावण, इन दोनो भाई राम और लक्ष्मण को धोखा देकर हर ले गया ॥४॥

तमागस्कारिणं रामः पौलस्त्यमजितं परैः ॥५॥
जघान समरे क्रुद्धः पुरेव त्र्यम्बकोऽन्धकम्।

इन्हीं राम ने फिर क्रोध में आकर किसी से भी नहीं जीते जाने वाले, अपराधी रावण को रण में मार गिराया, जैसे पूर्वकाल में महादेवजी ने अन्धकासुर को मार डाला था ॥५॥

सुरासुरैरवध्यं तं देवब्राह्मणकण्टकम् ॥६॥
जघान स महाबाहुः पौलस्त्यं सगणं रणे।

महाबाहु रामचन्द्र ने देव और असुरों से भी अवध्य, देव ब्राह्मणों के शत्रु, पुलस्त्य-पौत्र रावण को रण में सेना सहित मार गिराया ॥६॥

स प्रजानुग्रहं कृत्वा त्रिदशैरभिपूजितः ॥७॥
व्याप्य कृत्स्नं जगत्कीर्त्या सुरर्षिगणसेवितः ।

इसने प्रजा का कल्याण करके देवों से आदर-सत्कार प्राप्त किया तथा सारे जगत् को कीर्ति से भर दिया। सुर और ऋषियों के गणों ने इनकी बहुत ही पूजा की ॥७॥

स प्राप्य विविधं राज्यं सर्वभूतानुकम्पकः ॥८॥
आजहार महायज्ञं प्रजा धर्मेण पालयन् ।

समस्त प्राणियों पर अनुग्रह करने वाले रामचन्द्रजी ने अपना विचित्र अयोध्या का राज्य प्राप्त किया। प्रजा को धर्म के साथ पालन करते हुए श्रीराम ने अश्वमेध यज्ञ करना आरम्भ किया ॥८॥

निरर्गलं सजारूथ्यमश्वमेधं च तं विभुः ॥९॥
आजहार सुरेशस्य हविषा मुदमाहरत् ।

निर्विघ्न और सुदक्षिणा से परिपूर्ण अश्वमेध यज्ञ को करके उसने इन्द्र को बहुत ही आनन्दित किया ॥९॥

अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरीजे बहुगुणैर्नृपः ॥१०॥
क्षुत्पिपासेऽजयद्रामः सर्वरोगांश्च देहिनाम् ।

इस राजा राम ने अनेक दक्षिणा आदि उत्तम २ गुणों से पूर्ण अन्य भी बहुत से यज्ञ किए। इसने भूख, प्यास और समस्त प्राणियों को होने वाले रोगों पर विजय प्राप्त कर ली थी ॥१०॥

सततं गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥११॥
अति सर्वाणि भूतानि रामो दाशरथिर्बभौ ।

दशरथ-पुत्र रामचन्द्रजी सर्वगुणसम्पन्न, अपने तेज से देदीप्यमान तथा समस्त प्राणिसमूह का अतिक्रमण करके सुशोभित थे ॥११॥

ऋषीणां देवतानां च मानुषाणां च सर्वशः ॥
पृथिव्यां सहवासोऽभूद्रामे राज्यं प्रशासति ॥१२॥

जब राजा राम शासन कर रहे थे, तो उस समय पृथिवी पर ऋषि, देवता और मनुष्यों का निवास हो गया था ॥१२॥

नाऽहीयत तदा प्राणः प्राणिनां न तदन्यथा ।
प्राणोऽपानः समानश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥१३॥

रामचन्द्रजी के शासनकाल में प्राणियों के प्राण अकाल में उत्क्रमण नहीं करते थे और न प्राण-अपान समान आदि वायु में कोई विकार उत्पन्न होता था ॥१३॥

पर्यदीप्यन्त तेजांसि तदाऽनर्थाश्च नाऽभवन् ।
दीर्घायुषः प्रजाः सर्वा युवा न म्रियते तदा ॥१४॥

समस्त प्राणी तेज से प्रदीप्त हो गए। कोई भी उत्पात या अनर्थ नहीं होता था। सारी प्रजा दीर्घायु होती थी और कोई भी युवावस्था में नहीं मरता था ॥१४॥

वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः प्राप्नुवन्ति दिवौकसः ।
हव्यं कव्यं च विविधं निष्पूर्त्तं हुतमेव च ॥१५॥

देवतागण, चारों वेदों के मन्त्रों के उच्चारण-पूर्वक प्रदान की हुई हव्य को तथा पितर कव्य को ग्रहण करते थे। अनेक प्रकार से नमिमित्त यज्ञों पर हवन होता था ॥१५॥

अदंशमशका देशा नष्टव्यालसरीसृपाः ।
नाऽप्सु प्राणभृतां मृत्युर्नाऽकाले ज्वलनोऽदहत् ॥१६

प्रत्येक स्थान पर दंश-मशकों से रहित देश हो रहे थे और सर्प आदि भयङ्कर जन्तु नष्ट हो गए थे । श्रीरामचन्द्रजी के शासन-काल में किसी की भी जल में डूबने से मृत्यु नहीं हुई और न असमय पर आग प्रज्वलित होती थी ॥१६॥

अधर्मरुचयो लुब्धा मूर्खा वा नाऽभवंस्तदा ।
शिष्टेष्टप्राज्ञकर्माणः सर्वे वर्णास्तदाऽभवन् ॥१७॥

इस समय अधर्म में रुचि करने वाले लालची मूर्खलोग उत्पन्न ही नहीं होते थे । सारे वर्ण के प्राणी बड़े श्रेष्ठ तथा उचित कार्य करने वाले थे ॥१७॥

स्वधां पूजां च रक्षोभिर्जनस्थाने प्रणाशिताम् ।
प्रादान्निहत्य रक्षांसि पितृदेवेभ्य ईश्वरः ॥१८॥

जनस्थान में राक्षसों ने स्वधा और देव पूजा उठा दी थी, इस शान्तिशाली राम ने उन राक्षसों को मार कर देव और पितरों के निमित्त दान कराना आरम्भ किया ॥१८॥

सहस्रपुत्राः पुरुषा दशवर्षशतायुषः ।
न च ज्येष्ठाः कनिष्ठेभ्यस्तदा श्राद्धान्यकारयन् ॥१९॥

पुरुषों के अनेक पुत्र और सहस्रों वर्षों की आयु होतीं थी । बड़े भ्राता या पिता को कभी अपने से छोटे का श्राद्ध या तर्पण नहीं करना पड़ा ॥१९॥

श्यामो युवा लोहिताक्षो मत्तमातङ्गविक्रमः ।
आजानुबाहुः सुभुजः सिंहस्कन्धो महाबलः ॥२०॥

रामचन्द्रजी का श्यामवर्ण, लाल आंखें, पुष्ट शरीर था। उनकी जानु पर्यन्त लम्बी सुन्दर भुजा थी। इस महाबली के सिंह के तुल्य स्कन्ध थे ॥२०॥

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥२१॥
सर्वभूतमनःकान्तो रामो राज्यमकारयत् ।

रामचन्द्रजी ने समस्त प्राणियों के मन को अपने वश में करके दश सहस्र और दश शत अर्थात् ग्यारह सहस्र वर्ष तक राज्य किया ॥

रामो रामो राम इतिप्रजानामभवत्कथा ॥२२॥
रामाद्रामं जगदभूद्रामे राज्यं प्रशासति ।

जब राम जगत् में शासन कर रहे थे-तो उस समय प्रजा में केवल राम ही राम की चर्चा थी। राम के शासन से जगत् आनन्द का निकेतन बन गया ॥२२॥

चतुर्विधाः प्रजा रामः स्वर्गं नीत्वा दिवं गतः ॥२३॥
आत्मानं सम्प्रतिष्ठाप्य राजवंशमिहाऽष्टधा ।

चारों वर्णों के साथ रामचन्द्रजी अन्त में स्वर्ग को चले गए और अपने राज्य को अपने भाइयों के पुत्रों में आठ भाग कर दिए ॥२३॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥२४॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥२५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

हे सृञ्जय ! प्रजापालन आदि अनेक गुणों से श्रेष्ठ राम भी जब स्वर्ग गए-जो तुमसे और यज्ञ तथा किसी प्रकार की भी दक्षिणा नहीं देने वाले तुम्हारे पुत्र से श्रेष्ठ थे। हे अभिश्वैत्य ! इस दशा में तुमको अपने पुत्र का शोक नहीं करना चाहिए ॥२४-२५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में सोलह राजाओं के उपाख्यान में श्रीरामचन्द्रजी के आख्यान का उनसठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

## साठवां अध्याय

नारद उवाच—

भागीरथं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
तेन भागीरथी गङ्गा चयनैः काञ्चनैश्चिता ॥१॥

नारदजी बोले—हे सृञ्जय ! हमने राजा भगीरथ को भी मृत हुआ सुना है, जिसने भागीरथी गङ्गा पर सुवर्ण की ईंटों से यज्ञकुण्ड बना कर हवन किया था ॥१॥

यः सहस्रं सहस्राणां कन्या हेमविभूषिता।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥२॥

जिसने दश लाख कन्या सुवर्ण के अलङ्कारों से विभूषित करके राजा और राजकुमारों को छोड़कर ब्राह्मणों को प्रदान की थी ॥२॥

सर्वा रथगताः कन्या रथाः सर्वे चतुर्युजः ।
रथे रथे शतं नागाः सर्वे वै हेममालिनः ॥३॥

ये सारी कन्याएं रथों में बैठी थी और सारे रथों में चार २ अश्व जुड़े थे और प्रत्येक रथ के पीछे सुवर्ण की माला पहिने हुए सौ २ हाथी थे ॥३॥

सहस्रमश्वाश्चैकैकं गजानां पृष्ठतोऽन्वयुः ।
अश्वे अश्वे शतं गावो गवां पश्चादजाविकम् ॥४॥

एक २ हाथी के पीछे एक २ सहस्र अश्व चल रहे थे । अश्व २ के पीछे सौ २ गायें और एक २ गाय के पीछे भेड़ बकरी चल रही थी ॥४॥

तेनाऽऽक्रान्ता जनौघेन दक्षिणा भूयसीर्ददत् ।
उपह्वरेऽतिव्यथिता तस्याऽङ्के निषसाद ह ॥५॥

उस समय जन समूह को बहुत अधिक दक्षिणा प्रदान की गई । उस हिमालय के उत्तम प्रदेश पर अत्यन्त पीड़ित होकर गङ्गा स्वयं भगीरथ की गोदी में आ बैठी ॥५॥

तथा भागीरथी गङ्गा उर्वशी चाऽभवत्पुरा ।
दुहितृत्वं गता राज्ञः पुत्रत्वमगमत्तदा ॥६॥

उर्वशी का रूप धारण करके गङ्गा ने जिस स्थान को सुशोभित किया, उस स्थान का नाम उर्वशी नामक तीर्थ है। इसी से गङ्गा, राजा भगीरथ की पुत्री कहलाई, परन्तु इसने इनके पूर्वजों का नरकों से उद्धार किया, इससे यह पुत्रत्व को प्राप्त हुई ॥६॥

तां तु गाथां जगुः प्रीता गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः ।
पितृदेवमनुष्याणां शृण्वतां वल्गुवादिनः ॥७॥

पितर, देव, मनुष्यों के सुनते २ उत्तम रीति से गान करने वाले सूर्य के तुल्य तेजस्वी गन्धर्वों ने भगीरथ की इस कीर्ति पूर्ण गाथा का गान किया ॥७॥

भगीरथं यजमानमैक्ष्वाकुं भूरिदक्षिणम् ।
गङ्गा समुद्रगा देवी वव्रे पितरमीश्वरम् ॥८॥

यज्ञ करनेवाले, इक्ष्वाकुवंशज, बहुत दक्षिणा देनेवाले, भगीरथ को समुद्र की ओर गमन करने वाली गङ्गा ने अपना पिता स्वीकार किया ॥८॥

तस्य सेन्द्रैः सुरगणैर्देवैर्यज्ञः स्वलंकृतः ।
सम्यक्परिगृहीतश्च शान्तविघ्नो निरामयः ॥९॥

इस भागीरथ के यज्ञ को इन्द्र के सहित सारे देवों ने अलंकृत किया था। इसका सारे देवों ने बड़ा आदर किया और इसका विघ्नबाधाओं से रहित बड़े उत्तम ढंग से यज्ञ पूर्ण हुआ ॥९॥

यो य इच्छेत विप्रो वै यत्र यत्राऽऽत्मनः प्रियम् ।
भगीरथस्तदा प्रीतस्तत्र तत्राऽददद्वशी ॥१०॥

जिस ब्राह्मण ने जिस समय अपनी इच्छानुसार जो कुछ अभिलाषा की; जितेन्द्रिय भगीरथ ने उनको उसी समय वह वस्तु प्रदान की ॥१०॥

नाऽदेयं ब्राह्मणस्याऽऽसीद्यस्य यत्स्यात्प्रियं धनम् ।
सोऽपि विप्रप्रसादेन ब्रह्मलोकं गतो नृपः ॥११॥

भगीरथ को जो भी प्रिय धन था, उसे भी ब्राह्मण को प्रदान करने में कभी कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। ब्राह्मणों के अनुग्रह से राजा भगीरथ भी ब्रह्मलोक चला गया ॥११॥

येन यातौ मखमुखौ दिशाशाविह पादपाः ।
तेनाऽवस्थातुमिच्छन्ति तं गत्वाराजमीश्वरम् ॥१२॥

मरीचिपायी ऋषि, मरीचि आदि, जिस कारण से कर्म और योग यज्ञ का अनुष्ठान करके सूर्य दर्शन से अपने पापों का नाश करते थे और उसके अन्तर्यामी ब्रह्म का चिन्तन करते थे, वे गुण राजा भगीरथ को प्राप्त हुए अर्थात् उन लोगों ने भगीरथ के समीप स्थिति की ॥१२॥

स चेन्ममार सञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥१३॥
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥१४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

हे सृञ्जय ! जब समस्त कल्याणों से युक्त यह राजा तुम से तथा कुछ भी यज्ञ और दक्षिणा नहीं देने वाले तुम्हारे पुत्र से उत्तम था, तो हे अभिश्वैत्य ! अब तुमको अपने ऐसे पुत्र का सन्ताप नहीं करना चाहिए ॥१३-१४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में सोलह राजाओं के उपाख्यान में राजा भगीरथ के उपाख्यान का साठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



# इकसठवां अध्याय

नारद उवाच—

दिलीपं चेदैलविलं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
यस्य यज्ञशतेष्वासन्प्रयुतायुतशो द्विजाः ॥
तन्त्रज्ञानार्थसम्पन्ना यज्वानः पुत्रपौत्रिणः ॥१॥

नारदजी कहने लगे—हे सृञ्जय ! इलविला के पुत्र राजा दिलीप की भी मृत्यु हुई-यह हमने सुन रखा है। इसने सैंकड़ों यज्ञ किए, जिनमें लाखों की संख्या में ब्राह्मणों को दान मिला। उन यज्ञों में शास्त्र की विधि के जानने वाले अर्थज्ञानी, पुत्र पौत्रों से सम्पन्न, यज्ञकर्ता ब्राह्मण उपस्थित थे ॥१॥

य इमां वसुसम्पूर्णां वसुधां वसुधाधिपः।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥२॥

उस राजा ने विस्तृत यज्ञों में दीक्षा लेकर धन से भरी हुई बहुत सी पृथिवी ब्राह्मणों को प्रदान की ॥२॥

दिलीपस्य तु यज्ञेषु कृतः पन्था हिरण्मयः ।
तं धर्म इव कुर्वाणाः सेन्द्रा देवाः समागमन् ॥३॥

राजा दिलीप के यज्ञ का मार्ग (सड़क) सुवर्ण का बनाया गया। इन्द्रादि देव उसको धर्म में प्रवृत्त करने को ही मानो उसके यज्ञ में पधारे ॥३॥

सहस्रं यत्र मातङ्गा गच्छन्ति पर्वतोपमाः ।
सौवर्णं चाऽभवत्सर्वं सदः परमभास्वरम् ॥४॥

उस स्थान पर सैंकड़ों पर्वत के सदृश आकारधारी हाथी घूमते थे। सम्पूर्ण सभा भवन भी उसने सुवर्ण का ही बनवाया था, जो बहुत ही चमकीला था ॥४॥

रसानां चाऽभवन्कुल्या भक्ष्याणां चापि पर्वताः ।
सहस्रव्यामा नृपते यूपाश्चाऽऽसन्हिरण्मयाः ॥५॥
चषालं प्रचषालं च यस्य यूपे हिरण्मये ।

वहां दुग्धादि रसों की नदी और भोजन के पर्वत विद्यमान थे। हे राजन्! सहस्रों व्याम (हाथ फैलाये हुए गज से अधिक) लम्बे सुवर्ण के यज्ञस्तूप वहां बनाए गये। उस हिरण्य के यज्ञस्तूप में चषाल और प्रचषाल (स्तूप के ऊपर का काष्ठ) भी सुवर्ण का ही बनाया गया ॥५॥

नृत्यन्तेऽप्सरसस्तस्य षट्सहस्राणि सप्तधा ॥६॥
यत्र वीणां वादयति प्रीत्या विश्वावसुः स्वयम् ।

उस यज्ञमण्डप में साठ हजार अप्सराओं ने सात प्रकार से नांच किया तथा राजा के प्रेम के कारण स्वयं विश्वावसु गन्धर्व वीणा बजाता था ॥६॥

सर्वभूतान्यमन्यन्त राजानं सत्यशीलिनम् ॥७॥
रागखाण्डवभोज्यैश्च मत्ताः पतिषु शेरते ।

सारे प्राणी राजा दिलीप को बड़ा ही सत्यशाली मानते थे। वहां राग खाण्डव ( सुराविशेष ) के सहित भोजन करके उन्मत्त स्त्रियां अपने पतियों के साथ सोती थी ॥७॥

तदेतदद्भुतं मन्ये अन्यैर्न सदृशं नृपैः ॥८॥
यदप्सु युध्यमानस्य चक्रे न परिपेततुः ।

इस राजा के एक बड़ी अद्भुत बात यह थी, जब यह युद्ध में प्रवृत्त होता था, तो इसके रथ के पहिए पानी में नहीं डूबते थे ॥८॥

राजानं दृढधन्वानं दिलीपं सत्यवादिनम् ॥९॥
येऽपश्यन्भूरिदाक्षिण्यं तेऽपि स्वर्गजितो नराः ।

दृढ़ धनुषधारी, सत्यवादी, बहुत सी दक्षिणा से पूर्ण यज्ञ करने वाले राजा दिलीप के जिस किसी मनुष्य ने दर्शन कर लिये, वह भी स्वर्ग का जीतने वाला हो गया ॥९॥

पञ्च शब्दा न जीर्यन्ति खट्वाङ्गस्य निवेशने ॥१०॥
स्वाध्यायघोषो ज्याघोषः पिबताऽश्नीत खादत ।

राजा दिलीप के भवन में ( १ ) वेदध्वनि, ( २ )धनुष्टङ्कार, ( ३ ) पीओ, ( ४ ) चाटो ( ५ ) और खाओ-इन पांच शब्दों की कभी शान्ति नहीं होती थी ॥१०॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥११॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥१२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

हे सृञ्जय ! जब यज्ञ आदि उत्तम कर्म करने वाले राजा दिलीप भी मृत्यु के वश में चले गए—तो हे अभिश्वैत्य ! तुम्हारे अयाज्ञिक और दक्षिणा दान से हीन पुत्र से तथा तुम से भी उत्तम इस राजा के मर जाने पर तुमको अपने पुत्र का शोक नहीं करना चाहिए ॥११-१२॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में सोलह राजाओं के चरित में राजा दिलीप के वृत्तान्त का इकसठवां अध्याय समाप्त हुआ ।



# बासठवां अध्याय

नारद उवाच—

मान्धाता चेद्यौवनाश्वो मृतः सृञ्जय शुश्रुम।

देवासुरमनुष्याणां त्रैलोक्यविजयी नृपः॥१॥

यं देवावश्विनौ गर्भात्पितुः पूर्वं चकर्षतुः।

नारद जी बोले—हे सृञ्जय! युवनाश्व के पुत्र राजा मान्धाता भी मर गए-यह भी हमने सुना है। यह राजा, देव, असुर और मनुष्यों का ही क्या? त्रिलोकी का भी विजयी था। इस राजा को इसके पिता के उदर से अश्विनीकुमारों ने बाहर किया था॥१॥

मृगयां विचरन्राजा तृषितः क्लान्तवाहनः॥२॥

धूमं दृष्ट्वाऽगमत्तत्र पृषदाज्यमवाप सः।

एक बार मृगया (शिकार) खेलते हुए, वाहन वाला और प्यास से क्लेशित राजा युवनाश्व किसी यज्ञ की धूम को देखकर वहां पहुंचा। वहां उसने मधुपर्क के स्थान में पृषदाज्य (मन्त्रपूत दही और घृत) पी लिया॥२॥

तं दृष्ट्वा युवनाश्वस्य जठरे सूनुतां गतम्॥३॥

गर्भाद्धि जह्रतुर्देवावश्विनौ भिषजां वरौ।

जब स्वर्ग के वैद्य अश्विनीकुमारों ने देखा, कि राजा युवनाश्व के उदर में पुत्र है-तो इन्होंने उसके गर्भ से उस बालक को निकाल बाहर किया॥३॥

तं दृष्ट्वा पितुरुत्सङ्गे शयानं देववर्चसम् ॥४॥
अन्योन्यमब्रुवन्देवाः कमयं धास्यतीति वै ।

पिता की गोद में देवों के तुल्य तेजस्वी, सोते हुए बालक को देखकर देवता परस्पर कहने लगे-कि यह बालक किसका दूध पीवेगा ॥४॥

मामेवाऽयं धयत्वग्रे इति ह स्माऽह वासवः ॥५॥
ततोऽङ्गुलिभ्यो हीन्द्रस्य प्रादुरासीत्पयाऽमृतम् ।

इन्द्र ने कहा-कि इसको सर्व प्रथम मैं दूध पिलाऊंगा। इतना कहते ही इन्द्र की अंगुली से दुग्धामृत निकल पड़ा ॥५॥

मां धास्यतीति कारुण्याद्यदिन्द्रो ह्यन्वकम्पयत् ॥६॥
तस्मात्तु मान्धातेत्येवं नाम तस्याऽद्भुतं कृतम् ।

इन्द्र ने जो करुणा कर यह कहा, कि यह "मां धाता" अर्थात् मेरे द्वारा दुग्ध का पीने वाला होगा, इससे ही इसका अद्भुत नाम मान्धाता रखा गया ॥६॥

ततस्तु धारां पयसो घृतस्य च महात्मनः ॥७॥
तस्याऽऽस्ये यौवनाश्वस्य पाणिरिन्द्रस्य चाऽस्रवत् ।

महात्मा युवनाश्व-पुत्र राजा मान्धाता के मुख में इन्द्र ने हाथ दे दिया और उसकी अंगुली से उसके मुख में दुग्ध और घृत की धारा टपकने लगी ॥७॥

अपिबत्पाणिमिन्द्रस्य स चाऽप्यह्नाऽभ्यवर्धत ॥८॥
सोऽभवद् द्वादशसमो द्वादशाहेन वीर्यवान् ।

इसने ज्योंही इन्द्र के हाथ का पान करना आरम्भ किया-त्योंही एक दिन में बढ़ गया। यह वीर्यवान् बारह दिन में बारह वर्ष के बालक के बराबर हो गया ॥८॥

इमां च पृथिवीं कृत्स्नामेकाह्ना स व्यजीजयत् ॥९॥
धर्मात्मा धृतिमान्वीरः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः।

राजा मान्धाता बड़ा ही धैर्यशील, वीर, सत्यप्रतिज्ञ, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय था। इसने सारी पृथ्वी को एक ही दिन में जीत लिया था॥९॥

जनमेजयं सुधन्वानं गयं पूरुं बृहद्रथम् ॥१०॥
असितं च नृगं चैव मान्धाता मनुजोऽजयत्।

राजा मान्धाता ने राजा जनमेजय, सुधन्वा, गय, पूरु, बृहद्रथ, असित और राजा नृग को जीता था ॥१०॥

उदेति च यतः सूर्यो यत्र च प्रतितिष्ठति ॥११॥
तत्सर्वं यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते।

जहां से सूर्य उदित होता है और जहां छुपता है—इतनी दूर तक युवनाश्व-पुत्र राजा मान्धाता के राज्य की सीमा थी ॥११॥

सोऽश्वमेधशतैरिष्ट्वा राजसूयशतेन च ॥१२॥
अददद्रोहितान्मत्स्यान्ब्राह्मणेभ्यो विशाम्पते।
हैरण्यान्योजनोत्सेधानायतान्शतयोजनम् ॥१३॥

हे विशाम्पते! इसने सैकड़ों अश्वमेध और सैकड़ों ही राजसूय यज्ञ कर रखे थे तथा ब्राह्मणों को रोहित-मत्स्यों का

दान दिया था; जो सुवर्ण के बने हुए थे। वे एक योजन चौड़े और सौ योजन लम्बे थे ॥१२-१३॥

बहुप्रकारान्सुस्वादून्भक्ष्यभोज्यान्नपर्वतान् ।
अतिरिक्तं ब्राह्मणेभ्यो भुञ्जानो हीयते जनः ॥१४॥

इसके यज्ञ में बहुत प्रकार के स्वादिष्ट भक्ष्य भोज्य के अन्न के पर्वत लगे थे। ब्राह्मणों के अतिरिक्त भोजन करने वाले मनुष्य वहां बहुत कम दिखाई देते थे ॥१४॥

भक्ष्यान्नपाननिचयाः शुशुभुस्त्वन्नपर्वता ।
घृतह्रदाः सूपपङ्का दधिफेना गुडोदकाः ॥१५॥
रुरुधुः पर्वतान्नद्यो मधुक्षीरवहाः शुभाः ।

भक्ष्य, भोज्य तथा अन्न-पान के समूह इतने ऊंचे लगे हुए थे, जो पर्वत के आकार के प्रतीत होते थे। वहां घृत के सरोवर, दाल की कीचड़, दही के भाग, गुड़ रूप जल से युक्त मधु और दुग्ध की नदी बह रही थी, जिन्होंने इन अन्न के पर्वतों को घेर रखा था ॥१५॥

देवासुरा नरा यक्षा गन्धर्वोरगपक्षिणः ॥१६॥
विप्रास्तत्राऽऽगताश्चाऽऽसन्वेदवेदाङ्गपारगाः ।
ब्राह्मणा ऋषयश्चाऽपि नाऽऽसंस्तत्राऽविपश्चितः ॥१७॥

उसके इस यज्ञ में देव, असुर, नर, यक्ष, गन्धर्व, उरग, पक्षी और वेद-वेदाङ्ग के पारगामी ब्राह्मण आए हुए थे। इस यज्ञ में कोई ब्राह्मण या ऋषि मुनि अविद्वान् नहीं था ॥१६-१७॥

समुद्रान्तां वसुमतीं वसुपूर्णां तु सर्वतः ।
स तां ब्राह्मणसात्कृत्वा जगामाऽस्तं तदा नृपः ॥१८॥
गतः पुण्यकृतांल्लोकान्व्याप्य स्वयशसा दिशः ।

इसने धन से पूर्ण, समुद्रान्त पृथिवी को ब्राह्मणों के अधीन कर दिया। इतना करने पर भी महाराजा मान्धाता अन्त में अस्त होकर मृत्यु के वश में पड़ गये। यह अपने यश से सारी दिशाओं को व्याप्त करके अन्त में पुण्यवानों के लोकों में पहुंचे ॥१८॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥१९॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

हे सृञ्जय ! यह यज्ञ-दान आदि अनेक गुणोंसे अलंकृत, तुमसे तथा तुम्हारे पुत्र से श्रेष्ठ था, जब वह भी मर गया, तो हे अभिश्वैत्य ! तुमको अयज्वा और अदाक्षिण्य अपने पुत्र का कोई अनुताप नहीं करना चाहिए ॥१९-२०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में सोलह राजाओं के उपाख्यान में राजा मान्धाता के उपाख्यान का बासठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

# तरेसठवां अध्याय

नारद उवाच—

ययातिं नाहुषं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
राजसूयशतैरिष्ट्वा सोऽश्वमेधशतेन च ॥१॥
पुण्डरीकसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा ।
अतिरात्रसहस्रेण चातुर्मास्यैश्च कामतः ।
अग्निष्टोमैश्च विविधैः सत्रैश्च प्राज्यदक्षिणैः ॥२॥

नारदजी बोले—हे सृञ्जय ! हमने नहुषपुत्र ययाति के भी समाचार सुने हैं। इस राजा ने सैंकड़ों राजसूय, अश्वमेध, सहस्रों पुण्डरीक, सैंकड़ों वाजपेय, अतिरात्र, सकाम चातुर्मास्य, अनेक अग्निष्टोम तथा बड़ी २ दक्षिणा से युक्त अनेक अन्य यज्ञ किये थे ॥१-२॥

अब्राह्मणानां यद्वित्तं पृथिव्यामस्ति किञ्चन ।
तत्सर्वं परिसंख्याय ततो ब्राह्मणसात्करोत् ॥३॥

इसने पृथिवी पर जो ब्राह्मणों से पृथक् वर्णों के पास द्रव्य था, उसकी गणना करवाई और उसको-जब ब्राह्मणों को संसार के कल्याण के लिए आवश्यकता हो-तब ले लेने का अधिकार दे दिया।

सरस्वती पुण्यतमा नदीनां तथा समुद्राः सरितः साद्रयश्च
ईजानाय पुण्यतमाय राज्ञे घृतं पयो दुदुहुर्नाहुषाय ॥

नदियों में पवित्र सरस्वती नदी, समुद्र, पर्वतों सहित अन्य नदियां, यज्ञ करने वाले पुण्यात्मा नहुष-पुत्र ययाति को घृत और दुग्ध का दुहन करती थी ॥४॥

व्यूढे देवासुरे युद्धे कृत्वा देवसहायताम् ।
चतुर्धा व्यभजत्सर्वां चतुर्भ्यः पृथिवीमिमाम् ॥५॥

जब देवासुर संग्राम खड़ा हो गया-तो राजा ययाति ने देवों की सहायता करके सारी पृथिवीको यज्ञ में चारों ऋत्विजोंको बांट दी।

यज्ञैर्नानाविधैरिष्ट्वा प्रजामुत्पाद्य चोत्तमाम् ।
देवयान्यां चौशनस्यां शर्मिष्ठायां च धर्मतः ॥६॥

इसने अनेक यज्ञ करके धर्मानुसार शुक्रपुत्री देवयानी और शर्मिष्ठा में उत्तम सन्तान उत्पन्न की ॥६॥

देवारण्येषु सर्वेषु विजहाराऽमरोपमः ।
आत्मनः कामचारेण द्वितीय इव वासवः ॥७॥

देवों के तुल्य पराक्रमी राजा ययाति ने अपनी इच्छा के अनुसार दूसरे इन्द्र की तरह देवों के अनेक उपवनों में विहार किया ॥७॥

यदा नाऽभ्यगमच्छान्ति कामानां सर्ववेदवित् ।
ततो गाथामिमां गीत्वा सदारः प्राविशद्वनम् ॥८॥

वेद मार्ग के ज्ञाता इस राजा ययाति की जब पिपासा शान्त नहीं हुई, तो इस श्लोक को गाते हुए उसने स्त्री सहित वन में प्रवेश किया ॥८॥

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नाऽलमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ॥९॥

पृथिवी पर जितना सुवर्ण, चांवल, जौ, पशु और स्त्री हैं, वे सब भी तृष्णातुर पुरुष को पर्याप्त नहीं हैं। इससे तृष्णा को छोड़ कर मनुष्य को शान्ति ग्रहण करनी चाहिए ॥९॥

एवं कामान्परित्यज्य ययातिर्धृतिमेत्य च ।
पूरुं राज्ये प्रतिष्ठाप्य प्रयातो वनमीश्वरः ॥१०॥

इस प्रकार कामनाओं को छोड़कर और धैर्य धारण करके राजा ययाति वन में चला गया। उसने अपने राज्यसिंहासन पर अपने छोटे पुत्र पुरु को बैठा दिया ॥१०॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरत् ॥११॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३

हे सृञ्जय! तेरे पुत्र और तुझसे वैराग्यादि चार गुणों में उत्तम राजा ययाति था। हे अभिश्वैत्य! तुम्हारे पुत्र ने तो न कोई यज्ञ किया और न दक्षिणा प्रदान की, फिर तुम्हें उसका शोक नहीं करना चाहिए ॥११॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में सोलह राजाओं के उपाख्यान में राजा ययाति के आख्यान का तरेसठवां अध्याय समाप्त हुआ।

# चौसठवां अध्याय

नारद उवाच—

नाभागमम्बरीषं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यः सहस्रं सहस्राणां राज्ञां चैकस्त्वयोधयत् ॥१॥

नारदजी बोले—हे सृञ्जय ! हमने नभाग-पुत्र अम्बरीष के भी मृत होने का समाचार सुना है, जिसने अकेले ही शत्रु राजा की दश लाख सेना के साथ युद्ध किया था ॥१॥

जिगीषमाणाः संग्रामे समन्ताद्वैरिणोऽभ्ययुः ।
अस्त्रयुद्धविदो घोराः सृजन्तश्चाऽशिवा गिरः ॥२॥

युद्ध में जीतने के इच्छुक वैरी राजाओं ने उसे जीत लेना चाहा। ये सारे शत्रु अस्त्र विद्या में कुशल, भयङ्कर और अशिव वाणी बोलने वाले थे ॥२॥

बललाघवशिक्षाभिस्तेषां सोऽस्त्रबलेन च ।
छत्रायुधध्वजरथांश्छित्वा प्रासान्गतव्यथः ॥३॥

राजा अम्बरीष ने अपने बल, लाघव, (फुर्ती) शिक्षा और अस्त्र बल के द्वारा उन शत्रुओं के छत्र, आयुध, ध्वजा, रथ और प्रास आदिक शस्त्र काट डाले और स्वयं किसी भी प्रकार के आघात से व्यथित नहीं हुआ ॥३॥

त एनं मुक्तसन्नाहाः प्रार्थयञ्जीवितैषिणः ।
शरण्यमीयुः शरणं तवाऽऽस्म इति वादिनः ॥४॥

शत्रु-गण अपने २ कवच खोल कर जीवन की अभिलाषा से उस शरणागतवत्सल की शरण में पहुंचे। वे सारे यही कह रहे थे, कि हम तो तुम्हारे दास हैं ॥४॥

स तु तानशरणान्कृत्वा जित्वा चेमां वसुन्धराम् ।
ईजे यज्ञशतैरिष्टैर्यथाशास्त्रं तथाऽनघ ॥५॥

हे अनघ! राजा अम्बरीष ने उन शत्रु राजाओं को जीत कर सारी पृथिवी जीत डाली तथा अपनी इच्छानुसार धर्मशास्त्र की रीति से सैंकड़ों यज्ञ किए ॥५॥

बुभुजुः सर्वसम्पन्नमन्नमन्ये जनाः सदा ।
तस्मिन्यज्ञे तु विप्रेन्द्राः सन्तृप्ताः परमार्चिताः ॥६॥

उसके यज्ञ में साधारण मनुष्य भी उत्तम २ अन्न का भोजन करते थे। ब्राह्मण तो अत्यन्त पूजा प्राप्त करके बड़े ही सन्तुष्ट हुए ॥६॥

मोदकान्पूरिकापूपान्स्वादुपूर्णाश्च शष्कुलीः ।
करम्भान्पृथुमृद्वीका अन्नानि सुकृतानि च ॥७॥
सूपान्मैरेयकापूपान्रागखाण्डवपानकान् ।
मृष्टान्नानि सुयुक्तानि मृदूनि सुरभीणि च ॥८॥
घृतं मधु पयस्तोयं दधीनि रसवन्ति च ।
फलं मूलं च सुस्वादु द्विजास्तत्रोपभुञ्जते ॥९॥

मोदक, ( लड्डू ) पूरी, पुवे तथा स्वाद से पूर्ण शष्कुली, ( तुचई ) करम्भ, ( दही सत्तू ) मोटे २ अंगूर, उत्तम २ अन्य

भोज्य पदार्थ, दाल, सुरा, मालपुवे, खांड के पदार्थ, पीने के पदार्थ, अच्छी तरह बनाए हुए कोमल सुगन्धित मीठे अन्न, सुस्वादु फल और मूलादि भोजनों का ब्राह्मण गण उपभोग कर रहे थे ॥७-६॥

मादनीयानि पापानि विदित्वा चाऽऽत्मनः सुखम् ।
अपिबन्त यथाकामं पानपा गीतवादितैः ॥१०॥

मद ( नशा ) के करने वाले और पाप के कारण जान कर भी अपनी इन्द्रियों को सुखदायी जान कर पीने के रसिक लोग सुरादि का पान कर रहे थे ॥१०॥

तत्र स्म गाथा गायन्ति क्षीबा हृष्टाः पठन्ति च ।
नाभागस्तुतिसंयुक्ता ननृतुश्च सहस्रशः ॥ ११॥

इस जगह हृष्ट पुष्ट लोग नभाग-पुत्र अम्बरीष की स्तुति से संयुक्त गाथा गाने लगे और सहस्रों की संख्या में नाचने लगे ॥

तेषु यज्ञेष्वम्बरीषो दक्षिणामत्यकालयत् ।
राज्ञां शतसहस्राणि दशप्रयुतयाजिनाम् ॥१२॥

लाखों यज्ञ करने वाले राजाओं की लाखों की दक्षिणा इन यज्ञों में राजा अम्बरीषने फीकी कर दी । इसकी दक्षिणा उन सबसे अधिक थी ॥१२॥

हिरण्यकवचान्सर्वाञ्श्वेतच्छत्रप्रकीर्णकान् ।
हिरण्यस्यन्दनारूढान्सानुयात्रपरिच्छदान् ॥१३॥
ईजानो वितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।

मूर्धाभिषिक्तांश्च नृपान्राजपुत्रशतानि च ॥१४॥
सदण्डकोशनिचयान्ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।

सुवर्ण के कवच पहने हुए, श्वेत छत्रधारी, सुवर्ण के रथ में आरूढ़, पीछे चलने वाले अनुयात्रिकों से समन्वित, उत्तम २ वस्त्रधारी, कोश आदि राजशक्तियों से सम्पन्न, अनेक राजा और राजपुत्रों को आचार्यादि ब्राह्मणों के दास बना दिए । इस प्रकार अनेक यज्ञ करके राजा अम्बरीप ने पूर्व के सारे याज्ञिक राजाओं की दक्षिणा का उल्लंघन किया ॥१३-१४॥

नैवं पूर्वे जनाश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चाऽपरे ॥१५॥
यदम्बरीषो नृपति करोत्यमितदक्षिणः ।
इत्येवमनुमोदन्ते प्रीता यस्य महर्षयः ॥१६॥

हे राजन् ! न तो पूर्व के राजा कर सके और न आगे आने वाले राजा कर सकेंगे, जो अत्यन्त दक्षिणा देने वाले राजा अम्बरीप ने कर दिखाया । महर्षिगण प्रसन्न होकर इस प्रकार उसके यश का गान करते हैं ॥१५-१६॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येतिव्याहरन् ॥१७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये
चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

हे सृञ्जय ! सब प्रकार के कल्याण कार्यों से युक्त तुमसे और तुम्हारे पुत्र से श्रेष्ठ, जब राजा अम्बरीष भी मर गये-तो यज्ञ नहीं करने वाले और किसी प्रकार की दक्षिणा नहीं देने वाले अपने पुत्र का तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। हे अभिश्वैत्य ! यह तुमको निश्चय समझ लेना योग्य है ॥१७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में सोलह राजाओं के चरित का चौसठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



# पैंसठवां अध्याय

नारद उवाच—

शशविन्दुं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रम ।
ईजे स विविधैर्यज्ञैः श्रीमान्सत्यपराक्रमः ॥१॥

नारदजी बोले—हे सृञ्जय ! हमने राजा शशविन्दु की मृत्यु का समाचार सुना है। इस श्रीमान् सत्यपराक्रमी राजा ने भी अनेक यज्ञ करके परमात्मा का यजन किया ॥१॥

तस्य भार्यासहस्राणां शतमासीन्महात्मनः ।
एकैकस्यां च भार्यायां सहस्रं तनयाऽभवन् ॥२॥

इस महावीर राजा के एक लाख भार्याएं थी। एक, एक भार्या के एक २ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए ॥२॥

ते कुमाराः पराक्रान्ताः सर्वे नियुतयाजिनः ।
राजानः क्रतुभिर्मुख्यैरीजाना वेदपारगाः ॥३॥

ये राजकुमार बड़े पराक्रमी और सहस्रों की संख्या में यज्ञ करने वाले हुए। जब ये राजा हुए-तब राजपदवी के योग्य बड़े २ यज्ञ किए। ये सारे ही वेद के पारगामी थे ॥३॥

हिरण्यकवचाः सर्वे सर्वे चोत्तमधन्विनः।
सर्वेऽश्वमेधैरीजाना कुमाराः शशिबिन्दवः।

इन सबके पास सुवर्ण के कवच और दृढ़ धनुष थे। इन सब शशबिन्दु के राजकुमारों ने भी अश्वमेध यज्ञ किए ॥४॥

तानश्वमेधे राजेन्द्रो ब्राह्मणेभ्योऽददत्पिता।
शतं शतं रथगजा एकैकं पृष्ठतोऽन्वयुः ॥५॥

इनके पिता राजा शशबिन्दु ने इन राजकुमारों को अपने अश्वमेध में ब्राह्मणों की सेवा में नियुक्त किया। जब ये ब्राह्मणों की सेवा में जाने लगे-तो सौ २ रथ और हाथी इनके पीछे २ चले ॥५॥

राजपुत्रं तदा कन्यास्तपनीयस्वलंकृताः।
कन्यां कन्यां शतं नागा नागे नागे शतं रथाः ॥६॥
रथे रथे शतं चाऽश्वा बलिनो हेममालिनः।
अश्वे अश्वे गोसहस्रं गवां पञ्चाशदाविकाः ॥७॥

एक २ राजकुमार के पीछे सुवर्ण से विभूषित सौ २-कन्याएं चलीं और एक एक कन्या के पीछे सौ २ हाथी और सौ २ हाथियों के पीछे सौ २ रथ थे। एक २ रथ के पीछे सौ २ अश्व थे, जो सुवर्ण की माला पहने हुए बड़े बलोन्मत्त थे। एक २ अश्व के पीछे एक २ हज़ार गौएँ और एक २ गाय के पीछे पचास २ भेड़ें थीं ॥

एतद्धनमपर्याप्तमश्वमेधे महामखे।
शशिबिन्दुर्महाभागो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥८॥

इस प्रकार अगणित धन अश्वमेध यज्ञ में महा ऐश्वर्यशाली राजा शशबिन्दु ने ब्राह्मणों को प्रदान किया ॥८॥

वार्क्षाश्च यूपा यावन्त अश्वमेधे महामखे।
ते तथैव पुनश्चाऽन्ये तावन्तः काञ्चनाऽभवन् ॥९॥

महामख अश्वमेध यज्ञ में जितने यज्ञस्तूप लकड़ी के बनते हैं, इस राजा ने वे सारे स्तूप सुवर्ण के बनवाये थे ॥९॥

भक्ष्यान्नपाननिचयाः पर्वताः क्रोशमुच्छ्रिताः।
तस्याऽश्वमेधे निर्वृत्ते राज्ञः शिष्टास्त्रयोदश ॥१०॥

इसके यज्ञ में अन्न-पान के ढ़ेर के ढ़ेर एक २ कोश लम्बे चौड़े पर्वत के सदृश पड़े थे। जब इसका यज्ञ समाप्त हो गया, तब इस प्रकार के तेरह पर्वत शेष बच रहे थे ॥१०॥

तुष्टपुष्टजनाकीर्णां शान्तविघ्नामनामयाम्।
शशिबिन्दुरिमां भूमिं चिरं भुक्त्वा दिवं गतः ॥११॥

हृष्ट-पुष्ट प्रजा से युक्त, विघ्नबाधाओं से रहित, क्लेशहीन पृथिवी को चिरकाल तक भोगकर राजा शशबिन्दु अन्त में स्वर्ग चला गया ॥११॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मापुत्र मनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥१२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५

हे सृञ्जय ! दान आदि अनेक कल्याणगुणों से युक्त, तुम और तुम्हारे पुत्र से राजा शशविन्दु उत्तम था । यदि वह भी मर गया-तो हे अभिश्वैत्य ! तुम अपने चित्त को विकृत न करके अयाज्ञिक और अदाक्षिण्य अपने पुत्र का सन्ताप न करो ॥१२॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में
सोलह राजाओं के उपाख्यान में राजा शशविन्दु के
उपाख्यान का पैंसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

---

# छियासठवां अध्याय

नारद उवाच—

गयं चाऽऽमूर्त्तरयसं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यो वै वर्षशतं राजा हुतशिष्टाशनो भवत् ॥१॥

नारदजी बोले—हे सृञ्जय ! हमने अमूर्तरय के पुत्र राजा गय की मृत्यु के समाचार भी सुने हैं । यह राजा सौ वर्ष तक यज्ञ करते हुए हुतशेष का भोजन करता रहा है ॥१॥

तस्मै ह्यग्निर्वरं प्रादात्ततो वव्रे वरं गयः ।
तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च ॥२॥

गुरूणां च प्रसादेन वेदानिच्छामि वेदितुम् ।
स्वधर्मेणाऽविहिंस्याऽन्यान्धनमिच्छामि चाऽक्षयम् ॥३॥

अग्नि ने इसको वरदान दिया, तब राजा गय ने यह वर मांगा—हे अग्ने ! मैं तप, ब्रह्मचर्य, व्रत, नियम और गुरु की कृपा से वेदों के जानने की इच्छा करता हूं तथा अन्य किसी को पीड़ा न पहुंचाकर अक्षय धन की अभिलाषा करता हूं ॥२-३॥

विप्रेषु ददतश्चैव श्रद्धा भवतु नित्यशः ।
अनन्यासु सवर्णासु पुत्रजन्म च मे भवेत् ॥४॥

मैं ब्राह्मणों को नित्य दान करूं, जिससे मेरी श्रद्धा बढ़ती रहे तथा सुकुमारी सवर्ण कुआरी कन्या में पुत्रप्राप्ति हो ॥४॥

अन्नं मे ददतः श्रद्धा धर्मे मे रमतां मनः ।
अविघ्नं चाऽस्तु मे नित्यं धर्मकार्येषु पावक ॥५॥

अन्नदान में मेरी श्रद्धा और धर्माचरण में मेरा मन रमता रहे । हे अग्ने ! मेरे जितने भी धर्म के कार्य यज्ञादि हैं वे निर्विघ्न समाप्त होते रहे ॥५॥

तथा भविष्यतीत्युक्त्वा तत्रैवाऽन्तरधीयत ।
गयो ह्यवाप्य तत्सर्वं धर्मेणाऽरीनजीजयत् ॥६॥

अग्निदेव इसको यही वरदान प्रदान करके अन्तर्हित हो गए, राजा गय ने यह वरदान प्राप्त करके सारे शत्रुओं को जीत लिया ॥

स दर्शपौर्णमासीभ्यां कालेष्वाग्रायणेन च ।
चातुर्मास्यैश्च विविधैर्यज्ञैश्चाऽवाप्तदक्षिणैः ॥७॥

अयजच्छ्रद्धया राजा परिसंवत्सराञ्छतम् ।

राजा गय, दर्श ( अमावस्या ) और पूर्णमासी, संवत्सरारम्भ काल में होने वाले यज्ञ, चातुर्मास्येष्टि तथा अन्य अनेक दक्षिणा वाले यज्ञों के द्वारा सौ वर्ष पर्यन्त श्रद्धापूर्वक यज्ञ करता रहा ॥७॥

गवां शतसहस्राणि शतमश्वशतानि च ॥८॥
शतं निष्कसहस्राणि गवां चाऽप्ययुतानि षट् ।

यह राजा एक लाख गौ, दश सहस्र अश्व, एक लाख सुवर्णकी मुहरें तथा साठ हजार वृषभ, सौ वर्ष तक नित्य प्रातःकाल उठ २ कर ब्राह्मणों को दान करता रहा ॥८॥

उत्थायोत्थाय स प्रादात्परिसंवत्सराञ्शतम् ॥९॥
नक्षत्रेषु च सर्वेषु ददन्नक्षत्रदक्षिणाः ।
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्यथा सोमोऽङ्गिरा यथा ॥१०॥

जब जिस नक्षत्र का उदय होता, तब तदनुकूल नक्षत्रोंकी दक्षिणा में रत्न आदि का दान देता । इसने अनेक यज्ञों द्वारा सोम और अङ्गिरा की भांति यजन किया ॥१०॥

सौवर्णां पृथिवीं कृत्वा य इमां मणिशर्कराम् ।
विप्रेभ्यः प्राददद्राजा सोऽश्वमेधे महामखे ॥११॥

राजा गय ने सुवर्ण की भूमि और मणि रत्नों के उसमें कण बनाए । अपने अश्वमेध महायज्ञ में इस भूमि को राजा ने ब्राह्मणों को दान किया ॥११॥

जाम्बूनदमया यूपाः सर्वे रत्नपरिच्छदाः ।
गयस्याऽऽसन्समृद्धास्तु सर्वभूतमनोहराः ॥१२॥

इस अश्वमेध में सारे यज्ञ के यूप सुवर्ण के बने थे और रत्नों से जटित थे। ये रत्न, समस्त प्राणियों को मनोहर प्रतीत होने वाले राजा गय के ऐश्वर्य को विद्योतित कर रहे थे ॥१२॥

सर्वकामसमृद्धं च प्रादादन्नं गयस्तदा ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रहृष्टेभ्यः सर्वभूतेभ्य एव च ॥१३॥

राजा गय, ब्राह्मण तथा अन्य प्राणियों को समस्त कामनाओं के पूर्ण करने वाले अन्न ( भक्ष्य-भोज्य ) का दान करता था, जिसे प्राप्त करके समस्त प्राणी बड़े ही आनन्दित होते थे ॥१३॥

ससमुद्रवनद्वीपनदीनदवनेषु च ।
नगरेषु च राष्ट्रेषु दिवि व्योम्नि च येऽवसन् ॥१४॥
भूतग्रामाश्च विविधाः सन्तृप्ता यज्ञसम्पदा ।
गयस्य सदृशो यज्ञो नाऽस्त्यन्य इति तेऽब्रुवन् ॥१५॥

समुद्र, वन, द्वीप, नदी, नद, वन, नगर, राष्ट्र, द्युलोक और आकाश में जो प्राणीसमूह रहता था, वह यज्ञ के इस विशालदान से अनेक प्रकारसे सन्तुष्ट हो रहा था। ये सारे प्राणी यही कह रहे थे कि राजा गय के यज्ञ की बराबर आज तक कोई यज्ञ नहीं हुआ ॥

षट्त्रिंशद्योजनायामा त्रिंशद्योजनमायता ।
पश्चात्पुरश्चतुर्विंशद्वेदी ह्यासीद्धिरण्मयी ॥१६॥

गयस्य यजमानस्य मुक्ता वज्रमणिस्तता ।
प्रादात्स ब्राह्मणेभ्योऽथ वासांस्याभरणानि च ॥१७॥
यथोक्ता दक्षिणाश्चाऽन्या विप्रेभ्यो भूरिदक्षिणः ।

इस यज्ञ में एक सुवर्ण की वेदी बनाई गई, जो छत्तीस योजन चौड़ी और तीस योजन लम्बी थी तथा आगे पीछे चौबीस योजन थी। इस वेदी में मुक्ता और वज्रमणि जटित थे। इसने इस वेदी को भी ब्राह्मणों को दान में दे दिया। बहुत से वस्त्र और आभूषण तथा अन्य दक्षिणाएं भी इस अधिक दक्षिणाएं देने वाले राजा ने ब्राह्मणों को प्रदान की ॥१६-१७॥

यत्र भोजनशिष्टस्य पर्वताः पञ्चविंशतिः ॥१८॥
कुल्या कुशलवाहिन्यो रसानामभवंस्तदा ।

इसके इस महायज्ञ अश्वमेध में भोजन के पच्चीस पर्वत शेष बचे थे तथा अच्छी तरह बहने वाली दुग्धादि रसों की नदियां बह रही थी ॥१८॥

वस्त्राभरणगन्धानां राशयश्च पृथग्विधाः ॥१९॥
यस्य प्रभावाच्च गयस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
वटश्चाऽक्षय्यकरणः पुण्यं ब्रह्मसरश्च तत् ॥२०॥

इस यज्ञमें वस्त्र, आभूषण और गन्धोंकी पृथक् २ ढेरियां विद्यमान थीं। इन्हीं यज्ञों के प्रभाव से राजा गय तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गया। इसके यज्ञ स्थान पर अक्षयवट और एक पवित्र सरोवर है।

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

हे सृञ्जय! सब तरह यज्ञादि उत्तम कर्मों के कारण तुमसे और तेरे पुत्र से उत्तम राजा गय भी मृत्यु के वश में हो गया- तो हे राजन्! अब तुम यज्ञ नहीं करने वाले और किसी प्रकार की दक्षिणा नहीं देने वाले अपने पुत्र का सन्ताप न करो। हे अभिश्वैत्य! यह तुमको अच्छी तरह ज्ञान-पूर्वक विचारना चाहिए ॥२१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में सोलह
राजाओं के उपाख्यान में राजा गय के उपाख्यान का
छियासठवां अध्याय समाप्त हुआ।

# सड़सठवां अध्याय

नारद उवाच—

सांकृतिं रन्तिदेवं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।

यस्य द्विशतसाहस्रा आसन्सूदा महात्मनः ॥१॥

नारदजी बोले—हे सृञ्जय ! हमने राजा संकृति के पुत्र राजा रन्तिदेव की मृत्यु भी सुनी है, इस महादानी की यज्ञशाला में दो लाख रसोइये थे ॥१॥

गृहानभ्यागतान्विप्रानतिथीन्परिवेषकाः ।

पक्वापक्वं दिवारात्रं वरान्नममृतोपमम् ॥२॥

ये रसोइये घर आये हुए ब्राह्मण अतिथियों को दिन रात फल आदि कच्चे और खीर आदि पक्व अमृत के तुल्य उत्तम भोजन परोसते रहते थे ॥२॥

न्यायेनाऽधिगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।

वेदानधीत्य धर्मेण यश्चक्रे द्विषतो वशे ॥३॥

इसने न्याय-पूर्वक धन इकट्ठा करके ब्राह्मणों को दान कर दिया तथा धर्म-पूर्वक वेदों को पढ़कर राजनीति द्वारा शत्रु को वश में किया ॥३॥

उपस्थिताश्च पशवः स्वयं यं शंसितव्रतम् ।

बहवः स्वर्गमिच्छन्तो विधिवत्सत्रयाजिनम् ॥४॥

इस व्रतशील राजर्षि के समीप बहुत से पशु स्वयं आकर उपस्थित हो गए, क्योंकि राजा रन्तिदेव विधि-पूर्वक यज्ञ करने वाले थे और ये पशु, स्वर्ग गमन करना चाहते थे ॥४॥

नदी महानसाद्यस्य प्रवृत्ता चर्मराशितः ।
तस्माच्चर्मण्वती पूर्वमग्निहोत्रेऽभवत्पुरा ॥५॥

इसने इतने पशुओं का यज्ञ में बलिदान किया, कि इसके रसोई घर के पास में रखे हुए पशुओं के चर्मों से चर्मण्वती नदी यह निकली। इस राजा की अग्निहोत्रशाला से ही पूर्वकाल में इस नदी की उत्पत्ति हुई है ॥५॥

ब्राह्मणेभ्योऽददन्निष्कान्सौवर्णान्स प्रभावतः ।
तुभ्यं निष्कं तुभ्यं निष्कमिति ह स्म प्रभाषते ॥६॥

इस राजा रन्तिदेव ने ब्राह्मणों को सुवर्णमुद्रा दक्षिणा में दान दी थी। यह प्रत्येक ब्राह्मण के पास जाकर पूछता था, कि तुम्हें सुवर्ण मुद्रा मिल चुकी ? क्या तुम्हें सुवर्ण मुद्रा मिल गई ॥६॥

तुभ्यं तुभ्यमिति प्रादान्निष्कान्निष्कान्सहस्रशः ।
ततः पुनः समाश्वास्य निष्कानेव प्रयच्छति ॥७॥

लो ? तुम और लो ? लो तुम और सुवर्ण मुद्रा ग्रहण करो ? इस प्रकार एक २ ब्राह्मण को सहस्रों सुवर्ण मुद्रा दान दे डाली तथा फिर मधुर वचन से सान्त्वना देकर और सुवर्ण मुद्रा प्रदान कर देता था ॥७॥

अल्पं दत्तं मयाऽद्येति निष्ककोटिं सहस्रशः ।
एकाह्ना दास्यति पुनः कोऽन्यस्तत्सम्प्रदास्यति ॥८॥

आज मैंने बहुत थोड़ा दान किया है—इस प्रकार कहकर फिर राजा रन्तिदेव करोड़ों की संख्या में सुवर्ण मुद्रा दान कर देता था। बताओ ? उसकी बराबर कौन धन का दान कर सकेगा।

द्विजपाणिवियोगेन दुःखं मे शाश्वतं महत्।
भविष्यति न सन्देह एवं राजाऽददद्वसु ॥६॥

राजा रन्तिदेव का तो ध्यान ही यह था, कि यदि मैंने दान नहीं किया और जो ब्राह्मणों के हाथ से मेरा हाथ दूर हो गया, तो मुझे बड़ा ही दुःख होगा। राजा रन्तिदेव इसी विचार में निमग्न होकर दान देता रहता था ॥६॥

सहस्रशश्च सौवर्णान्वृषभान्गोशतानुगान्।
साष्टं शतं सुवर्णानां निष्कमाहुर्धनं तथा ॥१०॥
अध्यर्धमासमददद्ब्राह्मणेभ्यः शतं समाः।

इस राजा ने सहस्रों की संख्या में सुवर्ण से लदे हुए बैल और सैकड़ों गायें दान में दीं, इसके मत में आठसौ सुवर्ण मुद्रा का एक निष्क माना जाता था, यह सौ वर्ष तक प्रत्येक पक्ष में नित्य प्रत्येक ब्राह्मण को प्रदान करता रहा ॥१०॥

अग्निहोत्रोपकरणं यज्ञोपकरणं च यत् ॥११॥
ऋषिभ्यः करकान्कुम्भान्स्थालीः पिठरमेव च।
शयनासनयानानि प्रासादांश्च गृहाणि च ॥१२॥
वृक्षांश्च विविधान्दद्यादन्नानि च धनानि च।
सर्वं सौवर्णमेवाऽऽसीद्रन्तिदेवस्य धीमतः ॥१३॥

अग्निहोत्र और यज्ञ के पात्र, करक, ( बड़े पात्र ) कलश, थाली, परात, शयन, आसन, यान, महल, घर, बाग बगीचे अन्न, धन, उत्तम २ ब्राह्मणों को राजा रन्तिदेव ने दान में दिए थे। इनमें बहुत से बर्तन तो सुवर्णमय थे ॥११-१३॥

तत्राऽस्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ।
रन्तिदेवस्य तां दृष्ट्वा समृद्धिमतिमानुषीम् ॥१४॥
नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुबेरसदनेष्वपि ।
धनं च पूर्यमाणं नः किं पुनर्मनुजेष्विति ॥१५॥
व्यक्तं वस्वोकसारेयमित्यूचुस्तत्र विस्मिताः ।

प्राचीन इतिहास के जानने वाले लोगों ने राजा रन्तिदेव को मनुष्यों से अधिक समृद्धि देखकर यह अपनी सम्मति प्रदान की है, कि ऐसी सम्पत्ति तो कुबेर के घर में भी नहीं है। इतना धन का भण्डार देवों के पास भी नहीं है, फिर मनुष्यों की तो क्या चलाई है। सचमुच राजा रन्तिदेव का घर तो धन के कोष से भरपूर भरा है। अब वे विस्मय के साथ इस प्रकार कहने लगे ॥१४-१५॥

सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमतिथिर्वसेत् ॥१६॥
आलभ्यन्त तदा गावः सहस्राण्येकविंशतिः ।

संकृति के पुत्र राजा रन्तिदेव के घर पर जिस रात में अतिथियों ने निवास किया, उस रात इक्कीस सहस्र गायों (नील गाय या मृगादि पशुओं ) का यज्ञ में बलिदान किया गया ॥१६॥

तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥१७॥
सूपं भूयिष्ठमश्नध्वं नाऽद्य मांसं यथा पुरा ।

उत्तम २ मणि जटित कुण्डल पहने हुए, रसोई बनाने वाले, अब यह कह रहे थे, कि तुम लोग अब दाल के साथ भोजन करो । आज पूर्व की भांति मांस शेष नहीं रह गया है ॥१७॥

रन्तिदेवस्य यत्किञ्चित्सौवर्णमभवत्तदा ॥१८॥
तत्सर्वं वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।

राजा रन्तिदेव के जो कुछ भी सुवर्ण मय वस्तुएँ थी, उसने इस यज्ञ में सारी ब्राह्मणों को प्रदान कर दी ॥१८॥

प्रत्यक्षं तस्य हव्यानि प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥१९॥
कव्यानि पितरः काले सर्वकामान्द्विजोत्तमाः ।

राजा रन्तिदेव के हवि को देवता प्रत्यक्ष होकर ग्रहण करते थे । पितर लोग भी इसी तरह अपने भाग (कव्य) को ग्रहण कर रहे थे । ब्राह्मणों की सारी कामनाएँ पूर्ण की जा रही थी ॥१९॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥२०॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये
सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

हे अभिश्वैत्य ! सृञ्जय ! इस प्रकार तुम और यज्ञ तथा दक्षिणाहीन पुत्र से उत्तम राजा रन्तिदेव भी मर गए-तो फिर तुमको अपने साधारण पुत्र का शोक नहीं करना चाहिए ॥२०-२१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में षोडश राजाओं के उपाख्यान में राजा रन्तिदेव के उपाख्यान का सड़सठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



# अड़सठवाँ अध्याय

नारद उवाच—

दौष्यन्तिं भरतं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
कर्माण्यसुकराण्यन्यैः कृतवान्यः शिशुर्वने ॥१॥

नारदजी बोले—हे सृञ्जय ! हमने दुष्यन्त-पुत्र राजा भरत की मृत्यु के समाचार सुने हैं, जिसने वन में बालक अवस्था में ही दुर्लभ कर्म कर दिखाए ॥१॥

हिमावदातान्यः सिंहान्नखदंष्ट्रायुधान्बली।
निर्वीर्यांस्तरसा कृत्वा विचकर्ष बबन्ध च ॥२॥

इस महाबली दुष्यन्त-कुमार भरत ने हिम (बर्फ) के तुल्य श्वेत चमकीले नख और दाढ़ों के आयुधधारी सिंहों को अपने बल के द्वारा वीर्यहीन करके खूब खैंचा और बांध लिया ॥२॥

क्रूरांश्चोग्रतरान्व्याघ्रान्दमित्वा चाऽकरोद्वशे।
मनःशिला इव शिलाः संयुक्ता जतुराशिभिः ॥३॥

इसने पत्थर की लाख की ढेरी से संयुक्त मनशिला ( मैनसिल ) की शिलाओं के तुल्य रंग और आकारधारी क्रूर और बड़े २ सिंहों को दाबकर अपने वश में किया था ॥३॥

व्यालादींश्चाऽतिबलवान्सुप्रतीकान्गजानपि ।
दंष्ट्रासु गृह्य विमुखाञ्शुष्कास्यानकरोद्वशे ॥४॥

अत्यन्त बलशाली भरत ने व्याल ( सर्प ) आदि जन्तु और महाबली गजों के दांत पकड़ कर उन्हें पराजित किया तथा उन्हें व्याकुल करके अपने वश में कर लिया ॥४॥

महिषानप्यतिबलो बलिनो विचकर्ष ह ।
सिंहानां च सुदप्तानां शतान्याकर्षयद्बलात् ॥५॥

इस महाबली ने बनैले महाबली भैंसों को भी वन में खूब घसीटा और मदोन्मत्त सैंकड़ों सिंहों की अत्यन्त दुर्गति बनाई ॥

बलिनः सृमरान्खड्गान्नानासत्वानि चाप्युत ।
कृच्छ्रप्राणं वने बध्वा दमयित्वाप्यवासृजत् ॥६॥

इसी तरह वन के अनेक जन्तु सृमर, गैंडा आदि को यह बालक भरत पकड़ लाता था और उनकी नाकों में दम करके बांधकर फिर वन में छोड़ देता था ॥६॥

तं सर्वदमनेत्याहुर्द्विजास्तेनाऽस्य कर्मणा ।
तं प्रत्यषेधज्जननी मा सत्वानि विजीजहि ॥७॥

बनवासी ब्राह्मण इसके इस उपद्रव से इसको सर्वदमन कहने लगे । इसकी माता शकुन्तला ने इसे रोका—हे पुत्र ! तू वन के इन जीवों को तंग न कर ॥७॥

सोऽश्वमेधशतेनेष्ट्वा यमुनामनु वीर्यवान् ।
त्रिशताश्वान्सरस्वत्यां गङ्गामनु चतुःशतान् ॥८॥

इसी महावीर्यवान् भरत ने यमुना तट पर सौ, सरस्वती पर तीन सौ और गङ्गा नदी पर चारसौ अश्वमेध यज्ञ कर डाले ॥८॥

सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
पुनरीजे महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥९॥

इस प्रकार इसने सहस्रों अश्वमेध, सैंकड़ों राजसूय यज्ञ किये तथा बड़ी २ दक्षिणा के अन्य बहुत से महायज्ञ किए ॥९॥

अग्निष्टोमातिरात्राभ्यामिष्ट्वा विश्वजिता अपि ।
वाजपेयसहस्राणां सहस्रैश्च सुसंवृतैः ॥१०॥

इष्ट्वा शाकुन्तलो राजा तर्पयित्वा द्विजान्धनैः ।
सहस्रं यत्र पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ ॥११॥

इसने अग्निष्टोम, अतिरात्र, विश्वजित् और सहस्रों की संख्या में अच्छी तरह वाजपेय यज्ञ कर डाले । शाकुन्तला के पुत्र राजा भरत ने यहां अनेक यज्ञ किए, जिनमें ब्राह्मणों को धन से तृप्त कर दिया । राजा भरत ने इस प्रकार सहस्रों पद्म रुपया कण्वमुनि को प्रदान किया ॥११॥

जाम्बूनदस्य शुद्धस्य कनकस्य महायशाः ।
यस्य यूपः शतव्यामः परिणाहेन काञ्चनः ॥१२॥

समागम्य द्विजैः सार्धं सेन्द्रैर्देवैः समुच्छ्रितः ।
अलंकृताभ्राजमानान्सर्वरत्नैर्मनोहरैः ॥१३॥

इस महायशस्वी राजा भरत ने शतव्याम ( दो सौ गज से अधिक ), लम्बा, बड़ा विशाल सुवर्ण और कनक का यज्ञस्तूप बनवाया था। देवों के इन्द्र ने आकर, इस यूप को खड़ा किया। इसमें मनोहर दिव्य रत्न जड़े हुए थे, जिनसे यह अत्यन्त भड़कीला दिखाई दे रहा था ॥१२-१३॥

हैरण्यानश्वान्द्विरदान्रथानुष्ट्रानजाविकम् ।
दासीं दासं धनं धान्यं गाः सवत्साः पयस्विनीः ॥
ग्रामान्गृहांश्च क्षेत्राणि विविधांश्च परिच्छदान् ।
कोटीशतायुतांश्चैव ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥१५॥

सुवर्ण के आभूषणों से विभूषित, अश्व, हाथी, रथ, ऊंट और भेड़, बकरी तथा दासी, दास, धन-धान्य वत्सों के सहित दूध, देने वाली गायें, ग्राम, गृह, क्षेत्र, अनेक प्रकार के करोड़ों की संख्या में वस्त्र राजा भरत ने ब्राह्मणों को दान में दिए ॥१४-१५॥

चक्रवर्ती ह्यदीनात्मा जितारिर्ह्यजितः परैः ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥१६॥
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥१७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये
अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

यह चक्रवर्ती, उदारात्मा, शत्रुविजयी, किसी से पराजित नहीं होने वाला राजा था। हे सृञ्जय! यह तुमसे और तेरे पुत्र से सब तरह उत्तम था। हे अभिश्वैत्य! यह विचार कर किसी प्रकार के यज्ञ नहीं करने वाले अदाक्षिण्य अपने पुत्र का अब तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए॥१६-१७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में सोलह राजाओं के उपाख्यान का अड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ

## उनहत्तरवां अध्याय

नारद उवाच—

पृथुं वैन्यं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
यमभ्यषिञ्चन्साम्राज्ये राजसूये महर्षयः॥१॥

नारदजी बोले—हे सृञ्जय! इसी तरह वेन के पुत्र राजा पृथु की हमने मृत्यु सुनी है। इस राजा को राजसूय यज्ञ में महर्षियों ने साम्राज्य पद पर विभूषित किया॥१॥

यत्नतः प्रथितेत्यूचुः सर्वानभिभवन्पृथुः।
क्षतान्नस्त्रास्यते सर्वानित्येवं क्षत्रियोऽभवत्॥२॥

इस राजा पृथु ने सारे शत्रुओं को पराजित करके और बड़ा पराक्रम दिखाकर प्रसिद्धि प्राप्त की, इससे लोग इसको पृथु नाम

से पुकारने लगे। यह सम्पूर्ण प्रजा की क्षतों (दुःखों) से रक्षा करने में समर्थ थे, इससे सब महर्षि इसे सच्चा क्षत्रिय मानते थे ॥२॥

पृथुं वैन्यं प्रजा दृष्ट्वा रक्ताः स्मेति यदब्रुवन्।
ततो राजेति नामाऽस्य अनुरागादजायत ॥३॥

प्रजा वेनपुत्र राजा पृथु को देखकर बड़ी प्रसन्न होती थी और सर्वदा उसमें अपना अनुराग प्रकट करती थी। प्रजा के रञ्जन से ही राजा पृथु का राजापन विल्कुल अन्वर्थ हो गया था ॥३॥

अकृष्टपच्या पृथिवी आसीद्वैन्यस्य कामधुक्।
सर्वाः कामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥४॥

राजा पृथु के समय में पृथिवी हल आदि से विना जोते ही उत्तम अन्न उत्पन्न करती थी। गायें कामना के अनुसार दुग्ध देने वाली तथा पत्ते २ में मधु के छत्ते थे ॥४॥

आसन्हिरण्मया दर्भाः सुखस्पर्शाः सुखावहाः।
तेषां चीराणि संवीताः प्रजास्तेष्वेव शेरते ॥५॥

कुशाएँ सुवर्ण के रंग से रञ्जित, सुखदायी और कोमल स्पर्श वाली थीं। इसकी प्रजा कुशा के ही वस्त्र और कुशा पर ही शयन करके धर्माचरण में तत्पर रहती थी ॥५॥

फलान्यमृतकल्पानि स्वादूनि च मधूनि च।
तेषामासीत्तदाऽऽहारो निराहाराश्च नाऽभवन् ॥६॥

अमृत के सदृश बड़े स्वादिष्ट मधुर फल उत्पन्न होने लगे। इस प्रकार प्रजा के लोग इन फलों का आहार करते थे। इस राजा के राज्य में कोई निराहार नहीं रहता था ॥६॥

अरोगाः सर्वसिद्धार्था मनुष्या ह्यकुतोभयाः।
न्यवसन्त यथाकामं वृक्षेषु च गुहासु च ॥७॥

इसके शासन काल में सारी प्रजा नीरोग, निर्भय और मनोरथों से सम्पन्न थी। जिस मनुष्य की जैसी इच्छा थी-वह घर या गुफा कहीं भी आनन्द से रह सकता था ॥७॥

प्रविभागो न राष्ट्राणां पुराणां नाऽभवत्तदा।
यथासुखं यथाकामं तथैता मुदिताः प्रजाः ॥८॥

इस समय राष्ट्र और नगर का कोई विभाग नहीं था। गांव हो या नगर-सब ही स्थानों में प्रजा सुख से सम्पन्न थी और कामना के अनुसार भोग साधन में तत्पर थी ॥८॥

तस्य संस्तम्भिता ह्यापः समुद्रमभियास्यतः।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाऽभवत् ॥९॥

जब राजा पृथु समुद्र यात्रा करते थे, तो समुद्र का जल निश्चल हो जाता था। पर्वत भी इसको मार्ग दे देते थे और इसकी ध्वजा कहीं भी अटक कर नहीं टूटती थी ॥९॥

तं वनस्पतयः शैला देवासुरनरोरगाः।
सप्तर्षयः पुण्यजना गन्धर्वाप्सरसोऽपि च ॥१०॥
पितरश्च सुखासीनमभिगम्येदमब्रुवन्।

एक दिन इस राजा के समीप वनस्पति, पर्वत, देव, असुर, नर, उरग, सप्तर्षि, पुण्यजन, गन्धर्व, अप्सरा और पितर पहुंचे। राजा आनन्द-पूर्वक बैठे थे। इन्होंने जाकर यह वचन कहा ॥१०॥

सम्राडसि क्षत्रियोऽसि राजा गोप्ता पिताऽसि नः ।११।

देह्यस्मभ्यं महाराज प्रभुः सन्नीप्सितान्वरान् ।

यैर्वयं शाश्वतीस्तृप्तीर्वर्त्तयिष्यामहे सुखम् ॥१२॥

हे राजन्! आप हमारे राजा, सम्राट्, रक्षक और दुःखों से बचाने वाले हो। हे महाराज! आप शक्तिशाली राजा हैं, इसमें हमको कुछ अभीष्ट वर प्रदान कीजिए, जिससे हम लोग सदा को सन्तुष्टि प्राप्त कर सकें ॥११-१२॥

तथेत्युक्त्वा पृथुर्वैन्यो गृहीत्वाऽऽजगवं धनुः ।

शरांश्चाऽप्रतिमान्घोरांश्चिन्तयित्वाऽब्रवीन्महीम् ॥१३॥

वेन-पुत्र राजा पृथु ने प्रजा से कहा-अच्छा ? ऐसा ही होगा। इसने अपना आजगव नामक धनुष उठाया और उस पर अनुपम, भीषण घोर बाण चढ़ा कर पृथिवी से कहा ॥१३॥

एह्येहि वसुधे क्षिप्रं चरेभ्यः कांक्षितं पयः ।

ततो दास्यामि भद्रं ते अन्नं यस्य यथेप्सितम् ॥१४॥

हे वसुधे! तुम शीघ्र आओ और इस मेरी प्रजा को अभीष्ट दुग्ध प्रदान करो। मैं प्रजा में जिसको जिस प्रकार के अन्न की इच्छा है- वह प्रदान करना चाहता हूं ॥१४॥

वसुधोवाच—

दुहितृत्वेन मां वीर सङ्कल्पयितुमर्हसि ।

तथेत्युक्त्वा पृथुः सर्वं विधानमकरोद्वशी ॥१५॥

पृथिवी ने कहा—हे वीर ! तुम मुझे अपनी दुहिता बना कर स्वीकार करो। जितेन्द्रिय पृथु ने पृथिवी की बात स्वीकार करके उसे पुत्री मानने की सारी विधि पूर्ण की ॥१५॥

ततो भूतनिकायास्तां वसुधां दुदुहुस्तदा ।

तां वनस्पतयः पूर्वं समुत्तस्थुर्दुधुक्षवः ॥१६॥

साऽतिष्ठद्वत्सला वत्सं दोग्धृपात्राणि चेच्छती ।

अब सारे प्राणियों ने पृथिवी को दुहना आरम्भ किया। सर्व प्रथम वनस्पतियां पृथिवी के दुहने को खड़ी हुई । इस गौ रूप धारिणी पृथिवी ने वत्स और दुग्ध दोहने के पात्रों की आकांक्षा की ॥१६॥

वत्सोऽभूत्पुष्पितः शालः प्लक्षो दोग्धाऽभवत्तदा ।१७।

छिन्नप्ररोहणं दुग्धं पात्रमौदुम्बरं शुभम् ।

इस समय पुष्पों से युक्त शाल वृक्ष तो बछड़ा बना, प्लक्ष का वृक्ष दोग्धा हुआ, दुग्ध-पात्र उदुम्बर बनाया गया और वृक्षों के काट लेने पर फिर उनका फूट निकलना दुग्ध हुआ ॥१७॥

उदयः पर्वतो वत्सो मेरुर्दोग्धा महागिरिः ॥१८॥

रत्नान्योषधयो दुग्धं पात्रमश्ममयं तथा ।

इसी तरह उदयाचल बछड़ा बना, महागिरि मेरु पर्वत दोग्धा, अश्म मय पर्वत दुग्ध पात्र और रत्न तथा ओषधियाँ दुग्ध बनी।

दोग्धा चाऽऽसीत्तदा देवो दुग्धमूर्जस्करं प्रियम् ॥१६॥

असुरा दुदुहुर्मायामामपात्रे तु ते तदा।

दोग्धा द्विमूर्धा तत्राऽऽसीद्वत्सश्चाऽऽसीद्विरोचनः ॥

इसी प्रकार कोई देव बछड़ा और कोई पात्र बना तथा स्वयं इन्द्र दोग्धा और अमर करने वाला ऐश्वर्य दुग्ध बना। असुरों ने भी इस पृथिवी रूपी गौ को दुहना चाहा-तो उन मूर्खों ने कच्ची मिट्टी का पात्र बनाया। इस समय द्विमूर्धा नामक असुर दोग्धा और विरोचन असुर वत्स बना ॥१६-२०॥

कृषिं च सस्यं च नरा दुदुहुः पृथिवीतले।

स्वायम्भुवो मनुर्वत्सस्तेषां दोग्धाऽभवत्पृथुः ॥२१॥

जब पृथिवी पर लोगों ने इस गौ का दुहन किया-तो कृषि द्वारा जो अन्न उत्पन्न हुआ वही दुग्ध, स्वायम्भुवमनु, वत्स और स्वयं राजा पृथु दोग्धा बने ॥२१॥

अलाबुपात्रे च तथा विषं दुग्धा वसुन्धरा।

धृतराष्ट्रोऽभवद्दोग्धा तेषां वत्सस्तु तक्षकः ॥२२॥

नागों ने जब इस पृथिवी रूपी गौ का दोहन किया-तो अलाबु (तूम्बी) का पात्र बनाया। धृतराष्ट्र नामक नागराज दोग्धा और तक्षक बछड़ा बना तथा दुग्ध विष रूप में उत्पन्न हुआ ॥२२॥

सप्तर्षिभिर्ब्रह्म दुग्धा तथा चाऽक्लिष्टकर्मभिः ।
दोग्धा बृहस्पतिः पात्रं छन्दो वत्सश्च सोमराट् ॥२३॥

उत्तम २ कर्म करने वाले, सप्तर्षियों ने ब्रह्मरूप दुग्ध दुहा । इनका दोग्धा बृहस्पति, वेद के छन्द पात्र और सोमराज (चन्द्रमा) बछड़ा बना ॥२३॥

अन्तर्धानं चाऽऽमपात्रे दुग्धा पुण्यजनैर्विराट् ।
दोग्धा वैश्रवणस्तेषां वत्सश्चाऽऽसीद्वृषध्वजः ॥२४॥

पुण्यजनों (असुरों की विशेष जाति) ने इस पृथिवी रूपी गौ को दुहा-तो आम पात्र में सारा दुग्ध लुप्त हो गया । इनका दोहने वाला वैश्रवण और वत्स वृषध्वज बना ॥२४॥

पुण्यगन्धान्पद्मपात्रे गन्धर्वाप्सरसोऽदुहन् ।
वत्सश्चित्ररथस्तेषां दोग्धा विश्वरुचिः प्रभुः ॥२५॥

कमल का पात्र बनाकर गन्धर्व और अप्सराओं ने इसे दुहा । उत्तम कमलों का गन्ध इसका दुग्ध बना । चित्ररथ इनका बछड़ा और शक्तिशाली विश्वरुचि दोग्धा बना ॥२५॥

स्वधां रजतपात्रेषु दुदुहुः पितरश्च ताम् ।
वत्सो वैवस्वतस्तेषां यमो दोग्धाऽन्तकस्तदा ॥२६॥

पितरों ने चांदी का पात्र बनाकर स्वधा नामक दुग्ध रस का दुहन किया । इनका विवस्वान्-पुत्र यम बछड़ा और अन्तक दोग्धा बना ॥२६॥

एवं निकायैस्तैर्दुग्धा पयोऽभीष्टं हि सा विराट् ।
यैर्वर्त्तयन्ति ते ह्यद्य पात्रैर्वत्सैश्च नित्यशः ॥२७॥

इस विशेष ऐश्वर्यशाली पृथिवी से इन सारी टोलियों ने अपने २ अभिप्राय के अनुसार दुग्ध का दोहन किया। ये लोग इन पात्र और वत्सों से इम दुग्ध का दोहन करके अपनी २ जीवन यात्रा को सफल करने लगे ॥२७॥

यज्ञैश्च विविधैरिष्टा पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
सन्तर्पयित्वा भूतानि सर्वैः कामैर्मनःप्रियैः ॥२८॥

प्रतापवान् वेन-पुत्र राजा पृथु ने अनेक भांति के यज्ञों से यजन करके मन के अनुकूल कामनाओं को पूर्ण करके सारी प्रजा को सन्तुष्ट किया ॥२८॥

हैरण्यानकरोद्राजा ये केचित्पार्थिवा भुवि ।
तान्ब्राह्मणेभ्यः प्रायच्छदश्वमेधे महामखे ॥२९॥

इसके अधीन जितने राजा थे, उन सबको इसने सुवर्ण की मूर्ति बनवाई और महायज्ञ अश्वमेध में उनको ब्राह्मणों को दान में दे दी ॥२९॥

षष्टिनागसहस्राणि षष्टिनागशतानि च ।
सौवर्णानकरोद्राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तान्ददौ ॥३०॥

राजा पृथु ने छियासठ हजार सुवर्ण के हाथी बनवाये और उन सबको ब्राह्मणों के लिए दान में प्रदान कर दिया ॥३०॥

इमां च पृथिवीं सर्वां मणिरत्नविभूषिताम् ।
सौवर्णीमकरोद्राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तां ददौ ॥३१॥

इसने एक सुवर्ण की पृथिवी बनवाई, जिसको मणि-रत्नों से विभूषित किया और उसको भी ब्राह्मणों के समर्पित कर दिया ।३१।

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥३२॥
अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥३३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

हे सृञ्जय ! यह राजा, तुम और तुम्हारे पुत्र से दान आदि अनेक गुणों से सम्पन्न होने से उत्तम था । हे अभिश्वैत्य ! तुम्हारा पुत्र तो यज्ञ और दक्षिणा दान से हीन था । तुमको अपने साधारण पुत्र का शोक नहीं करना चाहिए ॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में सोलह राजाओं के उपाख्यान में उनहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ

---

## सत्तरहवां अध्याय

नारद उवाच—

रामो महातपाः शूरो वीरलोकनमस्कृतः ।
जामदग्न्योऽप्यतियशा अवितृप्तो मरिष्यति ॥१॥

नारदजी बोले—हे सृञ्जय ! महा तपस्वी सब लोकों में पूज्य, यशस्वी, जमदग्निपुत्र शूरवीर परशुरामजी बिना तृप्त हुए संसार से एक दिन कूंच करेंगे ॥१॥

यः स्माऽऽद्यमनुपर्येति भूमिं कुर्वन्निमां सुखाम् ।
न चाऽऽसीद्विक्रिया यस्य प्राप्य श्रियमनुत्तमाम् ॥२॥

ये परशुराम आदि युग-सत्युग में इस सारी पृथिवी को सुखी बनाकर धर्म का प्रचार करते थे। राज्यलक्ष्मी को पाकर भी इनके चित्त में कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ ॥२॥

यः क्षत्रियैः परामृष्टे वत्से पितरि चाऽब्रुवन् ।
ततोऽवधीत्कार्त्तवीर्यमजितं समरे परैः ॥३॥

जब कार्तवीर्य की सेना ने वत्ससहित गौ का अपहरण और पिता जमदग्नि का वध कर दिया; तो इसने कुछ भी डींग न मारकर रण में शत्रुओं से अजेय कार्तवीर्य अर्जुन का वध कर डाला ॥३॥

क्षत्रियाणां चतुःषष्टिमयुतानि सहस्रशः ।
तदा मृत्योः समेतानि एकेन धनुषाऽजयत् ॥४॥

इस परशुराम ने अकेले ही छः लाख चालीस हजार क्षत्रिय वीरों को मृत्यु के अधीन करके, अपने धनुष की सहायता से जीत लिए ॥४॥

ब्रह्मद्विषां चाऽथ तस्मिन्सहस्राणि चतुर्दश ।
पुनरन्यान्निजग्राह दन्तक्रूरं जघान ह ॥५॥

इसी तरह चौदह सहस्र प्रधान २ क्षत्रिय वीरों का वध करके उनके सेनापति दन्तक्रूर को भी मार डाला ॥५॥

सहस्रं मुसलेनाऽहन्सहस्रमसिनाऽवधीत् ।
उद्बन्धनात्सहस्रं च सहस्रमुदके धृतम् ॥६॥

परशुराम ने सहस्रों क्षत्रियों को मूसल और सहस्रों को तलवार से मार गिराया तथा सहस्रों को फांसी और सहस्रों को जल में डुबो दिया ॥६॥

दन्तान्भंक्त्वा सहस्रस्य कर्णान्नासा न्यकृन्तत ।
ततः सप्तसहस्राणां कटुधूपमपाययत् ॥७॥
शिष्टान्बध्वा च हत्वा वै तेषां मूर्ध्नि विभिद्य च ।

इस शूरवीर ने बहुतों के दांत तोड़कर नाक कान काट डाले। सात हजार वीरों को धुंआ में घोटकर मार दिया। शेष रहे बहुत से वीरों को बाँधकर उनके मस्तक तोड़ फोड़ डाले । इस तरह दुष्ट क्षत्रियों का इसने विनाश किया ॥७॥

गुणावतीमुत्तरेण खाण्डवाद्दक्षिणेन च ।
गिर्यन्ते शतसाहस्रा हैहयाः समरे हताः ॥८॥

गुणावती के उत्तर और खाडण्व वन के दक्षिण भाग में पर्वत के समीप इसने लाखों क्षत्रियों का वध कर दिया ॥८॥

सरथाश्वगजा वीरा निहतास्तत्र शेरते ।
पितुर्वधामर्षितेन जामदग्न्येन धीमता ॥९॥

अपने पिता के वध के कारण कोप में भरे हुए बुद्धिमान् जमदग्निपुत्र परशुराम ने रथ, अश्व और हाथियों के सहित,

क्षत्रिय वीरों को रणभूमि में मार गिराया, ये वहां सदा के लिए सो गए ॥९॥

निजघ्ने दशसाहस्रान्रामः परशुना तदा ।
नह्यमृष्यत ता वाचो यास्तैर्भृशमुदीरिताः ॥१०॥

परशुराम ने अपने परशु की सहायता से दश सहस्र प्रधान वीर मारे । उन्होंने कितनी भी विभीपकाएँ की, परन्तु उसने एक पर भी ध्यान नहीं दिया ॥१०॥

भृगो रामाऽभिधावेति यदाऽऽक्रन्दन्द्विजोत्तमाः ।
ततः काश्मीरदरदान्कुन्तिक्षुद्रकमालवान् ॥११॥
अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च विदेहांस्ताम्रलिप्तकान् ।
रक्षोवाहान्वीतिहोत्रांस्त्रिगर्त्तान्मार्तिकावतान् ॥१२॥
शिबीनन्यांश्च राजन्यादेशान्देशान्सहस्रशः ।

जब ब्राह्मणों ने आर्तवाणी से परशुराम को पुकारा, कि हे भृगुवंशोत्पन्न ! राम ! तुम दौड़ो और हमारी रक्षा करो-तो परशुराम ने कश्मीर-दरद, कुन्ति, क्षुद्रक, मालव, अङ्गवङ्ग, कलिङ्ग, विदेह, ताम्रलिप्तक, रक्षोवाह, वीतिहोत्र, त्रिगर्त, मार्तिकावत और शिबि आदि अनेक देश और वंशों के दुष्ट सहस्रों क्षत्रियों को मार भगाया ॥११-१२॥

निजघान शितैर्बाणैर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥१३॥
कोटीशतसहस्राणि क्षत्रियाणां सहस्रशः ।

प्रतापी जमदग्नि-पुत्र परशुराम ने अपने तीक्ष्ण बाणों से अनेक जातियों में बंटे हुए सहस्रों क्षत्रियों को मार डाला ॥१३॥

इन्द्रगोपकवर्णस्य बन्धुजीवनिभस्य च ॥१४॥
रुधिरस्य परीवाहैः पूरयित्वा सरांसि च ।

इन्द्रगोप (वीरबहुटी) और बन्धुजीव के पुष्प के तुल्य रक्तवर्ण के रुधिर के प्रवाह से इसने सरोवर भर दिए ॥१४॥

सर्वानष्टादश द्वीपान्वशमानीय भार्गवः ॥१५॥
ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ।

भृगुवंशोत्पन्न परशुराम ने अट्ठारह द्वीपों को अपने वश में किया और उत्तम २ दक्षिणा के साथ सैकड़ों पवित्र यज्ञ कर डाले ।

वेदीमष्टनलोत्सेधां सौवर्णां विधिनिर्मिताम् ॥१६॥
सर्वरत्नशतैः पूर्णां पताकाशतमालिनीम् ।
ग्राम्यारण्यैः पशुगणैः सम्पूर्णां च महीमिमाम् ।१७।
रामस्य जामदग्न्यस्य प्रतिजग्राह कश्यपः ।

एक आठ नल के परिमाण में विधिपूर्वक परशुराम ने सुवर्ण की वेदी बनवाई । इस वेदी में सैंकड़ों प्रकार के रत्न जड़े हुए थे और सैंकड़ों ही पताकाएँ सुशोभित थीं । ग्राम और वन के पशुओं से परिपूर्ण इस भूमि को महर्षि जमदग्नि-पुत्र परशुराम ने कश्यप मुनि को दान में समर्पण कर दी ॥१७॥

ततः शतसहस्राणि द्विपेन्द्रान्हेमभूषणान् ॥१८॥
निर्दस्युं पृथिवीं कृत्वा शिष्टेष्टजनसंकुलाम् ।
कश्यपाय ददौ रामो हयमेधे महामखे ॥१९॥

महर्षि परशुराम ने इस महायज्ञ अश्वमेध में श्रेष्ठ पुरुषों से समन्वित, चोर लुटेरों से हीन पृथिवी को तथा सुवर्ण के आभूषणों से लाखों हाथियों को अलंकृत बना कर कश्यप मुनि को प्रदान कर दिया ॥१८-१९॥

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
इष्ट्वा क्रतुशतैर्वीरो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥२०॥

इस शक्तिशाली वीर परशुराम ने इकीस वार पृथिवी को दुष्ट क्षत्रियों से रहित कर दिया और सैंकड़ों यज्ञ करके ब्राह्मणों को अगणित दक्षिणा प्रदान की ॥२०॥

सप्तद्वीपां वसुमतीं मारीचोऽगृह्णत द्विजः ।
रामं प्रोवाच निर्गच्छ वसुधातो ममाऽऽज्ञया ॥२१॥

महामुनि कश्यप ने सप्तद्वीपों से समन्वित पृथिवी को ग्रहण करके परशुराम से कहा-कि अब तुमको मेरी आज्ञा है, कि तुम शीघ्र पृथिवी को छोड़ कर यहां से चले जाओ ॥२१॥

स कश्यपस्य वचनात्प्रोत्सार्य सरितां पतिम् ।
इषुपाते युधां श्रेष्ठः कुर्वन्ब्राह्मणशासनम् ॥२२॥
अध्यावसद्गिरिश्रेष्ठं महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ।

योद्धा वीर परशुराम ने कश्यप मुनि की आज्ञा को मान कर पृथिवी के छोड़ने का विचार किया। इसने अपने बाणों से समुद्र में मार्ग बनाया और यह महेन्द्र पर्वत पर पहुँचा। यह इस पर्वत-श्रेष्ठ महेन्द्र गिरि पर निवास करने लगा ॥२२॥

एवं गुणशतैर्युक्तो भृगूणां कीर्तिवर्धनः ॥२३॥
जामदग्न्यो ह्यतियशा मरिष्यति महाद्युतिः ।

भृगुवंश की कीर्ति का बढ़ाने वाला, महायशस्वी, अत्यन्त कान्तिमान्, जमदग्निपुत्र परशुराम भी एक दिन संसार से चल बसेंगे ॥२३॥

त्वया चतुर्भद्रतरः पुण्यात्पुण्यतरस्तव ॥२४॥
अयज्वानमदाक्षिण्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।

ये परशुराम, तेरे पुत्र और तुझसे सब तरह दान आदि गुणों में श्रेष्ठ हैं। अब तुम यज्ञ और दक्षिणा हीन अपने पुत्र का शोक न करो ॥२४॥

एते चतुर्भद्रतरास्त्वया भद्रशताधिकाः ।
मृता नरवरश्रेष्ठ मरिष्यन्ति च सृञ्जय ॥२५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वण्यभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये
सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

हे नरश्रेष्ठ ! सृञ्जय ! तुम से वैराग्य आदि कल्याणों से समन्वित सैंकड़ों गुणों के धारी ये उत्तम २ राजा भी मृत्यु को प्राप्त हो गए तथा जो शेष हैं, वे भी एक दिन मर के रहेंगे ॥२४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में सोलह राजाओं के प्रकरण में परशुराम के उपाख्यान का

सत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

---

# इकहत्तरवां अध्याय

व्यास उवाच—

पुण्यमाख्यानमायुष्यं श्रुत्वा षोडशराजकम् ।
अव्याहरन्नरपतिस्तूष्णीमासीत्स सृञ्जयः ॥१॥

व्यासजी बोले—हे धर्मराज ! नारद के मुख से इन सोलह राजाओं के पवित्र उपाख्यान को सुनकर राजा सृञ्जय कुछ न बोला और चुप हो गया ॥१॥

तमब्रवीत्तथाऽऽसीनं नारदो भगवानृषिः ।
श्रुतं कीर्त्तयतो सम्यं गृहीतं ते महाद्युते ॥२॥
आहोस्विदन्ततो नष्टं श्राद्धं शूद्रीपताविव ।

ब्रह्मर्षि भगवान् नारद मुनि इस प्रकार चुपचाप बैठे हुए राजा सृञ्जय से कहने लगे-हे महाद्युते ! मैंने जो यह उपाख्यान तुमको सुनाए-इनका तत्व तुमने धारण कर लिया होगा । शूद्रा के पति

ब्राह्मण को समर्पित श्राद्धान्न की तरह कहीं मेरे वचन निष्फल तो नहीं हो रहे हैं ॥२॥

स एवमुक्तः प्रत्याह प्राञ्जलिः सृञ्जयस्तदा ॥३॥

एतच्छ्रुत्वा महाबाहो धन्यमाख्यानमुत्तमम् ।

राजर्षीणां पुराणानां यज्वनां दक्षिणावताम् ॥४॥

जब नारदजी ने इतना कहा-तो यह सुनकर और हाथ जोड़ कर राजा सृञ्जय ने कहा-हे महाबाहो ! आपने पुष्कल दक्षिणा देने वाले, यज्ञशील, प्राचीन राजाओं के जितने उपाख्यान सुनाए; वे बड़े ही पवित्र और उत्तम हैं ॥३-४॥

विस्मयेन हृते शोके तमसीवाऽर्कतेजसा ।

विपाप्माऽस्म्यव्यथोपेतो ब्रूहि किं करवाण्यहम् ॥५॥

सूर्य के प्रकाश से जैसे अन्धकार नष्ट हो जाता है, इसी तरह इन आश्चर्यजनक उपाख्यानों ने मेरे शोक को हर लिया है। अब मैं सब भांति के कश्मलों से रहित होकर व्यथा हीन हो गया हूं-कहिए अब आगे क्या करूँ ? ॥५॥

नारद उवाच—

दिष्ट्याऽपहृतशोकस्त्वं वृणीष्वेह यदिच्छसि ।

तत्तत्प्रपत्स्यसे सर्वं न मृषावादिनो वयम् ॥६॥

नारदजी बोले-हे राजन् ! यह बड़ी ही सुन्दर बात हुई, कि आपका शोक नष्ट हो गया-अब जो तुम चाहते हो-वर मांगो ।

जो कुछ तुम मांगोगे-वही तुमको प्रदान करूंगा-हम लोग मृषा-वादी नहीं हैं ॥६॥

सृञ्जय उवाच—

एतेनैव प्रतीतोऽहं प्रसन्नो यद्भवान्मम ।
प्रसन्नो यस्य भगवान्न तस्याऽस्तीह दुर्लभम् ॥७॥

सृञ्जय ने कहा— मेरी तो इतनी बात से ही शान्ति हो गई, जो आप मुझ पर प्रसन्न हो गए। जिसके ऊपर आप प्रसन्न हो गए; उसको अन्य क्या दुर्लभ है ॥७॥

नारद उवाच—

मृतं ददानि ते पुत्रं दस्युभिर्निहतं वृथा ।
उद्धृत्य नरकात्कष्टात्पशुवत्प्रोक्षितं यथा ॥८॥

नारदजी ने कहा-हे सृञ्जय ! तुम्हारे पुत्र को चोरों ने यज्ञ में पशुओं की भांति व्यर्थ ही मार डाला था। अब मैं उसको नरक से निकाल कर तुमको सौंप देता हूं ॥८॥

व्यास उवाच—

प्रादुरासीत्ततः पुत्रः सृञ्जयस्याऽद्भुतप्रभः ।
प्रसन्नेनर्षिणा दत्तः कुबेरतनयोपमः ॥९॥

व्यासजी बोले—हे राजन् ! इसी समय कुवेर-पुत्र के समान ऐश्वर्य युक्त, अद्भुत कान्तिधारी राजा सृञ्जय का पुत्र वहां आकर नारद ऋषि की कृपा से खड़ा हो गया ॥९॥

ततः सङ्गम्य पुत्रेण प्रीतिमानभवन्नृपः ।
ईजे च क्रतुभिः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥१०॥

राजा सृञ्जय भी अपने पुत्र से मिलकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ। अब इसने बड़े पवित्र यज्ञ करके उनमें उत्तम २ दक्षिणा प्रदान की ॥१०॥

अकृतार्थश्च भीतश्च न च सान्नाहिको हतः।
अयज्वा त्वनपत्यश्च ततोऽसौ जीवितः पुनः ॥११॥

हे राजन्! राजा सृञ्जय का पुत्र युद्ध में नहीं मरा था, इससे अकृतार्थ और भयभीत था। इसने न कोई यज्ञ किया था और न इसके सन्तान ही थी, इसीलिए उसको नारदजी ने फिर जीवित कर दिया ॥११॥

शूरो वीरः कृतार्थश्च प्रताप्याऽरीन्सहस्रशः।
अभिमन्युर्गतो वीरः पृतनाभिमुखो हतः ॥१२॥

अभिमन्यु तो शूरवीर था, यह युद्ध में मर कर कृतार्थ हो गया है। इसने सहस्रों शत्रु वीर मार गिराये और शत्रु सेना से बड़ी भारी टक्कर ली थी ॥१२॥

ब्रह्मचर्येण यान्कांश्चित्प्रज्ञया च श्रुतेन च।
इष्टैश्च क्रतुभिर्यान्ति तांस्ते पुत्रोऽक्षयान्गतः ॥१३॥

जो कोई मनुष्य ब्रह्मचर्य, ज्ञान, वेदाध्यन और उत्तम २ यज्ञों से अक्षय लोकों को जाते हैं, उनमें ही तेरा पुत्र अभिमन्यु पहुंच गया है ॥१३॥

विद्वांसः कर्मभिः पुण्यैः स्वर्गमीहन्ति नित्यशः।
न तु स्वर्गादयं लोकः काम्यते स्वर्गवासिभिः ॥१४॥

विद्वान् लोग, पुण्यजनक कर्म करके स्वर्ग गमन करना चाहते हैं, परन्तु स्वर्ग में जाने पर कोई भी इस मृत्युलोक में नहीं आना चाहता है ॥१४॥

तस्मात्स्वर्गगतं पुत्रमर्जुनस्य हतं रणे ।
न चेहाऽऽनयितुं शक्यं किञ्चिदप्राप्यमीहितम् ॥१५॥

अब अर्जुन का पुत्र स्वर्ग पहुंच चुका है। वह राजा सृञ्जय के पुत्र की तरह अकृतार्थ और नरकगामी नहीं हुआ है, इससे रण में मारा जाने के कारण उसकी कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥१५॥

यांयोगिनोध्यानविविक्तदर्शनाःप्रयान्तियांचोत्तमयज्विनोजना
तपोभिरिद्धैरनुयान्तियांतथा तामक्षयां ते तनयोगतोगतिम् ॥

एकान्त में ध्यान परायण योगी, उत्तम २ यज्ञ करने वाले तथा तीव्र तप से जिस गति को महात्मा पुरुष जाते हैं, उस ही उत्तम गति को तेरा पुत्र अभिमन्यु प्राप्त हो गया है ॥१६॥

अन्तात्पुनर्भावगतो विराजते राजेव वीरो ह्यमृतात्मरश्मिभिः
तामैन्दवीमात्मतनुंद्विजोचितांगतोऽभिमन्युर्नसशोकमर्हति ॥

अभिमन्यु की यह अन्तगति अत्यन्त ही उत्तम हुई है। इस कारण वह अमृतमय किरणों से चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हो रहा है। जब द्विजातियों के योग्य वह चन्द्रलोक की गति को प्राप्त हो गया तो फिर अभिमन्यु का क्या शोक करना है। वह किसी भी प्रकार शोक के योग्य नहीं है ॥१७॥

एवं ज्ञात्वा स्थिरो भूत्वा जह्यरीन्धैर्यमाप्नुहि।
जीवन्त एव नः शोच्या न तु स्वर्गगतोऽनघ ॥१८॥

हे राजन! इन सब बातों को जानकर तुम धैर्य और दृढता के साथ शत्रुओं का नाश करो। हे अनघ! जो इस समय जीवित हैं, हमको तो उनका ही शोक है, परन्तु युद्ध में मर कर जो स्वर्ग चले गए-उनके तो शोक की बात ही क्या है ॥१८॥

शोचतो हि महाराज अघमेवाऽभिवर्धते।
तस्माच्छोकं परित्यज्य श्रेयसे प्रयतेद् बुधः ॥१६।

हे महाराज! मृतक का शोक करने से व्यर्थ ही सन्ताप या पाप होता है। इससे बुद्धिमान् मनुष्य शोक छोड़कर कल्याण के लिए प्रयत्न करें ॥१६॥

प्रहर्षमभिमानं च सुखप्राप्तिं च चिन्तयन्।
एतद् बुध्वा बुधाः शोकं न शोकः शोक उच्यते ॥२०॥
एवं विद्वन्समुत्तिष्ठ प्रयतो भव मा शुचः।

अपने हर्ष, अभिमान, सुखप्राप्ति के ध्यान से बुद्धिमान् मनुष्य को शोक नहीं करना चाहिए। मृतक का शोक नहीं करना ही शोक अर्थात् उसका चिन्तन है। हे विद्वन्! यह सब कुछ छोड़कर खड़े हो जाओ और सावधानी के साथ युद्ध करो। यह शोक करने का स्थान नहीं है ॥२०॥

श्रुतस्ते सम्भवो मृत्योस्तपांस्यनुपमानि च ॥२१॥
सर्वभूतसमत्वं च चञ्चलाश्च विभूतयः ।
सृञ्जयस्य तु तं पुत्रं मृतं सञ्जीवितं पुनः ॥२२॥

हे राजन्! आपने मृत्यु की उत्पत्ति और उसके अनुपम तपों की चर्चा सुनी। यह सब भूतों को समान रूप से प्राप्त होती है। संसार की विभूतियां चञ्चल हैं। इसी के साथ तुमने राजा सृञ्जय के मृतक पुत्र के जीवित होने की कहानी भी सुनी ॥२१-२२॥

एवं विद्वन्महाराज मा शुचः साधयाम्यहम् ।
एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥२३॥

हे विद्वन्! महाराज! तुम शोक न करना-अब मैं जा रहा हूं। इतना कह कर भगवान् वेदव्यास वहाँ पर अन्तर्हित हो गये।

वागीशाने भगवति व्यासे व्यभ्रनभःप्रभे ।
गते मतिमतां श्रेष्ठे समाश्वास्य युधिष्ठिरम् ॥२४॥
पूर्वेषां पार्थिवेन्द्राणां महेन्द्रप्रतिमौजसाम् ।
न्यायाधिगतवित्तानां तां श्रुत्वा यज्ञसम्पदम् ॥२५॥
सम्पूज्य मनसा विद्वान्विशोकोऽभूद्युधिष्ठिरः ।
पुनश्चाऽचिन्तयद्दीनः किंस्विद्वक्ष्ये धनञ्जयम् ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनषष्टितमोऽध्यायः॥७१॥समाप्तमभिमन्युवधपर्व

स्वच्छ आकाश के समान उज्ज्वल शरीर धारी, वाणी के अधिपति, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, भगवान् वेदव्यासजी के बोध कराके चले जाने पर राजा युधिष्ठिर, इन्द्र के तुल्य तेजधारी, न्याय से ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले, पूर्वज राजाओं की यज्ञ सम्पत्ति का वर्णन सुनकर और मन से ही उन राजाओं को प्रणाम करके शोक रहित हो गए। थोड़ी देर में उनको फिर ध्यान आया, कि अर्जुन के आने पर हम उससे क्या कहेंगे ॥२६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत अभिमन्युवधपर्व में सोलह राजाओं के वर्णन का इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर अभिमन्युवधपर्व भी समाप्त हो गया

# अथ प्रतिज्ञापर्व

## बहत्तरहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते घोरे प्राणभृतां क्षये।
आदित्येऽस्तं गते श्रीमान्सन्ध्याकाल उपस्थिते ॥१॥
व्यपयातेषु वासाय सर्वेषु भरतर्षभ ।
हत्वा संशप्तकव्रातान्दिव्यैरस्त्रैः कपिध्वजः ॥२॥
प्रायात्स शिबिरं जिष्णुर्जैत्रमास्थाय तं रथम् ।
गच्छन्नेव च गोविन्दं साश्रुकण्ठोऽभ्यभाषत ॥३॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! आज के युद्ध में बहुत ही प्राणियों का विनाश हुआ। अब सूर्य छुप चुका था और सायंकाल हो रहा था। पशु पक्षी अपने २ वास स्थान को चल दिए। योद्धा भी लौट पड़े। विजेता अर्जुन भी अपने दिव्य अस्त्रों से संशप्तक वीरों का विध्वंस करके अपने विजयी रथ में बैठा हुआ अपने शिविर की ओर चल दिया। मार्ग में इसका अश्रुओं से अकस्मात् कण्ठ भर गया और यह चलता २ श्रीकृष्ण से कहने लगा ॥१-३॥

किं नु मे हृदयं त्रस्तं वाक्च सज्जति केशव ।
स्यन्दन्ति चाऽप्यनिष्टानि गात्रं सीदति चाऽच्युत ॥४॥

हे केशव ! कुछ ज्ञात नहीं होता है, कि मेरा हृदय कुछ फटता सा जा रहा है। वाणी भी रुकी जाती है। चित्त में अनिष्ट ही अनिष्ट की आशङ्का होती है और शरीर बहुत ही शिथिल हुआ जा रहा है ॥४॥

अनिष्टं चैव मे श्लिष्टं हृदयान्नापसर्पति ।
भुवि ये दिक्षु चाऽप्युग्रा उत्पातास्त्रासयन्ति माम् ॥५॥

हे कृष्ण ! कुछ अनिष्ट की आशंका मेरे हृदय में आकर इस तरह चिपटी है, कि वह हृदय से हटना ही नहीं चाहती है। पृथिवी और आकाश में जो उत्पात दिखाई देते हैं-उनसे तो मुझे बड़ा ही भय हो रहा है ॥५॥

बहुप्रकारा दृश्यन्ते सर्व एवाऽघशंसिनः ।
अपि स्वस्ति भवेद्राज्ञः सामात्यस्य गुरोर्मम ॥६॥

ये अनेक उत्पात अनेक ढंग से मेरे सामने आ रहे हैं और कुछ अनिष्ट की सूचना दे रहे हैं। मैं तो भगवान् से यही चाहता हूं, कि मेरे पूज्य राजा युधिष्ठिर का अमात्यों के सहित मङ्गल रहे।

वासुदेव उवाच—

व्यक्तं शिवं तव भ्रातुः सामात्यस्य भविष्यति।
मा शुचः किञ्चिदेवाऽन्यत्तत्राऽनिष्टं भविष्यति ॥७॥

श्रीकृष्ण ने कहा-हे अर्जुन! तुम्हारे पूज्य राजा युधिष्ठिर का अमात्यों (मंत्रियों) के सहित कोई भी अकल्याण नहीं हो सकता-यह निर्विवाद है। अब तुम चिन्ता न करो-यदि कोई अनिष्ट हुआ होगा-तो वह कुछ और ही होगा ॥७॥

सञ्जय उवाच—

ततः सन्ध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने।
कथयन्तौ रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ ॥८॥
ततः स्वशिबिरं प्राप्तौ हतानन्दं हतत्विषम्।
वासुदेवोऽर्जुनश्चैव कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥९॥

सञ्जय बोले—हे राजन! इसके अनन्तर दोनों वीर कृष्णार्जुन ने सन्ध्योपासन किया और ये वीरों के विनाशकारी, युद्ध की वार्तालाप करते हुए रथ में बैठे हुए चल दिए। श्रीकृष्ण और अर्जुन रण में संशप्तकों का वध रूप बड़ा ही दुष्कर कर्म करके अपने शिबिर (डेरे) में पहुँचे, तो वहाँ उन्होंने सारे शिबिर को शोक निमग्न और तेजहीन देखा ॥८-९॥

ध्वस्ताकारं समालक्ष्य शिबिरं परवीरहा ।
बीभत्सुरब्रवीत्कृष्णमस्वस्थहृदयस्ततः ॥१०॥

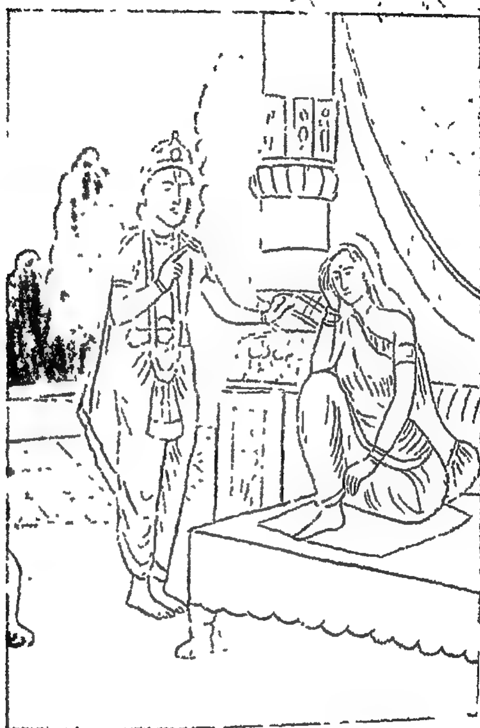
शत्रुविजेता अर्जुन, अपने शिविर को छिन्न-भिन्न सा देख कर घबराहट के साथ श्रीकृष्ण से कहने लगा ॥१०॥

नदन्ति नाऽद्य तूर्याणि मङ्गल्यानि जनार्दन ।
मिश्रा दुन्दुभिनिर्घोषैः शङ्खाश्चाऽडम्बरैः सह ॥११॥
वीणा नैवाऽद्य वाद्यन्ते शम्या तालस्वनैः सह ।
मङ्गल्यानि च गीतानि न गायन्ति पठन्ति च ॥१२॥
स्तुतियुक्तानि रम्याणि ममाऽनीकेषु वन्दिनः ।
योधाश्चापि हि मां दृष्ट्वा निवर्तन्ते ह्यधोमुखाः ॥१३॥

हे जनार्दन ! आज क्या बात है, जो हमारी सेना में तूर्य आदि मङ्गलीक बाजे नहीं बज रहे हैं और न कहीं पर दुन्दुभियों के घोष के साथ बड़े आडम्बरों से शङ्ख-ध्वनि सुनाई देती है। कहीं पर न तो वीणा बज रही है, न तालध्वनि से मिलकर शम्या नामक बाजा बज रहा है। कोई भी पुरुष, आनन्द गान नहीं करता और न कुछ वेद आदि का कहीं पठन पाठन हो रहा है और वन्दीजन स्तुति युक्त सुन्दर कविता कहीं भी नहीं पढ़ रहे हैं। जिधर देखो उधर ही योद्धा मुझसे नीचा मुख करके तिरछे होकर निकल जाते हैं ॥११-१३॥

कर्माणि च यथापूर्वं कृत्वा नाऽभिवदन्ति माम् ।
अपि स्वस्ति भवेदद्य भ्रातृभ्यो मम माधव ॥१४॥

महाभारत चित्र संख्या ८४



श्रीकृष्ण का सुभद्रा को समझाना

महाभारत द्रोणपर्व अध्याय ७७। ११

हे माधव ! ये वीर लोग पूर्व के समान अपना २ काम करते दिखाई नहीं पड़ते और न कोई मुझसे प्रणाम करता है। हे कृष्ण ! मैं तो यही चाहता हूं, कि आज मेरे भाइयों की कुशल रहे ॥१४॥

नहि शुद्ध्यति मे भावो दृष्ट्वा स्वजनमाकुलम् ।
अपि पाञ्चालराजस्य विराटस्य च मानद ॥१५॥
सर्वेषां चैव योधानां सामग्र्यं स्यान्ममाऽच्युत ।
न च मामद्य सौभद्रः प्रहृष्टो भ्रातृभिः सह ।
रणादायान्तमुचितं प्रत्युद्याति हसन्निव ॥१६॥

अपनी सेना और परिचित जनों को व्याकुल देखकर मेरा हृदय व्याकुल हो उठा है। हे मान देने वाले ! केशव ! जब मैं युद्ध से आता था, तो पाञ्चालराज द्रुपद और राजा विराट तथा अन्य योद्धा समूह बनाकर मेरे सन्मुख आते थे। आज तो अपने भाइयों के साथ उल्लास में भरा हुआ अभिमन्यु भी हँसता २ विजय करके लौटे हुए मेरे स्वागत को नहीं आया ॥१५-१६॥

सञ्जय उवाच—

एवं सङ्कथयन्तौ तौ प्रविष्टौ शिबिरं स्वकम् ।
ददृशाते भृशास्वस्थान्पाण्डवान्नष्टचेतसः ॥१७॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन ! इस प्रकार दोनों वीर बातचीत करते हुए अपने शिविर में घुस गए। वहाँ जाकर उन्होंने सारे पाण्डवों को व्याकुल और क्लेशित देखा ॥१७॥

दृष्ट्वा भ्रातृंश्च पुत्रांश्च विमना वानरध्वजः ।
अपश्यंश्चैव सौभद्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥१८॥

कपि ध्वजाधारी, घबराया हुआ अर्जुन, अपने भाई और पुत्रों को देखकर तथा सुभद्रापुत्र अभिमन्यु को न देखकर यह वचन बोला ॥१८॥

मुखवर्णोऽप्रसन्नो वः सर्वेषामेव लक्ष्यते ।
न चाऽभिमन्युं पश्यामि न च मां प्रतिनन्दथ ॥१९॥

हे महाभागो ! तुम्हारे सब लोगों की मुख की कान्ति फीकी पड़ी हुई है, मैं यहाँ अभिमन्यु को नहीं देख रहा हूं और न तुम मेरा अभिनन्दन ही करते हो-यह आज क्या बात है ॥१९॥

मया श्रुतश्च द्रोणेन चक्रव्यूहो विनिर्मितः ।
न च वस्तस्य भेत्ताऽस्ति विना सौभद्रमर्भकम् ॥२०॥
न चोपदिष्टस्तस्याऽऽसीन्मयाऽनीकाद्विनिर्गमः ।
कच्चिन्न बालो युष्माभिः परानीकं प्रवेशितः ॥२१॥

मैंने सुना था, कि आज द्रोणाचार्य ने युद्ध में चक्रव्यूह बनाया था, उसका भेदन करने वाला बालक अभिमन्यु के अतिरिक्त हमारी सेना में अन्य कोई नहीं था। मैं उसे अभी तक सेना में घुसकर बाहर निकल आने का ढंग नहीं सिखा सका था, कहीं तुम लोगों ने शत्रु सेना में अभिमन्यु को तो नहीं भेज दिया ॥२०-२१॥

भित्त्वाऽनीकं महेष्वासः परेषां बहुशो युधि ।
कच्चिन्न निहतः संख्ये सौभद्रः परवीरहा ॥२२॥

कहीं शत्रु सेना में घुसकर और उनके बहुत से योधाओं का विनाश करके शत्रु विजयी सुभद्रा-पुत्र कहीं रण में तो नहीं मारा गया ॥२२॥

लोहिताक्षं महाबाहुं जातं सिंहमिवाऽद्रिषु ।
उपेन्द्रसदृशं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥२३॥

हे राजन् ! लाल आंखों वाला, महाबाहु, कन्दरा में उत्पन्न सिंह के सदृश शक्तिशाली, विष्णु के तुल्य पराक्रमी, अभिमन्यु कहीं युद्ध में मारा तो नहीं गया ॥२३॥

सुकुमारं महेष्वासं वासवस्याऽऽत्मजात्मजम् ।
सदा मम प्रियं ब्रूते कथमायोधने हतः ॥२४॥

महाधनुर्धर, सुकुमार, इन्द्र के पुत्र होने के अभिमानी मुझ अर्जुन का पुत्र, मुझे सदा प्रिय समाचार सुनाने वाला अभिमन्यु कहीं रण में मारा तो नहीं गया ॥२४॥

सुभद्रायाः प्रियं पुत्रं द्रौपद्याः केशवस्य च ।
अम्बायाश्च प्रियं नित्यं कोऽब्रवीत्कालमोहितः ॥२५॥

वह सुभद्रा का प्रिय पुत्र था और द्रोपदी, श्रीकृष्ण तथा माता कुन्ती का सदा प्रिय था । कौन काल मोहित पुरुष है, जिसने उसका वध किया है ॥२५॥

सदृशो वृष्णिवीरस्य केशवस्य महात्मनः ।
विक्रमश्रुतमाहात्म्यैः कथमायोधने हतः ॥२६॥

यह अभिमन्यु, पराक्रम, शास्त्र ज्ञान और यश में महाशक्तिशाली वृष्णिवीर श्रीकृष्ण के सदृश था। क्या वह भी रणभूमि में मार लिया गया ॥२६॥

वार्ष्णेयीदयितं शूरं मया सततलालितम् ।
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ॥२७॥

वृष्णिकन्या सुभद्रा के प्रिय, शूरवीर, मुझसे सदा लड़ाए हुए पुत्र अभिमन्यु को यदि मैंने नहीं देख पाया, तो मैं भी मृत्यु को प्राप्त हो जाऊंगा ॥२७॥

मृदुकुञ्चितकेशान्तं बालं बालमृगेक्षणम् ।
मत्तद्विरदविक्रान्तं सिंहपोतमिवोद्गतम् ॥२८॥
स्मिताभिभाषिणं दान्तं गुरुवाक्यकरं सदा ।
बाल्येऽप्यतुलकर्माणं प्रियवाक्यममत्सरम् ॥२९॥
महोत्साहं महाबाहुं दीर्घराजीवलोचनम् ।
भक्तानुकम्पिनं दान्तं न च नीचानुसारिणम् ॥३०॥
कृतज्ञं ज्ञानसम्पन्नं कृतास्त्रमनिवर्तिनम् ।
युद्धाभिनन्दिनं नित्यं द्विषतां भयवर्धनम् ॥३१॥
स्वेषां प्रियहिते युक्तं पितॄणां जयगृद्धिनम् ।
न च पूर्वं प्रहर्तारं संग्रामे नष्टसम्भ्रमम् ॥३२॥
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ।

जो मैंने कोमल काले वालों से सम्पन्न, मृगशावक के नेत्रों के तुल्य नेत्रधारी, मदोन्मत्त हाथी के तुल्य पराक्रमी, सिंह शिशु के सदृश आचरण करने वाले, मुस्कुराकर बोलेने वाले, उदार, पूज्यों के आज्ञाकारी, बचपन में भी अतुल कर्मकारी, मिष्टभाषी, मत्सर हीन, महोत्साही, महाबाहु, कमल के तुल्य बड़ी २ आखों वाले, भक्त के ऊपर दयालु, जितेन्द्रिय, नीचों के सम्पर्क से हीन, कृतज्ञ, ज्ञानसम्पन्न, अस्त्र विद्या में कुशल, युद्ध से नहीं हटने वाले, युद्ध के स्वागत में परायण, शत्रुओं को भयकारी, अपने बन्धुओं के हित में तत्पर, पितरों के विजय का अभिलाषी, शत्रु पर भी पूर्व प्रहार नहीं करने वाले, युद्ध में घबराहट से रहित, अपने प्रिय-पुत्र बालक अभिमन्यु को अब नहीं देखा-तो मैं भी यमराज के घर जाने को सन्नद्ध हो जाऊंगा ॥२८-३२॥

रथेषु गण्यमानेषु गणितं तं महारथम् ॥३३॥
मयाऽध्यर्धगुणं संख्ये तरुणं बाहुशालिनम् ।
प्रद्युम्नस्य प्रियं नित्यं केशवस्य ममैव च ॥३४॥
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ।

सबसे प्रथम गणना में आने वाले रथियों में जिस महारथी की प्रथम गणना थी, जो युवा और रण में बाहुओं का पराक्रम दिखाना जानता था। जो श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न का प्रिय था, यदि उस प्रिय पुत्र अभिमन्यु को नहीं देख सका-तो मैं अवश्य यमराज के यहां पहुंच जाऊँगा ॥३३-३४॥

सुनसं सुललाटान्तं स्वक्षिभ्रूदशनच्छदम् ॥३५॥
अपश्यतस्तद्वदनं का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

सुन्दर नासिका, उत्तम ललाट, सुन्दर आंख, भ्रुकुटी, दाँत और ओष्ठधारी, अभिमन्यु का मुख यदि मेरे देखने में नहीं आया-तो मेरे हृदय को कैसे शान्ति हो सकती है ॥३५॥

तन्त्रीस्वनसुखं रम्यं पुंस्कोकिलसमध्वनिम् ॥३६॥
अशृण्वतः स्वनं तस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

वीणा के स्वर के समान सुखदायी, कोयल के सदृश मधुर, अभिमन्यु का सुन्दर स्वर यदि मेरे कर्णगोचर नहीं हुआ, तो मेरे चित्त को कैसे शान्ति होगी ॥३६॥

रूपं चाऽऽप्रतिमं तस्य त्रिदशैश्चापि दुर्लभम् ॥३७॥
अपश्यतो हि वीरस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

अभिमन्यु का इतना सुन्दर रूप था, जो देवों को भी दुर्लभ है। उस वीर के उस रूप को न देखकर मेरे हृदय को कैसे शान्ति होगी ॥

अभिवादनदक्षं तं पितॄणां वचने रतम् ॥३८॥
नाऽद्याऽहं यदि पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

जो अपने पितरों का आज्ञाकारी और सदा प्रणाम रत रहता था, उस अभिमन्यु को आज न देखकर मेरे हृदय को कैसे शान्ति रह सकती है ॥३८॥

सुकुमारः सदा वीरो महार्हशयनोचितः ॥३९॥
भूमावनाथवच्छेते नूनं नाथवतां वरः ।

यह कोमल प्रकृतिवाला, वीर बालक, बहुमूल्य के शयनों पर सोने के योग्य था, क्या वह भूमि में अनाथ की तरह पड़ा होगा, जिसके धर्मराज युधिष्ठिर रक्षक थे ॥३६॥

शयानं समुपासन्ति यं पुरा परमस्त्रियः ॥४०॥
तमद्य विप्रविद्धाङ्गमुपासन्त्यशिवाः शिवाः ।

जब यह शयन करता था, तो इसकी सेवा में उत्तम २ सुन्दर स्त्रियां उपस्थित रहती थीं। आज बाणों से छिदे शरीरधारी उसी अभिमन्यु की सेवा में भयङ्कर गीदड़ियाँ उपस्थित होंगी ॥४०॥

यः पुरा बोध्यते सुप्तः सूतमागधबन्दिभिः ॥४१॥
बोधयन्त्यद्य तं नूनं श्वापदा विकृतैः स्वनैः ।

जिस अभिमन्यु को सूत, मागध और बन्दीजन अपनी स्तुतियों से जगाते थे, उसको आज बनैले जीवजन्तु अपने भयानक शब्दों से जगाना चाहते होंगे ॥४१॥

छत्रच्छायासमुचितं तस्य तद्वदनं शुभम् ॥४२॥
नूनमद्य रजोध्वस्तं रणरेणुः करिष्यति ।

अभिमन्यु का सुन्दर मुख, छत्र की छाया के योग्य था। आज उसको ही रण की रेणु, व्याप्त करके धूसर बना देगी ॥४२॥

हा पुत्र काऽवितृप्तस्य सततं पुत्रदर्शने ॥४३॥
भाग्यहीनस्य कालेन यथा मे नीयसे बलात् ।

हे पुत्र! आज यह क्या हो रहा है, जो तुमको मुझ भाग्यहीन के सन्मुख से काल बल-पूर्वक छीन कर ले जा रहा है ॥४३॥

सा च संयमनी नूनं सदा सुकृतिनां गतिः ॥४४॥
स्वभाभिर्मोहिता रम्या त्वयाऽत्यर्थं विराजते।

हे पुत्र ! यमराज की वह सभा; जिसमें पुण्यात्माजन जाते हैं, आज तेरी कान्ति से मोहित होकर अत्यन्त सुन्दरता के साथ सुशोभित हो रही होगी ॥४४॥

नूनं वैवस्वतश्च त्वां वरुणश्च प्रियातिथिम् ॥४५॥
शतक्रतुर्धनेशश्च प्राप्तमर्चन्त्यभीरुकम् ।

हे वीर ! विवस्वान्-पुत्र यम, वरुण, इन्द्र और कुबेर आज निर्भीक प्रिय अतिथि तुझे देखकर बड़े ही प्रेम से तेरा स्वागत कर रहे होंगे ॥४५॥

एवं विलप्य बहुधा भिन्नपोतो वणिग्यथा ॥४६॥
दुःखेन महताऽऽविष्टो युधिष्ठिरमपृच्छत।

हे राजन् ! समुद्र में भङ्ग हुए जहाज वाले वणिक् की तरह अनेक भांति से विलाप करके बड़े दुःख के साथ, अर्जुन, धर्मराज से पूछने लगे ॥४६॥

कच्चित्स कदनं कृत्वा परेषां कुरुनन्दन ॥४७॥
स्वर्गतोऽभिमुखः संख्ये युध्यमानो नरर्षभैः।
स नूनं बहुभिर्युक्तैर्युध्यमानो नरर्षभैः ॥४८॥

हे कुरुनन्दन ! आप यह तो बताओ, कि अभिमन्यु शत्रु का नाश करके बड़े २ महारथियों से लड़ता और युद्ध में सम्मुख टक्कर लेता हुआ तो स्वर्गलोक गया है ॥४७-४८॥

असहायः सहायार्थी मामनुध्यातवान्ध्रुवम् ।
पीड्यमानः शरैस्तीक्ष्णैः कर्णद्रोणकृपादिभिः ॥४९॥
नानालिङ्गैः सुधौताग्रैर्मम पुत्रोऽल्पचेतनः ।
इह मे स्यात्परित्राणं पितेति स पुनः पुनः ॥५०॥
इत्येवं विलपन्मन्ये नृशंसैर्भुवि पातितः ।

चक्र-व्यूह में प्रवेश करने पर वह अवश्य सहायकों से हीन हो गया होगा और उसने उस समय मुझे अवश्य याद किया होगा। वह मेरा वीर पुत्र बहुत ही छोटी आयु का था। जब कर्ण, द्रोण और कृप आदि बड़े २ महारथियों ने उसे अनेक भांति के तीक्ष्ण, चमकते हुए बाणों से पीड़ित किया होगा तब उसने बार २ सोचा होगा, इस समय मेरे रक्षक मेरे पिता होते। वह तो इस प्रकार मेरा स्मरण कर रहा होगा और इन नीच कर्ण आदि कौरव वीरों ने उसे मार गिराया होगा ॥४९-५०॥

अथवा मत्प्रसूतः स स्वस्रीयो माधवस्य च ॥५१॥
सुभद्रायां च संभूतो न चैवं वक्तुमर्हति ।

अथवा वह तो मेरा पुत्र, श्रीकृष्ण का भानजा और सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, वह कब ऐसी दुर्बलता धारण कर सकता है। उसके विषय में ऐसा विचार भी नहीं करना चाहिए ॥५१॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥५२॥
अपश्यतो दीर्घबाहु रक्ताक्षं यन्न दीर्यते ।

यह सत्य है, कि मेरा हृदय वज्र का बना हुआ बड़ा ही कठोर है, जो दीर्घ बाहुधारी, रक्त-नेत्र-प्रान्त वाले अभिमन्यु को न देख कर भी नहीं फटता है ॥५२॥

कथं बाले महेष्वासा नृशंसा मर्मभेदिनः ॥५३॥
स्वस्रीये वासुदेवस्य मम पुत्रेऽक्षिपञ्शरान् ।

ये नीच, महाधनुर्धर कर्णादि कौरववीर, मर्म के भेदन करने वाले बाणों का श्रीकृष्ण के भानजे और मेरे पुत्र अभिमन्यु पर कैसे प्रहार कर सके ॥५३॥

यो मां नित्यमदीनात्मा प्रत्युद्गम्याऽभिनन्दति ॥५४॥
उपायान्तं रिपून्हत्वा सोऽद्य मां किं न पश्यति ।

जो निर्भीक योद्धा, नित्य मेरे सन्मुख आकर प्रणाम करता था, शत्रुओं का वध करके आये हुए मेरे सन्मुख आज वह अभिमन्यु क्यों नहीं आता है ॥५४॥

नूनं स पातितः शेते धरण्यां रुधिरोक्षितः ॥५५॥
शोभयन्मेदिनीं गात्रैरादित्य इव पातितः ।

यह निश्चय है, कि आज वह रुधिर में भीगा हुआ कहीं पृथिवी पर पड़ा सोता होगा और पृथिवी में भी टूट कर पड़े हुए सूर्य के सदृश रणभूमि को प्रदीप्त कर रहा होगा ॥५५॥

सुभद्रामनुशोचामि या पुत्रमपलायिनम् ॥५६॥
रणे विनिहतं श्रुत्वा शोकार्ता वै विनङ्क्ष्यति ।

मुझे तो सारी चिन्ता सुभद्रा की है। जब रण से पीठ नहीं मोड़ने वाले अपने वीर पुत्र का मरण सुनेगी, तो वह शोकमग्न होकर कहीं प्राण न छोड़ दे ॥५६॥

सुभद्रा वक्ष्यते किं मामभिमन्युमपश्यती ॥५७॥
द्रौपदी चैव दुःखार्तें ते च वक्ष्यामि किं त्वहम् ।

जब सुभद्रा अभिमन्यु को नहीं देखेगी, तो मुझे क्या कहेगी और दुःखी द्रौपदी का क्या हाल होगा तथा इनसे मैं किस मुंह को लेकर बात करूंगा ॥५७॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं यन्न यास्यति ॥५८॥
सहस्रधा वधूं दृष्ट्वा रुदतीं शोककर्शिताम् ।

मेरा हृदय वज्र से भी कितना कठोर विधाता ने बनाया है, जो अनेक भांति से विलाप करती हुई पुत्र-वधू उत्तरा को देखकर भी यह नहीं फटेगा ॥५८॥

हृष्टानां धार्तराष्ट्राणां सिंहनादो मया श्रुतः ॥५९॥
युयुत्सुश्चापि कृष्णेन श्रुतो वीरानुपालभन् ।

मैंने स्वयं धृतराष्ट्र के पुत्रों का सिंहनाद सुना था और युयुत्सु को वीरों को फटकारते हुए स्वयं श्रीकृष्ण ने सुना है ॥५९॥

अशक्नुवन्तो बीभत्सुं बालं हत्वा महारथाः ॥६०॥
किं मोदध्वमधर्मज्ञाः पाण्डवं दृश्यतां बलम् ।

युयुत्सु ने कहा—हे कौरव ! महारथियो ! तुम्हारा अर्जुन पर तो बल चलता नहीं है और इस बालक को मारकर गर्जना कर रहे

हो। अब तुम अधर्मपरक होकर क्या गरज रहे हो? कल अर्जुन का युद्ध देखना ॥६०॥

किं तयोर्विप्रियं कृत्वा केशवार्जुनयोर्मृधे ॥६१॥
सिंहवन्नदथ प्रीताः शोककाल उपस्थिते ।

तुम लोग श्रीकृष्ण और अर्जुन का रण में विप्रिय करके क्या हर्ष मना रहे हो और सिंह की भांति गर्जना करते हो, यह तो तुम्हें शोक उपस्थित करने वाली घटना खड़ी हुई है ॥६१॥

आगमिष्यति वः क्षिप्रं फलं पापस्य कर्मणः ॥६२॥
अधर्मो हि कृतस्तीव्रः कथं स्यादफलश्चिरम् ।

इस पाप कर्म का तुमको बहुत ही शीघ्र फल मिलेगा। यह तो बहुत ही बड़ा अधर्म किया है, जो चिरकाल तक बिना फल दिए नहीं रह सकता है ॥६२॥

इति तान्परिभाषन्वै वैश्यापुत्रो महामतिः ॥६३॥
अपायाच्छस्त्रमुत्सृज्य कोपदुःखसमन्वितः ।

राजा धृतराष्ट्र की भार्या वैश्यकन्या में उत्पन्न महामति युयुत्सु, इस प्रकार कहकर और कोप तथा दुःख से युक्त हुआ शस्त्र छोड़कर चल दिया ॥६३॥

किमर्थमेतन्नाऽऽख्यातं त्वया कृष्ण रणे मम ॥६४॥
अधक्षं तानहं क्रूरांस्तदा सर्वान्महारथान् ।

हे कृष्ण! तुमने उसी समय मुझको इस घटना का समाचार रण में क्यों नहीं सुनाया। मैं तो उसी समय उन सारे क्रूर महारथियों को एक साथ कोप की वह्नि में दग्ध कर देता ॥६४॥

सञ्जय उवाच—

पुत्रशोकार्दितं पार्थं ध्यायन्तं साश्रुलोचनम् ॥६५॥

निगृह्य वासुदेवस्तं पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ।

मैवमित्यब्रवीत्कृष्णस्तीव्रशोकसमन्वितम् ॥६६॥

सर्वेषामेष वै पन्थाः शूराणामनिवर्तिनाम् ।

क्षत्रियाणां विशेषेण येषां युद्धेन जीविका ॥६७॥

सञ्जय ने कहा—जब श्रीकृष्ण ने पुत्र शोक से व्याकुल, चिन्तातुर, रोते हुए व्यग्र अर्जुन को देखा—तो वे तीव्र शोकाग्नि में ग्रस्त अर्जुन से कहने लगे। हे वीर! तुम ऐसा न कहो। युद्ध से पराङ्मुख नहीं होने वाले यशस्वी वीरों को इस प्रकार उत्तम वीरगति प्राप्त होती है। क्षत्रियों को तो इस गति का प्राप्त कर लेना बड़ा यश का कार्य है, क्योंकि उनका जीवन ही युद्ध पर अवलम्बित है ॥६५-६७॥

एषा वै युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।

विहिता सर्वशास्त्रज्ञैर्गतिर्मतिमतां वर ॥६८॥

हे मतिमानों में श्रेष्ठ! इस प्रकार युद्ध में पीछे न हट कर वीर-गति प्राप्त करने वाले शूरवीरों का सारे शास्त्रज्ञाताओं ने ऊंचा पद माना है ॥६८॥

ध्रुवं हि युद्धे मरणं शूराणामनिवर्तिनाम् ।

गतः पुण्यकृतां लोकानभिमन्युर्न संशयः ॥६९॥

जो शूरवीर युद्ध से पीछे नहीं हटेगा, उसको वीरगति प्राप्त होनी ठहरी और इस तरह वह दिव्य लोकों को अवश्य जाता है। अभिमन्यु भी पुण्यलोकों में पहुंच गया-इसमें सन्देह नहीं है ॥६९॥

एतच्च सर्ववीराणां कांक्षितं भरतर्षभ।
संग्रामेऽभिमुखो मृत्युं प्राप्नुयादिति मानद ॥७०॥

हे भरतर्षभ! मनस्वी! अर्जुन! प्रत्येक क्षत्रियवीर तो केवल अपने हृदय में एक ही अभिलाषा रखता है, कि शत्रु के संमुख वीरता के साथ युद्ध करता हुआ ही मृत्यु प्राप्त करे ॥७०॥

स च वीरान्रणे हत्वा राजपुत्रान्महाबलान्।
वीरैराकांक्षितं मृत्युं सम्प्राप्तोऽभिमुखं रणे ॥७१॥

अभिमन्यु ने भी अपने सन्मुख आने वाले अनेक महाबली राजपुत्रों का वध करके वीरों द्वारा अभिलषित मृत्यु प्राप्त की है॥

मा शुचः पुरुषव्याघ्र पूर्वैरेष सनातनः।
धर्मकृद्भिः कृतो धर्मः क्षत्रियाणां रणे क्षयः ॥७२॥

हे पुरुषसिंह! तुम इसका शोक न करो। यह तो पूर्वजों का निश्चित किया हुआ मार्ग है। धर्म के जानने वालों ने क्षत्रियों का रण में मृत्यु प्राप्त करना सर्वश्रेष्ठ धर्म माना है ॥७२॥

इमे ते भ्रातरः सर्वे दीना भरतसत्तम।
त्वयि शोकसमाविष्टे नृपाश्च सुहृदस्तव ॥७३॥

हे भरतसत्तम! जब तुम इस तरह शोक में निमग्न हो रहे हो, तो तुम्हारे ये सारे भ्राता और मित्रभूत राजा भी बड़े ही दीन और मलिन हो रहे हैं ॥७३॥

एतांश्च वचसा साम्ना समाश्वास्य मानद ।
विदितं वेदितव्यं ते न शोकं कर्तुमर्हसि ॥७४॥

हे प्रशंसनीय ! वीर ! तुम्हें इन सबको शान्त वचनों द्वारा समझाना चाहिए । तुम तो सारे शास्त्रों के तत्वों के जानने वाले हो । तुम्हें इस प्रकार शोक से कातर नहीं होना चाहिए ॥७४॥

एवमाश्वासितः पार्थः कृष्णेनाऽद्भुतकर्मणा ।
ततोऽब्रवीत्तदा भ्रातॄन्सर्वान्पार्थः सगद्गदान् ॥७५॥

अद्भुत कर्म करने वाले श्रीकृष्ण ने जब अर्जुन को इतना समझाया तो वह गद्गदवाणी से अपने सारे भाइयों से कहने लगा ॥

स दीर्घबाहुः पृथ्वंसो दीर्घराजीवलोचनः ।
अभिमन्युर्यथा वृत्तः श्रोतुमिच्छाम्यहं तथा ॥७६॥

हे महाभागो ! दीर्घ भुजाधारी, विशाल स्कन्धों से सुशोभित, बड़ी २ कमल के सदृश आंखों वाले अभिमन्यु ने जो, रणकौशल कर दिखाया मैं उसे सुनना चाहता हूं ॥७६॥

सनागस्यन्दनहयान्द्रक्ष्यध्वं निहतान्मया ।
संग्रामे सानुबन्धांस्तान्मम पुत्रस्य वैरिणः ॥७७॥

अब मेरे पुत्र के मारने वाले कलके दिन हाथी, रथ और अश्वों के सवारों को अपनी २ सेना के साथ रण में मरे पड़े हुए देखेंगे ॥७७॥

कथं च वः कृतास्त्राणां सर्वेषां शस्त्रपाणिनाम् ।
सौभद्रो निधनं गच्छेद्वाज्रणाऽपि समागतः ॥७८॥

सब तरह से अस्त्र विद्या में कुशल, शस्त्रधारी, आप लोगों के विद्यमान रहने पर इन्द्र भी अभिमन्यु को नहीं मार सकता था, फिर अभिमन्यु कैसे मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥७८॥

यद्येवमहमज्ञास्यमशक्तान्रक्षणे मम ।
पुत्रस्य पाण्डुपञ्चालान्मया गुप्तो भवेत्ततः ॥७६॥

यदि मैं यह जानता, कि सारे पाण्डव और पाञ्चाल भी मेरे पुत्र अभिमन्यु की रक्षा नहीं कर सकेंगे-तो मैं उसकी स्वयं रक्षा करता रहता ॥७६॥

कथं च वो रथस्थानां शरवर्षाणि मुञ्चताम् ।
नीतोऽभिमन्युर्निधनं कदर्थीकृत्य वः परैः ॥८०॥

जब तुम लोग रथ में स्थित थे और बाण-वर्षा कर रहे थे, तो शत्रुओं ने आक्रमण करके अभिमन्यु को कैसे मृत्यु के अधीन कर दिया ॥८०॥

अहो वः पौरुषं नाऽस्ति न च वोऽस्ति पराक्रमः ।
यत्राऽभिमन्युः समरे पश्यतां वो निपातितः॥८१॥

इस दशा में तो यही कहना पड़ेगा, कि तुम में न तो पौरुष है और न कोई पराक्रम है, जो तुम लोगों के देखते २ अभिमन्यु रण में मार डाला गया ॥८१॥

आत्मानमेव गर्हेयं यदहं वै सुदुर्बलान् ।
युष्मानाज्ञाय निर्यातो भीरूनकृतनिश्चयान् ॥८२॥

मैं तुम्हारी क्या निन्दा करूं, मुझे तो अपनी ही मूर्खता की निन्दा करनी चाहिए, जो तुम दुर्बल, डरपोक, निश्चय-विहीन, लोगों पर सबका भार छोड़ कर चला गया ॥८२॥

आहोस्विद्‌रूपणार्थाय वर्मशस्त्रायुधानि वः ।
वाचस्तु वक्तुं संसत्सु मम पुत्रमरक्षताम् ॥८३॥

अब तो तुम्हारा कवच और शस्त्र-धारण केवल वेश-भूषा-मात्र रह गया । अब तुम लोग सभा में थोथी डींग मारने वाले हो, जो मेरे पुत्र अभिमन्यु की रक्षा नहीं कर सके ॥८३॥

एवमुक्त्वा ततो वाक्यं तिष्ठंश्चापवरासिमान् ।
न स्माऽशक्यत बीभत्सुः केनचित्प्रसमीक्षितुम् ।८४।

अर्जुन ने अपना गाण्डीव धनुष और उत्तम खड्ग धारण कर रखा था । अब वह इस प्रकार वचन कह कर चुप हो गया और किसी की ओर देखने को भी समर्थ नहीं हुआ ॥८४॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः ।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तमश्रुपूर्णमुखं तदा ॥८५॥
न भाषितुं शक्नुवन्ति द्रष्टुं वा सुहृदोऽर्जुनम् ।
अन्यत्र वासुदेवाद्वा ज्येष्ठाद्वा पाण्डुनन्दनात् ॥८६॥

इस प्रकार अन्तक की भांति क्रुद्ध होकर बार २ श्वास लेते हुए, पुत्र शोक से सन्तप्त, अश्रुओं से व्याप्त अर्जुन को देखकर मित्र राजा उसकी ओर देखने तक को भी समर्थ नहीं हुए । इस

समय वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण और धर्मराज युधिष्ठिर ही अर्जुन के समीप रह सके ॥८५-८६॥

सर्वास्ववस्थासु हितावर्जुनस्य मनोऽनुगौ ।
बहुमानात्प्रियत्वाच्च तावेनं वक्तुमर्हतः ॥८७॥

सारी अवस्थाओं में हितकारी अर्जुन के मन के अनुकूल रहने वाले श्रीकृष्ण और धर्मराज ही अर्जुन से वार्तालाप कर सकते थे, क्योंकि वे ही इसके मान के योग्य और अत्यन्त प्रिय व्यक्ति थे ॥८७॥

ततस्तं पुत्रशोकेन भृशं पीडितमानसम् ।
राजीवलोचनं क्रुद्धं राजा वचनमब्रवीत् ॥८८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनकोपे द्विसप्ततितमोऽध्यायः

इस प्रकार पुत्र शोक से अत्यन्त पीड़ित मनवाले, क्रुद्ध हुए कमल लोचन अर्जुन से धर्मराज इस प्रकार वचन बोले ॥८८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत प्रतिज्ञापर्व में अर्जुन के कोप का बहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ।



# तेहत्तरवां अध्याय

युधिष्ठिर उवाच—

त्वयि याते महाबाहो संशप्तकबलं प्रति ।
प्रयत्नमकरोत्तीव्रमाचार्यो ग्रहणे मम ॥१॥

युधिष्ठिर बोले—हे महाबाहो ! जब तुम संशप्तकों की सेना की ओर चले गए-तो आचार्य ने मेरे पकड़ने का बड़ा तीव्र प्रयत्न किया ॥१॥

व्यूढानीका वयं द्रोणं वारयामः स्म सर्वशः ।
प्रतिव्यूह्य रथानीकं यतमानं तथा रणे ॥२॥

हमने भी अपना व्यूह बना रखा था और द्रोणाचार्य को हम लोग, सब तरह से रोक रहे थे । द्रोणाचार्य भी अपनी रथसेना का व्यूह बना कर प्रयत्न कर रहे थे ॥२॥

स वार्यमाणो रथिभिर्मयि चापि सुरक्षिते ।
अस्मानभिजगामाऽऽशु पीडयन्निशितैः शरैः ॥३॥

हमारी रथी सेना और सब तरह से सुरक्षित मेरे प्रयत्न करने पर भी तीक्ष्ण बाणोंसे पीड़ित करता हुआ शीघ्रतासे आचार्य द्रोण हमारे पास तक बढ़ आए ॥३॥

ते पीड्यमाना द्रोणेन द्रोणानीकं न शक्नुमः ।
प्रतिवीक्षितुमप्याजौ भेत्तुं तत्कुत एव तु ॥४॥

द्रोण की सेना से हम लोग इतने पीड़ित हुए थे, कि रण में उसकी ओर देख भी नहीं सकते थे। उनके चक्रव्यूह का भेदन करना तो दूर की बात है ॥४॥

वयं त्वप्रतिमं वीर्ये सर्वे सौभद्रमात्मजम् ।
उक्तवन्तः स्म तं तात भिन्ध्यनीकमिति प्रभो ॥५॥

हे शक्तिशाली! जब यह दशा देखी, तो अद्वितीय पराक्रमी पुत्र अभिमन्यु से हम सबने कहा-हे तात! अब तुम जाओ और इस चक्रव्यूह का भेदन करो ॥५॥

स तथा नोदितोऽस्माभिः सदश्व इव वीर्यवान् ।
असह्यमपि तं भारं वोढुमेवोपचक्रमे ॥६॥

जब हम लोगों ने इतना कहा—तो शक्तिशाली उत्तम अश्व की तरह इस असह्य भार के उठाने में असमर्थ होकर भी वह इस भार के उठाने को तत्पर हो गया ॥६॥

स तवाऽस्त्रोपदेशेन वीर्येण च समन्वितः ।
प्राविशत्तद्बलं बालः सुपर्ण इव सागरम् ॥७॥

वह अपने पराक्रम और तुम्हारे सिखाये हुए अस्त्रोपदेश के द्वारा समुद्र में सुपर्ण ( गरुड़ ) की भांति उस सेना में घुस गया ॥

ते नु याता वयं वीरं सात्वतीपुत्रमाहवे ।
प्रवेष्टुकामास्तेनैव येन स प्राविशच्चमूम् ॥८॥

हम लोग भी रण में सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु के पीछे २ चल दिए और जिस द्वार को बनाकर उसने कौरव सेना के चक्रव्यूह में प्रवेश किया हमने भी उसी द्वार से भीतर घुसना चाहा ॥८॥

ततः सैन्धवको राजा क्षुद्रस्तात जयद्रथः ।
वरदानेन रुद्रस्य सर्वान्नः समवारयत् ॥६॥

हे तात ! इस समय महादेव के वरदान से शक्तिशाली बने हुए सिन्धुराज जयद्रथ ने हम सबको आगे नहीं बढ़ने दिया और वहीं रोक दिया ॥६॥

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिः कौसल्य एव च ।
कृतवर्मा च सौभद्रं षड्रथाः पर्यवारयन् ॥१०॥

इसके अनन्तर द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, कोशलराज बृहद्बल और कृतवर्मा-इन छः महारथियों ने सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु को घेर लिया ॥१०॥

परिवार्य तु तैः सर्वैर्युधि बालो महारथैः ।
यतमानः परं शक्त्या बहुभिर्विरथीकृतः ॥११॥

इन बहुत से महारथियों ने घेर कर उस बालक अभिमन्यु को रथहीन कर दिया, यद्यपि अभिमन्यु ने अपने बचाने का बहुत ही प्रयत्न किया ॥११॥

ततो दौःशासनिः क्षिप्रं तथा तैर्विरथीकृतम् ।
संशयं परमं प्राप्य दिष्टान्तेनाऽभ्ययोजयत् ॥१२॥

इसी समय दुःशासन-पुत्र आगे बढ़ा और उन महारथियों द्वारा रथ हीन किये हुए अभिमन्यु को अपने को बड़ी आपत्ति में डाल कर भी काल कवलित कर दिया ॥१२॥

स तु हत्वा सहस्राणि नराश्वरथदन्तिनाम् ।
अष्टौ रथसहस्राणि नव दन्तिशतानि च ॥१३॥
राजपुत्रसहस्रे द्वे वीरांश्चाऽलक्षितान्बहून् ।
बृहद्बलं च राजानं स्वर्गेणाऽऽजौ प्रयोज्य ह ॥१४॥
ततः परमधर्मात्मा दिष्टान्तमुपजग्मिवान् ।

अभिमन्यु ने सहस्रों वीर, अश्वारोही, गजारोही और रथी मार डाले। आठ हजार रथ और नौ सौ हाथियों का चूरा कर दिया। दो सहस्र राजपुत्र और असंख्य सैनिक वीर मार गिराए। राजा बृहद्बल को भी स्वर्ग में प्रेषित किया। यह सब कुछ करने पर महारथी अभिमन्यु फिर स्वयं भी काल के वश में हो गया॥१४॥

एतावदेव निर्वृत्तमस्माकं शोकवर्धनम् ॥१५॥
स चैवं पुरुषव्याघ्रः स्वर्गलोकमवाप्तवान् ।

यह महावीर, पुरुषश्रेष्ठ, अभिमन्यु जो स्वर्ग में चला गया, इस युद्ध में यही एक सबसे अधिक शोकजनक घटना हो गई है।

ततोऽर्जुनो वचः श्रुत्वा धर्मराजेन भाषितम् ॥१६॥
हा पुत्र इति निःश्वस्य व्यथितो न्यपतद्भुवि ।

अर्जुन, धर्मराज के ये वचन सुनकर पुत्र शोक से व्याकुल होकर पृथिवी में गिर पड़े॥१६॥

विषण्णवदनाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ॥१७॥
नेत्रैरनिमिषैर्दीनाः प्रत्यवैक्षन्परस्परम् ।

सारे वीरों का इस समय मुख सूख गया और वे धनञ्जय (अर्जुन) को घेर कर अनिमिष ( पलक झपकाये विना) नेत्रों से दीनता के साथ एक दूसरे को देखने लगे ॥१७॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां वासविः क्रोधमूर्छितः ॥१८॥
कम्पमानो ज्वरेणेव निःश्वसंश्च मुहुर्मुहुः।

जब इन्द्र-पुत्र अर्जुन की मूर्च्छा हटी-तो वे क्रोध में भर गए और ज्वर से आक्रान्त हुए के सदृश कांपने और बार २ श्वास लेने लगे ॥१८॥

पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य श्वसमानोऽश्रुनेत्रवान् ॥१९॥
उन्मत्त इव विप्रेक्षन्निदं वचनमब्रवीत्।

अर्जुन इस समय अपने हाथ मलने और आंखों में आंसू भर कर बार २ लम्बे श्वास लेने लगा। यह उन्मत्त (पागल) की भांति देखता हुआ इस प्रकार बोला ॥१९॥

अर्जुन उवाच—

सत्यं वः प्रतिजानामि श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम्।
न चेद्वधभयाद्भीतो धार्तराष्ट्रान्प्रहास्यति ॥२०॥

आज मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि कल राजा जयद्रथ को मार दूंगा, जो वह मृत्यु के भय से धृतराष्ट्र-पुत्रों को छोड़कर रण से भाग नहीं जावेगा ॥२०॥

न चाऽस्माञ्शरणं गच्छेत्कृष्णं वा पुरुषोत्तमम्।
भवन्तं वा महाराज श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥२१॥

हे महाराज! यदि वह हमारी, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण और आपकी शरण में नहीं आया-तो मैं कल उसे अवश्य मार लूंगा।

धार्तराष्ट्रप्रियकरं मयि विस्मृतसौहृदम्।
पापं बालवधे हेतुं श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥२२॥

यह धृतराष्ट्र-पुत्रों का तो हित कर रहा है और हमारे सारे सम्बन्ध का ध्यान छोड़ चुका है। यही बालक अभिमन्यु के वध का हेतु है। मैं इस जयद्रथ को कल अवश्य मार लूंगा ॥२२॥

रक्षमाणाश्च तं संख्ये ये मां योत्स्यन्ति केचन।
अपि द्रोणकृपौ राजञ्छादयिष्यामि ताञ्शरैः ॥२३॥

हे राजन्! जो इसकी रक्षा में तत्पर होकर द्रोण या कृप भी आगे बढ़ेंगे, तो मैं उनको भी बाणों से आच्छादित कर दूंगा।२३।

यद्येतदेवं संग्रामे न कुर्यां पुरुषर्षभाः।
मा स्म पुण्यकृतांल्लोकान्प्राप्नुयां शूरसम्मतान् ॥२४॥

हे पुरुषर्षभो! यदि मैं कल युद्ध में ऐसा नहीं कर सका-तो शूरवीरों को प्राप्त होने वाले पुण्यलोकों को मैं प्राप्त न कर सकूं।

ये लोका मातृहन्तॄणां ये चापि पितृघातिनाम्।
गुरुदारगतानां ये पिशुनानां च ये सदा ॥२५॥
साधूनसूयतां ये च ये चापि परिवादिनाम्।
ये च निक्षेपहर्तॄणां ये च विश्वासघातिनाम् ॥२६॥
भुक्तपूर्वां स्त्रियं ये च विन्दतामघशंसिनाम्।
ब्रह्मघ्नानां च ये लोका ये च गोघातिनामपि ॥२७॥

पायसं वा यवान्नं वा शाकं कृसरमेव वा ।
संयावापूपमांसानि ये च लोका वृथाऽश्नताम् ॥२८॥
तानह्वायाऽधिगच्छेयं न चेद्धन्यां जयद्रथम् ।

जो लोग, माता पिता के घाती, गुरुपत्नी गामी, पिशुन (चुगुल) साधुनिन्दक, व्यर्थ निन्दा करनेवाले, धरोहर के अपहारक विश्वासघाती, अन्य की भोगी हुई या विवाहिता स्त्री के अपहर्ता, अन्य के पापों के प्रकाशक, ब्रह्मघाती, गो घाती, खीर, यवान्न, शाक, कृसर, (उत्तम चांवल) संयाव (हलवा) पूवे, मांस आदि भोजन को देव पितरों के अर्पण किये बिना खाने वाले लोगों को जिन लोकों की प्राप्ति होती है, उनकी ही मुझे प्राप्ति होवे-जो कल मैं जयद्रथ को न मार डालूं ॥२५-२ ॥

वेदाध्यायिनमत्यर्थं संशित वा द्विजोत्तमम् ॥२६॥
अवमन्यमानो यान्याति वृद्धान्साधून्गुरूंस्तथा ।
स्पृशतो ब्राह्मणं गां च पादेनाऽग्निं च या भवेत् ॥३०॥
याऽप्सु श्लेष्मपुरीषं च मूत्रं वा मुञ्चतां गतिः ।
तां गच्छेयं गतिं कष्टां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥३१॥

वेदपाठी, अत्यन्त व्रतशील द्विजश्रेष्ठ, वृद्ध, गुरु, साधु पुरुषों का जो अपमान करता है, जो पैर से ब्राह्मण और अग्नि को छूता है, जो जल में थूकता, खखारता और मलमूत्रोत्सर्ग कर देता है, उसकी जो गति होती है, वही मेरी हो; जो मैं कल राजा जयद्रथ का वध न कर डालूं ॥२६-३१॥

नग्नस्य स्नायमानस्य या च वन्ध्यातिथेर्गतिः ।
उत्कोचिनां मृषोक्तीनां वञ्चकानां च या गतिः ।।३२।।

आत्मापहारिणां या च या च मिथ्याभिशंसिनाम् ।
भृत्यैः सन्दिश्यमानानां पुत्रदाराश्रितैस्तथा ।।३३।।

असंविभज्य क्षुद्राणां या गतिर्मिष्टमश्नताम् ।
तां गच्छेयं गतिं घोरां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ।।३४।।

जो नग्न होकर स्नान करते हैं, जिनके घर से अतिथि विना संस्कार जाते हैं, जो राजकर्मचारी घूंस (रिश्वत) लेते हैं, जो मिथ्या बोलते और संसार को ठगते हैं, जो अपनी आत्मा के साथ भी विश्वासघात करते हैं और मिथ्या आडम्बर दिखाते हैं, अपने तथा अपने पुत्र और भार्या आदि के छोटे २ सेवकों को विना मिष्ट भोजन प्रदान किये आप ही खा लेते हैं, उन लोगों को जो गति प्राप्त हो, वह मुझे मिले-जो कल सिन्धुराज जयद्रथ का वध न कर सकूं ॥३२-३४॥

संश्रितं चापि यस्त्यक्त्वा साधुं तद्वचने रतम् ।
न बिभर्ति नृशंसात्मा निन्दते चोपकारिणम् ।।३५।।

अर्हते प्रातिवेश्याय श्राद्धं यो न ददाति च ।
अनर्हेभ्यश्च यो दद्या द्वृषलीपतये तथा ।।३६।।

मद्यपो भिन्नमर्यादः कृतघ्नो भर्तृनिन्दकः ।
तेषां गतिमियां क्षिप्रं न चेद्धन्यां जयद्रथम् ।।३७।।

जो अपने आश्रित और अपने वचन में श्रद्धा रखनेवाले की यथाशक्ति सहायता नहीं करता और जो नीच, उपकारी की निन्दा करता है, योग्य पड़ोसी को श्राद्ध में दान नहीं करता तथा अयोग्य व्यक्ति और शूद्रा के पति को दान कर देता है, सुरापान करने वाले, मर्यादा हीन, कृतघ्न, स्वामी निन्दकों की जो गति होती है, वही मेरी गति हो-जो मैं कल जयद्रथ का वध न कर लूं।

भुञ्जानानां तु सव्येन उत्सङ्गे चापि खादताम् ।
पालाशमासनं चैव तिन्दुकैर्दन्तधावनम् ॥३८॥
ये चाऽवर्जयतां लोकाः स्वपतां च तथोषसि ।
शीतभीताश्च ये विप्रा रणभीताश्च क्षत्रियाः ॥३९॥

बांयें हाथ तथा गोदी में रख कर और ढाक के पट्टे पर बैठ कर खाने वाले, तिन्दुक वृक्ष की दांतुन करने वाले, धर्म के नियमों को न मानने वाले, उषा काल में सोने वाले, शीत से डर कर स्नान नहीं करने वाले ब्राह्मण और रण से डरने वाले क्षत्रियों को जो गति मिलती है, वही मुझे प्राप्त हो-जो कल जयद्रथ का वध न करूँ ॥३८-३९॥

एककूपोदकग्रामे वेदध्वनिविवर्जिते ।
षण्मासं तत्र वसतां तथा शास्त्रं विनिन्दताम् ॥४०॥
दिवा मैथुनिनां चापि दिवसेषु च शेरते ।
अगारदाहिनां चैव गरदानां च ये मताः ॥४१॥

अग्न्यातिथ्यविहीनाश्च गोपानेषु च विघ्नदाः ।
रजस्वलां सेवयन्तः कन्यां शुल्केन दायिनः ॥४२॥
या च वै बहुयाजिनां ब्राह्मणानां श्ववृत्तिनाम् ।
आस्यमैथुनिकानां च ये दिवा मैथुने रताः ॥४३॥
ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यो वै लोभाद्ददाति न ।
तेषां गतिं गमिष्यामि श्वो न हन्यां जयद्रथम् ॥४४॥

एक कुवे पर ही सारे जल भरने वाले मनुष्यों से युक्त और वेदध्वनि से हीन, ग्राम में छः महीने निवास करने तथा शास्त्र की निन्दा करने वाले, दिन में मैथुनसेवी और सोने वाले, आग लगाकर घर फूंक देने तथा विष देने वाले, हवन और अतिथि सेवा से विहीन, गौओं के जलपान के स्थान में विघ्नकारी, रजस्वला से मैथुन करने वाले, कन्या विक्रयी, बहुतों को यज्ञ करा कर कुत्ते की तरह घूमने वाले, मुख तथा दिन में ही मैथुन के अभ्यासी, ब्राह्मण को प्रतिज्ञा करके भी लोभ से नहीं देने वाले, मनुष्यों को जो गति प्राप्त होती है, वही मुझे प्राप्त हो; यदि कल राजा जयद्रथ का वध न कर सकूं ॥४०-४४॥

धर्मादपेता ये चाऽन्ये मया नात्राऽनुकीर्तिताः ।
ये चाऽनुकीर्तितास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम् ॥४५॥
यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम् ।

धर्महीन जिन बातों का मैंने वर्णन नहीं किया या जिनका उल्लेख कर दिया है, उनकी दुर्गति को मैं शीघ्र ही प्राप्त करूं-जो इस रात के समाप्त होते ही कल जयद्रथ का वध न कर डालूं ॥४५॥

इमां चाप्यपरां भूयः प्रतिज्ञां मे निबोधत ॥४६॥
यद्यस्मिन्नहते पापे सूर्योऽस्तमुपयास्यति ।
इहैव स प्रवेष्टाऽहं ज्वलितं जातवेदसम् ॥४७॥

अब तुम लोग मेरी दूसरी प्रतिज्ञा को सुनो, कि यदि इस अपराधी राजा जयद्रथ के मारे विना कल सूर्य अस्त हो गया-तो मैं यहीं पर सबके सन्मुख प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर जाऊंगा ॥४७॥

असुरसुरमनुष्याः पक्षिणो वोरगा वा,
पितृरजनिचरा वा ब्रह्मदेवर्षयो वा ।
चरमचरमपीदं यत्परं चापि तस्मा
त्तदपि मम रिपुं तं रक्षितुं नैव शक्ताः ॥४८॥

असुर, सुर, मनुष्य, पक्षी, उरग, पितर, रजनीचर, ब्रह्मर्षि, देवर्षि या जितनी यह चराचर सृष्टि है, यदि वह भी जयद्रथ की रक्षा करना चाहेंगे-तो नहीं कर सकेंगे ॥४८॥

यदि विशति रसातलं तदग्र्यं वियदपि देवपुरं दितेः पुरं वा ।
तदपि शरशतैरहं प्रभाते भृशमभिमन्युरिपोः शिरोऽभिहर्ता ॥

यदि सिन्धुराज जयद्रथ छुपने के लिए उत्तम रसातल, आकाश, देवलोक या दैत्यलोक कहीं भी चला जावे, तो भी मैं कल प्रातःकाल इस अभिमन्यु के शत्रु जयद्रथ का अपनी बाण-वर्षा से अवश्य शिर काट गिराऊंगा ॥४६॥

एवमुक्त्वा विचिक्षेप गाण्डीवं सव्यदक्षिणम् ।
तस्य शब्दमतिक्रम्य धनुःशब्दोऽस्पृशद्दिवम् ॥५०॥

इतना कह कर अर्जुन ने बायीं और दायीं ओर से गाण्डीव धनुष की ध्वनि की। इस धनुष की ध्वनि सारी ध्वनियों को दाब कर आकाश में छा गई ॥५०॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञाते पाञ्चजन्यं जनार्दनः।
प्रदध्मौ तत्र संक्रुद्धो देवदत्तं च फाल्गुनः ॥५१॥

जब अर्जुन ने इस प्रकार प्रतिज्ञा की, तो श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया और क्रोधातुर अर्जुन ने अपना देवदत्त शङ्ख बजाया ॥५१॥

स पाञ्चजन्योऽच्युतवक्त्रवायुना भृशं सुपूर्णो दरनिःसृतध्वनिः
जगत्सपातालवियद्दिगीश्वरं प्रकम्पयामास युगात्यये यथा ॥

श्रीकृष्ण के मुख की वायु से अत्यन्त भरा हुआ और थोड़े २ वायु के निकलने से निकली हुई शङ्ख की ध्वनि से सारे मृत्युलोक, पाताल, आकाश और दिशाएँ भर गईं और वे सब इस तरह कांपने लगे जैसे प्रलयकाल में जगत् कांपने लगता है ॥५२॥

ततो वादित्रघोषाश्च प्रादुरासन्सहस्रशः।
सिंहनादश्च पाण्डूनां प्रतिज्ञाते महात्मना ॥५३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनप्रतिज्ञायां
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

जब महावीर अर्जुन ने इस प्रकार प्रतिज्ञा की तो सहस्रों प्रकार से बाजे बजने और बड़े वेग से पाण्डववीर गर्जना करने लगे ॥५३॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत प्रतिज्ञापर्व में अर्जुन की प्रतिज्ञा का तेहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ

# चौहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

श्रुत्वा तु तं महाशब्दं पाण्डूनां जयगृद्धिनाम् ।
चारैः प्रवेदिते तत्र समुत्थाय जयद्रथः ॥१॥
शोकसम्मूढहृदयो दुःखेनाऽभिपरिप्लुतः ।
मज्जमान इवाऽगाधे विपुले शोकसागरे ॥२॥
जगाम समितिं राज्ञां सैन्धवो विमृशन्बहु ।
स तेषां नरदेवानां सकाशे पर्यदेवयत् ॥३॥
अभिमन्योः पितुर्भीतः सव्रीडो वाक्यमब्रवीत् ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जय के अभिलाषी पाण्डवों की इस गर्जना को सुनकर कौरवों के गुप्तचरों ने उठकर राजा जयद्रथ से यह सारा समाचार कहा। यह इस बात को सुनकर बड़ा दुःखी हुआ। इसका शोक में हृदय डूब गया और उसे ऐसा प्रतीत होने लगा-जैसे अगाध और विस्तृत शोक सागर में डूब रहा हो। यह सिन्धुराज बहुत कुछ सोचता विचारता हुआ राजाओं की

सभा में पहुंचा और वहां राजाओं के पास अनेक तरह से रोता चिल्लाता हुआ अभिमन्यु के पिता अर्जुन से डर कर लज्जापूर्वक यह वचन बोला ॥१-३॥

योऽसौ पाण्डोः किल क्षेत्रे जातः शक्रेण कामिना ॥
स निनीषति दुर्बुद्धिर्मां किलैकं यमक्षयम् ।
तत्स्वस्ति वोऽस्तु यास्यामि स्वगृहं जीवितेप्सया ॥५॥

जो पाण्डु के क्षेत्र (भार्या) में कामी इन्द्र ने उत्पन्न किया है, वह दुर्बुद्धि अर्जुन, मुझे आज यमराज के घर पहुंचाना चाहता है। अब आपका कल्याण हो-मैं तो अपना जीवन बचाने के लिए अपने घर जाता हूं ॥४-५॥

अथवाऽस्त्रप्रतिबलास्त्रात मां क्षत्रियर्षभाः ।
पार्थेन प्रार्थितं वीरास्ते सन्दत्त ममाऽभयम् ॥६॥

हे क्षत्रियर्षभो ! मैं तो अब भी यही चाहता हूं, कि युद्ध में तुम लोग मेरी रक्षा करो। हे वीरो ! अर्जुन ने जो प्रतिज्ञा की है, उससे तुम लोग बचाने की प्रतिज्ञा करके मुझे निर्भय करो ॥६॥

द्रोणदुर्योधनकृपाः कर्णमद्रेशबाल्हिकाः ।
दुःशासनादयः शक्तास्त्रातुं मामन्तकार्दितम् ॥७॥
किमङ्ग पुनरेकेन फाल्गुनेन जिघांसता ।
न त्रायेयुर्भवन्तो मां समस्ताः पतयः क्षितेः ॥८॥
प्रहर्षं पाण्डवेयानां श्रुत्वा मम महद्भयम् ।
सीदन्ति मम गात्राणि मुमूर्षोरिव पार्थिवाः ॥९॥

द्रोण, दुर्योधन, कृप, कर्ण, मद्रराज शल्य, वाल्हिकराज और दुःशासनादि कौरव वीर मेरी काल से भी रक्षा कर सकते हैं। हे वीरो! अकेले अर्जुन की क्या शक्ति है, जो मेरा विनाश कर सके। क्या तुम सारे पृथिवीपति मेरी रक्षा करने में असमर्थ हो। हे नृपो! यह सुन कर तो मेरे गात्र शिथिल और पीड़ित हुए जा रहे हैं। पाण्डवों की इस हर्ष ध्वनि को सुनकर मुझे बड़ा ही भय खड़ा हो गया है ॥७-६॥

वधो नूनं प्रतिज्ञातो मम गाण्डीवधन्वना।
तथा हि हृष्टाः क्रोशन्ति शोककाले स्म पाण्डवाः ॥१०॥

गाण्डीवधारी अर्जुन ने मेरे वध की अवश्य प्रतिज्ञा की है, जिससे अभिमन्यु के शोक के समय में भी पाण्डव प्रसन्न हो रहे हैं।

तन्न देवा न गन्धर्वा नाऽसुरोरगराक्षसाः।
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुं कुत एव नराधिपाः ॥११॥

अर्जुन की प्रतिज्ञा को देव, गन्धर्व, असुर, उरग और राक्षस कोई भी विपरीत करने में समर्थ नहीं है, फिर तुम नृपति गण क्या इसे मिथ्या कर सकते हो ॥११॥

तस्मान्मामनुजानीत भद्रं वोऽस्तु नरर्षभाः।
अदर्शनं गमिष्यामि न मां द्रक्ष्यन्ति पाण्डवाः ॥१२॥

हे नरश्रेष्ठ! इससे तो यही अच्छा है, कि तुम लोग मुझे छुट्टी दे दो। मैं यहां से कहीं भाग जाऊंगा, जिससे पाण्डव मुझे देख ही नहीं सकेंगे ॥१२॥

एवं विलपमानं तं भयाद्व्याकुलचेतसम् ।
आत्मकार्यगरीयस्त्वाद्राजा दुर्योधनोऽब्रवीत्॥१३॥

इस प्रकार राजा जयद्रथ भय से व्याकुल होकर विलाप कर रहा था, कि अपने कार्य के गौरव से कुरुवंश श्रेष्ठ, राजा दुर्योधन उससे यह वचन कहने लगा ॥१३॥

न भेतव्यं नरव्याघ्र को हि त्वां पुरुषर्षभ ।
मध्ये क्षत्रियवीराणां तिष्ठन्तं प्रार्थयेद्युधि ॥१४॥

हे नरश्रेष्ठ ! पुरुषर्षभ ! तुम डरो नहीं, किसकी शक्ति है, जो हम क्षत्रिय वीरों के मध्य में युद्ध के समय तुम्हारी ओर दृष्टि उठाकर देख सके ॥१४॥

अहं वैकर्त्तनः कर्णश्चित्रसेनो विविंशतिः ।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनो दुरासदः ॥१५॥
पुरुमित्रो जयो भोजः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
सत्यव्रतो महाबाहुर्विकर्णो दुर्मुखश्च ह ॥१६॥
दुःशासनः सुबाहुश्च कालिङ्गश्चाऽप्युदायुधः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ द्रोणो द्रौणिश्च सौबलः ॥१७॥
एते चाऽन्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ।
ससैन्यास्त्वाऽभियास्यन्ति व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥१८॥

मैं, सूर्यपुत्र कर्ण, चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल, शल्य, दुरासद वृषसेन, पुरुमित्र, जय, भोज, कम्बोजराज सुदक्षिण, महाबाहु सत्यव्रत, विकर्ण, दुर्मुख, दुःशासन, सुबाहु, शस्त्रधारी

कलिङ्गराज, अवन्तिराज विन्द और अनुविन्द, द्रोण, अश्वत्थामा, सुबल-पुत्र शकुनि आदि अनेक देशों के अधीश्वर सेना के सहित तुम्हारी रक्षा में रहेंगे-तुम चिन्ता न करो और अपने मन के ज्वर को शान्त करो ॥१५-१८॥

त्वं चापि रथिनां श्रेष्ठ स्वयं शूरोऽमितद्युते ।
स कथं पाण्डवेयेभ्यो भयं पश्यसि सैन्धव ॥१९॥

हे अमितद्युते ! तुम स्वयं ही बड़े शूरवीर हो-फिर पाण्डवों से कैसे भय कर रहे हो ॥१९॥

अक्षौहिण्यो दशैका च मदीयास्तव रक्षणे ।
यत्ता योत्स्यन्ति मा भैस्त्वं सैन्धव व्येतु ते भयम् ॥२०॥

हे सिन्धुराज ! मेरी सारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना तुम्हारी रक्षा में तत्पर हैं । ये सब सेना बड़ी सावधानी से युद्ध करेगी-तुम डरो नहीं, सारे डर को दूर विदा करो ॥२०॥

सञ्जय उवाच—

एवमाश्वासितो राजन्पुत्रेण तव सैन्धवः ।
दुर्योधनेन सहितो द्रोणं रात्रावुपागमत् ॥२१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने सिन्धुराज जयद्रथ को आश्वासन दिया । अब जयद्रथ राजा दुर्योधन को साथ लेकर रात में ही द्रोणाचार्य के शिविर में पहुंचा ॥२१॥

उपसंग्रहणं कृत्वा द्रोणाय स विशाम्पते ।
उपोपविश्य प्रणतः पर्यपृच्छदिदं तदा ॥२२॥

हे विशाम्पते! राजा जयद्रथ ने प्रथम द्रोणाचार्य के चरणों का स्पर्श किया और फिर बहुत निकट बैठकर नम्रता के साथ यह पूछा ॥२२॥

निमित्ते दूरपातित्वे लघुत्वे दृढवेधने ।
मम ब्रवीतु भगवान्विशेषं फाल्गुनस्य च ॥२३॥
विद्याविशेषमिच्छामि ज्ञातुमाचार्य तत्त्वतः ।
अर्जुनस्याऽऽत्मनश्चैव याथातथ्यं प्रचक्ष्व मे ॥२४॥

हे भगवन्! आप तनिक यह बताइये, कि लक्ष्य-बेधन, दूर तक बाण फेंकने, लघुत्व (फुर्ती) और दृढ़ आघात करने में अर्जुन और मुझ में क्या विशेषता (फर्क) है। हे आचार्य! मैं धनुर्विद्या के इस तारतम्य (फर्क) को ठीक २ जानना चाहता हूं। आप मुझे इसका ठीक २ निरूपण कर दीजिए ॥२४॥

द्रोण उवाच—

सममाचार्यकं तात तव चैवाऽर्जुनस्य च ।
योगाद् दुःखोषितत्वाच्च तस्मात्त्वत्तोऽधिकोऽर्जुनः ॥२५

हे राजन्! जयद्रथ! तुम्हें और अर्जुन को धनुर्विद्या की शिक्षा समान ही मिली है, परन्तु योगसाधन (अभ्यास) और वनवास के दुःखों के कारण अर्जुन की शक्ति तुम से बढ़ गई है ॥२५॥

न तु ते युधि सन्त्रासः कार्यः पार्थात्कथञ्चन ।
अहं हि रक्षिता तात भयात्त्वां नाऽत्र संशयः ॥२६॥

हे तात ! यह सब कुछ है, परन्तु तुम अर्जुन से डरो मत। इस भय से मैं रण में तुम्हारी रक्षा करूंगा-इसमें सन्देह नहीं है।

न हि मद्बाहुगुप्तस्य प्रभवन्त्यमरा अपि।
व्यूहयिष्यामि तं व्यूहं यं पार्थो न तरिष्यति ॥२७॥

मैं जिसकी रक्षा में तत्पर हो जाऊंगा, मेरी बाहुओं की छाया में स्थित उस वीर को मारने में देवता भी समर्थ नहीं हो सकेंगे। मैं वह व्यूह रचना करूंगा-जिसका अर्जुन कभी पार नहीं पा सकेगा ॥२७॥

तस्माद्युद्ध्यस्व मा भैस्त्वं स्वधर्ममनुपालय।
पितृपैतामहं मार्गमनुयाहि महारथ ॥२८॥

हे महारथी ! तुम अपने धर्म के पालन को तय्यार हो जाओ और गाढ़ा युद्ध करो-इस भय से पिता और पितामह के वीर-मार्ग का परित्याग न करो ॥२८॥

अधीत्य विधिवद्वेदानग्नयः सुहुतास्त्वया।
इष्टं च बहुभिर्यज्ञैर्न ते मृत्युर्भयङ्करः ॥२९॥

हे सिन्धुराज ! तुमने विधि-पूर्वक वेदों का अध्ययन और अनेक प्रकार से यज्ञों का अनुष्ठान किया है। यज्ञों द्वारा अग्नि को अनेक बार तृप्त किया, तुमको मृत्यु से भय नहीं करना चाहिए।

दुर्लभं मानुषैर्मन्दैर्महाभाग्यमवाप्य तु।
भुजवीर्यार्जिताँल्लोकान्दिव्यान्प्राप्स्यस्यनुत्तमान् ॥३०॥

मूर्ख मनुष्य, इस मनुष्य देह जैसे उत्तम ऐश्वर्य को पाकर भी विषयों में फँस जाते हैं। तुम वीरता के साथ युद्ध कर्म करते हुए अपने पराक्रम से सर्वश्रेष्ठ दिव्य लोकों को प्राप्त करो ॥३०॥

कुरवः पाण्डवाश्चैव वृष्णयोऽन्ये च मानवाः।
अहं च सह पुत्रेण अध्रुवा इति चिन्त्यताम् ॥३१॥

हे राजन्! कौरव, पाण्डव, वृष्णि तथा अन्य वीर, मैं और मेरा पुत्र अश्वत्थामा-सब ही तो एक दिन इस संसार से विदा हो जाने वाले हैं ॥३१॥

पर्यायेण वयं सर्वे कालेन बलिना हताः।
परलोकं गमिष्यामः स्वैः स्वैः कर्मभिरन्विताः ॥३२॥

पर्याय (नम्बर वार) बलवान् काल हम सबको मार लेगा, इस प्रकार अपने २ कर्मानुसार हम लोग एक दिन परलोक को अवश्य जावेंगे ॥३२॥

तपस्तप्त्वा तु यांल्लोकान्प्राप्नुवन्ति तपस्विनः।
क्षत्रधर्माश्रिता वीराः क्षत्रियाः प्राप्नुवन्ति तान् ॥

तपस्वी, बड़ा कठिन तप करके जिन उत्तम लोकों की प्राप्ति करते हैं; क्षत्रिय वीर अपने क्षत्रधर्म में स्थित हुए थोड़े ही काल में उन दिव्यलोकों को पा लेते हैं ॥३३॥

एवमाश्वसितो राजा भारद्वाजेन सैन्धवः।
अपानुदद्भयं पार्थाद्युद्धाय च मनो दधे ॥३४॥

हे राजन् ! इस प्रकार भरद्वाजवंशोत्पन्न द्रोणाचार्यने सिन्धुराज को बहुत कुछ ढ़ाढ़स बँधाया। इन्होंने उसका अर्जुन से उत्पन्न हुआ भय दूर कर दिया और इसको युद्ध के लिए उत्साहित बना दिया।

ततः प्रहर्षः सैन्यानां तवाऽप्यासीद्विशाम्पते।
वादित्राणां ध्वनिश्चोग्रः सिंहनादरवैः सह ॥३५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि जयद्रथाश्वासे
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

हे विशाम्पते ! इस समय तुम्हारी सेना में भी हर्ष-जनित कोलाहल और वीरों के सिंहनाद के साथ बाजों की उग्र ध्वनि होने लगी ॥३५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत प्रतिज्ञापर्व में राजा जयद्रथ
के आश्वासन का चौहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ

---

# पिचहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

प्रतिज्ञाते तु पार्थेन सिन्धुराजवधे तदा।
वासुदेवो महाबाहुर्धनञ्जयमभाषत ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! जब अर्जुन ने सिन्धुराज जयद्रथ के मारने की प्रतिज्ञा की, तो महाबाहु श्रीकृष्ण, अर्जुन से बोले ॥१॥

भ्रातृणां मतमज्ञाय त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ।
सैन्धवं चाऽस्मि हन्तेति तत्साहसमिदं कृतम् ॥२॥

हे अर्जुन ! तुमने अपने भ्राताओं के मत को बिना जाने यह कठोर प्रतिज्ञा कर ली, कि मैं सिन्धुराज को कल मार के छोड़ूंगा। यह तो बहुत ही अनुचित साहस किया है ॥२॥

असम्मन्त्र्य मया सार्धमतिभारोऽयमुद्यतः ।
कथं तु सर्वलोकस्य नाऽवहास्या भवेमहि ॥३॥

तुमने इस विषय में मुझ से भी तो कुछ नहीं पूछा और बड़ा भार अपने ऊपर ले लिया। यदि तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण न हुई तो फिर हम लोग सारे जगत् के उपहास के पात्र होंगे ॥३॥

धार्त्तराष्ट्रस्य शिविरे मया प्रणिहिताश्चराः ।
त इमे शीघ्रमागम्य प्रवृत्तिं वेदयन्ति नः ॥४॥
त्वया वै सम्प्रतिज्ञाते सिन्धुराजवधे प्रभो ।
सिंहनादः सवादित्रः सुमहानिह तैः श्रुतः ॥५॥
तेन शब्देन वित्रस्ता धार्तराष्ट्राः ससैन्धवाः ।
नाऽकस्मात्सिंहनादोऽयमिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥६॥

मैंने कौरवों के शिविरों में गुप्तचर भेज रखे थे, उन्होंने दौड़ कर यह समाचार सुनाया है, कि जब तुमने सिन्धुराज के वध की प्रतिज्ञा की, उस समय अपनी सेना में बाजों की ध्वनि के साथ महान् ध्वनि हुई। उसी शब्द से कौरव और सैन्धव वीर चौकन्ने

हो गए। उन्होंने यह अनुमान करके कि यह सिंहनाद बिना कारण नहीं हो रहा है, वे बड़े सावधान हो गए हैं ॥४-६॥

सुमहाञ्शब्दसम्पातः कौरवाणां महाभुज ।
आसीन्नागाश्वपत्तीनां रथघोषश्च भैरवः ॥७॥

हे महाभुज ! देखो ? यह कौरव सेना में कैसा घोर सिंहनाद हो रहा है। यह रथ, अश्व, हाथी और पैदल सैनिकों का मिला हुआ भीषण कोलाहल सुनाई दे रहा है ॥७॥

अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा ध्रुवमार्त्तो धनञ्जयः ।
रात्रौ निर्यास्यति क्रोधादिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥८॥

उन्होंने समझा है, कि अभिमन्यु के वध को सुनकर दुःखी अर्जुन आज क्रोध से रात में ही युद्ध को कहीं न निकल आवे-ऐसा ध्यान करके वे बड़े सावधान हो रहे हैं ॥८॥

तैर्यतद्भिरियं सत्या श्रुता सत्यव्रतस्तव ।
प्रतिज्ञा सिन्धुराजस्य वधे राजीवलोचन ॥९॥

हे कमललोचन ! कौरवों ने भी प्रयत्न करके तुम सत्यव्रतधारी की इस सत्य प्रतिज्ञा को सुन लिया है, जो सिन्धुराज के वध के निमित्त तुमने की है ॥९॥

ततो विमनसः सर्वे त्रस्ताः क्षुद्रमृगा इव ।
आसन्सुयोधनामात्याः स च राजा जयद्रथः ॥१०॥

इस प्रतिज्ञा को सुनकर राजा दुर्योधन के मन्त्री और स्वयं राजा जयद्रथ भी क्षुद्र मृग की तरह भयभीत हो गए हैं ॥१०॥

अथोत्थाय सहामात्यैर्दीनः शिविरमात्मनः ।

आयात्सौवीरसिन्धूनामीश्वरो भृशदुःखितः ।।११।।

इस प्रतिज्ञा को सुन उदासीन चित्त होकर सौवीर और सिन्धुदेशाधिपति राजा जयद्रथ अत्यन्त दुःखी हुआ अपने शिविर में पहुंचा ।।११।।

स मन्त्रकाले सम्मन्त्र्य सर्वां नैःश्रेयसीं क्रियाम् ।

सुयोधनमिदं वाक्यमब्रवीद्राजसंसदि ।।१२।।

इसने मन्त्रानुसार समय पर सारी कल्याणकारिणी मन्त्रणा करके राजसभा में राजा दुर्योधन से यह वचन कहा है ।।१२।।

मामसौ पुत्रहन्तेति श्वोऽभियाता धनञ्जयः ।

प्रतिज्ञातो हि सेनाया मध्ये तेन वधो मम ।।१३।।

हे राजन् ! दुर्योधन ! अर्जुन मुझे ही अपने पुत्र अभिमन्यु का घातक मानकर कल मुझ पर आक्रमण करेगा। उसने अपनी सेना में मेरे वध की प्रतिज्ञा भी कर ली है ।।१३।।

तां न देवा न गन्धर्वा नाऽसुरोरगराक्षसाः ।

उत्सहन्तेऽन्यथाकर्तुं प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ।।१४।।

सव्यसाची अर्जुन के प्रतिज्ञा को विपरीत करने की शक्ति देव, गन्धर्व, असुर, उरग, राक्षस आदि किसी में भी नहीं है ।।१४।।

ते मां रक्षत संग्रामे मा वो मूर्ध्नि धनञ्जयः ।

पदं कृत्वाऽऽप्नुयाल्लक्ष्यं तस्मादत्र विधीयताम् ।।१५।।

हे वीरो ! अब आप लोगों को युद्ध में मेरी रक्षा करनी चाहिए। कहीं अर्जुन तुम लोगों के मस्तक पर पैर रख कर अपने लक्ष्य को बींध न डाले। तुम लोगों को कल यही गाढ़ा प्रयत्न करना चाहिए ॥१५॥

अथ रक्षा न मे संख्ये क्रियते कुरुनन्दन।
अनुजानीहि मां राजन्गमिष्यामि गृहान्प्रति ॥१६॥

हे कुरुनन्दन ! जो रण में तुम लोगों से मेरी रक्षा न हो सके तो हे राजन ! आप लोग मुझे अनुज्ञा (इजाजत) प्रदान करें, जिससे मैं अपने घर जाऊं ॥१६॥

एवमुक्तस्त्वधाक्शीर्षो विमानः स सुयोधनः।
श्रुत्वा तं समयं तस्य ध्यानमेवाऽन्वपद्यत ॥१७॥

इस कथन को सुनकर राजा दुर्योधन उदास होकर नीचा मुख किए हुए बैठा रहा। तुम्हारी इस प्रतिज्ञा को सुनकर वह बड़ा ही ध्यान-मग्न हो गया ॥१७॥

तमार्तमभिसम्प्रेक्ष्य राजा किल स सैन्धवः।
मृदु चाऽऽत्महितं चैव सापेक्षमिदमुक्तवान् ॥१८॥

राजा दुर्योधन को दुःखी देखकर सिन्धुराज, नम्रता युक्त अपने हितकारी आक्षेप-पूर्वक यह वचन बोला ॥१८॥

नेह पश्यामि भवतां तथावीर्यं धनुर्धरम्।
योऽर्जुनस्याऽस्त्रमस्त्रेण प्रतिहन्यान्महाहवे ॥१९॥

हे राजन्! मैं तुम्हारी सेना में कोई ऐसा पराक्रमी धनुर्धारी वीर नहीं देख रहा हूँ, जो इस घोर संग्राम में अपने अस्त्र द्वारा अर्जुन के अस्त्र को काट गिरावे ॥१६॥

वासुदेवसहायस्य गाण्डीवं धुन्वतो धनुः ।
कोऽर्जुनस्याऽग्रतस्तिष्ठेत्साक्षादपि शतक्रतुः ॥२०॥

वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण के सहायक रहने पर अपने गाण्डीव धनुष को कपाँने वाले अर्जुन के सन्मुख साक्षात् शतक्रतु इन्द्र भी नहीं ठहर सकता है ॥२०॥

महेश्वरोऽपि पार्थेन श्रूयते योधितः पुरा ।
पदातिना महावीर्यो गिरौ हिमवति प्रभुः ॥२१॥

सुना जाता है, कि अर्जुन का महेश्वर के साथ भी युद्ध हुआ था। उस समय यह महा शक्तिशाली अर्जुन पैदल ही था। यह युद्ध हिमालय पर्वत में हुआ है ॥२१॥

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ।
जघानैकरथेनैव देवराजप्रचोदितः ॥२२॥

देवराज के कथन को पूरा करने के लिए इस अकेले ही अर्जुन ने हिरण्यपुर वासी सहस्रों दानव मार गिराए ॥२२॥

समायुक्तो हि कौन्तेयो वासुदेवेन धीमता ।
सामरानपि लोकांस्त्रीन्हन्यादिति मतिर्मम ॥२३॥

बुद्धिमान, वसुदेव-पुत्र कृष्ण से समन्वित, कुन्ती-पुत्र अर्जुन, देवों के साथ तीनों लोकों को मार सकता है-मेरा ऐसा खयाल है।

सोऽहमिच्छाम्यनुज्ञातुं रक्षितुं वा महात्मना।
द्रोणेन सहपुत्रेण वीरेण यदि मन्यसे ॥२४॥

हे राजन्! अब आप या तो मुझे आज्ञा दें, कि मैं घर जाऊं या महावीर द्रोणाचार्य और उनके पुत्र वीरश्रेष्ठ अश्वत्थामा को मेरी रक्षा में नियुक्त करें। कहिए-आपकी क्या इच्छा है? ॥२४॥

स राज्ञा स्वयमाचार्यो भृशमत्राऽर्थितोऽर्जुन।
संविधानं च विहितं रथाश्च किल सज्जिताः॥२५॥

हे अर्जुन! राजा दुर्योधन ने बड़े आग्रह के साथ आचार्य द्रोण से राजा जयद्रथ की रक्षा की प्रार्थना की। अब उसकी रक्षा का सारा प्रबन्ध कर दिया गया है और रथ भी सजाये जा चुके हैं।

कर्णो भूरिश्रवा द्रौणिर्वृषसेनश्च दुर्जयः।
कृपश्च मद्रराजश्च षडेतेऽस्य पुरोगमाः ॥२६॥

कर्ण, भूरिश्रवा, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, दुर्जय वृषसेन, कृप और मद्रराज-ये छः महारथी राजा जयद्रथ के आगे होंगे ॥२६॥

शकटः पद्मकश्चाऽर्धो व्यूहो द्रोणेन निर्मितः।
पद्मकर्णिकमध्यस्थः सूचीपार्श्वे जयद्रथः ॥२७॥
स्थास्यते रक्षितो वीरैः सिन्धुराट् स सुदुर्मदः।

द्रोणाचार्य ने शकटव्यूह बनाने का निश्चय किया है, जिसका आधा भाग पद्म की आकृति का होगा। इसके पार्श्व भाग में सूची-मुख व्यूह होगा, वहीं पर पद्म की कर्णिका के बीच में राजा जयद्रथ

रहेगा। इस दुर्मद सिन्धुराज की इसी स्थान पर बड़े २ वीर रक्षा में तत्पर होंगे ॥२७॥

धनुष्यस्त्रे च वीर्ये च प्राणे चैव तथौरसे ॥२८॥
अविषह्यतमा ह्येते निश्चिताः पार्थ षड्रथाः ।

ये आगे चलने वाले छःओं महारथी धनुष, अस्त्र, पराक्रम, बल तथा साहस में अद्वितीय हैं, इनकी शक्ति को कोई भी नहीं सह सकता है ॥२८॥

एतानजित्वा षड्रथान्नैव प्राप्यो जयद्रथः ॥२९॥
तेषामेकैकशो वीर्यं षण्णां त्वमनुचिन्तय ।
सहिता हि नरव्याघ्र न शक्या जेतुमञ्जसा ॥३०॥

यदि तुम इन छः महारथियों को नहीं जीत सके तो राजा जयद्रथ के पास नहीं पहुंच सकते हो । इन महारथियों के पृथक् २ पराक्रम का तो तुम विचार करो। हे नरव्याघ्र ! इन छःओं के एकत्र हो जाने पर तो इनको कौन जीत सकता है ॥२९-३०॥

भूयस्तु मन्त्रयिष्यामि नीतिमात्महिताय वै ।
मन्त्रज्ञैः सचिवैः सार्धं सुहृद्भिः कार्यसिद्धये ॥३१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णवाक्ये
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

अब मैं तुमको अपने हित के लिए मन्त्रणा करने की सम्मति देता हूं। तुम मन्त्रणा कुशल सुहृद् भूत सचिवों के साथ अपने कार्य की सिद्धि के लिए विचार करो ॥३१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत प्रतिज्ञापर्व में श्रीकृष्ण के वाक्य का पिचहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ



# छियत्तरवां अध्याय

अर्जुन उवाच—

षड्थान्धार्तराष्ट्रस्य मन्यसे यान्बलाधिकान् ।
तेषां वीर्यं ममार्धेन न तुल्यमिति मे मतिः ॥१॥

अर्जुन बोले—हे भगवन्! जिन कौरवों के छःओं महारथियों का बलविक्रम तुम बहुत अधिक मानते हो, वे मेरे आधे बल के बराबर भी नहीं हैं; मेरा तो ऐसा निश्चय है ॥१॥

अस्त्रमस्त्रेण सर्वेषामेतेषां मधुसूदन ।
मया द्रक्ष्यसि निर्भिन्नं जयद्रथवधैषिणा ॥२॥

हे मधुसूदन! जब मैं जयद्रथ के वध के लिए आगे बढ़ूंगा, तो तुम देखोगे, कि मैं किस तरह इन सबके अस्त्रों को अपने अस्त्रों से काटता चला जाऊंगा ॥२॥

द्रोणस्य मिषतश्चाऽहं सगणस्य विलप्यतः ।
मूर्धानं सिन्धुराजस्य पातयिष्यामि भूतले ॥३॥

आचार्य द्रोण अपनी सेना के साथ मारो ? मारो ? पुकारते हुए खड़े देखते रहेंगे, कि मैं सिन्धुराज के मस्तक को क्षण भर में पृथिवी में गिरा दूंगा ॥३॥

यदि साध्याश्च रुद्राश्च वसवश्च सहाश्विनः ।
मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वे देवाः सहेश्वराः ॥४॥
पितरः सहगन्धर्वाः सुपर्णाः सागरादयः ।
द्यौर्वियत्पृथिवी चेयं दिशश्च सदिगीश्वराः ॥५॥
ग्राम्यारण्यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
त्रातारः सिन्धुराजस्य भवन्ति मधुसूदन ॥६॥
तथाऽपि बाणैर्निहतं श्वो द्रष्टासि रणे मया ।
सत्येन च शपे कृष्ण तथैवाऽऽयुधमालभे ॥७॥

हे कृष्ण ! यदि इस समय साध्य, रुद्र, वसु, आश्विन, मरुत, इन्द्र, विश्वेदेवा, ऐश्वर्यशाली असुर, पितर, गन्धर्व, सुपर्ण, सागर, द्युलोक, आकाश, पृथिवी, दिशा, दिशाओं के स्वामी, ग्राम, वन, चर और अचर प्राणी भी सिन्धुराज की रक्षा में तत्पर हो जावें, तो भी तुम कल रण में मेरे बाणों से कट कर पृथिवी में गिरा हुआ जयद्रथ का मस्तक देखोगे। हे माधव ! मैं यह शस्त्र छूकर सत्य की शपथ खाता हूं ॥४-७॥

यस्य गोप्ता महेष्वासस्तस्य पापस्य दुर्मतेः ।
तमेव प्रथमं द्रोणमभियास्यामि केशव ॥८॥

हे केशव ! दुर्मति पापी सिन्धुराज के रक्षक महाधनुर्धर द्रोणाचार्य हैं। मैं प्रथम आचार्य द्रोण पर ही आक्रमण करूंगा।

तस्मिन्द्यूत मिदं बद्धं मन्यते स सुयोधनः ।
तस्मात्तस्यैव सेनाग्रं भित्त्वा यास्यामि सैन्धवम् ॥९॥

राजा दुर्योधन यदि द्रोण ही पर युद्ध रूपी द्यूत की समाप्ति मानता है, तो मैं कल इसी की सेना के अग्रभाग को चीर कर झटपट सिन्धुराज के पास जा धमकूंगा ॥९॥

द्रष्टासि श्वो महेष्वासान्नाराचैस्तिग्मतेजितैः ।
शृङ्गाणीव गिरेर्वज्रैर्दार्यमाणान्मया युधि ॥१०॥

हे मधुसूदन ! तुम कल देखोगे, कि मैं बड़े २ धनुर्धरों को अपने तीखे और पैने बाणों से वज्रों से चीरे हुए पर्वतों के शिखरों की तरह रणभूमि में काट गिराऊंगा ॥१०॥

नरनागाश्वदेहेभ्यो विस्रविष्यति शोणितम् ।
पतद्भ्यः पतितेभ्यश्च विभिन्नेभ्यः शितैः शरैः ॥११॥

हे महाभाग ! मेरे तीक्ष्ण बाणों से छेदे हुए और रणभूमि में गिरे वा गिरते हुए वीर, मनुष्य, हाथी और अश्वों के शरीर से रुधिर धारा वह निकलेगी ॥११॥

गाण्डीवप्रेषिता बाणा मनोऽनिलसमा जवे ।
नृनागाश्वान्विदेहासून्कर्त्तारश्चसहस्रशः ॥१२॥

मन और वायु के तुल्य वेग वाले गाण्डीव धनुष से निकले हुए मेरे बाण, सहस्रों वीर, मनुष्य, हाथी और अश्वों के प्राणों को देह से वियुक्त कर देंगे ॥१२॥

यमात्कुबेराद्वरुणादिन्द्राद्रुद्राच्च यन्मया ।
उपात्तमस्त्रं घोरं तद् द्रष्टारोऽत्र नरा युधि ॥१३॥

आज इस युद्ध में यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र, रुद्र आदि देवों से जो मैंने घोर अस्त्र प्राप्त किये हैं, उनके कौशल को सारे वीर देखेंगे ॥१३॥

ब्राह्मेणाऽस्त्रेण चाऽस्त्राणि हन्यमानानि संयुगे ।
मया द्रष्टासि सर्वेषां सैन्धवस्याऽभिरक्षिणाम् ॥१४॥

तुम कल सिन्धुराज की रक्षा में तत्पर विरोधी वीरों के अस्त्रों को मेरे ब्रह्मास्त्र से काटे हुए रण में कल देखोगे ॥१४॥

शरवेगसमुत्कृत्तै राज्ञां केशव मूर्धभिः।
आस्तीर्यमाणां पृथिवीं द्रष्टासि श्वो मया युधि ॥१५॥

हे केशव ! कल तुम वेग के साथ छोड़े हुए बाणों से कटकर गिरे हुए राजाओं के मस्तकों से व्याप्त हुई रणभूमि को अवश्य देखोगे ॥१५॥

क्रव्यादांस्तर्पयिष्यामि द्रावयिष्यामि शात्रवान् ।
सुहृदो नन्दयिष्यामि प्रमथिष्यामि सैन्धवम् ॥१६॥

मैं कल होने वाले युद्ध में मांसभोजी जन्तुओं को तृप्त कर दूंगा, शत्रुओं को रणभूमि से भगा दूंगा, जिसे देखकर सुहृद्गण प्रसन्न होंगे। इस प्रकार अन्त में सिन्धुराज को मार गिराऊंगा ॥१६॥

बह्वागस्कृत्कुसम्बन्धी पापदेशसमुद्भवः ।
मया सैन्धवको राजा हतः स्वाञ्शोचयिष्यति ॥१७॥

इसने बड़ी ही कुटिलता के साथ यह अपराध किया है। यह बड़ा पापी देश में उत्पन्न हुआ है, जिसे सम्बन्ध का जरा भी ध्यान नहीं है। अब कल मृत्यु को प्राप्त होता हुआ, यह राजा जयद्रथ अपने परिवार की अवश्य चिन्ता करेगा ॥१७॥

सर्वदाराज्ञभोक्तारं पापाचारं रणाजिरे।
मया सराजकं बाणैर्भिन्नं द्रक्ष्यसि सैन्धवम् ॥१८॥

यह बड़े २ उत्तम पदार्थों को खा २ कर पुष्ट हो रहा है और बड़ा पापाचारी है। कल तुम मेरे बाणों से अपने साथी राजाओं के साथ इस सिन्धुराज को रणभूमि में लोटता देखोगे ॥१८॥

तथा प्रभाते कर्त्तास्मि यथा कृष्ण सुयोधनः।
नाऽन्यं धनुर्धरं लोके मंस्यते मत्समं युधि ॥१९॥

हे कृष्ण! मैं कल प्रातःकाल वह कर दिखाऊंगा, जिससे दुर्योधन भी यह अच्छी तरह जान लेगा, कि रण में अर्जुन के बराबर कोई भी धनुर्धर वीर नहीं है ॥१९॥

गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं योद्धा चाऽहं नरर्षभ।
त्वं च यन्ता हृषीकेश किं नु स्यादजितंमया ॥२०॥

हे नरर्षभ! मेरे हाथ में दिव्य गाण्डीव धनुष है। मुझ जैसा महारथी रण में आगे बढ़ रहा है। हे हृषीकेश! तुम जैसे कुशल सारथि हो, फिर जगत् में कौन ऐसी सेना या वीर होगा, जिसे जीता न जा सकेगा ॥२०॥

तव प्रसादाद्भगवन्किं नाऽऽप्तं रणे मम ।
अविषह्यं हृषीकेश किं जानन्मां विगर्हसे ॥२१॥

हे भगवन् ! आपके अनुग्रह से मुझे कुछ भी दुर्लभ नहीं है । हे हृषीकेश ! मैं किसके वेग को नहीं सह सकता हूं-तुम व्यर्थ ही मेरी निन्दा कर रहे हो ॥२१॥

यथा लक्ष्म स्थिरं चन्द्रे समुद्रे च यथा जलम् ।
एवमेतां प्रतिज्ञां मे सत्यां विद्धि जनार्दन ॥२२॥

हे जनार्दन ! जिस प्रकार चन्द्रमा में चिन्ह और समुद्र में जल स्थिर है, इसी तरह मेरी प्रतिज्ञा को भी तुम स्थिर समझो ॥२२॥

माऽवमंस्था ममाऽस्त्राणि माऽवमंस्था धनुर्दृढम् ।
माऽवमंस्था बलं बाह्वोर्माऽवमंस्था धनञ्जयम् ॥२३॥

हे केशव ! तुम मेरे अस्त्र, दृढ़ धनुष, बाहुबल और मुझ धनञ्जय की अवहेलना न करो ॥२३॥

तथाऽभियामि संग्रामं न जीयेयं जयामि च ।
तेन सत्येन संग्रामे हतं विद्धि जयद्रथम् ॥२४॥

अब तो मैं इस प्रकार आक्रमण करूंगा, जिससे या तो संग्राम में विजयी बनूंगा या अपने प्राणों का परित्याग कर दूंगा । इस सत्य प्रतिज्ञा के सन्मुख तुम राजा जयद्रथ को मरा हुआ ही समझो ॥२४॥

ध्रुवं वै ब्राह्मणे सत्यं ध्रुवा साधुषु सन्नतिः ।
श्रीर्ध्रुवाऽपि च यज्ञेषु ध्रुवो नारायणे जयः ॥२५॥

सच्चे ब्राह्मण में सचाई ध्रुव होती है। साधु पुरुषों में नम्रता ध्रुव है। यश में लक्ष्मी और नारायण में विजय निश्चय समझनी चाहिए ॥२५॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वा हृषीकेशं स्वयमात्मानमात्मना।
सन्दिदेशाऽर्जुनो नर्दन्वासविः केशवं प्रभुम् ॥२६॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार अपने दूसरे स्वरूप श्रीकृष्ण से इतना कहकर इन्द्र-पुत्र अर्जुन ने शक्तिशाली श्रीकृष्ण को सिंहनाद के साथ यह आज्ञा दी ॥२६॥

यथा प्रभातां रजनीं कल्पितः स्याद्रथो मम।
तथा कार्यं त्वया कृष्ण कार्यं हि महदुद्यतम् ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनवाक्ये
षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

हे कृष्ण! अब तुम प्रातःकाल से पूर्व ही रात के समाप्त होते ही मेरे रथ को तय्यार कर देना, क्योंकि कल बड़ा ही कठिन कार्य सन्मुख उपस्थित है ॥२७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत प्रतिज्ञापर्व में अर्जुन के
वाक्य का छियत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ



# सतहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तां निशां दुःखशोकार्तौ निःश्वसन्ताविवोरगौ ।
निद्रां नैवोपलेभाते वासुदेवधनञ्जयौ ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! इस प्रकार उस रात में सर्प की तरह श्वास मारते हुए, दुःख शोक से व्याकुल, श्रीकृष्ण और अर्जुन को नींद नहीं आई ॥१॥

नरनारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः ।
व्यथिताश्चिन्तयामासुः किंस्विदेतद्भविष्यति ॥२॥

इन्द्र सहित देवों ने देखा, कि नर नारायण के अवतार श्रीकृष्ण और अर्जुन कुपित हो गए हैं, तो वे व्याकुल हो उठे और विचारने लगे-न जाने अब क्या होगा ॥२॥

ववुश्च दारुणा वाता रूक्षा घोराभिशंसिनः ।
सकबन्धस्तथाऽऽदित्ये परिघः समदृश्यत ॥३॥

इस समय दारुण और घोर रूक्ष वायु चलने लगा तथा परिघ नामक अस्त्र लिए हुए आदित्य मण्डल में कबन्ध दिखाई पड़ा ।

शुष्काशन्यश्च निष्पेतुः सनिर्घाताः सविद्युतः ।
चचाल चापि पृथिवी सशैलवनकानना ॥४॥

विना वर्षा के वज्र और विना कड़क बिजली गिरने लगी एवं शैल वन और काननों समेत पृथिवी डगमगाने लगी ॥४॥

चुक्षुभुश्च महाराज सागरा मकरालयाः।

प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च तथा गन्तुं समुद्रगाः ॥५॥

हे महाराज ! मकर आदि जीव जन्तुओं के साथ समुद्र क्षुभित हो गया और नदियों का प्रत्येक स्रोत बड़े वेग से बहने लगा।

रथाश्वनरनागानां प्रवृत्तमधरोत्तरम् ।

क्रव्यादानां प्रमोदार्थं यमाराष्ट्रविवृद्धये ॥६॥

वाहनानि शकृन्मूत्रे मुमुचू रुरुदुश्च ह ।

रथ, अश्व, नर और हाथियों का सारा क्रम विपरीत दिखाई देने लगा, जिससे यमराज के राष्ट्र की वृद्धि और मांसभोजी जन्तुओं के प्रमोद की सूचना मिल रही थी। सेना के सारे वाहन मल-मूत्र करने और वे अपने २ स्वर में रुदन मचाने लगे ॥६॥

तान्दृष्ट्वा दारुणान्सर्वानुत्पातान्लोमहर्षणान् ॥७॥

सर्वे ते व्यथिताः सैन्यास्त्वदीया भरतर्षभ ।

श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥८॥

हे भरतर्षभ ! इस प्रकार दारुण, लोमहर्षण उत्पातों को देखकर तुम्हारी सेना के सारे मनुष्य व्याकुल हो गए, क्योंकि उन्होंने महाबली सव्यसाची अर्जुन की उग्र-प्रतिज्ञा के समाचार सुन लिए थे ॥७-८॥

अथ कृष्णं महाबाहुरब्रवीत्पाकशासनिः ।

आश्वासय सुभद्रां त्वं भगिनीं स्नुषया सह ॥९॥

महाबाहु इन्द्र-पुत्र अर्जुन ने अब श्रीकृष्ण से कहा-कि तुम प्रथम अपनी बहिन सुभद्रा और पुत्रवधू उत्तरा को आश्वासन दो।

स्नुषां चाऽस्या वयस्याश्च विशोकाः कुरु माधव ।
सान्त्वा सत्येन युक्तेन वचसाऽऽश्वासय प्रभो ॥१०॥

हे माधव ! सुभद्रा की पुत्र-वधू और इसकी सखियों को प्रथम तुम शोक रहित करो। हे प्रभो ! सान्त्वना, सत्य, युक्ति और शान्ति-पूर्ण वचनों से उनको आश्वासन दो ॥१०॥

ततोऽर्जुनगृहं गत्वा वासुदेवः सुदुर्मनाः ।
भगिनीं पुत्रशोकार्त्तामाश्वासयत दुःखिताम् ॥११॥

अब उदास मुख हुए वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण, अर्जुन के रनिवास में पहुंचे और वहां पहुंच कर पुत्र शोक से व्याकुल अपनी दुःखी भगिनी सुभद्रा को समझाने लगे ॥११॥

वासुदेव उवाच—

मा शोकं कुरु वार्ष्णेयि कुमारं प्रति सस्नुषा ।
सर्वेषां प्राणिनां भीरु निष्ठैषा कालनिर्मिता ॥१२॥

श्रीकृष्ण बोले—हे वार्ष्णेयि ! तुम्हें और पुत्र-वधू उत्तरा के लिए अभिमन्यु का शोक नहीं करना चाहिए, क्योंकि संसार में समस्त प्राणियों की अन्तिम यही दशा होती है ॥१२॥

कुले जातस्य वीरस्य क्षत्रियस्य विशेषतः ।
सदृशं मरणं ह्येतत्तव पुत्रस्य मा शुचः ॥१३॥

क्षत्रियकुल में उत्पन्न वीर अभिमन्यु की मृत्यु उसके स्वरूप के अनुकूल ही हुई है। तुमको इस वीरता पूर्ण मृत्यु पर शोक नहीं करना चाहिए ॥१३॥

दिष्ट्या महारथो वीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः।
क्षात्रेण विधिना प्राप्तो वीराभिलषितां गतिम् ॥१४॥

महारथी वीर अभिमन्यु ने रण में अपने पिता के तुल्य पराक्रम कर दिखाया है। इस वीर ने क्षत्रियोचित विधि द्वारा वह गति पायी है, जिसको सारे वीर चाहते रहते हैं ॥१४॥

जित्वा सुबहुशः शत्रून्प्रेषयित्वा च मृत्यवे।
गतः पुण्यकृतां लोकान्सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥१५॥

इसने रण में बहुत से शत्रु जीत लिए और बहुतों को मृत्यु के अधीन किया। इस प्रकार अपनी सारी कामनाओं के प्राप्त करने वाला अभिमन्यु पुण्यात्माओं के अक्षय लोकों को पहुंच गया ॥१५॥

तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन प्रज्ञयाऽपि च।
सन्तो यां गतिमिच्छन्ति तां प्राप्तस्तव पुत्रकः ॥१६॥

हे महाभागे! तप, ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन, बुद्धि से महात्मा लोग जिस गति को पाते हैं, उसी को तुम्हारा पुत्र एक क्षण में वीरगति पाकर पा गया ॥१६॥

वीरसूर्वीरपत्नी त्वं वीरजा वीरबान्धवा।
मा शुचस्तनयं भद्रे गतः स परमां गतिम् ॥१७॥

तुम वीरपुत्र के उत्पन्न करनेवाली, वीर की पुत्री, वीर बान्धवों की बहिन और वीर (अर्जुन) की भार्या हो। यह सारा

सौभाग्य तुमको है। हे भद्रे! अब तुमको सोच नहीं करना चाहिए-तुम्हारा पुत्र तो परम गति को प्राप्त हुआ है ॥१७॥

प्राप्स्यते चाऽप्यसौ पापः सैन्धवो बालघातकः ।
अस्याऽवलेपस्य फलं ससुहृद्गणबान्धवः ॥१८॥

यह पापी सिन्धुराज अपनी बालहत्या के अपराध का फल पावेगा। इस अवलेप (गुस्ताखी) का फल उसको उसके मित्र और बान्धवों सहित मिलेगा ॥१८॥

व्युष्टायां तु वरारोहे रजन्यां पापकर्मकृत् ।
नहि मोक्ष्यति पार्थात्स प्रविष्टोऽप्यमरावतीम् ॥१९॥

हे महाभागे! जब रात समाप्त हो जावेगी-तो वह पापी जयद्रथ प्रातःकाल इसका फल भोगेगा। यदि वह अमरावती नगरी में इन्द्र के शरण में भी चला जावेगा-तो भी वह छुटकारा नहीं पा सकेगा ॥१९॥

श्वः शिरः श्रोष्यसे तस्य सैन्धवस्य रणे हृतम् ।
समन्तपञ्चकाद्बाह्यं विशोका भव मा रुदः ॥२०॥

हे भद्रे! तुम कल यह सुन लोगी, कि रण में सिन्धुराज का शिर उड़ा दिया, जो समन्त-पञ्चक-क्षेत्र से बाहर जाकर पड़ा। अब तुम शोक को छोड़ दो-रोओ नहीं ॥२०॥

क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम् ।
यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चाऽन्ये शस्त्रजीविनः ॥२१॥

शूरवीर अभिमन्यु क्षत्रिय धर्म का निर्वाह करता हुआ, वीर गति को प्राप्त हुआ है। यह वही उत्तम गति है, जिसको सारे शास्त्रजीवी क्षत्रिय प्राप्त करना चाहते हैं ॥२१॥

व्यूढोरस्को महाबाहुरनिवर्ती रथप्रणुत् ।
गतस्तव वरारोहे पुत्रः स्वर्गं ज्वरं जहि ॥२२॥

अभिमन्यु का वक्षस्थल बड़ा ही दृढ़ था, वह महाबाहु रथों का चूरा उड़ा देने वाला, युद्ध से कभी पीछे नहीं हटने वाला वीर था। हे भद्रे! वह तुम्हारा पुत्र पुण्यलोक स्वर्ग में पहुंच गया-तुम उसकी चिन्ता न करो ॥२२॥

अनुयातश्च पितरं मातृपक्षं च वीर्यवान् ।
सहस्रशो रिपून्हत्वा हतः शूरो महारथः ॥२३॥

इस महा शक्तिशाली बालक ने पितृ और मातृकुल का अनुसरण किया है। यह महारथी सहस्रों शूरवीरों को रण में मार कर फिर वीरगति को गया है ॥२३॥

आश्वासय स्नुषां राज्ञि मा शुचः क्षत्रिये भृशम् ।
श्वः प्रियं सुमहच्छ्रुत्वा विशोका भव नन्दिनि ॥२४॥

हे महानुभावे! तुम अपनी पुत्र-वधू को सान्त्वना दो। अत्यन्त वीरता के कर्म दिखाने वाले अभिमन्यु का शोक न करो। हे भगिनी! कल तुमको शत्रु वध का प्रिय समाचार प्राप्त होगा-तुम शोक न करो ॥२४॥

यत्पार्थेन प्रतिज्ञातं तत्तथा न तदन्यथा ।
चिकीर्षितं हि ते भर्त्तुर्न भवेज्जातु निष्फलम् ॥२५॥

जो अर्जुन ने प्रतिज्ञा की है, वह ठीक वैसी ही पूरी होगी, उसमें कोई उलट पलट नहीं होगा । तुम्हारे भर्ता अर्जुन जो चाहते हैं-वह कभी निरर्थक नहीं होता है ॥२५॥

यदि च मनुजपन्नगाः पिशाचा रजनीचराः पतगा सुरासुराश्च
रणगतमभियान्ति सिन्धुराजं न स भविता सह तैरथ प्रभाते

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राश्वासने
सप्तसप्तितमोऽध्यायः ॥७७॥

अब मनुष्य, पन्नग, (सर्प) पिशाच, रजनीचर, पतंग, सुर, असुर कोई भी क्यों न हो-रण में यदि सिन्धुराज की रक्षा के लिए आवेंगे-तो वे भी प्रातः शेष न रहेंगे-यह बिल्कुल सत्य समझो ।

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत प्रतिज्ञापर्व में सुभद्रा के आश्वासन का सतहत्तरवां अध्याय पूरा हुआ



# अठहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः।
सुभद्रा पुत्रशोकार्त्ता विललाप सुदुःखिता ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! महात्मा श्रीकृष्ण के वचन सुनकर पुत्र शोक से आतुर, दुःखिनी सुभद्रा विलाप करने लगी ॥१॥

हा पुत्र मम मन्दाया: कथमेत्याऽसि संयुगम्।
निधनं प्राप्तवांस्तात पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥२॥

हे पुत्र! मेरा बड़ा ही मन्दभाग्य है, जो तुम पिता के तुल्य पराक्रमी होकर भी रण में मृत्यु को प्राप्त हुए ॥२॥

कथमिन्दीवरश्यामं सुदंष्ट्रं चारुलोचनम्।
मुखं ते दृश्यते वत्स गुण्ठितं रणरेणुना ॥३॥

हे वत्स! सुन्दर दांत और आंखों वाला, कमल के तुल्य विकसित रण की रेणु से धूसरित तेरे मुख को मैं कैसे देख सकूंगी ॥३॥

नूनं शूरं निपतितं त्वां पश्यन्त्यनिवर्तिनम्।
सुशिरोग्रीवबाह्वंसं व्यूढोरस्कं नतोदरम् ॥४॥

चारूपचितसर्वाङ्गं स्वक्षं शस्त्रक्षताचितम्।
भूतानि त्वां निरीक्षन्ते नूनं चन्द्रमिवोदितम् ॥५॥

हे पुत्र! तुम अद्भुत वीर थे, परन्तु आज रण में इस प्रकार गिरे हो, कि फिर उठोगे ही नहीं। तुम्हारे सुन्दर शिर, ग्रीवा,

बाहु, कंधे, दृढ़ छाती, पतला पेट, उत्तम आंखें, शस्त्रों के आघातों से व्याप्त, उदित हुए चन्द्रमा की तरह सुन्दर शरीर को सारे प्राणी कैसे देखेंगे ॥४-५॥

शयनीयं पुरा यस्य स्पर्ध्यास्तरणसंवृतम् ।
भूमावद्य कथं शेषे विप्रविद्धः सुखोचितः ॥६॥

हे पुत्र ! तेरी शय्या अमूल्य वस्त्रों से ढकी रहती थी । इस प्रकार सुख के योग्य भी तू आज बाणों से विद्ध होकर कैसे भूमि में सोवेगा ॥६॥

योऽन्वास्यत पुरा वीरो वरस्त्रीभिर्महाभुजः ।
कथमन्वास्यते सोऽद्य शिवाभिः पतितो मृधे ॥७॥

हे पुत्र ! तू विशाल भुजाधारी वीर था । उत्तम २ स्त्रियाँ तेरी सेवा में तत्पर रहती थीं । आज रण में गीदड़ियों से सेवित हुआ कैसे सोता रहेगा ॥७॥

योऽस्तूयत पुरा हृष्टैः सूतमागधबन्दिभिः ।
सोऽद्य क्रव्याद्गणैर्घोरैर्विनदद्भिरुपास्यते ॥८॥

हे वत्स ! तेरी सूत, मागध और बन्दीगण पूर्व में प्रसन्नतापूर्वक स्तुति गाते थे, आज वही तू मांसभोजी जन्तुओं की चीत्कारों से कैसे प्रसन्न होगा ॥८॥

पाण्डवेषु च नाथेषु वृष्णिवीरेषु वा विभो ।
पञ्चालेषु च वीरेषु हतः केनाऽस्यनाथवत् ॥९॥

हे पुत्र ! पाण्डव और वृष्णियों के रक्षक रहते और पाञ्चालों के सहायक होने पर भी कैसे अनाथ की तरह मारा गया ॥९॥

अतृप्तदर्शना पुत्र दर्शनस्य तवाऽनघ ।

मन्दभाग्या गमिष्यामि व्यक्तमद्य यमक्षयम् ॥१०॥

हे अनघ ! पुत्र ! मैं तो तेरा मुख देखकर कभी तृप्त नहीं होती थी, आज मैं मन्दभागिनी तुम्हें न देखकर निश्चय यमलोक को चली जाऊंगी ॥१०॥

विशालाक्षं सुकेशान्तं चारुवाक्यं सुगन्धि च ।
तव पुत्र कदा भूयो मुखं द्रक्ष्यामि निर्व्रणम् ॥११॥

हे पुत्र ! विशाल आंखें, सुन्दर केश, उत्तम वाणी और सुगन्धि से युक्त, किसी प्रकार की न्यूनता से अन्यून, तेरे मुख को फिर मैं कब देखूंगी ॥११॥

धिग्बलं भीमसेनस्य धिक्पार्थस्य धनुष्मताम् ।

धिग्वीर्यं वृष्णिवीराणां पञ्चालानां च धिग्बलम् ॥१२॥

धिक्केकयांस्तथा चेदीन्मत्स्यांश्चैवाऽथ सृञ्जयान् ।
ये त्वां रणगतं वीरं न शेकुरभिरक्षितुम् ॥१३॥

हे पुत्र ! भीमसेन के बल और अर्जुन की धनुर्धरता को धिक्कार है । वृष्णिवीर, पाञ्चाल, केकय, चेदी, मत्स्य सृञ्जय आदि वीर क्षत्रियों के बल को भी धिक्कार है, जो रण के बीच में वीरता के साथ घुसे हुए तेरी रक्षा नहीं कर सके ॥१२-१३॥

अद्य पश्यामि पृथिवीं शून्यामिव हतत्विषम् ।
अभिमन्युमपश्यन्ती शोकव्याकुललोचना ॥१४॥

हे कृष्ण ! आज मुझे पृथिवी शून्य और प्रकाशहीन दिखाई देती है, जो शोक से कातर हुई अभिमन्यु को नहीं देख रही हूँ ॥

स्वस्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः ।
कथं त्वाऽतिरथं वीरं द्रक्ष्याम्यद्य निपातितम् ॥१५॥

हे पुत्र ! तुम तो श्रीकृष्ण के भागिनेय, गाण्डीवधारी अर्जुन के पुत्र और स्वयं अतिरथी योद्धा थे। आज मैं तुझे रण में लेटते हुए कैसे देख सकूंगी ॥१५॥

एह्येहि तृषितो वत्स स्तनौ पूर्णौ पिबाऽऽशु मे ।
अङ्कमारुह्य मन्दाया ह्यतृप्तायाश्च दर्शने ॥१६॥

हे वत्स ! तुम प्यासे होगे; मेरे स्तनों में दूध आ रहा है, मेरी गोदी में बैठो और दर्शन से तृप्त नहीं होने वाली माता का दूध पीओ ॥१६॥

हा वीर दृष्टो नष्टश्च धनं स्वप्न इवाऽसि मे ।
अहो ह्यनित्यं मानुष्यं जलबुद्बुदचञ्चलम् ॥१७॥

हे वीर ! तुम तो स्वप्न में प्राप्त हुए धन की तरह मिलकर भी नष्ट हो गए हो। यह मनुष्य जीवन बड़ा ही अनित्य है, जो जल के बुदबुदे की तरह अनित्य है ॥१७॥

इमां ते तरुणीं भार्यां तवाऽऽधिभिरभिप्लुताम् ।
कथं सन्धारयिष्यामि विवत्सामिव धेनुकाम् ॥१८॥

हे वत्स ! यह तेरी तरुणी भार्या है, जो शोक से व्याकुल हो रही है। बछड़े से हीन गौ की तरह व्याकुल इस पुत्रवधू को मैं कैसे ढाढ़स बधाऊंगी ॥१८॥

अहो ह्यकाले प्रस्थानं कृतवानसि पुत्रक ।
विहाय फलकाले मां सुगृद्धां तव दर्शने ॥१६॥

हे पुत्रक ! तुमने तो बहुत ही दुःसमय में संसार से गमन किया। मैं तो तुम्हारे दर्शनों को ललचाती रहती थी। आज फल-प्राप्ति के समय तुम चलते बने हो ॥१६॥

नूनं गतिः कृतान्तस्य प्राज्ञैरपि सुदुर्विदा ।
यत्र त्वं केशवे नाथे संग्रामेऽनाथवद्धतः ॥२०॥

विद्वान मनुष्य भी दैव की गति का अनुमान नहीं कर सकते हैं, जो केशव के रहते भी तुम अनाथ की भांति मारे गए ॥२०॥

यज्वनां दानशीलानां ब्राह्मणानां कृतात्मनाम् ।
चरितब्रह्मचर्याणां पुण्यतीर्थावगाहिनाम् ॥२१॥
कृतज्ञानां वदान्यानां गुरुशुश्रूषिणामपि ।
सहस्रदक्षिणानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥२२॥

हे वत्स ! दानशील, याज्ञिक, पूतात्मा ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य व्रत-परायण, पुण्य तीर्थों में स्नान करने वाले, कृतज्ञ, उदार, गुरु सेवा में तत्पर, सहस्रों बार दक्षिणा देने वाले, दिव्य पुरुषों को जो गति प्राप्त होती है; वही तुमको प्राप्त होवे ॥२१-२२॥

या गतिर्युद्ध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
हत्वाऽरीन्निहतानां च संग्रामे तां गतिं व्रज ॥२३॥

युद्ध से मुख नहीं फेरने वाले, शत्रुघातक, शूरवीरों को युद्ध में मरने पर जो उत्तम गति मिलती है, वही तुमको प्राप्त होवे ॥

गोसहस्रप्रदातॄणां क्रतुदानां च या गतिः ।
नैवेशिकं चाऽभिमतं ददतां या गतिः शुभा ॥२४॥

सहस्रों गौओं के दान कर्ता, अनेक यज्ञ करने वाले, उत्तम २ भवनों के दानी पुरुषों को जो गति प्राप्त होती है, वही तुमको प्राप्त होवे ॥२४॥

ब्राह्मणेभ्यः शरण्येभ्यो निधिं निदधतां च या ।
या चापि न्यस्तदण्डानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥२५॥

हे पुत्रक ! जो शरणागतवत्सल ब्राह्मणों को पुष्कल धनराशि दान करते हैं और उनके अपराध करने पर भी उनको दण्ड नहीं देते-उस गति को तुम प्राप्त करो ॥२५॥

ब्रह्मचर्येण यां यान्ति मुनयः संशितव्रताः ।
एकपत्न्यश्च यां यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥२६॥

हे पुत्रक ! प्रशंसित व्रतवाले मुनि लोग, ब्रह्मचर्य द्वारा जिस गति को प्राप्त होते हैं और पतिव्रता स्त्रियां जिस गति को पाती हैं, तुम भी उसी गति को प्राप्त करो ॥२६॥

राज्ञां सुचरितैर्या च गतिर्भवति शाश्वती ।
चतुराश्रमिणां पुण्यैः पावितानां सुरक्षितैः ॥२७॥

दीनानुकम्पिनां या च सततं संविभागिनाम् ।
पैशुन्याच्च निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥२८॥

हे पुत्र ! उत्तम चरित्रधारी राजाओं को जो सनातन गति प्राप्त होती है तथा सुरक्षित पुण्यों द्वारा पवित्र हुए चारों आश्रमधारी पुरुषों को जो गति मिलती है एवं दीनदयालु और सदा न्यायानुसार विभाग कर देने वाले पिशुनता से रहित पुरुषों को जो गति मिलती है, वही तुमको प्राप्त हो ॥२७-२८॥

व्रतिनां धर्मशीलानां गुरुशुश्रूषिणामपि ।
अमोघातिथिनां या च तां गतिं व्रज पुत्रक ॥२९॥

हे वत्स ! धर्मशील, व्रतधारी, गुरुसेवी और अतिथि को निष्फल नहीं जाने देने वाले मनुष्यों को जो गति मिलती है, वही तुमको प्राप्त हो ॥२९॥

कृच्छ्रेषु या धारयतामात्मानं व्यसनेषु च ।
गतिः शोकाग्निदग्धानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥३०॥

जो मनुष्य संकट के समय या विपत्ति आ पड़ने पर शोक से दग्ध होने पर भी धैर्य नहीं छोड़ता है, उसकी गति जैसी गति तुमको प्राप्त हो ॥३०॥

मातापित्रोश्च शुश्रूषां कल्पयन्तीह ये सदा ।
स्वदारनिरतानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥३१॥

हे सुत ! जो सदाचारी अपने माता पिता की सेवा में तत्पर रहते हैं तथा अपनी ही स्त्री के अतिरिक्त अन्य से विषयाभिलाषा नहीं रखते, उन पुरुषों की गति तुमको प्राप्त हो ॥३१॥

ऋतुकाले स्वकां भार्यां गच्छतां या मनीषिणाम् ।
परस्त्रीभ्यो निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥३२॥

जो समझदार केवल ऋतुकाल में ही अपनी स्त्री से संभोग करते हैं और पर-स्त्रियों से बिलकुल निवृत्त रहते हैं, हे पुत्रक ! तुम उन महात्माओं की गति को प्राप्त हो ॥३२॥

साम्ना ये सर्वभूतानि पश्यन्ति गतमत्सराः ।
नाऽरुन्तुदानां क्षमिणां या गतिस्तामवाप्नुहि ॥३३॥

जो महानुभाग मत्सरता छोड़कर समस्त प्राणियों को समान दृष्टि से देखते हैं, जो किसी के मर्म स्थान को पीड़ा नहीं पहुंचाते, तुम उनकी गति प्राप्त करो ॥३३॥

मधुमांसनिवृत्तानां मदाद्दम्भात्तथाऽनृतात् ।
परोपतापत्यक्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥३४॥

हे वीर ! सुरा और मांस के परित्यागी, अहङ्कार, पाखण्ड और असत्य से दूर रहने वाले तथा किसी को पीड़ा नहीं पहुंचाने वाले पुरुषों को जो गति मिलती है, वही तुम्हें प्राप्त हो ॥३४॥

ह्रीमन्तः सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञानतृप्ता जितेन्द्रियाः ।
यां गतिं साधवो यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥३५॥

लज्जाशील, सर्व शास्त्र के ज्ञाता, ज्ञान से सन्तुष्ट, जितेन्द्रिय, श्रेष्ठ मनुष्य जिस ऊर्ध्व गति में गमन करते हैं, तुम भी उसी गति को प्राप्त हो ॥३५॥

एवं विलपतीं दीनां सुभद्रां शोककर्शिताम् ।
अन्वपद्यत पाञ्चाली वैराटिसहितां तदा ॥३६॥

इस प्रकार शोक से कातर, दीन, विराट-कन्या उत्तरा के सहित विलाप करती हुई सुभद्रा के पास उसी समय पञ्चाल राजकन्या द्रौपदी पहुंची ॥३६॥

ताः प्रकामं रुदित्वा च विलप्य च सुदुःखिताः ।
उन्मत्तवत्तदा राजन्विसंज्ञा न्यपतन्क्षितौ ॥३७॥

हे राजन ! द्रौपदी के सहित सारी स्त्रियां बड़ी दुःखी होकर तथा विलाप करके पागल सी हो गई और ये सारी मूर्छित होकर भूमि में छटपटाने लगी ॥३७॥

सोपचारस्तु कृष्णश्च दुःखितां भृशदुखितः ।
सिक्त्वाऽम्भसा समाश्वास्य तत्तदुक्त्वा हितं वचः॥३८॥
विसंज्ञकल्पां रुदतीं मर्मविद्धां प्रवेपतीम् ।
भगिनीं पुण्डरीकाक्ष इदं वचनमब्रवीत् ॥३९॥

इस संकटमयी परिस्थिति को देखकर श्रीकृष्ण बड़े दुःखी हुए। वे दुःखित द्रौपदी और सुभद्रा के सचेत करने का उपचार करने लगे । इन्होंने इनके ऊपर जल छिड़क कर सचेत किया। इन्होंने अनेक हितकारी वचन कहकर उनको सान्त्वना दी। अचेत सी हुई मर्म बाधा से पीड़ित कांपती हुई, अपनी भगिनी सुभद्रा से अब श्रीकृष्ण इस प्रकार कहने लगे ॥३८-३९॥

सुभद्रे मा शुचः पुत्रं पाञ्चाल्याश्वासयोत्तराम् ।
गतोऽभिमन्युः प्रथितां गतिं क्षत्रियपुङ्गवः ॥४०॥

हे सुभद्रे ! तुम शोक न करो ! हे पाञ्चालि ! तुम उत्तरा को आश्वासन दो । अभिमन्यु तो क्षत्रिय वीरों की सी उत्तम गति को प्राप्त हुआ है ॥४०॥

ये चाऽन्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वरानने ।
सर्वे ते तां गतिं यान्तु ह्यभिमन्योर्यशस्विनः ॥४१॥

हे वरानने ! हम तो यही चाहते हैं, कि हमारे कुल में जितने भी पुरुष हैं, वे यदि यशस्वी अभिमन्यु की सी वीर-गति प्राप्त करें-तो हमारा अहोभाग्य है ॥४१॥

कुर्याम तद्वयं कर्म क्रियासु सुहृदश्च नः ।
कृतवान्यादृगद्यैकस्तव पुत्रो महारथः ॥४२॥

हम तो यह चाहते हैं, कि हम या हमारे सुहृद्, उसी ढंग के उत्तम वीर कर्म का अनुकरण करें, जिसका अवलम्बन तुम्हारे महारथी पुत्र अभिमन्यु ने किया है ॥४२॥

एवमाश्वास्य भगिनीं द्रौपदीमपि चोत्तराम् ।
पार्थस्यैव महाबाहुः पार्श्वमागादरिन्दमः ॥४३॥

अरिविजयी, महाबाहु श्रीकृष्ण, इस प्रकार अपनी भगिनी सुभद्रा, द्रौपदी और अभिमन्यु की भार्या उत्तरा को समझा कर अर्जुन के पास पहुंचे ॥४३॥

ततोऽभ्यनुज्ञाय नृपान्कृष्णो बन्धूंस्तथाऽर्जुनम् ।
विवेशाऽन्तःपुरे राजंस्ते च जग्मुर्यथाऽऽलयम् ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राप्रविलापे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

हे राजन् ! श्रीकृष्ण ने अन्य राजा, बन्धुबान्धव तथा अर्जुन को भी विश्राम करने की अनुज्ञा देकर अपने रनिवास में गमन किया तथा ये राजा लोग भी अपने २ शिविरों को चले गए ॥४४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत प्रतिज्ञापर्व में सुभद्रा के विलाप का अठहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ।

---

# उनासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततोऽर्जुनस्य भवनं प्रविश्याऽप्रतिमं विभुः ।
स्पृष्ट्वाऽम्भः पुण्डरीकाक्षः स्थण्डिले शुभलक्षणे ॥१॥
सन्तस्तार शुभां शय्यां दर्भैर्वैदूर्यसन्निभैः ।
ततो माल्येन विधिवल्लाजैर्गन्धैः सुमङ्गलैः ॥२॥
अलञ्चकार तां शय्यां परिवार्याऽऽयुधोत्तमैः ।

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! इसके अनन्तर शक्तिशाली कमलनयन श्रीकृष्ण, अर्जुन के अनुपम शिविर में प्रविष्ट हुए ।

इन्होंने आचमन करके सुन्दर वेदी बनाई। उसके ऊपर वैडूर्य मणि के सदृश हरित कुशाओं को बिछाकर शय्या तय्यार की। प्रतिज्ञा के अनन्तर जिस वेदी (कुशा की शय्या) पर सोना होता है, उसे विधि-पूर्वक पुष्पमाला और मङ्गलीक सुगन्धित द्रव्यों से रुचिर बनाया। इस प्रकार उत्तम २ आयुधों से भी उस शय्या को समन्वित करके सुशोभित किया ॥१-२॥

ततः स्पृष्टोदके पार्थे विनीताः परिचारकाः ॥३॥
दर्शयन्तोऽन्तिके चक्रुर्नैशं त्रैयम्बकं बलिम्।

इसके अनन्तर अर्जुन ने भी आचमन किया। विनयशील सेवकों ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को दिखाते हुए उनके सन्मुख ही रात्रि में देने योग्य शङ्कर बलि को तय्यार किया ॥३॥

ततः प्रीतमनाः पार्थो गन्धमाल्यैश्च माधवम् ॥४॥
अलंकृत्योपहारं तं नैशं तस्मै न्यवेदयत्।

इस समय अर्जुन बड़े प्रसन्न मुख थे। इन्होंने गन्ध और मालाओं से श्रीकृष्ण को अलंकृत करके उनको रात्रि में अर्पण करने योग्य उस बलि को सौंप दिया ॥४॥

स्मयमानस्तु गोविन्दः फाल्गुनं प्रत्यभाषत ॥५॥
सुप्यतां पार्थ भद्रं ते कल्याणाय व्रजाम्यहम्।

अब कुछ मुस्कुराकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—हे पार्थ! अब तुम शयन करो-मैं तुम्हारे कल्याण के निमित्त जाता हूं ॥५॥

स्थापयित्वा ततो द्वास्थान्गोप्तृंश्चाऽऽत्तायुधान्नरान् ॥
दारुकानुगतः श्रीमान्विवेश शिबिरं स्वकम्।

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के द्वार पर कुछ शस्त्रधारी रक्षक नियुक्त किए और फिर आपके दारुक सारथि को साथ लेकर अपने शिविर की ओर चल दिए ॥६॥

शिश्ये च शयने शुभ्रे बहु कृत्यं विचिन्तयन् ॥७॥
पार्थाय सर्वं भगवाञ्शोकदुःखापहं विधिम् ।
व्यदधात्पुण्डरीकाक्षस्तेजोद्युतिविवर्धनम् ॥८॥

अनेक विचारों की शृङ्खल में निमग्न हुए भगवान श्रीकृष्ण ने शुभ शय्या पर शयन किया। वे कमलनयन कृष्ण अर्जुन के दुःख और शोक के नाश के निमित्त अनेक तेज के बढ़ाने वाली विधियां कर रहे थे ॥७-८॥

योगमास्थाय युक्तात्मा सर्वेषामीश्वरेश्वरः ।
श्रेयस्कामः पृथुयशा विष्णुर्जिष्णुप्रियङ्करः ॥९॥

अर्जुन के हित में तत्पर, स्वामी, योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने योग का आश्रय लेकर अर्जुन के कल्याण की कामना की। श्रीकृष्ण बड़े ही यशस्वी और दूरदर्शी महात्मा हैं ॥९॥

न पाण्डवानां शिविरे कश्चित्सुष्वाप तां निशाम् ।
प्रजागरः सर्वजनं ह्याविवेश विशाम्पते ॥१०॥

हे विशाम्पते ! इस रात को पाण्डवों की सेना में कोई भी नहीं सोया, समस्त वीरों को जागते २ रात काटनी पड़ी ॥१०॥

पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञातो महात्मना ।
सहसा सिन्धुराजस्य वधो गाण्डीवधन्वना ॥११॥

तत्कथं नु महाबाहुर्वासविः परवीरहा ।
प्रतिज्ञां सफलां कुर्यादिति ते समचिन्तयन् ॥१२॥

पुत्र-शोक से सन्तप्त, गाण्डीवधारी महावीर अर्जुन ने सिन्धु-राज के वध की प्रतिज्ञा की है। शत्रुविजयी, इन्द्र-पुत्र महाबाहु, अर्जुन इस प्रतिज्ञा को कैसे पूर्ण करे—सारे वीर यही सोचते रहे ॥

कष्टं हीदं व्यवसितं पाण्डवेन महात्मना ।
स च राजा महावीर्यः पारयत्वर्जुनः स ताम् ॥१३॥

महापराक्रमी अर्जुन ने यह कठिन प्रतिज्ञा कर तो ली है, परन्तु सिन्धुराज बड़ा ही पराक्रमी है। अर्जुन इस प्रतिज्ञा को किसी तरह पार कर ले—हमारी यही अभिलाषा है ॥१३॥

पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञा महती कृता ।
भ्रातरश्चापि विक्रान्ता बहुलानि बलानि च ॥१४॥
धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सर्वं तस्मै निवेदितम् ।

इधर तो अर्जुन ने पुत्र शोकातुर होकर इस महाकठिन प्रतिज्ञा को कर लिया, उधर राजा दुर्योधन के सारे भाई बड़े बलवान् और विक्रमशाली हैं। कुरुराज दुर्योधन ने इन सारे अपने भाइयों को सिन्धुराज की रक्षा में नियुक्त कर दिया है ॥१४॥

स हत्वा सैन्धवं संख्ये पुनरेतु धनञ्जयः ॥१५॥
जित्वा रिपुगणांश्चैव पारयन्नर्जुनो व्रतम् ।
श्वोऽहत्वा सिन्धुराजं वै धूमकेतुं प्रवेक्ष्यति ॥१६॥
न ह्यसावनृतं कर्त्तुमलं पार्थो धनञ्जयः ।

अब कल या तो अर्जुन रण में सिन्धुराज और सारे शत्रु गणों को जीत कर अपने व्रत को पूर्ण करके आवेंगे और जो कल किसी प्रकार अर्जुन सिन्धुराज का वध नहीं कर सकेगा-तो वे अवश्य अग्नि में प्रवेश कर जावेंगे। धनञ्जय अर्जुन कभी मिथ्या व्यवहार नहीं करेंगे ॥१५-१६॥

धर्मपुत्रः कथं राजा भविष्यति मृतेऽर्जुने ॥१७॥
तस्मिन्हि विजयः कृत्स्नः पाण्डवेन समाहितः ।

जब इस तरह अर्जुन मर लिए-तो धर्मराज युधिष्ठिर की क्या गति होगी। धर्मराज ने तो सारी विजय का भार अर्जुन पर ही रख छोड़ा है ॥१७॥

यदि नोऽस्ति कृतं किञ्चिद्यदि दत्तं हुतं यदि ॥१८॥
फलेन तस्य सर्वस्य सव्यसाची जयत्वरीन् ।

सारे पाण्डव वीर इस समय यही कह रहे हैं, कि हमने जो कुछ पुण्य किया, दान दिया या हवन किया है, तो उस सबका यही फल है, कि अर्जुन विजयी होवे ॥१८॥

एवं कथयतां तेषां जयमाशंसतां प्रभो ॥१९॥
कृच्छ्रेण महती राजन्रजनी व्यत्यवर्त्तत ।

हे शक्तिशाली ! राजन् ! इस प्रकार कहते हुए और अर्जुन के विजय की अभिलाषा करते हुए, पाण्डव वीरों की बड़े कष्ट से रात व्यतीत हुई ॥१९॥

तस्यां रजन्यां मध्ये तु प्रतिबुद्धो जनार्दनः ॥२०॥
स्मृत्वा प्रतिज्ञां पार्थस्य दारुकं प्रत्यभाषत ।

इसी रात के मध्यकाल में जनार्दन कृष्ण उठे और अर्जुन की प्रतिज्ञा का स्मरण करके अपने सारथि दारुक से कहने लगे ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञातमार्तेन हतबन्धुना ॥२१॥
जयद्रथं वधिष्यामि श्वोभूत इति दारुक ।

हे दारुक ! अपने पुत्र की मृत्यु से दुःखी अर्जुन ने क्लेशातुर होकर भीषण प्रतिज्ञा कर डाली, कि मैं कल अवश्य सिन्धुराज जयद्रथ को मार लूंगा ॥२१॥

तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा मन्त्रिभिर्मन्त्रयिष्यति ॥२२॥
यथा जयद्रथं पार्थो न हन्यादिति संयुगे ।

राजा दुर्योधन भी इस सारी घटना को सुनकर अपने मन्त्रियों के साथ इसी बात पर रात भर सोचता रहेगा, कि कल अर्जुन किसी तरह राजा जयद्रथ को न मार सके ॥२२॥

अक्षौहिण्यो हिताः सर्वा रक्षिष्यन्ति जयद्रथम् ॥२३॥
द्रोणश्च सह पुत्रेण सर्वास्त्रविधिपारगः ।

कौरवों की सारी अक्षौहिणी राजा जयद्रथ के हित में तत्पर होकर उसकी रक्षा करेंगी । समस्त अस्त्र विद्या में निपुण आचार्य द्रोण भी अपने पुत्र अश्वत्थामा के साथ सिन्धुराज की रक्षा में खड़े होंगे ॥२३॥

एको वीरः सहस्राक्षो दैत्यदानवदर्पहा ॥२४॥
सोऽपि तं नोत्सहेताऽऽजौ हन्तुं द्रोणेन रक्षितम् ।

दैत्य और दानवों के दर्प का नाशक, इन्द्र एक अद्वितीय वीर है। वह भी द्रोणाचार्य से सुरक्षित सिन्धुराज के मारने में समर्थ नहीं हो सकता है ॥२४॥

सोऽहं श्वस्तत्करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः ॥२५॥
अप्राप्तेऽस्तं दिनकरे हनिष्यति जयद्रथम् ।

अब मुझे उसी ढंग से चलना चाहिए, जिस प्रकार कल कुन्ती-पुत्र अर्जुन सूर्य के अस्त होने से पूर्व ही राजा जयद्रथ का वध कर डाले ॥२५॥

न हि दारा न मित्राणि ज्ञातयो न च बान्धवाः ॥२६॥
कश्चिदन्यः प्रियतरः कुन्तीपुत्रान्ममाऽर्जुनात् ।

मुझे तो कुन्ती-पुत्र अर्जुन के अतिरिक्त अपना परिवार, मित्र, जाति और बान्धव कोई भी प्रिय नहीं है ॥२६॥

अनर्जुनमिमं लोकं मुहूर्त्तमपि दारुक ॥२७॥
उदीक्षितुं न शक्तोऽहं भविता न च तत्तथा

हे दारुक ! अर्जुन के विना इस मृत्युलोक को मैं एक क्षण भी देखने को समर्थ नहीं हूं, इसलिए मैं कल कभी भी अर्जुन की प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं होने दूंगा ॥२७॥

अहं विजित्य तान्सर्वान्सहसा सहयद्विपान् ॥२८॥
अर्जुनार्थे हनिष्यामि सकर्णान्ससुयोधनान् ।

अब मैं स्वयं ही अर्जुन की विजय के लिए अश्व और हाथियों के साथ दुर्योधन और कर्ण सहित सारे कौरव सैनिकों को मार गिराऊंगा ॥२८॥

श्वो निरीक्षन्तु मे वीर्यं त्रयो लोका महाहवे ॥२९॥
धनञ्जयार्थे समरे पराक्रान्तस्य दारुक ।

हे दारुक ! अब कल अर्जुन के विजय के लिए इस घोर रण में जो मैं पराक्रम कर दिखाऊंगा-उसे तीनों लोक आश्चर्य के साथ देखेंगे ॥२९॥

श्वो नरेन्द्रसहस्राणि राजपुत्रशतानि च ॥३०॥
साश्वद्विपरथान्याजौ विद्रविष्यामि दारुक ।

हे सारथि ! मैं कल अश्व, हाथी और रथोंके साथ सहस्रों राजा और राजकुमारों को रणभूमि में मार गिराऊंगा ॥३०॥

श्वस्तां चक्रप्रमथितां द्रक्ष्यसे नृपवाहिनीम् ॥३१॥
मया क्रुद्धेन समरे पाण्डवार्थे निपातिताम् ।

अब तुम कल राजा दुर्योधन की सेना को रण में अर्जुन के विजय के निमित्त क्रोधातुर मेरे सुदर्शन चक्र से छिन्न-भिन्न देखोगे ॥३१॥

श्वः सदेवाः सगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥३२॥
ज्ञास्यन्ति लोकाः सर्वे मां सुहृदं सव्यसाचिनः ।

हे महावीर ! कल सारे देव, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस तथा मनुष्य अर्जुन के साथ मेरे सौहार्द का ज्ञान प्राप्त करेंगे ॥३२॥

यस्तं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्तं चाऽनु स मामनु ॥३३॥
इति सङ्कल्प्यतां बुद्ध्या शरीरार्धं ममाऽर्जुनः ।

जो अर्जुन से द्वेष करता है, वह मेरा शत्रु है और जो उसके अनुकूल है, वह मेरा मित्र है। तुम अपनी बुद्धि से इस प्रकार समझकर अर्जुन को मेरा आधा शरीर समझो ॥३३॥

यथा त्वं मे प्रभातायामस्यां निशि रथोत्तमम् ॥३४॥
कल्पयित्वा यथाशास्त्रमादाय व्रज संयतः।

अब तुम रात भर में मेरे रथ को अच्छी तरह शास्त्रानुसार सजा दो और प्रातःकाल सावधानी के साथ ले आओ ॥३४॥

गदां कौमोदकीं दिव्यां शक्तिं चक्रं धनुः शरान् ॥३५॥
आरोप्य वै रथे सूत सर्वोपकरणानि च।

हे सारथि ! मेरे रथ में कौमोदकी गदा, दिव्य शक्ति, चक्र, धनुष,बाण आदि सारी युद्ध की सामग्री रथ में सजाकर ले आना।

स्थानं च कल्पयित्वाऽथ रथोपस्थे ध्वजस्य मे ॥३६॥
वैनतेयस्य वीरस्य समरे रथशोभिनः।

रण में रथ के ऊपर सुशोभित होने वाले, पराक्रमी गरुड़ के चिन्ह से चिन्हित ध्वजा को रथ के ऊपर अच्छी तरह लगा देना ॥

छत्रं जाम्बूनदैर्जालैरर्कज्वलनसप्रभैः ॥३७॥
विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरश्वानपि विभूषितान्।
बलाहकं मेघपुष्पं शैब्यं सुग्रीवमेव च ॥३८॥
युक्तान्वाजिवरान्यत्तः कवची तिष्ठ दारुक।

सूर्य और अग्नि के सदृश जाज्वल्यमान, विश्वकर्मा के द्वारा बनाये हुए दिव्य, सुवर्ण के तन्तुओं से गुथे हुए छत्र तथा बलाहक, मेघपुष्प शैव्य और सुग्रीव नामक आभूषित अश्वों से समन्वित रथ को करके तुम कवच पहन कर उसमें सावधानी के साथ स्थित होना ॥३७-३८॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषमार्षभेणैव पूरितम् ॥३९॥
श्रुत्वा च भैरवं नादमुपेयास्त्वं जवेन माम् ।

ऋषभ स्वर में बजाए हुए पाञ्चजन्य शंख के शब्द जब तुम सुनों-तो उस भैरव घोष के सुनते ही तुम मेरे पास बड़े वेग से चले आना ॥३९॥

एकाह्नाऽहममर्षं च सर्वदुःखानि चैव ह ॥४०॥
भ्रातुः पैतृष्वसेयस्य व्यपनेष्यामि दारुक ।

हे दारुक ! मैं अपने पिता की भगिनी के पुत्र, मेरे भ्राता राजा युधिष्ठिर के दुःख और अपने क्रोध को एक ही दिन में शान्त कर देना चाहता हूं ॥४०॥

सर्वोपायैर्यतिष्यामि यथा बीभत्सुराहवे ॥४१॥
पश्यतां धार्त्तराष्ट्राणां हनिष्यति जयद्रथम् ।

अब मैं सारे ऐसे उपाय करूंगा, जिससे सारे धृतराष्ट्र-पुत्रों के देखते २ अर्जुन रण में राजा जयद्रथ को मार गिरावे ॥४१॥

यस्य यस्य च बीभत्सुर्वधे यत्नं करिष्यति ॥
आशंसे सारथे तत्र भविताऽस्य ध्रुवो जयः ॥४२॥

हे सारथे! अर्जुन जिस २ विरोधी वीर के वध की चेष्टा करेगा, मेरा तो यही अनुमान (खयाल) है, कि वह उसके वध करने में अवश्य सफल होगा। इस तरह मुझे तो अर्जुन के विजय की ही आशा है ॥४२॥

दारुक उवाच—

जय एव ध्रुवस्तस्य कुत एव पराजयः।
यस्य त्वं पुरुषव्याघ्र सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥४३॥

दारुक बोले—हे पुरुषव्याघ्र! जिसके तुम सारथि बन गए, उसकी अवश्य विजय है, इसकी पराजय कौन कर सकता है ॥४३॥

एवं चैतत्करिष्यामि यथा मामनुशाससि।
सुप्रभातामिमां रात्रिं जयाय विजयस्य हि ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णदारुकसंभाषणे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७६॥

अब आपने जो आज्ञा दी है; मैं तो उसे रात के समाप्त होते ही अर्जुन की विजय के लिए रथ को सजाकर आ पहुंचूंगा ॥४४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत प्रतिज्ञापर्व में श्रीकृष्ण और दारुक के संभाषण का उनासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

# अस्सीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

कुन्तिपुत्रस्तु तं मन्त्रं स्मरन्नेव धनञ्जयः।

प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्मुमोहाऽचिन्त्यविक्रमः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! अत्यन्त पराक्रमी कुन्ती-पुत्र अर्जुन भी राजा जयद्रथ की रक्षा के निमित्त कौरवों के प्रयत्न को सुनकर और अपनी प्रतिज्ञा की कठिनाई को सोच कर बहुत चिन्तित हुआ।

तं तु शोकेन सन्तप्तं स्वप्ने कपिवरध्वजम्।

आससाद महातेजा ध्यायन्तं गरुडध्वजः ॥२॥

इस तरह शोकातुर कपिध्वज अर्जुन के पास स्वप्न में गरुड़ की ध्वजा वाले महातेजस्वी श्रीकृष्ण उपस्थित हुए ॥२॥

प्रत्युत्थानं च कृष्णस्य सर्वावस्थो धनञ्जयः।

न लोपयति धर्मात्मा भक्त्या प्रेम्णा च सर्वदा ॥३॥

धर्मात्मा अर्जुन, श्रीकृष्ण को भक्ति और प्रेम के कारण किसी भी अवस्था में श्रीकृष्ण का प्रत्युत्थान आदि आदर का लोप नहीं करते थे ॥३॥

प्रत्युत्थाय च गोविन्दं स तस्मा आसनं ददौ।

न चाऽऽसने स्वयं बुद्धिं बीभत्सुर्व्यदधात्तदा ॥४॥

अर्जुन स्वप्न में ही खड़ा हो गया और उसने उठ कर श्रीकृष्ण को आसन समर्पित कर दिया एवं आपने अपने लिए कोई आसन न बिछा कर खड़ा ही रहना चाहा ॥४॥

ततः कृष्णो महातेजा जानन्पार्थस्य निश्चयम् ।
कुन्तीपुत्रमिदं वाक्यमासीनः स्थितमब्रवीत् ॥५॥

महातेजस्वी श्रीकृष्ण, कुन्ती-पुत्र अर्जुन के निश्चय को जानकर उनसे कहने लगे। इस समय दोनों महात्मा (शान्ति के साथ) बैठे हुए थे ॥५॥

मा विषादे मनः पार्थ कृथाः कालो हि दुर्जयः ।
कालः सर्वाणि भूतानि नियच्छति परे विधौ ॥६॥

हे पार्थ ! इस समय तुम अपने मन को चिन्ता में न डालो। यह समय बड़ा ही कठिन उपस्थित हुआ है । समय ही सारे प्राणियों को होनहार की ओर ले जाता है ॥६॥

किमर्थं च विषादस्ते तद् ब्रूहि द्विपदां वर ।
न शोच्यं विदुषां श्रेष्ठ शोकः कार्यविनाशनः ॥७॥

हे वीरश्रेष्ठ ! तुम क्यों चिन्ता कर रहे हो-उसका कारण बताओ। हे विद्वानों में श्रेष्ठ ! तुमको चिन्ता नहीं करनी चाहिए । यह चिन्ता ही सारे कार्यों का नाश कर देती है ॥७॥

यत्तु कार्यं भवेत्कार्यं कर्मणा तत्समाचर ।
हीनचेष्टस्य यः शोकः स हि शत्रुर्धनञ्जय ॥८॥

अब जो सन्मुख कार्य उपस्थित है और जिस उद्योग द्वारा वह कार्य सिद्ध हो-उसको पूरा करो । हे धनञ्जय ! अपने उद्योग को छोड़कर जो शोक करना है, वही शोक प्राणो का सबसे बड़ा शत्रु है ॥८॥

शोचन्नन्दयते शत्रून्कर्शयत्यपि बान्धवान् ।
क्षीयते च नरस्तस्मान्न त्वं शोचितुमर्हसि ॥९॥

जब मनुष्य शोक करता है, तो इससे उनके शत्रु प्रसन्न होते हैं और बान्धव लोग क्षीण हो जाते हैं, इस प्रकार मनुष्य की हानि ही हानि हैं—यह सोचकर तुमको शोक नहीं करना चाहिए ॥९॥

इत्युक्तो वासुदेवेन बीभत्सुरपराजितः ।
अवभाषे तदा विद्वानिदं वचनमर्थवत् ॥१०॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण ने जब विजयशील अर्जुन से कहा-तो तब सब कुछ जानने वाले अर्जुन इस प्रकार श्रीकृष्ण से सार्थक वचन बोले ॥१०॥

मया प्रतिज्ञा महती जयद्रथवधे कृता ।
श्वोऽस्मि हन्ता दुरात्मानं पुत्रघ्नमिति केशव ॥११॥

हे केशव ! मैंने राजा जयद्रथ के वध के लिए बड़ी कठिन प्रतिज्ञा कर ली है, कि कल अपने पुत्र अभिमन्यु की मृत्युके कारण राजा जयद्रथ का अवश्य वध करूंगा ॥११॥

मत्प्रतिज्ञाविघातार्थं धार्त्तराष्ट्रैः किलाच्युत ।
पृष्ठतः सैन्धवः कार्यः सर्वैर्गुप्तो महारथैः ॥१२॥

मेरी प्रतिज्ञा के पूरी न होने के लिए कौरवों ने भी बड़ी तय्यारी की है। उनके सारे महारथी सिन्धुराज को पीछे करके उसकी रक्षा करेंगे ॥१२॥

दश चैका च ताः कृष्ण अक्षौहिण्यः सुदुर्जयाः।
हतावशेषास्तत्रेमा हन्त माधव संख्यया ॥१३॥

हे कृष्ण ! उनकी एकादश अक्षौहिणी सेना बड़ी दुर्जय है। हे माधव ! जिसमें से अभी बहुत ही न्यून संख्या में मरी है। वह ज्यों की त्यों स्थित है ॥१३॥

ताभिः परिवृतः संख्ये सर्वैश्चैव महारथैः।
कथं शक्येत सन्द्रष्टुं दुरात्मा कृष्ण सैन्धवः ॥१४॥

हे कृष्ण ! सारे महारथी और इस सेना से घिरे हुए, दुरात्मा सिन्धुराज को मैं देख भी नहीं सकूंगा ॥१४॥

प्रतिज्ञापारणं चापि न भविष्यति केशव।
प्रतिज्ञायां च हीनायां कथं जीवति मद्विधः ॥१५॥

हे केशव ! मुझे मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण होती दिखाई नहीं देती है। यदि मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं हुई-तो फिर मुझ जैसा मनुष्य कैसे जीवित रह सकता है ॥१५॥

दुःखोपायस्य मे वीर विकांक्षा परिवर्त्तते।
द्रुतं च याति सविता तत एतद्ब्रवीम्यहम् ॥१६॥

हे वीर! मैं बड़े दुःख से सिद्ध होने वाले काम में फंस गया हूं। ऐसे समय में सूर्य बहुत ही जल्दी चल देता है, इसी कारण मुझे चिन्ता हो रही है ॥१६॥

शोकस्थानं तु तच्छ्रुत्वा पार्थस्य द्विजकेतनः ।
संस्पृश्याऽम्भस्ततः कृष्णः प्राङ्मुखः समवस्थितः ॥

इदं वाक्यं महातेजा बभाषे पुष्करेक्षणः ।
हितार्थं पाण्डुपुत्रस्य सैन्धवस्य वधे कृती ॥१८॥

गरुड़ध्वज श्रीकृष्ण, अर्जुन की शोकपूर्ण यह बात सुनकर पूर्व को मुख करके बैठ गए और आचमन करके महातेजस्वी, कमलनयन, भगवान् कृष्ण, पाण्डु-पुत्र अर्जुन के हित के लिए और सिन्धुराज के वध के निमित्त यह वचन बोले ॥१७-१८॥

पार्थ पाशुपतं नाम परमास्त्रं सनातनम् ।
येन सर्वान्मृधे दैत्याञ्जघ्ने देवो महेश्वरः ॥१९॥

हे पार्थ! एक सनातन पाशुपतास्त्र नामक दिव्य अस्त्र है, जिससे युद्ध में महेश्वर सारे दैत्यों का वध करते हैं ॥१९॥

यदि तद्विदितं तेऽद्य श्वो हन्तासि जयद्रथम् ।
अथाऽज्ञातं प्रपद्यस्व मनसा वृषभध्वजम् ॥२०॥

तं देवं मनसा ध्यात्वा जोषमास्व धनञ्जय ।
ततस्तस्य प्रसादात्त्वं भक्तः प्राप्स्यसि तन्महत् ॥२१॥

यदि वह अस्त्र तुम्हारे स्मरण में हो, तो तुम कल राजा जयद्रथ का वध कर सकते हो और जो तुम उस अस्त्र को नहीं जानते

सो-तो भगवान शङ्कर का ध्यान करो। हे धनञ्जय! तुम इन देव का मन से ध्यान करके चुप बैठ जाओ। उनके अनुग्रह से तुमको यह पाशुपतास्त्र अभी प्राप्त हो जावेगा ॥२०-२१॥

ततः कृष्णवचः श्रुत्वा संस्पृश्याऽम्भो धनञ्जयः।
भूमावासीन एकाग्रो जगाम मनसा भवम् ॥२२॥

श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर अर्जुन ने आचमन किया और वे भगवान् शङ्कर का ध्यान करके चुपचाप भूमि में बैठ गए ॥२२॥

ततः प्रणिहितो ब्राह्मे मुहूर्ते शुभलक्षणे।
आत्मानमर्जुनोऽपश्यद्गगने सहकेशवम् ॥२३॥

इस शुभ लक्षणधारी, ब्राह्म मुहूर्त में ध्यान मग्न हुए अर्जुन ने श्रीकृष्ण के साथ अपने को आकाश-मण्डल में देखा ॥२३॥

पुण्यं हिमवतः पादं मणिमन्तं च पर्वतम्।
ज्योतिर्भिश्च समाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम् ॥२४॥

वहीं पर अर्जुन ने हिमवान् पर्वत का पवित्र पाद, सिद्ध चारणों से सेवित, ज्योतियों से व्याप्त, मणिमान् पर्वत को देखा।

वायुवेगगतिः पार्थः खं भेजे सहकेशवः।
केशवेन गृहीतः स दक्षिणे विभुना भुजे ॥२५॥

श्रीकृष्ण के साथ २ वायु के वेग से कुन्ती-पुत्र अर्जुन आकाश में पहुंचा। इस समय सर्वशक्तिमान् भगवान् कृष्ण ने उसकी दायीं भुजा पकड़ रक्खी थी ॥२५॥

प्रेक्षमाणो बहून्भावाञ्जगामाऽद्भुतदर्शनान् ।
उदीच्यां दिशि धर्मात्मा सोऽपश्यच्छ्वेतपर्वतम् ॥२६॥

अब धर्मात्मा अर्जुन, बड़े २ अद्भुत दृश्यों को देखते हुए उत्तर दिशा में श्वेतपर्वत पर पहुंचे ॥२६॥

कुबेरस्य विहारे च नलिनीं पद्मभूषिताम् ।
सरिच्छ्रेष्ठां च तां गङ्गां वीक्षमाणो बहूदकाम् ॥२७॥
सदापुष्पफलैर्वृक्षैरुपेतां स्फटिकोपलाम् ।
सिंहव्याघ्रसमाकीर्णां नानामृगसमाकुलाम् ॥२८॥
पुण्याश्रमवतीं रम्यां मनोज्ञाण्डजसेविताम् ।

वहां अर्जुन ने कुबेर के विहारस्थल में पद्मकोश से विकसित कमलिनी और बहुत जल से परिपूर्ण नदी श्रेष्ठ गङ्गा को देखा । इस गङ्गा के तट पुष्प और फलों से लदे हुए वृक्षों से सुशोभित थे स्वयं गङ्गा स्फटिक से उज्ज्वल पत्थरों से व्याप्त थी । इसके वन, सिंह और व्याघ्रों से आकीर्ण तथा अनेक बनैले मृग आदि जन्तुओं से परिपूर्ण हो रहे थे । उसके तट पर पवित्र आश्रम थें, जिनमें सुन्दर २ पक्षी कलोलें कर रहे थे ॥२७-२८॥

मन्दरस्य प्रदेशांश्च किन्नरोद्गीतनादितान् ॥२९॥
हेमरूप्यमयैः शृङ्गैर्नानौषधिविदीपितान् ।
तथामन्दारवृक्षैश्च पुष्पितैरुपशोभितान् ॥३०॥
स्निग्धाञ्जनचयाकारं सम्प्राप्तः कालपर्वतम् ।

किन्नरों से गीयमान, सुवर्णमय शिखरों से तथा अनेक भांति की औषधियों से देदीप्यमान, विकसित मन्दार पुष्पों से सुशोभित, मन्दर पर्वत के प्रदेश तथा चिकने अञ्जनसमूह के आकारधारी काल पर्वत पर अर्जुन जा पहुंचे ॥२९-३०॥

ब्रह्मतुङ्गनदीश्चाऽन्यास्तथा जनपदानपि ॥३१॥

स तुङ्गं शतशृङ्गं च शर्यातिवनमेव च ।

पुण्यमश्वशिरःस्थानं स्थानमाथर्वणस्य च ॥३२॥

वृषदंशं च शैलेन्द्रं महामन्दरमेव च ।

अप्सरोभिः समाकीर्णं किन्नरैश्चोपशोभितम् ॥३३॥

ब्रह्म तुङ्ग नदी तथा अन्य नदियां, बहुत से देश, बहुत ऊंचे शतशृङ्ग पर्वत, शर्याति के वन, पवित्र अश्वशिर स्थान, आथर्वण स्थान, वृषदंश, अप्सरा और किन्नरों से व्याप्त महामन्दर पर्वत पर अर्जुन जा पहुंचे ॥३१-३३॥

तस्मिन्शैले व्रजन्पार्थः सकृष्णः समवैक्षत ।

शुभैः प्रस्रवणैर्जुष्टां हेमधातुविभूषिताम् ॥३४॥

चन्द्ररश्मिप्रकाशाङ्गीं पृथिवीं पुरमालिनीम् ।

समुद्रांश्चाऽद्भुताकारानपश्यद्बहुलाकरान् ॥३५॥

श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन इस पर्वत पर चल दिए । वहां उन्होंने चन्द्र किरणों से व्याप्त, सुन्दर झरनों से समन्वित, हेम वर्ण वाले धातुओं से चित्रित नगरों से सुशोभित भूमि तथा

अद्भुत आकारधारी बहुत से रत्नों की राशि वाले समुद्रों को देखा ॥३४-३५॥

वियद्द्यां पृथिवीं चैव तथा विष्णुपदं व्रजन् ।
विस्मितः सह कृष्णेन क्षिप्तो बाण इवाऽभ्यगात् ॥३६॥

आकाश, द्युलोक, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष लोक में घूमते हुए श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन आश्चर्यपूर्वक फैंके हुए बाण की तरह वेग से चले जा रहे थे ॥३६॥

ग्रहनक्षत्रसोमानां सूर्याग्न्योश्च समत्विषम् ।
अपश्यत तदा पार्थो ज्वलन्तमिव पर्वतम् ॥३७॥

वहां पर कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि के सदृश कान्तिधारी, जाज्वल्यमान किसी पर्वत को देखा ॥३७॥

समासाद्य तु तं शैलं शैलाग्रे समवस्थितम् ।
तपोनित्यं महात्मानमपश्यद्वृषभध्वजम् ॥३८॥

उस पर्वत पर पहुंचकर पर्वत के शिखर पर तपपरायण, महात्मा वृषभध्वज शंकर को देखा ॥३८॥

सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानं स्वतेजसा ।
शूलिनं जटिलं गौरं वल्कलाजिनवाससम् ॥३९॥
नयनानां सहस्रैश्च विचित्राङ्गं महौजसम् ।
पार्वत्या सहितं देवं भूतसङ्घैश्च भास्वरैः ॥४०॥
गीतवादित्रसन्नादैर्हास्यलास्यसमन्वितम् ।
वल्गितास्फोटितोत्क्रुष्टैः पुण्यैर्गन्धैश्च सेवितम् ॥४१॥

स्तूयमानं स्तवैर्दिव्यैर्ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
गोप्तारं सर्वभूतानामिष्वासधरमच्युतम् ॥४२॥

वे अपने तेज से सहस्रों सूर्य के तुल्य चमक रहे थे। उनके हाथ में शूल था। वे जटाधारी, वल्कल और मृगचर्म के वस्त्र धारण किये हुए गौर वर्ण से सुशोभित हो रहे थे। उनके इस रूप में सहस्रों नेत्र चमक रहे थे। इनका महा ओजस्वी विचित्र आकार था। ये बड़े तेजस्वी भूतगण और पार्वती के साथ स्थित थे। वे गाने बजाने, शब्द करने, हंसने, नाचने, किलकारने, ताली बजाने तथा पवित्र सुगन्धि से विभूषित थे। उनकी अनेक स्तोत्रों से ब्रह्मवादी ऋषि स्तुति कर रहे थे। ये समस्त प्राणियों के रक्षक, धनुर्धर और दृढ़ स्वभावधारी थे ॥३६-४२॥

वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा जगाम शिरसा क्षितिम् ।
पार्थेन सह धर्मात्मा गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥४३॥

श्रीकृष्ण ने उन्हें देखकर शिर नवा कर प्रणाम किया। धर्मात्मा श्रीकृष्ण, अर्जुन के साथ सनातन ब्रह्म की स्तुति करने लगे ॥४३॥

लोकादिं विश्वकर्माणमजमीशानमव्ययम् ।
मनसः परमं योनिं खं वायुं ज्योतिषां निधिम् ॥४४॥

स्रष्टारं वारिधाराणां भुवश्च प्रकृतिं पराम् ।
देवदानवयक्षाणां मानवानां च साधनम् ॥४५॥
योगानां च परं धाम दृष्टं ब्रह्मविदां निधिम् ।
चराचरस्य स्रष्टारं प्रतिहर्तारमेव च ॥४६॥

कालकोपं महात्मानं शक्रसूर्यगुणोदयम् ।
ववन्दे तं तदा कृष्णो वाङ्मनोबुद्धिकर्मभिः ॥४७॥

लोक के आदि कारण विश्वकर्मा, अज, ईशान, अव्यय, मन से भी अग्राह्य, सबके कारणभूत, आकाश, वायु तथा ज्योतियों के निधिभूत, मेघ धारा और पृथिवी के रचयिता, प्रकृति से उत्कृष्ट, देव, दानव, यक्ष और मनुष्यों के समस्त साधन, योगों के परम-धाम, ब्रह्मज्ञानियों के प्रत्यक्ष कोप, चराचर के निर्माण और संहार-कर्ता, काल के भी नियामक, इन्द्र और सूर्य के तुल्य तेजस्वी, भगवान् शंकर को श्रीकृष्ण ने वाणी, मन, बुद्धि और काय से साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥४४-४७॥

यं प्रपद्यन्ति विद्वांसः सूक्ष्माध्यात्मपदैषिणः ।
तमजं कारणात्मानं जग्मतुः शरणं भवम् ॥४८॥

सूक्ष्म अध्यात्म पद के अभिलाषी विद्वान्, जिस जगत् के कारण अज भगवान् शङ्कर को प्राप्त करते हैं, श्रीकृष्ण भी उन्हीं भगवान् शङ्कर की शरण में पहुंचे ॥४८॥

अर्जुनश्चापि तं देवं भूयो भूयोऽप्यवन्दत ।
ज्ञात्वा तं सर्वभूतादिं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥४९॥

अर्जुन ने भी आदि देव शङ्कर की बार २ वन्दना की, क्योंकि वे भूत, भविष्यत् और वर्तमान के उत्पन्न करने वाले तथा समस्त जगत् के आदि भूत शङ्कर को जान चुके थे ॥४९॥

ततस्तावागतौ दृष्ट्वा नरनारायणावुभौ ।
सुप्रसन्नमनाः शर्वः प्रोवाच प्रहसन्निव ॥५०॥

इन दोनों नर और नारायण के अवतार अर्जुन और श्रीकृष्ण को वहां आया हुआ देखकर प्रसन्न हुए भगवान् शङ्कर ने हंसते २ कहा ॥५०॥

स्वागतं वो नरश्रेष्ठावुत्तिष्ठेतां गतक्लमौ ।
किं च वामीप्सितं वीरौ मनसः क्षिप्रमुच्यताम् ॥५१॥

हे नरश्रेष्ठो ! तुम्हारा स्वागत हो । तुम अपने श्रम का निवारण करो और खड़े हो जाओ । हे वीरो ! तुम क्या चाहते हो-वह शीघ्र कहो ॥५१॥

येन कार्येण सम्प्राप्तौ युवां तत्साधयामि किम् ।
व्रियतामात्मनः श्रेयस्तत्सर्वं प्रददामि वाम् ॥५२॥

तुम किस कार्य के निमित्त आए हो-मैं उसे पूरा करूं । तुम अपने कल्याण का वरदान मांगो-मैं तुमको सब कुछ प्रदान करूंगा

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युत्थाय कृताञ्जली ।
वासुदेवार्जुनौ शर्वं तुष्टुवाते महामती ॥५३॥
भक्त्या स्तवेन दिव्येन महात्मानावनिन्दितौ ॥५४॥

'भगवान् शङ्कर के वचन सुनकर वे दोनों महाबुद्धिमान् अर्जुन और श्रीकृष्ण हाथ जोड़कर खड़े हो गए और उनकी स्तुति करने लगे । ये सब तरह से प्रशंसित कृष्णार्जुन बड़ी भक्ति के साथ दिव्य स्तुति से प्रार्थना करने लगे ॥५३-५४॥

कृष्णार्जुनावूचतुः—

नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ।
पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने ॥५५॥
महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय च शान्तये ।
ईशानाय मखघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने ॥५६॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन बोले—भव, शर्व, रुद्र, वरदायी, पशुपति, नित्य, उग्र, कपर्दी, महादेव, भीम, त्र्यम्बक, शान्त, ईशान, दक्षयज्ञ नाशक, अन्धकघाती शङ्कर को नमस्कार हो ॥५५-५६॥

कुमारगुरवे तुभ्यं नीलग्रीवाय वेधसे ।
पिनाकिने हविष्याय सत्याय विभवे सदा ॥५७॥
विलोहिताय धूम्राय व्याधायाऽनपराजिते ।
नित्यनीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यचक्षुषे ॥५८॥
होत्रे पोत्रे त्रिनेत्राय व्याधाय वसुरेतसे ।
अचिन्त्यायाऽम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ॥५९॥
वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे ।
तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाऽजिताय च ॥६०॥
विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते ।
नमो नमस्ते सेव्याय भूतानां प्रभवे सदा ॥६१॥

कार्तिकेय के पिता, नीलग्रीव, जगद्रक्षक, पिनाकी हवि ग्रहण करने वाले, सत्य, विभु, विलोहित, धूम्र, व्याध रूप और नील शिखण्डधारी, शूली, दिव्यचक्षु, अनपराजित, होता, पोता, त्रिनेत्र,

वसुदेव, अचिन्त्य, अम्बिकापति, सब देवों से स्तुत्य, वृषध्वज, मुण्ड, जटी, ब्रह्मचारी, जल में तप करने वाले, ब्रह्मण्य, अजित, विश्वात्मा, विश्वस्रष्टा, विश्वव्यापक, भूतों के स्वामी भगवान शंकर को नमस्कार हो ॥५७-६१॥

ब्रह्मवक्त्राय सर्वाय शङ्कराय शिवाय च ।
नमोऽस्तु वाचस्पतये प्रजानां पतये नमः ॥६२॥

ब्रह्मवक्त्र, सर्वाधार, शिव, वाचस्पति और प्रजापति शंकर को नमस्कार हो ॥६२॥

नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः ।
नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजमृत्यवे ॥६३॥
सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे ।
नमो हिरण्यवर्णाय हिरण्यकवचाय च ॥
भक्तानुकम्पिने नित्यं सिध्यतां नो वरः प्रभो ॥६४॥

विश्व के पति, महान, पदार्थों से भी महान सहस्र, शिर, सहस्र भुजा, सहस्र नेत्र और पाद धारी, मृत्यु स्वरूप, असंख्य कर्मकर्ता, हिरण्यवर्ण, हिरण्य कवच वाले, भक्त के ऊपर अनुग्रह कर्ता, भगवान् शंकर हमारे मनोरथों को पूर्ण करें ॥६३-६४॥

सञ्जय उवाच—

एवं स्तुत्वा महादेवं वासुदेवः सहार्जुनः ।
प्रसादयामास भवं तदा ह्यस्त्रोपलब्धये ॥६५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्वप्ने
अशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण और अर्जुन, इस प्रकार महादेव की स्तुति करके पाशुपतास्त्र प्राप्ति के लिए भगवान् शंकर को प्रसन्न करने लगे ॥६५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत प्रतिज्ञापर्व में अर्जुन के स्वप्न
का अस्सीवां अध्याय समाप्त हुआ

---

# इक्यासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

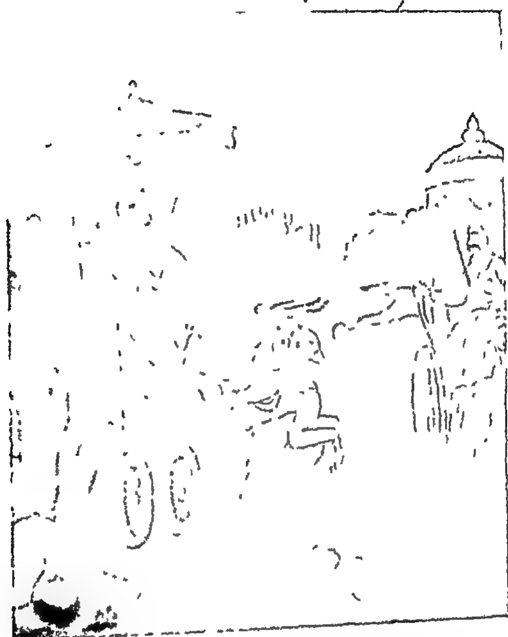
ततः पार्थः प्रसन्नात्मा प्राञ्जलिर्वृषभध्वजम् ।
ददर्शोत्फुल्लनयनः समस्तं तेजसां निधिम् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इस प्रकार प्रसन्नचित्त कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने हाथ जोड़कर तेजोनिधि वृषभध्वज के दर्शन किए, जिससे अर्जुन के नेत्र विकसित हो उठे ॥१॥

तं चोपहारं सुकृतं नैशं नैत्यकमात्मना ।
ददर्श त्र्यम्बकाभ्याशे वासुदेवनिवेदितम् ॥२॥

अर्जुन द्वारा पूर्व श्रीकृष्ण को निवेदित किया हुआ रात्रि का नैतिक उपहार भगवान् शङ्कर के समीप देखा ॥२॥

महाभारत चित्र संख्या ८५



द्रोणाचार्य और अर्जुन का घोर संग्राम

महाभारत द्रोणपर्व अध्याय ६१। ३२

ततोऽभिपूज्य मनसा कृष्णं शर्वं च पाण्डवः ।
इच्छाम्यहं दिव्यमस्त्रमित्यभाषत शङ्करम् ॥३॥

पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने मन ही मन भगवान् शङ्कर और श्रीकृष्ण को प्रणाम करके भगवान् शङ्कर से कहा-कि मैं इस समय आपका पाशुपतास्त्र दिव्य अस्त्र चाहता हूं ॥३॥

ततः पार्थस्य विज्ञाय वरार्थे वचनं तदा ।
वासुदेवार्जुनौ देवः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥४॥

हे राजन् ! अर्जुन की वर मांगने की इच्छा देखकर भगवान् शङ्कर मुस्कुराते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन से बोले ॥४॥

स्वागतं वां नरश्रेष्ठौ विज्ञातं मनसेप्सितम् ।
येन कामेन सम्प्राप्तौ भवद्भ्यां तं ददाम्यहम् ॥

हे नरश्रेष्ठो ! तुम्हारा स्वागत हो-मैंने तुम्हारे मन की अभिलाषा जान ली है। तुम जिस कामना को हृदय में रख कर आए हो-वह मैं तुमको अभी प्रदान करता हूं ॥५॥

सरोऽमृतमयं दिव्यमभ्याशे शत्रुसूदनौ ।
तत्र मे तद्धनुर्दिव्यं शरश्च निहितः पुरा ॥६॥

हे शत्रुसूदन ! समीप में ही एक अमृत का दिव्य सरोवर है-वहीं पर मेरा यह दिव्य धनुष और बाण रखे हुए हैं ॥६॥

येन देवारयः सर्वे मया युधि निपातिताः ।
तत आनीयतां कृष्णौ सशरं धनुरुत्तमम् ॥७॥

इसी धनुष से मैंने समय २ पर युद्ध में देवों के शत्रुओं को मार भगाया है। अब तुम लोग वहीं से बाण सहित मेरे धनुष को ले आओ ॥७॥

तथेत्युक्त्वा तु तौ वीरौ सर्वपारिषदैः सह ।
प्रस्थितौ तत्सरो दिव्यं दिव्यैश्वर्यशतैर्युतम् ॥८॥

ये दोनों वीर कृष्णार्जुन इतना सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और शिव के गणों को साथ लेकर अनेक दिव्य ऐश्वर्यों से सम्पन्न, उस दिव्य सरोवर पर पहुंचे ॥८॥

निर्दिष्टं यद्वृषाङ्केन पुण्यं सर्वार्थसाधकम् ।
तौ जग्मतुरसम्भ्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥६॥

भगवान् शङ्कर द्वारा बताए हुए, समस्त मनोरथों के सिद्ध करने वाले, पवित्र, उस सरोवर पर विना किसी चिन्ता के नर नारायण नामक ऋषि श्रीकृष्ण और अर्जुन पहुंचे ॥६॥

ततस्तौ तत्सरो गत्वा सूर्यमण्डलसन्निभम् ।
नागमन्तर्जले घोरं ददृशातेऽर्जुनाच्युतौ ॥१०॥

सूर्य मण्डल के सदृश देदीप्यमान उस सरोवर पर श्रीकृष्ण और अर्जुन पहुंचे। वहां उन्होंने जल में एक सर्प देखा ॥१०॥

द्वितीयं चाऽपरं नागं सहस्रशिरसं वरम् ।
वमन्तं विपुलां ज्वालां ददृशातेऽग्निवर्चसम् ॥११॥

वहीं पर एक दूसरा सर्प देखा, जिसके सहस्रों शिर थे, जो अग्नि के तुल्य तेजस्वी और विपुल ज्वाला उगल रहा था ॥११॥

ततः कृष्णश्च पार्थश्च संस्पृश्याऽम्भः कृताञ्जली ।
तौ नागावुपतस्थाते नमस्यन्तौ वृषध्वजम् ॥१२॥

अब श्रीकृष्ण और अर्जुन ने आचमन करके हाथ जोड़े और मन ही में वृषध्वज शङ्कर को प्रणाम करके उन दोनों नागराजों के समीप पहुंचे ॥१२॥

गृणन्तौ वेदविद्वांसौ तद् ब्रह्म शतरुद्रियम् ।
अप्रमेयं प्रणमतो गत्वा सर्वात्मना भवम् ॥१३॥

ये दोनों वेद के विद्वान थे, इससे शतरुद्री का पाठ करने लगे । इन्होंने मनसा वाचा कर्मणा अप्रमेय भगवान् शंकर की शरण प्राप्त करके प्रणाम किया ॥१३॥

ततस्तौ रुद्रमाहात्म्याद्धित्वा रूपं महोरगौ ।
धनुर्बाणश्च शत्रुघ्नं तद् द्वन्द्वं समपद्यत ॥१४॥

इसके अनन्तर वे दोनों नागराज, शंकर की महिमा से अपने रूप को छोड़कर शत्रुनाशक धनुष और बाणके रूप में बदल गए ।

तौ तज्जगृहतुः प्रीतौ धनुर्बाणं च सुप्रभम् ।
आजह्रतुर्महात्मानौ ददतुश्च महात्मने ॥१५॥

इन दोनों महावीरों ने प्रसन्नतापूर्वक उन देदीप्यमान धनुष और बाण को ग्रहण किया और उनको लेकर महात्मा शङ्कर को समर्पित किया ॥१५॥

ततः पार्श्वाद्वृषाङ्कस्य ब्रह्मचारी न्यवर्त्तत ।
पिङ्गाक्षस्तपसः क्षेत्रं बलवान्नीललोहितः ॥१६॥

इस समय महादेवजी की पसली से एक ब्रह्मचारी निकला, जिसकी आंखें पीली थी, जो बड़ा बलवान, नीललोहित, रूपधारी तप से देदीप्यमान था ॥१६॥

स तद्गृह्य धनुःश्रेष्ठं तस्थौ स्थानं समाहितः ।
विचकर्षाऽथ विधिवत्सशरं धनुरुत्तमम् ॥१७॥

इसने उस धनुष को उठाया और ठीक पैंतरा बांध कर विधिपूर्वक धनुष और बाण को खैंच कर चढ़ा दिया ॥१७॥

तस्य मौर्वीं च मुष्टिं च स्थानं चाऽलक्ष्य पाण्डवः ।
श्रुत्वा मन्त्रं भवप्रोक्तं जग्राहाऽचिन्त्यविक्रमः ॥१८॥

अपरिमित बलशाली पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने उस धनुष की प्रत्यञ्चा, मुष्टि और स्थान को तीव्रदृष्टि से देख लिया और शङ्कर का उच्चारण किया हुआ मन्त्र भी सुनकर कण्ठ कर लिया ॥१८॥

स सरस्येव तं बाणं मुमोचाऽतिबलः प्रभुः ।
चकार च पुनर्वीरस्तस्मिन्सरसि तद्धनुः ॥१९॥

उस अत्यन्त बलशाली, महापराक्रमी, वीर ब्रह्मचारी ने उस बाण को उसी सरोवर में छोड़ दिया और धनुष को भी उसी तड़ाग में रख दिया ॥१९॥

ततः प्रीतं भवं ज्ञात्वा स्मृतिमानर्जुनस्तदा।
वरमारण्यके दत्तं दर्शनं शङ्करस्य च ॥२०॥
मनसा चिन्तयामास तन्मे सम्पद्यतामिति।

स्मृति धारी अर्जुन ने भगवान् शङ्कर को अपने ऊपर प्रसन्न समझा। अर्जुन ने मन में सोचा, जो महादेवजी ने मुझे वन में वरदान और दर्शन दिए अब वे सब सफल होवें ॥२०॥

तस्य तन्मतमाज्ञाय प्रीतः प्रादाद्वरं भवः ॥२१॥
तच्च पाशुपतं घोरं प्रतिज्ञायाश्च पारणम्।

अर्जुन की ऐसी अभिलाषा जानकर प्रसन्न हुए शङ्कर ने वरदान दिया, कि तुमको घोर पाशुपतास्त्र प्राप्त हो और तुम्हारी प्रतिज्ञा भी पूर्ण हो जावे ॥२१॥

ततः पाशुपतं दिव्यमवाप्य पुनरीश्वरात् ॥२२॥
संहृष्टरोमा दुर्धर्षः कृतं कार्यममन्यत।

इस प्रकार भगवान् शङ्कर ने पाशुपतास्त्र प्राप्त करके महा बलशाली अर्जुन के आनन्द से रोमाञ्च खड़े हो गए और वह अब अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण ही समझने लगा ॥२२॥

ववन्दतुश्च संहृष्टौ शिरोभ्यां तं महेश्वरम् ॥२३॥
अनुज्ञातौ क्षणे तस्मिन्भवेनाऽर्जुनकेशवौ।
प्राप्तौ स्वशिबिरं वीरौ मुदा परमया युतौ ॥२४॥

इन दोनों महानुभावों ने आनन्द के साथ अपने २ मस्तक को झुका कर भगवान् शङ्कर को प्रणाम किया। भगवान् शङ्कर ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को लौट जाने की आज्ञा दी। ये दोनों वीर बड़े उल्लास के साथ अपने शिविर में लौट आए ॥२४॥

तथा भवेनाऽनुमतौ महासुरनिघातिना।
इन्द्राविष्णू यथा प्रीतौ जम्भस्य वधकांक्षिणौ ॥२५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्य पुनः पाशुपतास्त्रप्राप्तौ एकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

बड़े २ असुरों के घातक महादेव ने जम्भासुर के मारण की अभिलाषा वाले इन्द्र और विष्णु को जैसे प्रसन्नतापूर्वक वरदान देकर भेजा था; ऐसे ही अब इन्होंने इन दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुन को भी विदा किया ॥२५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत प्रतिज्ञापर्व में अर्जुन के पाशुपतास्त्र प्राप्ति का इक्यासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ



# बयासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तयोः संवदतोरेवं कृष्णदारुकयोस्तथा ।
साऽत्यगाद्रजनी राजन्नथ राजाऽन्वबुध्यत ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! धृतराष्ट्र! इस प्रकार श्रीकृष्ण और दारुक के वार्तालाप करते २ वह सारी रात व्यतीत हो गई। प्रातःकाल होते ही राजा युधिष्ठिर उठे ॥१॥

पठन्ति पाणिस्वनिका मागधा मधुपर्किकाः ।
वैतालिकाश्च सूताश्च तुष्टुवुः पुरुषर्षभम् ॥२॥

मधुपर्क के समय ताली बजा कर गाने वाले मागध, वैतालिक और सूत, पुरुष-श्रेष्ठ धर्मराज की स्तुति करने लगे ॥२॥

नर्तकाश्चाऽप्यनृत्यन्त जगुर्गीतानि गायकाः ।
कुरुवंशस्तवार्थानि मधुरं रक्तकण्ठिनः ॥३॥

एक ओर नांचने वाले नांचने लगे और गाने वाले गाने लगे। उन गानों में कुरुवंश की स्तुति थी। इन गायकों का बड़ा ही मधुर स्वर और स्वच्छ कण्ठ था ॥३॥

मृदङ्गा झर्झरा भेर्यः पणवानकगोमुखाः ।
आडम्बराश्च शङ्खाश्च दुन्दुभ्यश्च महास्वनाः ॥४॥

एवमेतानि सर्वाणि तथाऽन्यान्यपि भारत ।
वादयन्ति सुसंहृष्टाः कुशलाः साधु शिक्षिताः ॥५॥

मृदङ्ग, (तबले) झर्झर, (झांझ) भेरी, पणव, आनक, गोमुख, आडम्बर, शङ्ख, दुन्दुभि आदि अनेक ऊंचे स्वर में बजने वाले बाजे तथा अन्य बाजों को बाजे बजाने में कुशल, शिक्षित पुरुष प्रसन्नता में भरे हुए बजाने लगे ॥४-५॥

स मेघसमनिर्घोषो महाञ्शब्दोऽस्पृशद्दिवम् ।
पार्थिवप्रवरं सुप्तं युधिष्ठिरमबोधयत् ॥६॥

इन बाद्यों की मेघ की ध्वनि के तुल्य महाध्वनि होने लगी, जो आकाश में छा गई। इस ही ध्वनि ने राजाओं में श्रेष्ठ, धर्मराज को निद्रा से सचेत किया ॥६॥

प्रतिबुद्धः सुखं सुप्तो महार्हे शयनोत्तमे ।
उत्थायाऽऽवश्यकार्यार्थं ययौ स्नानगृहं नृप ॥७॥

अत्यन्त मूल्यवाले शयन पर सुख से सोये हुए धर्मराज सचेत हो गए और उठकर आवश्यक शौचादि से निवृत्त होकर स्नानगृह में पहुंचे ॥७॥

ततः शुक्लाम्बराः स्नातास्तरुणाः शतमष्ट च ।
स्नापकाः काञ्चनैः कुम्भैः पूर्णैः समुपतस्थिरे ॥८॥

यहां शुक्ल वस्त्रधारी युवा, स्वयं स्नान किए हुए एक सौ आठ स्नान कराने वाले सेवक, सुवर्ण के जल पूर्ण कलश ले २ कर आ उपस्थित हुए ॥८॥

भद्रासनेषूपविष्टः परिधायऽम्बरं लघु ।
सस्नौ चन्दनसंयुक्तैः पानीयैरभिमन्त्रितैः ॥९॥

राजा युधिष्ठिर भी एक उत्तम चौकी पर हलका सा वस्त्र (धोती) पहन कर बैठ गए। अब वे चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों से मिश्रित मन्त्रपूत जल से स्नान करने लगे ॥९॥

उत्सादितः कषायेण बलवद्भिः सुशिक्षितैः ।
आप्लुतः साधिवासेन जलेन ससुगन्धिना ॥१०॥

स्नान के प्रकार के जानने वाले बलवान् सेवकों ने आंवले आदि कषाय द्रव्यों से मर्दना (मालिश) करके सुगन्धित जल से उनको स्नान कराया ॥१०॥

राजहंसनिभं प्राप्य उष्णीषं शिथिलार्पितम् ।
जलक्षयनिमित्तं वै वेष्टयामास मूर्धनि ॥११॥

राजहंस के समान श्वेत अंगोछे से धर्मराज का उन सेवकों ने धीरे २ मस्तक पोंछा। अँगोछे को सारे जल के सुखा देने के लिये मस्तक पर लपेट सा दिया ॥११॥

हरिणा चन्दनेनाऽङ्गमुपलिप्य महाभुजः ।
स्रग्वी चाऽक्लिष्टवसनः प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः स्थितः ॥

महाभुजधारी राजा युधिष्ठिर ने मनोहर चन्दन से अपने अङ्ग का लेपन किया। अब वे माला और सुन्दर वस्त्र धारण करके पूर्वाभिमुख हाथ जोड़ कर स्थित हो गये ॥१२॥

जजाप जप्यं कौन्तेयः सतां मार्गमनुष्ठितः ।
तत्राऽग्निशरणं दीप्तं प्रविवेश विनीतवत् ॥१३॥

कुन्ती-पुत्र धर्मराज ने सज्जनों के मार्गानुसार जप किया। इसके अनन्तर इन्होंने बड़ी नम्रता के साथ अग्निशाला में प्रवेश किया; जहां पर अग्नि प्रज्वलित हो रही थी ॥१३॥

समिद्भिः सपवित्राभिरग्निमाहुतिभिस्तथा ।
मन्त्रपूताभिरर्चित्वा निश्चक्राम गृहात्ततः ॥१४॥

यहां समिधा और पवित्र आहुतियों से मन्त्रोच्चारण-पूर्वक अग्नि में हवन किया। इसके अनन्तर वे अग्निशाला से बाहर आ गए॥१४॥

द्वितीयां पुरुषव्याघ्रः कक्ष्यां निर्गम्य पार्थिवः ।
ततो वेदविदो वृद्धानपश्यद् ब्राह्मणर्षभान् ॥१५॥

अथ पुरुषश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर दूसरी कक्षा (कमरे) में पहुंचे, वहां उन्होंने बड़े उत्तम २ वेदपाठी ब्राह्मणों को देखा ॥१५॥

दान्तान्वेदव्रतस्नातान्स्नातानवभृथेषु च ।
सहस्रानुचरान्सौरान्सहस्रं चाऽष्ट चाऽपरान् ॥१६॥

बड़े उदार, वेदव्रत स्नातक, बड़े २ यज्ञों में स्नान किए हुए, सहस्रों अनुचर ब्राह्मणों के सहित, सूर्योपासक एक हजार आठ ब्राह्मण वहां उपस्थित थे ॥१६॥

अक्षतैः सुमनोभिश्च वाचयित्वा महाभुजः ।
तान्द्विजान्मधुसर्पिर्भ्यां फलैः श्रेष्ठैः सुमङ्गलैः ॥१७॥

महाभुजधारी धर्मराज ने अक्षत और पुष्पों के साथ स्वस्ति-वाचन, पुण्याहवाचन कराके मङ्गलीक वस्तु, मधु, घृत और फलों से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया ॥१७॥

प्रादात्काञ्चनमेकैकं निष्कं विप्राय पाण्डवः ।
अलंकृतं चाऽश्वशतं वासांसीष्टाश्च दक्षिणाः ॥१८॥

पाण्डु-पुत्र धर्मराज ने इस समय प्रत्येक ब्राह्मण को एक २ सुवर्ण मुद्रा प्रदान की तथा सैंकड़ों अश्व, आभूषणों से अलंकृत करके प्रदान किए। इसके सिवा अभिलषित दक्षिणा और वस्त्र भूषणों का दान किया ॥१८॥

तथा गाः कपिला दोग्ध्री सवत्साः पाण्डुनन्दनः ।
हेमशृङ्गा रौप्यखुरा दत्वा तेभ्यः प्रदक्षिणम् ॥१६॥

इसी तरह दुग्ध देने वाली, चांदी के खुर और सुवर्ण के सीगों वाली, बछड़ों सहित अनेक कपिला गायें प्रदक्षिणा करके पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को प्रदान की ॥१६॥

स्वस्तिकान्वर्धमानांश्च नन्द्यावर्तांश्च काञ्चनान् ।
माल्यं च जलकुम्भांश्च ज्वलितं च हुताशनम् ॥२०॥
पूर्णान्यक्षतपात्राणि रुचकं रोचनास्तथा ।
स्वलंकृताः शुभा कन्यां दधिसर्पिर्मधूदकम् ॥२१॥
मङ्गल्यान्पक्षिणश्चैव यच्चाऽन्यदपि पूजितम् ।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च कौन्तेयो बाह्यां कक्ष्यां ततोऽगमत् ॥

सुवर्णके बने हुए स्वस्तिक वर्धमान (सकोरे) और नदीके आवर्त, माला जलकुम्भ, प्रज्वलित अग्नि, तण्डुल पूर्णपात्र, अन्य मङ्गल द्रव्य गोरोचन, आभूषणों से अलंकृत कन्याएं, दधि, घृत, मधु,

जल, मङ्गलीक पक्षी तथा अन्य पूजित वस्तुओंको देखकर या छूकर कुन्ती-पुत्र धर्मराज बाहरकी कक्षा (कमरे) में निकल आए ॥२०-२२॥

ततस्तस्यां महाबाहोस्तिष्ठतः परिचारकाः ।
सौवर्णं सर्वतोभद्रं मुक्तावैदूर्यमण्डितम् ॥२३॥
परार्ध्यास्तरणास्तीर्णं सोत्तरच्छदमृद्धिमत् ।
विश्वकर्मकृतं दिव्यमुपजह्रुर्वरासनम् ॥२४॥

उस कक्षा (कमरे) में महाबाहु धर्मराज बैठना चाहते थे, तो सेवकों ने मुक्ता और नीलमणियों से जटित उत्तम २ आच्छादन से सुसम्पन्न, अमूल्य, उत्तरच्छद से समन्वित, विश्वकर्मा द्वारा बनाया हुआ, कल्याणकारी सिंहासन अर्पित किया ॥२३-२४॥

तत्र तस्योपविष्टस्य भूषणानि महात्मनः ।
उपाजह्रुर्महार्हाणि प्रेष्याः शुभ्राणि सर्वशः ॥२५॥

जब महाभुजाधारी धर्मराज सिंहासन पर बैठ गए—तो सेवक मण्डली अमूल्य, चमकीले आभूषण ले आई ॥२५॥

मुक्ताभरणवेषस्य कौन्तेयस्य महात्मनः ।
रूपमासीन्महाराज द्विषतां शोकवर्धनम् ॥२६॥

हे महाराज! महावीर कुन्ती-पुत्र, धर्मराज के मोतियों के आभूषण पहन लेने पर ऐसा रूप चमक उठा, जिसके देखने से शत्रुओं के हृदय में डाह उत्पन्न होने लगे ॥२६॥

चामरैश्चन्द्ररश्म्याभैर्हेमदण्डैः सुशोभनैः ।
दोधूयमानैः शुशुभे विद्युद्भिरिव तोयदः ॥२७॥

चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल सुवर्ण के दण्डों से सुशोभित हुए चामरों से धर्मराज का पंखा किया गया, जिससे वे ऐसे प्रतीत हुए-जैसे बिजली से बादल चमक उठते हैं ॥२७॥

संस्तूयमानः सूतैश्च वन्द्यमानश्च बन्दिभिः ।
उपगीयमानो गन्धर्वैरास्ते स्म कुरुनन्दनः ॥२८॥

अब सूतगण स्तुति, वन्दी वन्दना, गन्धर्व गान करने लगे। इस प्रकार उस स्थान में कुरुनन्दन राजा युधिष्ठिर उपस्थित थे ॥

ततो मुहूर्तादासीत्तु स्यन्दनानां स्वनो महान् ।
नेमिघोषश्च रथिनां खुरघोषश्च वाजिनाम् ॥२९॥

थोड़ी ही देर में वहां पर रथों की झनझनाहट होने लगी, जिसमें रथों की नेमि और अश्वों के खुरों के शब्द सुनाई देते थे ॥

ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ।
नराणां पदशब्दैश्च कम्पतीव स्म मेदिनी ॥३०॥

हाथियों के घण्टा, शंखों के नाद और मनुष्यों के चरणों की आहट से पृथिवी डगमगाने लगी ॥३०॥

ततः शुद्धान्तमासाद्य जानुभ्यां भूतले स्थितः ।
शिरसा वन्दनीयं तमभिवाद्य जनेश्वरम् ॥३१॥
कुण्डली बद्धनिस्त्रिंशः सन्नद्धकवचो युवा ।
अभिप्रणम्य शिरसा द्वाःस्थो धर्मात्मजाय वै ॥३२॥
न्यवेदयद्धृषीकेशमुपयान्तं महात्मने ।

इसी समय कुण्डलधारी, खड्ग बांधे हुए, युवा द्वारपाल ने धर्मराज के समीप भीतर गमन करके मस्तक झुका कर प्रणाम किया। प्रणाम के अनन्तर उसने महात्मा धर्मराज से निवेदन किया, कि द्वार पर श्रीकृष्ण उपस्थित हैं ॥३१-३२॥

सोऽब्रवीत्पुरुषव्याघ्रः स्वागतेनैव माधवम् ॥३३॥
अर्घ्यं चैवाऽऽसनं चाऽस्मै दीयतां परमार्चितम् ।

पुरुषश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने आज्ञा दी, कि श्रीकृष्ण का स्वागत, अर्घ्य और अमूल्य आसन प्रदान करके शीघ्र करो ॥३३॥

ततः प्रवेश्य वार्ष्णेयमुपवेश्य वरासने ॥३४॥
पूजयामास विधिवद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥३५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि युधिष्ठिरसज्जतायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

द्वारपाल, श्रीकृष्ण को लेकर आया और उसने उन्हें दिव्य आसन पर बैठाया। राजा युधिष्ठिर ने भी उनकी विधि-पूर्वक पूजा की ॥३४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत प्रतिज्ञापर्व में राजा युधिष्ठिर के तय्यार होने का बयासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



# तिरासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततो युधिष्ठिरो राजा प्रतिनन्द्य जनार्दनम् ।
उवाच परमप्रीतः कौन्तेयो देवकीसुतम् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! इस प्रकार कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने देवकी-पुत्र जनार्दन कृष्ण का स्वागत करके बड़ी प्रसन्नता के साथ यह वचन कहा ॥१॥

सुखेन रजनी व्युष्टा कच्चित्ते मधुसूदन ।
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि तवाऽच्युत ॥२॥
वासुदेवोऽपि तद्युक्तं पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरम् ।

हे मधुसूदन ! कहिए ? आपकी रात तो सुख से कटी । हे अच्युत ! आपका चित्त तो स्वस्थ है, जिसमें सारे ज्ञान स्वच्छता के साथ स्फुरण होते हैं । वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण ने भी धर्मराज से योग्य कुशल प्रश्न किए ॥२॥

ततश्च प्रकृतीः चत्ता न्यवेदयदुपस्थिताः ॥३॥
अनुज्ञातश्च राज्ञा स प्रावेशयत तं जनम् ।
विराटं भीमसेनं च धृष्टद्युम्नं च सात्यकिम् ॥४॥
चेदिपं धृष्टकेतुं च द्रुपदं च महारथम् ।
शिखण्डिनं यमौ चैव चेकितानं सकेकयम् ॥५॥

युयुत्सुं चैव कौरव्यं पाञ्चाल्यं चोत्तमौजसम् ।
युधामन्युं सुबाहुं च द्रौपदेयांश्च सर्वशः ॥६॥

इसके अनन्तर सारथि ने आकर निवेदन किया, कि महाराज! सारे मन्त्री और अधिकारी गण उपस्थित हैं । राजा युधिष्ठिर ने उनके प्रवेश करने की आज्ञा दी । इनमें विराटराज, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, चेदिराज धृष्टकेतु, महारथी द्रुपद, शिखण्डी, नकुल, सहदेव, चेकितान, केकयराज, धृतराष्ट्र-पुत्र युयुत्सु, पाञ्चाल राजकुमार धृष्टद्युम्न, उत्तमौजा, युधामन्यु, सुबाहु और द्रौपदी-पुत्र थे ॥३-६॥

एते चाऽन्ये च बहवः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।
उपतस्थुर्महात्मानं विविशुश्चाऽऽसने शुभे ॥७॥

ये तथा अन्य भी बहुत से क्षत्रियवीर वहां पहुंचे और क्षत्रियर्षभ महावीर धर्मराज के समीप सुन्दर आसनों पर बैठ गए ॥

एकस्मिन्नासने वीरावुपविष्टौ महाबलौ ।
कृष्णश्च युयुधानश्च महात्मानौ महाद्युती ॥८॥

महाबली, अत्यन्त कान्तिधारी महात्मा श्रीकृष्ण और सात्यकि एक ही आसन पर जा बैठे ॥८॥

ततो युधिष्ठिरस्तेषां शृण्वतां मधुसूदनम् ।
अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षमाभाष्य मधुरं वचः ॥९॥

अब राजा युधिष्ठिर, इन सब लोगों के सुनते २ मधुर वचनों द्वारा, कमलनयन श्रीकृष्ण से कहने लगे ॥९॥

एकं त्वां वयमाश्रित्य सहस्राक्षमिवाऽमराः ।
प्रार्थयामो जयं युद्धे शाश्वतानि सुखानि च ॥१०॥

हे केशव ! देवता, इन्द्र का आश्रय लेकर जैसे युद्ध में प्रवृत्त होते हैं, इसी तरह हम लोग भी तुम्हारा आश्रय लेकर युद्ध में विजय की अभिलाषा कर रहे हैं तथा निरन्तर सुख की अभिलाषा करते हैं ॥१०॥

त्वं हि राज्यविनाशं च द्विषद्भिश्च निराक्रियाम् ।
क्लेशांश्च विविधान्कृष्ण सर्वांस्तानपि वेद नः ॥११॥

हे कृष्ण ! तुम हमारे राज्य के विनाश, शत्रु द्वारा निरादर तथा अनेक वन के क्लेशों को जानते हो ॥११॥

त्वयि सर्वेश सर्वेषामस्माकं भक्तवत्सल ।
सुखमायत्तमत्यर्थं यात्रा च मधुसूदन ॥१२॥

हे सर्वेश ! भक्तवत्सल ! मधुसूदन ! हमारा सारा सुख और सम्पूर्ण जीवनयात्रा आपके अधीन है ॥१२॥

स तथा कुरु वार्ष्णेय यथा त्वयि मनो मम ।
अर्जुनस्य यथा सत्या प्रतिज्ञा स्याच्चिकीर्षिता ॥१३॥

हे वार्ष्णेय ! अब आप वही करो-जिससे हमारी आपके विषय में दृढ़ भक्ति हो जावे तथा जिस तरह अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी हो सके-वही उपाय करो ॥१३॥

स भवांस्तारयत्वस्माद्दुःखामर्षमहार्णवात् ।
पारं तितीर्षतामद्य प्लवो नो भव माधव ॥१४॥

आप हमको इस दुःख और शोक के समुद्र से उत्तीर्ण करें। हे माधव ! हम इस विपत्ति सागर से पार होना चाहते हैं, आप हमारे नौकाभूत बन जाइए ॥१४॥

नहि तत्कुरुते संख्ये रथी रिपुवधोद्यतः ।
यथा वै कुरुते कृष्ण सारथिर्यत्नमास्थितः ॥१५॥

हे कृष्ण ! रण में शत्रु के वध में तत्पर रथी इतना काम नहीं कर सकता है, जितना यत्न-पूर्वक चलने वाला सारथि काम कर डालता है ॥१५॥

यथैव सर्वास्वापत्सु पासि वृष्णीञ्जनार्दन ।
तथैवाऽस्मान्महाबाहो वृजिनात्त्रातुमर्हसि ॥१६॥

हे जनार्दन ! जिस प्रकार तुमने हमारी प्रत्येक विपत्ति में रक्षा की है। हे महाबाहो ! उसी तरह आज भी इस आपत्ति से हमारी रक्षा करो ॥१६॥

त्वमगाधेऽप्लवे मग्नान्पाण्डवान्कुरुसागरे ।
समुद्धर प्लवो भूत्वा शङ्खचक्रगदाधर ॥१७॥

हे शङ्ख, चक्र और गदाधारी ! इस समय पाण्डव, कौरव रूपी अगाध समुद्र में डूब रहे हैं, हमारे पास कोई नौका नहीं है। अब तुम नौका बनकर इससे हमारा उद्धार करो ॥१७॥

नमस्ते देवदेवेश सनातन विशातन ।
विष्णो जिष्णो हरे कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम ॥१८॥

नारदस्त्वां समाचख्यौ पुराणमृषिसत्तमम् ।
वरदं शार्ङ्गिणं श्रेष्ठं तत्सत्यं कुरु माधव ॥१६॥

हे देवों के देव ! आपको नमस्कार हो । आप सनातन पुरुष सृष्टि के संहारक हो । हे विष्णो ! आप विजयी और पुरुषोत्तम हो । हे हरे कृष्ण ! आपको ऋषि श्रेष्ठ नारदजी, सनातन नारायण नामक ऋषि मानते हैं । हे माधव ! आपको वे वरदायी शार्ङ्ग-धनुषधारी, सर्वश्रेष्ठ वीर मानते हैं । आप इस विचार को सत्य कर दिखाओ ॥१८-१६॥

इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षो धर्मराजेन संसदि ।
तोयमेघस्वनो वाग्मी प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥२०॥

इस प्रकार धर्मराज ने कमल नेत्रधारी श्रीकृष्ण से कहा-तब मेघध्वनि के तुल्य गर्जना करते हुए, बोलने वालों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने राजा युधिष्ठिर से यह वचन कहा ॥२०॥

वासुदेव उवाच—

सामरेष्वपि लोकेषु सर्वेषु न तथाविधः ।
शरासनधरः कश्चिद्यथा पार्थो धनञ्जयः ॥२१॥

देवों सहित सारे लोकों में कोई ऐसा वीर नहीं है, जैसा धनुर्धर कुन्ती-पुत्र अर्जुन है ॥२१॥

वीर्यवानस्त्रसम्पन्नः पराक्रान्तो महाबलः ।
युद्धशौण्डः सदाऽमर्षी तेजसा परमो नृणाम् ॥२२॥

यह महापराक्रमी, महाबली, युद्ध विशारद और सदा तेज सम्पन्न; वीर्यवान् और अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित है। इसके बराबर कोई भी वीर शक्तिशाली नहीं है, जो सदा वीरता के आवेश में भरा रहता हो ॥२२॥

स युवा वृषभस्कन्धो दीर्घबाहुर्महाबलः ।
सिंहर्षभगतिः श्रीमान्द्विषतस्ते हनिष्यति ॥२३॥

इस युवा वीर अर्जुन के वृषभ के तुल्य कंधे, दीर्घ बाहु और सिंह तथा वृषभ के तुल्य गमन है। यह महाबली अत्यन्त कान्तिमान् और बलवान् है, जो तुम्हारे शत्रुओं का अवश्य विनाश करेगा ॥२३॥

अहं च तत्करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः ।
धार्त्तराष्ट्रस्य सैन्यानि धक्ष्यत्यग्निरिवेन्धनम् ॥२४॥

हे राजन्! मैं तो वही उपाय करूंगा, जिस प्रकार कुन्ती-पुत्र अर्जुन इन्धन को अग्नि की भांति कौरव सेना को भस्म कर सके ॥

अद्य तं पापकर्माणं क्षुद्रं सौभद्रघातिनम्
अपुनर्दर्शनं मार्गमिषुभिः क्षेप्स्यतेऽर्जुनः ॥२५॥

आज अर्जुन उस पापकर्म करने वाले, क्षुद्राचारी, सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु के विनाश के प्रधान कारण, सिन्धुराज जयद्रथ को अपने बाण से उस मार्ग में ले जावेगा, जहां से यह फिर लौटकर दर्शन नहीं दे सकेगा ॥२५॥

तस्याऽद्य गृध्राः श्येनाश्च चण्डगोमायवस्तथा ।
भक्षयिष्यन्ति मांसानि ये चाऽन्ये पुरुषादकाः ॥२६॥

जो पुरुष के मांस के भक्षक जीवजन्तु, गीध, श्येन (बाज) चण्ड, गोमायु आदि हैं, वे आज राजा जयद्रथ के मांस का भक्षण करेंगे-यह निश्चय समझो ॥२६॥

यद्यस्य देवा गोप्तारः सेन्द्राः सर्वे तथाऽप्यसौ ।
राजधानीं यमस्याऽद्य हतः प्राप्स्यति संकुले ॥२७॥

यदि इसकी इन्द्र सहित सारे देवता भी रक्षा करें-तो भी यह राजा जयद्रथ आज की लड़ाई में यमराज की राजधानी को मर कर अवश्य जावेगा ॥२७॥

निहत्य सैन्धवं जिष्णुरद्य त्वामुपयास्यति ।
विशोको विज्वरो राजन्भव भूतिपुरस्कृतः ॥२८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

हे राजन्! आज सायंकाल में अर्जुन, सिन्धुराज जयद्रथ को मार कर ही लौटेगा, तुम चिन्ता और शोक को छोड़ दो और सारे कल्याण के साधनों को स्वीकार करो ॥२८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत प्रतिज्ञापर्व में श्रीकृष्ण के वाक्य का तिरासीवां अध्याय समाप्त हुआ

# चौरासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तथा तु वदतां तेषां प्रादुरासीद्धनञ्जयः।
दिदृक्षुर्भरतश्रेष्ठं राजानं ससुहृद्गणम् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिर बातचीत कर ही रहे थे, कि इतने में ही भरतवंशश्रेष्ठ धर्मराज के दर्शनों को अपने सुहृद् गणों के साथ अर्जुन आ पहुंचे ॥१॥

तं निविष्टं शुभां कक्ष्यामभिवन्द्याऽग्रतः स्थितम् ।
तमुत्थायाऽर्जुनं प्रेम्णा सस्वजे पाण्डवर्षभः ॥२॥

उस उत्तम राजसभा के कमरे में प्रविष्ट हुए और प्रणाम करके आगे स्थित, अर्जुन का पाण्डु-पुत्र पुरुषर्षभ धर्मराज ने आगे बढ़ कर आलिङ्गन किया ॥२॥

मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय परिष्वज्य च बाहुना ।
आशिषः परमाः प्रोच्य स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥३॥

धर्मराज ने अर्जुन का मस्तक सूंघा और भुजाएँ बढ़ाकर आलिङ्गन किया तथा बहुत सी आशिषें देकर मुस्कुराते हुए यह वचन कहा ॥३॥

व्यक्तमर्जुन संग्रामे ध्रुवस्ते विजयो महान् ।
यादृग्रूपा च ते च्छाया प्रसन्नश्च जनार्दनः ॥४॥

हे अर्जुन ! तुम चिन्ता न करो, तुम्हारे मुख की कान्ति से यह निश्चय है, कि आज युद्ध में तुम्हारी विजय होगी । श्रीकृष्ण भी तुम पर अत्यन्त प्रसन्न है ॥४॥

तमब्रवीत्ततो जिष्णुर्महदाश्चर्यमुत्तमम् ।
दृष्टवानस्मि भद्रं ते केशवस्य प्रसादजम् ॥५॥

विजयशील अर्जुन ने कहा-मैंने रात को स्वप्न में श्रीकृष्ण के अनुग्रह का फल जो बड़ा उत्तम और आश्चर्य कारक है, देखा है ॥

ततस्तत्कथयामास यथादृष्टं धनञ्जयः ।
आश्वासनार्थं सुहृदां त्र्यम्बकेण समागमम् ॥६॥

इस प्रकार धनञ्जय अर्जुन ने जो कुछ स्वप्न में भगवान् शङ्कर के साथ सम्मिलन हुआ था, उसका वर्णन किया, जिसे सुनकर सारे मित्र गणों को बड़ा ही सन्तोष हुआ ॥६॥

ततः शिरोभिरवनिं स्पृष्ट्वा सर्वे च विस्मिताः ।
नमस्कृत्य वृषाङ्काय साधु साध्वित्यथाऽब्रुवन् ॥७॥

सबने पृथिवी में मस्तक टेक कर भगवान् शंकर को प्रणाम किया और वहां जितने मनुष्य बैठे थे, वे सारे चकित हो उठे । सब वृषध्वज शङ्कर को प्रणाम करके धन्य २ की ध्वनि करने लगे ॥

अनुज्ञातास्ततः सर्वे सुहृदो धर्मसूनुना ।
त्वरमाणाः सुसन्नद्धा हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥८॥

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने सारे सुहृदों को आज्ञा दी । वे भी बड़ी शीघ्रता से सुसज्जित होकर युद्ध के लिए चल पड़े ॥८॥

अभिवाद्य तु राजानं युयुधानाच्युतार्जुनाः ।
हृष्टा विनिर्ययुस्ते वै युधिष्ठिरनिवेशनात् ॥९॥

सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन भी धर्मराज को प्रणाम करके उनके शिविर से बाहर चले आए ॥९॥

रथेनैकेन दुर्धर्षौ युयुधानजनार्दनौ ।
जग्मतुः सहितौ वीरावर्जुनस्य निवेशनम् ।
तत्र गत्वा हृषीकेशः कल्पयामास सूतवत् ॥१०॥
रथं रथवरस्याऽऽज्ञौ वानरर्षभलक्षणम् ।

महापराक्रमी सात्यकि और अर्जुन दोनों वीर एक साथ रथ में बैठकर अर्जुन के भवन की ओर चले। वहां पहुंच कर हृषीकेश श्रीकृष्ण ने सारथि की तरह रथि-श्रेष्ठ अर्जुन के रथ को सजाया, जिस पर वानर के चिन्ह की ध्वजा सुशोभित थी ॥१०॥

स मेघसमनिर्घोषस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ।११॥
बभौ रथवरः क्लृप्तः शिशुर्दिवसकृद्यथा ।

मेघध्वनि के समान ध्वनिवाले, तप्त सुवर्ण से कान्तिमान्, अर्जुन का रथ उदयकालिक सूर्य की तरह सुशोभित होने लगा ॥

ततः पुरुषशार्दूलः सज्जं सज्जपुरःसरः ॥१२॥
कृताह्निकाय पार्थाय न्यवेदयत् तं रथम् ।

रथ सजाने वालों में उत्तम, पुरुष श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने रथ को सजाकर सन्ध्यावन्दन आदि कर्मों से निवृत्त अर्जुन के सन्मुख रथ को लाकर खड़ा कर दिया ॥१२॥

तं तु लोकवरः पुंसां किरीटी हेमवर्मभृत् ॥१३॥
चापबाणधरो वाहं प्रदक्षिणमवर्तत ।

सुवर्ण के कवच से सुशोभित, किरीटधारी, संसार भर के वीरों में श्रेष्ठ, धनुषबाण धारी अर्जुन अपने इस वाहन रथ की प्रदक्षिणा करने लगे ॥१३॥

तपोविद्यावयोवृद्धैः क्रियावद्भिर्जितेन्द्रियैः ॥१४॥
स्तूयमानो जयाशीर्भिरारुरोह महारथम् ।
जैत्रैः सांग्रामिकैर्मन्त्रैः पूर्वमेव रथोत्तमम् ॥१५॥
अभिमन्त्रितमर्चिष्मानुदयं भास्करो यथा ।

इस समय तप, विद्या, वय में वृद्ध, क्रियाशील, जितेन्द्रिय, ब्राह्मणों के जय और आशीर्वादों के साथ अर्जुन, विजयकारक संग्राम विषय के मन्त्रों से अभिमन्त्रित उस विशाल रथश्रेष्ठ पर इस तरह चढ़ गए-जैसे उदयाचल पर सूर्य चढ़ जाता है ॥१४-१५॥

स रथे रथिनां श्रेष्ठः काञ्चने काञ्चनावृतः ॥१६॥
विबभौ विमलोऽर्चिष्मान्मेराविव दिवाकरः ।

रथियों में श्रेष्ठ, सुवर्ण के कवच से सम्पन्न अर्जुन, मेरु पर्वत पर दिव्यकान्तिधारी, निर्मल सूर्य के सदृश उस विशाल रथ पर सुशोभित होने लगा ॥१६॥

अन्वारुरुहतुः पार्थं युयुधानजनार्दनौ ॥१७॥
शर्यातेर्यज्ञमायान्तं यथेन्द्रं देवमश्विनौ ।

अर्जुन के रथ पर चढ़ने के अनन्तर सात्यकि और श्रीकृष्ण, शर्याति के यज्ञ में देवराज इन्द्र के अनन्तर अश्विनीकुमारों की तरह रथ पर चढ़ गए ॥१७॥

अथ जग्राह गोविन्दो रश्मीन्रश्मिविदां वरः ॥१८॥
मातलिर्वासवस्येव वृत्रं हन्तुं प्रयास्यतः ।

सारथियों में श्रेष्ठ, भगवान् श्रीकृष्ण ने वृत्रासुर के वध के निमित्त यात्रा करने वाले इन्द्र के सारथि मातलि की तरह अश्वों की रस्सियों को ग्रहण किया ॥१८॥

स ताभ्यां सहितः पार्थो रथप्रवरमास्थितः ॥१९॥
सहितो बुधशुक्राभ्यां तमो निघ्नन्यथा शशी ।

सात्यकि और अर्जुन के साथ रथ पर बैठे हुए श्रीकृष्ण, बुध और शुक्र के सहित अन्धकारनाशक चन्द्रमा की तरह सुशोभित हो रहे थे ॥१९॥

सैन्धवस्य वधं प्रेप्सुः प्रयातः शत्रुपूगहा ॥२०॥
सहाऽम्बुपतिमित्राभ्यां यथेन्द्रस्तारकामये ।

शत्रुसमूहनाशक अर्जुन, सिन्धुराज जयद्रथ के वध की इच्छा से तारकासुर के वध के निमित्त वरुण और मित्र के सहित यात्रा करने वाले इन्द्र की तरह चल पड़े ॥२०॥

ततो वादित्रनिर्घोषैर्माङ्गल्यैश्च स्तवैः शुभैः ॥२१॥
प्रयान्तमर्जुनं वीरं मागधाश्चैव तुष्टुवुः ।

इस समय युद्ध के लिए गमन करते हुए वीर अर्जुन की माङ्गलिक बाजों के शब्दों के साथ मागध वन्दी गण स्तुति करने लगे ॥२१॥

सजयाशीः सपुण्याहः सूतमागधनिःस्वनः ॥२२॥
युक्तो वादित्रघोषेण तेषां रतिकरोऽभवत् ।

सूत और मागधों की स्तुतियों की ध्वनि के साथ ब्राह्मणों के पुण्याहवाचन और जय-पूर्वक आशीर्वादों की ध्वनि, बाजों की ध्वनि के साथ अर्जुन के उत्साह को बढ़ाने लगी ॥

तमनु प्रयतो वायुः पुण्यगन्धवहः शुभः ॥२३॥
ववौ संहर्षयन्पार्थं द्विषतश्चाऽपि शोषयन् ।

अर्जुन की यात्रा के साथ २ पुण्यजनक सुगन्धि सहित वायु चलने लगा, इससे अर्जुन का उत्साह बढ़ता था और शत्रुओं का हर्ष क्षीण होता जाता था ॥२३॥

ततस्तस्मिन्क्षणे राजन्विविधानि शुभानि च ॥२४॥
प्रादुरासन्निमित्तानि विजयाय बहूनि च ।
पाण्डवानां त्वदीयानां विपरीतानि मारिष ॥२५॥

हे राजन् ! पाण्डवों के लिए उस समय अनेक शुभ शकुन उत्पन्न हुए, जिनसे इसके विजय की सूचना मिलती थी । हे आर्य ! धृतराष्ट्र ! इसी समय तुम्हारे पक्ष में अशकुन होते थे ॥२४-२५॥

दृष्ट्वाऽर्जुनो निमित्तानि विजयाय प्रदक्षिणम् ।
युयुधानं महेष्वासमिदं वचनमब्रवीत् ॥२६॥

अर्जुन इन शकुनों को देखकर उनकी प्रदक्षिणा करने लगा और महाधनुर्धर सात्यकि से यह वचन बोला ॥२६॥

युयुधानाऽद्य युद्धे मे दृश्यते विजय ध्रुवः ।
यथा हीमानि लिङ्गानि दृश्यन्ते शिनिपुङ्गव ॥२७॥

हे शिनिपुङ्गव ! सात्यकि ! आज इस युद्ध में मेरा अवश्यम्भावी विजय सूचित होता है, क्योंकि ये अनेक शुभसूचक शकुन दिखाई दे रहे हैं ॥२७॥

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र सैन्धवको नृपः ।
यियासुर्यमलोकाय मम वीर्यं प्रतीक्षते ॥२८॥

अब मैं वहीं चलना चाहता हूं, जहां पर सिन्धुराज जयद्रथ उपस्थित है। वह यमलोक जाने की इच्छा से मेरे पराक्रम की प्रतीक्षा कर रहा है ॥२८॥

यथा परमकं कृत्यं सैन्धवस्य वधो मम ।
तथैव सुमहत्कृत्यं धर्मराजस्य रक्षणम् ॥२९॥

जितना बड़ा आज सिन्धुराज के वध करने का कार्य मेरे सन्मुख उपस्थित है, उतना ही बड़ा कार्य धर्मराज की रक्षा करना है ॥२९॥

स त्वमद्य महाबाहो राजानं परिपालय ।
यथैव हि मया गुप्तस्त्वया गुप्तो भवेत्तथा ॥३०॥

हे महाबाहो ! सात्यकि ! आज इस कठिन युद्ध में राजा युधिष्ठिर की रक्षा तुम करो। मैं जिस प्रकार धर्मराज की रक्षा कर सकता हूं, उसी तरह तुम भी रक्षा करने में समर्थ हो ॥३०॥

न पश्यामि च तं लोके यस्त्वां युद्धे पराजयेत् ।
वासुदेवसमं युद्धे स्वयमप्यमरेश्वरः ॥३१॥

मुझे तो इस समय कोई भी वीर दिखाई नहीं देता, जो श्रीकृष्ण के तुल्य पराक्रमी तुमको युद्ध में पराजित कर सके । तुम स्वयं इन्द्र के समान बली हो ॥३१॥

त्वयि चाऽहं पराश्वस्तः प्रद्युम्ने वा महारथे ।
शक्नुयां सैन्धवं हन्तुमनपेक्षो नरर्षभ ॥३२॥

हे नरश्रेष्ठ ! मुझे तुम और महारथी प्रद्युम्न पर बड़ा ही विश्वास है । जब मैं धर्मराज की रक्षा की चिन्ता से मुक्त हो जाऊंगा, तो सिन्धुराज के वध करने को अच्छी तरह समर्थ हो सकूंगा ॥३२॥

मय्यपेक्षा न कर्त्तव्या कथञ्चिदपि सात्वत ।
राजन्येव परा गुप्तिः कार्या सर्वात्मना त्वया ॥३३॥

हे सात्यकि ! तुम मेरी ओर की कुछ भी चिन्ता न करना । तुम्हारा तो केवल धर्मराज की रक्षा करना ही सब से आवश्यक कार्य होगा ॥३३॥

नहि यत्र महाबाहुर्वासुदेवो व्यवस्थितः ।
किञ्चिद्व्यापद्यते तत्र यत्राऽहमपि च ध्रुवम् ॥३४॥

हे महाबाहो ! जहां पर विशाल भुजाधारी वासुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण स्थित है, वहां कुछ भी कार्य नहीं बिगड़ सकता है, जिस पर तो वहां मैं भी होऊँगा ॥३४॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन सात्यकिः परवीरहा ।
तथेत्युक्त्वाऽगमत्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥२५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥ समाप्तं प्रतिज्ञापर्व ।

इस प्रकार अर्जुन के कहने पर शत्रुवीरनाशक सात्यकि ने धर्मराज की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया और वह अर्जुन को छोड़ कर जहां पर राजा युधिष्ठिर थे, वहां पहुंचा ॥२५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत प्रतिज्ञापर्व में अर्जुन के वाक्य का चौरीसीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

---

# अथ जयद्रथवधपर्व

## पिच्चासीवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

श्वोभूते किमकार्षुस्ते दुःखशोकसमन्विताः ।
अभिमन्यौ हते तत्र केऽवाऽयुद्ध्यन्त मामकाः ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! अब तुम यह बताओ, कि अभिमन्यु के मारे जाने पर प्रातःकाल होते ही दुःख और शोक

से समन्वित पाण्डव और मेरे पुत्रों ने क्या किया और किसका किसके साथ युद्ध हुआ ॥१॥

जानन्तस्तस्य कर्माणि कुरवः सव्यसाचिनः ।
कथं तत्किल्बिषं कृत्वा निर्भया ब्रूहि मामकाः ॥२॥

सव्यसाची अर्जुन के तीक्ष्ण कर्म को हमारे पक्ष के सब लोग जानते थे, फिर वे इस प्रकार अर्जुन का अपराध करके भी कैसे निर्भय स्थित रहे ॥२॥

पुत्रशोकाभिसन्तप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवाऽन्तकम् ।
आयान्तं पुरुषव्याघ्रं कथं ददृशुराहवे ॥३॥

पुत्र के शोक से प्रज्वलित, क्रोधातुर, अन्तकारी मृत्यु के तुल्य भीषण, पुरुषप्रवीर अर्जुन को कौरवों ने रण में किस प्रकार देखा

कपिराजध्वजं संख्ये विधुन्वानं महद्धनुः ।
दृष्ट्वा पुत्रपरिद्यूनं किमकुर्वत मामकाः ॥४॥

कपिराज के चिन्ह से सुशोभित ध्वजाधारी, रण में महाधनुष को कपाने वाले, पुत्र शोक से व्याकुल अर्जुन को सन्मुख देख मेरे पक्ष के वीरों ने क्या किया ॥४॥

किं नु सञ्जय संग्रामे वृत्तं दुर्योधनं प्रति ।
परिदेवो महानद्य श्रुतो मे नाऽभिनन्दनम् ॥५॥

हे सञ्जय ! संग्राम में दुर्योधन के साथ क्या घटना हुई । मुझे तो कौरव सेना की ओर से रोना चिल्लाना ही सुन पड़ता है, कोई हर्ष की ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती ॥५॥

बभूवुर्ये मनोग्राह्याः शब्दाः श्रुतिसुखावहाः ।

न श्रूयन्तेऽद्य सर्वे ते सैन्धवस्य निवेशने ॥६॥

सिन्धुराज जयद्रथ के शिविर में कर्णों को सुखावह शब्द सुनाई पड़ा करते थे, परन्तु वे मनोहर शब्द भी आज सुनाई नहीं दे रहे हैं ॥६॥

स्तुवतां नाऽद्य श्रूयन्ते पुत्राणां शिबिरे मम ।

सूतमागधसङ्घानां नर्त्तकानां च सर्वशः ॥७॥

हे सूत ! मेरे पुत्रों के शिविरों (खेमों) में स्तुति करने वाले सूत, मागध और नर्तकों के समूहों के शब्द सुनाई पड़ा करते थे, वे आज बिलकुल सुनाई नहीं दे रहे हैं ॥७॥

शब्देन नादिताऽभीक्ष्णमभवद्यत्र मे श्रुतिः ।

दीनानामद्य तं शब्दं न शृणोमि समीरितम् ॥८॥

जिन वीरों के कोलाहल से मेरे कान अच्छी तरह भरे रहते थे, आज वे इतने दीन हो रहे हैं, कि उनका कोई भी शब्द सुनाई नहीं दे रहा है ॥८॥

निवेशने सत्यधृतेः सोमदत्तस्य सञ्जय ।

आसीनोऽहं पुरा तात शब्दमश्रौषमुत्तमम् ॥९॥

हे सञ्जय ! मैं सत्यव्रतधारी, पुरुषश्रेष्ठ राजा सोमदत्त के शिविर में यहां बैठा ही बड़ा कोलाहल सुना करता था। हे तात ! आज वह कोलाहल भी मेरे कानों में नहीं आ रहा है ॥९॥

तदद्य पुण्यहीनोऽहमार्त्तस्वरनिनादितम् ।
निवेशनं गतोत्साहं पुत्राणां मम लक्षये ॥१०॥

मेरा तो अब पुण्य समाप्त हो गया प्रतीत होता है, जो मैं अपने पुत्रों के निवेशनों को आनन्द-ध्वनि से शून्य देख रहा हूं।

विविंशतेर्दुर्मुखस्य चित्रसेनविकर्णयोः ।
अन्येषां च सुतानां मे न तथा श्रूयते ध्वनिः ॥११॥

मेरे पुत्र विविंशति, दुर्मुख, चित्रसेन और विकर्ण के शिविरों में भी कोई हर्ष ध्वनि नहीं हो रही है- इसका क्या कारण है ॥११॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यं शिष्याः पर्युपासते ।
द्रोणपुत्रं महेष्वासं पुत्राणां मे परायणम् ॥१२॥
वितण्डालापसंल्लापैर्द्रुतवादित्रवादितैः ।
गीतैश्च विविधैरिष्टै रमते यो दिवानिशम् ॥१३॥
उपास्यमानो बहुभिः कुरुपाण्डवसात्वतैः ।
सूत तस्य गृहे शब्दो नाऽद्य द्रौणेर्यथा पुरा ॥१४॥

हे सूत ! मेरे पुत्रों की सहायता में तत्पर, महाधनुर्धर, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के निवास स्थान पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और अनेक शिष्य उपस्थित रहा करते थे । इनके यहां कभी शास्त्रार्थ, वितण्डावाद, वार्तालाप, बाजों की ध्वनि और उत्तम २ गीतों से रात दिन उत्सव होता रहता था। कुरु पाण्डव और सात्वत वीर भी इनकी सेवा में समय २ पर सर्वदा उपस्थित होते थे। आज

उस ही द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के शिविर में भी पूर्व के सदृश हर्षोल्लास सुनाई नहीं दे रहा है ॥१२-१४॥

द्रोणपुत्रं महेष्वासं गायना नर्त्तकाश्च ये।
अत्यर्थमुपतिष्ठन्ति तेषां न श्रूयते ध्वनिः ॥१५॥

महाधनुर्धर आचार्य द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा के घर पर गायक और नर्तकों की भीड़ इकट्ठी रहती थी, आज तो इसका भी कोलाहल सुनाई नहीं दे रहा है ॥१५॥

विन्दानुविन्दयोः सायं शिविरे यो महाध्वनिः।
श्रूयते सोऽद्य न तथा केकयानां च वेश्मसु ॥१६॥

कल सायंकाल तो विन्द और अनुविन्द के शिविर में भी बड़ा कोलाहल सुना जाता था और यही दशा केकय देश के राजाओं की थी, परन्तु आज उन दोनों के शिविरों में कुछ भी हर्षध्वनि नहीं है

नित्यं प्रमुदितानां च तालगीतस्वनो महान्।
नृत्यतां श्रूयते तात गणानां सोऽद्य न स्वनः ॥१७॥

हे तात! इन लोगों के शिविरों में आनन्द में भरे हुए नाचने गाने वालों की तालध्वनि के साथ महान् गीतध्वनि सुनी जाती थी, आज उन नर्तक और गायकों के समूह का कलकलाहट कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा है ॥१७॥

सप्ततन्तून्वितन्वाना याजका यमुपासते।
सौमदत्तिं श्रुतनिधिं तेषां न श्रूयते ध्वनिः ॥१८॥

बड़े २ यज्ञों के रचने वाले याजक ब्राह्मण, सोमदत्त के पुत्र श्रुतनिधि भूरिश्रवा के भवन पर इकट्ठे होते थे, आज उनकी भी वेद-ध्वनि कान में नहीं आ रही है ॥१८॥

ज्याघोषो ब्रह्मघोषश्च तोमरासिरथध्वनिः ।

द्रोणस्याऽऽसीदविरतो गृहे तं न शृणोम्यहम् ॥१९॥

आचार्य द्रोण के भवन पर लगातार धनुष की प्रत्यञ्चा, वेद, तोमर, खड्ग और रथ की ध्वनि होती रहती थी, आज मैं उसे भी नहीं सुन रहा हूं ॥१९॥

नानादेशसमुत्थानां गीतानां योऽभवत्स्वनः ।

वादित्रनादितानां च सोऽद्य न श्रूयते महान् ॥२०॥

अनेक देशों के गीत और बाजों की ध्वनि मेरे कानों में आती रहती थी, आज उस महाध्वनि को भी मैं नहीं सुन रहा हूं ॥२०॥

यदाऽभ्युपप्लव्याच्छान्तिमिच्छञ्जनार्दनः ।

आगतः सर्वभूतानामनुकम्पार्थमच्युतः ॥२१॥

ततोऽहमब्रुवं सूत मन्दं दुर्योधनं तदा ।

वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः ॥२२॥

कालप्राप्तमहं मन्ये मा त्वं दुर्योधनाऽतिगाः ॥२३॥

पाण्डवों के उपप्लव्य नगर से सन्धि करने को जब जनार्दन कृष्ण आये थे, तो उनके मन में यही इच्छा थी, कि सारे संसार में शान्ति विराजमान रहे । हे सञ्जय ! उस समय मैंने अपने मूढ़ पुत्र दुर्योधन से कहा था, हे पुत्र ! दुर्योधन ! तुम पाण्डवों के अन्तरङ्ग

इस श्रीकृष्ण के प्रस्ताव पर सन्धि को स्वीकार कर लो और पाण्डवों के साथ कलह की इच्छा को शान्त करो। मैं इस समय यही उचित समझता हूँ। तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन न करो।

शमं चेद्याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम्।
हितार्थमभिजल्पन्तं न तवाऽस्ति रणे जयः ॥२४॥

हे पुत्र! सन्धि की इच्छा से उपस्थित श्रीकृष्ण का यदि तुम तिरस्कार कर दोगे और उनकी इस हितकारी योजना का आदर नहीं करोगे-तो युद्ध में तुम्हारा विजय होना बहुत ही कठिन है।

प्रत्याचष्ट स दाशार्हमृषभं सर्वधन्विनाम्।
अनुनेयानि जल्पन्तमनयान्नान्वपद्यत ॥२५॥

सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ, दशार्हदेशोत्पन्न श्रीकृष्ण के सन्धि के प्रस्ताव को अन्त में दुर्योधन ने ठुकरा ही दिया। उन्होंने बहुत ही नम्रता से दुर्योधन को समझाया, परन्तु उसने नीति के विरुद्ध होकर उनकी एक भी बात नहीं सुनी ॥२५॥

ततो दुःशासनस्यैव कर्णस्य च मतं द्वयोः।
अन्ववर्त्तत मां हित्वा कृष्टः कालेन दुर्मतिः ॥२६॥

राजा दुर्योधन केवल दुःशासन और कर्ण की ही सुनता है-वह मेरी तो बात मानता ही नहीं है। इस दुर्मति को तो इस ओर स्वयं काल खैंच रहा है-ऐसा प्रतीत होता है ॥२६॥

न ह्यहं द्यूतमिच्छामि विदुरो न प्रशंसति।
सैन्धवो नेच्छति द्यूतं भीष्मो न द्यूतमिच्छति ॥२७॥

शल्यो भूरिश्रवाश्चैव पुरुमित्रो जयस्तथा ।
अश्वत्थामा कृपो द्रोणो द्यूतं नेच्छन्ति सञ्जय ॥२८॥

हे सञ्जय ! कौरव और पाण्डवों के मध्य में जो द्यूत (जुआ) हुआ, उसको न तो मैं ही चाहता था और न इसमें विदुर की ही इच्छा थी । सिन्धुराज जयद्रथ, ब्रह्मचारी भीष्म, शल्य, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य कोई भी इस द्यूत के पक्ष में नहीं थे ॥२७-२८॥

एतेषां मतमादाय यदि वर्त्तेत पुत्रकः ।
सज्ञातिमित्रः ससुहृच्चिरं जीवेदनामयः ॥२९॥

यदि मेरा पुत्र दुर्योधन इनकी इच्छा के अनुसार करता, तो वह अपने बन्धु बान्धव तथा जाति मित्रों के साथ चिरकाल तक स्वस्थता के साथ सुख भोगता ॥२९॥

श्लक्ष्णा मधुरसम्भाषा ज्ञातिबन्धुप्रियंवदाः ।
कुलीनाः संमताः प्राज्ञाः सुखं प्राप्स्यन्ति पाण्डवाः

बड़े स्पष्ट और मधुर भाषी, जाति और बान्धवों के प्रिय, कुलीन, सबके मान्य, बुद्धिमान्, पाण्डव भी इसी में सुखी थे ॥३०॥

धर्मापेक्षी नरो नित्यं सर्वत्र लभते सुखम् ।
प्रेत्यभावे च कल्याणं प्रसादं प्रतिपद्यते ॥३१॥

जो मनुष्य, धर्म की अपेक्षा (परवा) करता है, वही सर्वत्र सुख पाता है तथा मृत्यु के अनन्तर उसको कल्याण और आत्म-प्रसाद प्राप्त होता है ॥३१॥

अर्हास्ते पृथिवीं भोक्तुं समर्थाः साधनेऽपि च ।
तेषामपि समुद्रान्ता पितृपैतामही मही ॥३२॥

पाण्डव सारी पृथिवी के शासन करने के योग्य हैं और उनके पास इसके साधन भी हैं। समुद्रपर्यन्त पृथिवी पर उनके भी तो पिता और पितामह का अधिकार चला ही आता था ॥३२॥

वियुज्यमानाः स्थास्यन्ति पाण्डवा धर्मवर्त्मनि ।
सन्ति मे ज्ञातयस्तात येषां श्रोष्यन्ति पाण्डवाः ॥

हे तात ! यदि पाण्डवों को राजसिंहासन पर बैठा दिया जावे-तो भी वे हमारे साथ कोई विरोध न करके धर्ममार्ग का अनुसरण करेंगे। अभी हमारे कुल में इतने वृद्धपुरुष जीवित हैं, कि पाण्डव उनकी अवश्य आज्ञा मान कर हमारी सेवा करते रहेंगे ॥३३॥

शल्यस्य सोमदत्तस्य भीष्मस्य च महात्मनः ।
द्रोणस्याऽथ विकर्णस्य बाह्लीकस्य कृपस्य य ॥३४॥
अन्येषां चैव वृद्धानां भरतानां महात्मनाम् ।
त्वदर्थं ब्रुवतां तात करिष्यन्ति वचो हि ते ॥३५॥

हे तात ! मद्रराज शल्य, सोमदत्त, महात्मा भीष्म, द्रोणाचार्य, विकर्ण, बाल्हीक, कृपाचार्य तथा अन्य महात्मा भरतवंशोद्भव वृद्ध, तुम्हारे सुख के लिए पाण्डवों से कहते रहेंगे और वे भी उनके वचनों को अवश्य मानेंगे ॥३४-३५॥

कं वा त्वं मन्यसे तेषां यस्तान्ब्रूयादतोऽन्यथा ।
कृष्णो न धर्मं सञ्जह्यात्सर्वे ते हि तदन्वयाः ॥३६॥

तुम पाण्डवों के साथी किस पुरुष को ऐसा देखते हो-जो कौरवों के विरुद्ध पाण्डवों को करता रहे। श्रीकृष्ण, कभी धर्म के छोड़ने वाले नहीं है और शेष सब उनके वचनों के अनुयायी हैं।

मयापि चोक्तास्ते वीरा वचनं धर्मसंहितम्।
नाऽन्यथा प्रकरिष्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ।३७

यदि उन वीर पाण्डवों से मैं भी जो कुछ कहूंगा-तो वे मेरे वचन को भी कभी नहीं लौटेंगे। मैं स्वयं धर्म के अनुसार कहूँगा और पाण्डव तो धर्म के अनुसार चलने ही वाले हैं ॥३७॥

इत्यहं विलपन्सूत बहुशः पुत्रमुक्तवान्।
न च मे श्रुतवान्मूढो मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥३८॥

हे सूत! इस प्रकार मैं अपने पुत्र दुर्योधन से बहुत कुछ रोया चिल्लाया, परन्तु उसने एक नहीं सुनी-यह सब कुछ मैं तो उलटे हुए काल की गति मानता हूं ॥३८॥

वृकोदरार्जुनौ यत्र वृष्णिवीरश्च सात्यकिः।
उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः ॥३९॥
धृष्टद्युम्नश्च दुर्धर्षः शिखण्डी चाऽपराजितः।
अश्मकाः केकयाश्चैव क्षत्रधर्मा च सौमकिः ॥४०॥
चैद्यश्च चेकितानश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभूः।
द्रौपदेया विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४१॥
यमौ च पुरुषव्याघ्रौ मन्त्री च मधुसूदनः।
क एताञ्जातु युध्येत लोकेऽस्मिन्वै जिजीविषुः ॥४२॥

वृकोदर भीम, अर्जुन, वृष्णिवीर सात्यकि, पाञ्चाल, उत्तमौजा, दुर्जय युधामन्यु, धृष्टद्युम्न, अपराजित शिखण्डी, अश्मक-केकय, सोमक-पुत्र क्षत्रधर्मा, चेदिराज धृष्टकेतु, चेकितान, काशिराज का पुत्र अभिभू, द्रौपद-पुत्र विराट, महारथी द्रुपद, पुरुष-श्रेष्ठ, नकुल-सहदेव, सबको मार्ग बताने वाले मधुसूदन श्रीकृष्ण, जिस ओर हैं, जीवन की अभिलाषा रखने वाला कौन इनके साथ युद्ध कर सकता है ॥३९-४२॥

दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणान्प्रसहेद्वा परान्मम ।
अन्यो दुर्योधनात्कर्णाच्छकुनेश्चापि सौबलात् ॥४३॥
दुःशासनचतुर्थानां नाऽन्यं पश्यामि पञ्चमम् ।

दिव्य अस्त्रों के प्रयोग करनेवाले इन पाण्डव वीरों का हमारी सेना में राजा दुर्योधन, कर्ण, सुबल-पुत्र शकुनि और दुःशासन को छोड़ कर कौन सामना कर सकता है। मुझे तो इन चारों को छोड़ कर हमारी सेना में पांचवां कोई दिखाई ही नहीं देता है ॥४३॥

येषामभीषुहस्तः स्याद्विष्वक्सेनो रथे स्थितः ॥४४॥
सन्नद्धश्चाऽर्जुनो योद्धा तेषां नास्ति पराजयः ।

विष्वक्सेन श्रीकृष्ण ने जिसके रथ की डोरी पकड़ ली है और जिसका सर्वगुणसम्पन्न सब तरह तय्यार वीर अर्जुन योद्धा है, उस धर्मराज का कौन पराभव कर सकता है ॥४४॥

तेषामथ विलापानां नाऽयं दुर्योधनः स्मरेत् ॥४५॥

हतौ हि पुरुषव्याघ्रौ भीष्मद्रोणौ त्वमात्थ वै ।
तेषां विदुरवाक्यानामुक्तानां दीर्घदर्शनात् ॥४६॥
दृष्ट्वेमां फलनिर्वृत्तिं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।

तुम कह रहे हो, कि पुरुषव्याघ्र, भीष्म और द्रोण मर चुके, परन्तु हम लोगों के पूर्व में कहे हुए वचनों को राजा दुर्योधन अब भी स्मरण नहीं करता है। विदुर ने तो अपनी दीर्घ-दृष्टि से यह बात पूर्व में ही कह दी थी। अब उन वचनों का फल सन्मुख देखकर तो सम्भव है, मेरे मूर्खपुत्र कुछ चिन्ता कर रहे होंगे ॥४५-४६॥

सेनां दृष्ट्वाभिभूतां मे शैनेयेनाऽर्जुनेन च ॥४७॥
शून्यान्दृष्ट्वा रथोपस्थान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।

शिनि-पुत्र सात्यकि और अर्जुन से सेना का अभिभव देखकर तथा रथ के स्थानों को शून्य देखकर शायद मेरे नीच पुत्रों को कुछ चिन्ता हुई होगी ॥४७॥

हिमात्यये यथा कक्षं शुष्कं वातेरितो महान् ॥४८॥
अग्निर्दहेत्तथा सेनां मामिकां स धनञ्जयः ।

शीतकाल के निकल जाने पर तृणसमूह को जैसे अग्नि भस्म कर देता है, इसी तरह अर्जुन हमारी सेना को दग्ध कर देगा; मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है ॥४८॥

आचक्ष्व मम तत्सर्वं कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥४९॥
यदुपायात सायाह्ने कृत्वा पार्थस्य किल्बिषम् ।
अभिमन्यौ हते तात कथमासीन्मनो हि वः ॥५०॥

हे सञ्जय ! तुम बड़े चतुर हो-मुझे सारा वृत्तान्त ठीक २ सुनाओ, कि अर्जुन का अपराध अभिमन्यु वध करके तुम लोग जो आये, उस पर क्या हुआ ? हे तात ! अभिमन्यु के मारे जाने पर तुम लोगों के चित्तों की क्या दशा हुई ? ॥४९-५०॥

न जातु तस्य कर्माणि युधि गाण्डीवधन्वनः ।
अपकृत्य महत्तात सोढुं शक्ष्यन्ति मामकाः ॥५१॥

गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन के कामों को रण में कौन सह सकता है । हे तात ! उसी अर्जुन का अपराध करके उससे टक्कर लेने वाला हमारी ओर के योद्धाओं में कौन समर्थ है ॥५१॥

किन्नु दुर्योधनः कृत्यं कर्णः कृत्यं किमब्रवीत् ।
दुःशासनः सौवलश्च तेषामेवङ्गतेष्वपि ॥५२॥

राजा दुर्योधन और अङ्गराज कर्ण, इस समय क्या उपाय बता रहे हैं । इस दशा में दुःशासन और सुवल-पुत्र शकुनि की क्या सम्मति है ॥५२॥

सर्वेषां समवेतानां पुत्राणां मम सञ्जय ।
यद्वृत्तं तात संग्रामे मन्दस्याऽपनयैर्भृशम् ॥५३॥
लोभानुगस्य दुर्बुद्धेः क्रोधेन विकृतात्मनः ।
राज्यकामस्य मूढस्य रागोपहतचेतसः ॥
दुर्नीतं वा सुनीतं वा तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥५४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

हे सञ्जय ! मूर्ख, दुर्मति, नीति शून्य, लोभ की कीचड़ में फंसे हुए, क्रोध से अपने स्वभाव को भूले हुए राजा दुर्योधन और मेरे सारे पुत्रों की क्या दशा है, उनका वृत्तान्त सुनाओ। ये सारे मूर्ख राग-द्वेष में फंसे हुए राज्य के लोभ में उलझे हैं। इन्होंने दुर्नीति और सुनीति के वश में होकर जो किया-सो सुनाओ ॥५३-५४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में धृतराष्ट्र के वाक्य का पिचासीवां अध्याय समाप्त हुआ।



# छियासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा तव ह्यपनयो महान् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! मैंने जो रणस्थल में प्रत्यक्ष देखा है, वह सब कुछ आपको सुनाता हूं, तुम ध्यानपूर्वक स्थिर होकर सुनो। यह सब कुछ आपकी ही दुर्नीति का परिपाक हो रहा है ॥१॥

गतोदके सेतुबन्धो यादृक्तादृगयं तव ।
विलापो निष्फलो राजन्मा शुचो भरतर्षभ ॥२॥

हे भरतर्षभ ! जब पानी निकल जावे-तब सेतु बांधने के सदृश तुम्हारी यह निष्फल चिन्ता है । हे राजन ! अब जो कुछ होना था , वह हो चुका, अब शोक करना वृथा है ॥२॥

अनतिक्रमणीयोऽयं कृतान्तस्याऽद्भुतो विधिः ।
मा शुचो भरतश्रेष्ठ दिष्टमेतत्पुरातनम् ॥३॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! विधाता के अपूर्व विधान का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता है । आप इसका कुछ सोच न करें; यह तो पूर्व-जन्मों के कर्मों का पुरातन परिणाम प्रतीत होता है ॥३॥

यदि त्वं हि पुरा द्यूतात्कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
निवर्त्तयेथाः पुत्रांश्च न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥४॥

हे राजन् ! यदि तुम पूर्व में कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर और अपने पुत्रों को द्यूत के झगड़े से दूर कर देते-तो आज यह दिन देखना नहीं पड़ता और न इस कठिन संकट का सामना करना पड़ता ।

युद्धकाले पुनः प्राप्ते तदैव भवता यदि ।
निवर्तिताः स्युः संरब्धा न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥५॥

इसके अतिरिक्त यदि तुमने युद्ध के उपस्थित होने पर भी इन क्रोधातुर अपने वंशजों को रोक दिया होता-तो भी तुम पर आज यह विपत्ति न आती ॥५॥

दुर्योधनं चाऽविधेयं वध्नीतेति पुरा यदि।
कुरूनचोदयिष्यस्त्वं न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥६॥

यदि तुमने कुरुवीरों को यह आज्ञा दे दी होती, कि इस उद्दण्ड दुर्योधन को बन्धन में डाल दो-तो यह विपत्ति तुम पर न आती।

न ते बुद्धिव्यभीचारमुपलप्स्यन्ति पाण्डवाः।
पञ्चाला वृष्णयः सर्वे ये चाऽन्येऽपि नराधिपाः ॥७॥

पाण्डव, पाञ्चाल, वृष्णिवीर तथा अन्य राजा कम से कम तुम्हारी बुद्धि का दोष तो नहीं बताते ॥७॥

स कृत्वा पितृकर्म त्वं पुत्रं संस्थाप्य सत्पथे।
वर्तेथा यदि धर्मेण न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥८॥

हे राजन्! यदि तुम अपने पुत्र राजा दुर्योधन को सन्मार्ग में प्रवृत्त करके अपने पिता के कर्तव्य को पूरा करते और धर्मानुसार वर्ताव करते-तो तुम पर यह विपत्ति नहीं आती ॥८॥

त्वं तु प्राज्ञतमो लोके हित्वा धर्मं सनातनम्।
दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्चाऽन्वगा मतम् ॥९॥

तुम इतने बुद्धिमान् होकर भी सनातनधर्म को छोड़ बैठे और राजा दुर्योधन, अङ्गराज कर्ण तथा सुबल-पुत्र शकुनि के मत के अनुसार ही तुम भी चल पड़े ॥९॥

तत्ते विलपितं सर्वं मया राजन्निशामितम्।
अर्थे निविशमानस्य विषमिश्रं यथा मधु ॥१०॥

हे राजन्! तुम अपने स्वार्थ को ध्यान में रख कर ही यह सब कुछ रोना रो रहे हो, जिसे मैंने सुना है। यह तो विष मिश्रित मधु के तुल्य प्रतीत होता है ॥१०॥

नाऽमन्यत तदा कृष्णो राजानं पाण्डवं पुरा।
न भीष्मं नैव च द्रोणं यथा त्वां मन्यतेऽच्युतः ॥११॥

इस समय भगवान् श्रीकृष्ण, जितना तुम्हारा आदर करते थे, उतना राजा युधिष्ठिर, भीष्म और द्रोण का भी नहीं करते थे ॥११॥

अजानात्स यदा तु त्वां राजधर्मादधश्च्युतम्।
तदाप्रभृति कृष्णस्त्वां न तथा बहु मन्यते ॥१२॥

जब से श्रीकृष्ण ने तुमको धर्म मार्ग से नीचे गिरा हुआ समझ लिया, तब से ही उनके मन में तुम्हारा आदर बहुत कम हो गया है ॥१२॥

परुषाण्युच्यमानांश्च यथा पार्थानुपेक्षसे।
तस्याऽनुबन्धः प्राप्तस्त्वां पुत्राणां राज्यकामुक ॥१३॥

हे राज्यलोलुप! जब तुम्हारे पुत्रों ने पाण्डवों को कठोर वचन सुनाए और तुमने उन पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया-इसी का यह फल तुम्हारे पुत्रों के सन्मुख उपस्थित हुआ है ॥१३॥

पितृपैतामहं राज्यमपवृत्तं तदाऽनघ।
अथ पार्थैर्जितां कृत्स्नां पृथिवीं प्रत्यपद्यथाः ॥१४॥

हे अनघ! तुम्हारे पिता पितामहों से चला आता हुआ राज्य तो नष्ट प्रायः हो चुका था। पाण्डवों ने ही उसे जीत कर फिर आपको समर्पित किया है ॥१४॥

पाण्डुना निर्जितं राज्यं कौरवाणां यशस्तथा।
ततश्चाऽप्यधिकं भूयः पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥१५॥

हे भरतर्षभ ! राजा पाण्डु ने बहुत सी पृथिवी को जीत कर कुरुवंश का गौरव बढ़ाया, उससे भी अधिक धर्मात्मा पाण्डु-पुत्र अर्जुन आदि ने पृथिवी जीत कर कुरुवंश का यश फैलाया है।१५।

तेषां तत्तादृशं कर्म त्वामासाद्य सुनिष्फलम्।
यत्पित्र्याद्भ्रंशिता राज्यात्त्वयेहाऽऽमिषगृद्धिना ॥१६॥

उनका यह असाधारण कर्म भी तुम्हारे पास निष्फल हो गया, जो मांसलोलुप जन्तु की तरह भीषण होकर एकदम तुमने उनको अपने पिता के राज्य से वन में निकाल दिया॥१६॥

यत्पुनर्युद्धकाले त्वं पुत्रान्गर्हयसे नृप।
बहुधा व्याहरन्दोषान्न तदद्योपपद्यते ॥१७॥

हे नृप ! तुम युद्ध के समय अपने पुत्रों के अनेक दोषों का वर्णन करके उनकी निन्दा कर रहे हो-अब इससे क्या बनता है।

न हि रक्षन्ति राजानो युद्ध्यन्तो जीवितं रणे।
चमूं विगाह्य पार्थानां युध्यन्ते क्षत्रियर्षभाः ॥१८॥

जब राजा लोग युद्ध में प्रवृत्त हो जाते हैं, तब उन्हें प्राणों का ध्यान नहीं रहता। ये क्षत्रियवीर पाण्डवों की सेना में घुस २ कर वीरता के साथ युद्ध कर रहे हैं॥१८॥

यां तु कृष्णार्जुनौ सेनां यां सात्यकिवृकोदरौ।
रक्षेरन्को नु तां युद्ध्येच्चमूमन्यत्र कौरवैः ॥१९॥

जिस सेना का कृष्ण और अर्जुन तथा सात्यकि और भीमसेन सञ्चालन कर रहे हों-उस सेना से कौरवों के सिवा कौन लड़ सकता है ॥१६॥

येषां योद्धा गुडाकेशो येषां मन्त्री जनार्दनः ।
येषां च सात्यकिर्योद्धा येषां योद्धा वृकोदरः ॥२०॥

को हि तान्विषहेद्योद्धुं मर्त्यधर्मा धनुर्धरः ।
अन्यत्र कौरवेयेभ्यो ये वा तेषां पदानुगाः ॥२१॥

जिनका योद्धा महारथी अर्जुन और जिनके मन्त्री जनार्दन श्रीकृष्ण हैं। जिनकी ओर से सात्यकि और भीमसेन योद्धा हैं, मरने की इच्छा वाला कौन धनुर्धर उनसे युद्ध कर सकता है। उनसे युद्ध करने की शक्ति तो केवल सेना के सहित कौरवों में ही है ॥२०-२१॥

यावत्तु शक्यते कर्त्तुमन्तरज्ञैर्जनाधिपैः ।
क्षत्रधर्मरतैः शूरैस्तावत्कुर्वन्ति कौरवाः ॥२२॥

क्षत्रिय धर्म में परायण, युद्ध कला के सूक्ष्म तत्वों के ज्ञाता, शूरवीर राजाओं को साथ लेकर जितना कौरव कर सकते हैं-उतना कर रहे हैं ॥२२॥

यथा तु पुरुषव्याघ्रैर्युद्धं परमसङ्कटम् ।
कुरूणां पाण्डवैः सार्धं तत्सर्वंशृणु तत्त्वतः ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सञ्जयवाक्ये
षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अब जिस प्रकार वीर कौरव और पाण्डवों का परस्पर घोर युद्ध हो रहा है, तुम उसका सारा वृत्तान्त तत्व के साथ सुनो ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सञ्जय
वाक्य का छियासीवां अध्याय समाप्त हुआ ।



# सत्तासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तस्यां निशायां व्युष्टायां द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
स्वान्यनीकानि सर्वाणि प्राक्रामद्व्यूहितुं ततः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब अभिमन्यु की मृत्यु के अनन्तर रात समाप्त हुई, तो शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य अपनी सारी सेना का व्यूह बनाने का प्रयत्न करने लगे ॥१॥

शूराणां गर्जतां राजन्संक्रुद्धानाममर्षिणाम् ।
श्रूयन्ते स्म गिरश्चित्राः परस्परवधैषिणाम् ॥२॥

हे राजन् ! इस समय आवेश में भरे हुए, क्रोधातुर, परस्पर एक दूसरे के मारने के उत्सुक शूरवीरों की गर्जना पूर्ण वाणी सब ओर सुनाई देने लगी ॥२॥

विस्फार्य च धनूंष्यन्ये ज्याः परे परिमृज्य च ।
विनिःश्वसन्तः प्राक्रोशन्क्वेदानीं स धनञ्जयः ॥३॥

कुछ वीर अपने २ धनुष को खैंचने लगे और कुछ धनुष की प्रत्यञ्चा बजाने में तत्पर हुए। अनेक वीर क्रोध में भरे हुए सांस ले रहे थे और आवेश में भड़-भड़ा रहे थे, कि अर्जुन कहां है ।३।

विकोशान्सुत्सरूनन्ये कृतधारान्समाहितान् ।
पीतानाकाशसङ्काशानसीन्केचिच्च चिक्षुपुः ॥४॥

कुछ वीर अच्छी २ मूंठ वाली, तीक्ष्ण धारा सम्पन्न, विषदग्ध, आकाश के तुल्य नीली नङ्गी तलवारों के हाथ दिखा रहे थे ॥४॥

चरन्तस्त्वसिमार्गांश्च धनुर्मार्गांश्च शिक्षया ।
संग्राममनसः शूरा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥५॥

युद्ध विद्या की शिक्षा में कुशल, सहस्रों योद्धा युद्ध के लिए इतने उत्सुक हो रहे थे, कि वे वहीं पर तलवार और धनुष के हाथ दिखा रहे थे ॥५॥

सघण्टाश्चन्दनादिग्धाः स्वर्णवज्रविभूषिताः ।
समुत्क्षिप्य गदाश्चाऽन्ये पर्यपृच्छन्त पाण्डवम् ॥६॥

जिन गदाओं में किङ्किणीजाल लगा हुआ है और जो चन्दन से लिप्त हैं, उन स्वर्ण और वज्र से जटित गदाओं को फिराते हुए कौरववीर पाण्डु-पुत्र अर्जुन की खोज करने लगे ॥६॥

अन्ये बलमदोन्मत्ताः परिघैर्बाहुशालिनः ।
चक्रुः सम्बाधमाकाशमुच्छ्रितेन्द्रध्वजोपमैः ॥७॥

बल और मदोन्मत्त, लम्बी २ भुजा वाले योद्धा, ऊपर फड़फड़ाती हुई इन्द्र ध्वजा के सदृश परिघ नामक शस्त्र को फेंकते हुए आकाश को परिपूर्ण करने लगे ॥७॥

नानाप्रहरणैश्चाऽन्ये विचित्रस्रगलंकृताम् ।
संग्राममनसः शूरास्तत्र तत्र व्यवस्थिताः ॥८॥

अद्भुत २ मालाधारी, अनेक शस्त्रों से सुसज्जित कौरव शूरवीर, संग्राम के लिए बड़े ही उत्सुक हो रहे थे ॥८॥

क्वाऽर्जुनः क्व स गोविन्दः क्व च मानी वृकोदरः ।
क्व च ते सुहृदस्तेषामाह्वयन्ते रणे तदा ॥६॥

उस समय संग्राम में तुम्हारे वीर "अर्जुन कहां है" "कृष्ण कहां है" और "वह बहुत अधिक अभिमानी भीमसेन कहां छुपा बैठा है" इस प्रकार की वाणी बोलते हुए ललकार रहे थे ॥६॥

ततः शङ्खमुपाध्माय त्वरयन्वाजिनः स्वयम् ।
इतस्ततस्तान्रचयन्द्रोणश्चरति वेगितः ॥१०॥

इसी समय आचार्य द्रोण अपने महाशङ्ख को बजाते और स्वयं अपने अश्वों को शीघ्रता से चलाते हुए एवं इधर उधर सेना को खड़ी करते हुए दौड़ रहे थे ॥१०॥

तेष्वनीकेषु सर्वेषु स्थितेष्वाहवनन्दिषु ।
भारद्वाजो महाराज जयद्रथमथाऽब्रवीत् ॥११॥

हे महाराज ! युद्ध का नाम सुनकर प्रसन्न हो उठने वाली सारी सेना के स्थित हो जाने पर भरद्वाज-पुत्र आचार्य द्रोण, राजा जयद्रथ से कहने लगे ॥११॥

त्वं चैव सौमदत्तिश्च कर्णश्चैव महारथः ।
अश्वत्थामा च शल्यश्च वृषसेनः कृपस्तथा ॥१२॥
शतं चाऽश्वसहस्राणां रथानामयुतानि षट् ।
द्विरदानां प्रभिन्नानां सहस्राणि चतुर्दश ॥१३॥
पदातीनां सहस्राणि दंशितान्येकविंशतिः ।
गव्यूतिषु त्रिमात्रासु मामनासाद्य तिष्ठत ॥१४॥
तत्रस्थं त्वां न संसोढुं शक्ता देवाः सवासवाः ।
किं पुनः पाण्डवाः सर्वे समाश्वसिहि सैन्धव ॥१५॥

हे सिन्धुराज ! तुम, सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा, महारथी कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन, कृपाचार्य, इन छः महारथियों के साथ एक लाख घुड़सवार, साठ हजार रथी, चौदह हजार मदस्रावी हाथी, इक्कीस सहस्र कवच धारी पैदल सैनिक लेकर छः कोस दूरी पर स्थित हो जाओ। वहां स्थित होने पर इन्द्र सहित

देवता भी तुम पर आक्रमण करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे, पाण्डवों की तो गिनती ही क्या है । हे सिन्धुराज ! तुमको कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥१२-१५॥

एवमुक्तः समाश्वस्तः सिन्धुराजो जयद्रथः ।
सम्प्रायात्सह गान्धारैर्वृतस्तैश्च महारथैः ॥१६॥

जब द्रोणाचार्य ने इतना कहा-तब सिन्धुराज जयद्रथ को कुछ शान्ति मिली । वह बहुत कुछ गान्धारसेना को साथ लेकर उपर्युक्त महारथियों के साथ छः कोश की दूरी पर चला गया ॥१६॥

वर्मिभिः सादिभिर्यत्तैः प्रासपाणिभिरास्थितैः ।
चामरापीडिनः सर्वे जाम्बूनदविभूषिताः ॥१७॥
जयद्रथस्य राजेन्द्र हयाः साधुप्रवाहिनः ।
ते चैकसप्तसाहस्रास्त्रिसाहस्राश्च सैन्धवाः ॥१८॥

हे राजेन्द्र ! कवचधारी, प्रास आदि शस्त्रों से सुशोभित, सावधान सवारों से युक्त, अपने वालों की माला वाले, सुवर्ण के आभूषणों से समन्वित, राजा जयद्रथ के उत्तम अश्व बड़ी उत्तम गति से चले जा रहे थे । ये सब अश्व चौहत्तर हजार के लगभग होंगे ।

मत्तानां सुविरूढानां हस्त्यारोहैर्विशारदैः ।
नागानां भीमरूपाणां वर्मिणां रौद्रकर्मिणाम् ॥१९॥
अध्यर्धेन सहस्रेण पुत्रो दुर्मर्षणस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां युद्ध्यमानो व्यवस्थितः ॥२०॥

बड़े मदोन्मत्त, दृढ़ता के साथ डटने वाले, कवचों से युक्त, भयानक कर्म कर दिखाने वाले, पांच सौ हाथियों पर युद्धविद्या में कुशल गजारोही डटे बैठे थे। इनको साथ लेकर तुम्हारा पुत्र दुर्मर्षण, सारी सेना के आगे युद्ध करने को स्थित हुआ ॥१६-२०॥

ततो दुःशासनश्चैव विकर्णश्च तवाऽऽत्मजौ ।
सिन्धुराजार्थसिद्ध्यर्थमग्रानीके व्यवस्थितौ ॥२१॥

हे राजन् ! इसी तरह तुम्हारे पुत्र, दुःशासन और विकर्ण भी सिन्धुराज की रक्षाके निमित्त सेना के अगले भाग में स्थित हुए ।

दीर्घो द्वादशगव्यूतिः पश्चार्धे पञ्चविस्तृतः ।
व्यूहस्तु चक्रशकटो भारद्वाजेन निर्मितः ॥२२॥

अब भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य ने चक्र शकट नामक व्यूह बनाया, जिसकी लम्बाई चौबीस कोश और पीछे का भाग पांच कोस चौड़ा था॥ २॥

नानानृपतिभिर्वीरैस्तत्र तत्र व्यवस्थितैः ।
रथाश्व राजपत्त्योघैर्द्रोणेन विहितः स्वयम् ॥२३॥

इस चक्र शकटव्यूह में उचित २ स्थानों पर अनेक वीर राजाओं को नियुक्त किया गया। उनके पास अनेक महारथी और उत्तम २ वीर सैनिक लगाये गए। यह सब कुछ स्थान २ पर स्वयं पहुंच २ कर आचार्य द्रोण ने लगाये थे ॥२३॥

पश्चार्धे तस्य पद्मस्तु गर्भव्यूहः सुदुर्भिदः ।
सूचीपद्मस्य गर्भस्थो गूढो व्यूहः कृतः पुनः ॥२४॥

इसी चक्रशकट के पिछले पद्मव्यूह में एक गर्भव्यूह बनाया गया, जिसको कोई भी भेदने में समर्थ नहीं था। इस सूचीव्यूह के भीतर भी एक अन्य गर्भव्यूह बनाया गया ॥२४॥

एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य द्रोणो व्यवस्थितः।
सूचीमुखे महेष्वासः कृतवर्मा व्यवस्थितः ॥२५॥

इस प्रकार द्रोणाचार्य, एक महाव्यूह को रचना करके उसके मुख पर स्थित हुए और उस सूचीमुख के मध्य में कृतवर्मा को लगाया गया ॥२५॥

अनन्तरं च काम्बोजो जलसन्धश्च मारिष।
दुर्योधनश्च कर्णश्च तदनन्तरमेव च ॥२६॥

हे सर्वगुणश्रेष्ठ! इसके पास कम्बोज देशाधिपति जलसन्ध नियुक्त हुए। इसके पास ही राजा दुर्योधन और कर्ण थे ॥२६॥

ततः शतसहस्राणि योधानामनिवर्तिनाम्।
व्यवस्थितानि सर्वाणि शकटे मुखरक्षिणाम् ॥२७॥

इस शकटव्यूह की रक्षा में एक लाख पीछे नहीं हटने वाले वीर दृढ़ता के साथ नियुक्त किए गए ॥२७॥

तेषां च पृष्ठतो राजा बलेन महता वृतः।
जयद्रथस्ततो राजा सूचीपार्श्वे व्यवस्थितः ॥२८॥

इन वीरों के पीछे ही बड़ी भारी सेना लेकर राजा दुर्योधन थे और इस सूचीव्यूह के पास में राजा जयद्रथ को स्थित किया गया ॥२८॥

शकटस्य तु राजेन्द्र भारद्वाजो मुखे स्थितः ।
अनु तस्याऽभवद्भोजो जुगोपैनं ततः स्वयम् ॥२९॥

हे राजेन्द्र ! इस शकटव्यूह के मुख पर भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य थे । इनके पीछे ही भोजवंशोद्भव कृतवर्मा थे, जो द्रोणाचार्य की रक्षा में तत्पर थे ॥२९॥

श्वेतवर्माऽम्बरोष्णीषो व्यूढोरस्को महाभुजः ।
धनुर्विस्फारयन्द्रोणस्तस्थौ क्रुद्ध इवाऽन्तकः ॥३०॥

श्वेत कवच और श्वेत बादलों के तुल्य पगड़ी बांधे हुए, महाभुज धारी, दृढ़ वृक्षस्थल वाले द्रोणाचार्य, अपने धनुष को बजाते हुए भयानक काल के सदृश सेना के मुख पर खड़े हुए थे ।

पताकिनं शोणहयं वेदिकृष्णाजिनध्वजम् ।
द्रोणस्य रथमालोक्य प्रहृष्टाः कुरवोऽभवन् ॥३१॥

पताकाओं से युक्त, लाल अश्वों वाले, वेदी और कृष्ण मृग के चिन्ह से समुज्ज्वल ध्वजा वाले, द्रोणाचार्य के रथ को देखकर कौरव बड़े प्रसन्न हुए ॥३१॥

सिद्धचारणसङ्घानां विस्मयः सुमहानभूत् ।
द्रोणेन विहितं दृष्ट्वा व्यूहं क्षुब्धार्णवोपमम् ॥३२॥

उछलते हुए समुद्र के तुल्य द्रोण द्वारा रचे हुए व्यूह को देखकर सिद्ध और चारणों के समूहों को बड़ा भारी अचम्भा होने लगा ।

सशैलसागरवनां नानाजनपदाकुलाम् ।
ग्रसेद्व्यूहः क्षितिं सर्वामिति भूतानि मेनिरे ॥३३॥

इस समय सारे प्राणी यही समझ रहे थे, कि यह व्यूह, शैल, सागर, वन तथा अनेक देशों से भरी हुई इस पृथिवी को अभी निगले जाता है ॥२३॥

बहुरथमनुजाश्वपत्तिनागं प्रतिभयनिःस्वनमद्भुतानुरूपम् ।
अहितहृदयभेदनं महद्वै शकटमवेक्ष्य कृतं ननन्द राजा ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कौरवव्यूहनिर्माणे
सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

अनेक रथ, मनुष्य, अश्व, पैदल, सैनिक और हाथियों से तथा भयङ्कर शब्दों से भरे हुए, अद्भुत आकार धारी, शत्रुओं के हृदय को भेदन करने वाले, इस शकटव्यूह को देखकर राजा दुर्योधन बड़ा ही प्रसन्न हुआ ॥२४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में द्रोणाचार्य के व्यूह निर्माण का सत्तासीवां अध्याय समाप्त हुआ



# अट्ठासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततो व्यूढेष्वनीकेषु समुत्क्रुष्टेषु मारिष ।
ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेषु नदत्सु च ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे आर्य ! जब इस प्रकार द्रोणाचार्य ने अपनी सेना का व्यूह बना लिया-तो उसमें स्थित हुए कुरुवीर गर्जना करने लगे। उन्होंने भेरी, मृदङ्ग आदि बाजे बजाना आरम्भ किया ॥१॥

अनीकानां च संह्रादे वादित्राणां च निःस्वने ।
प्रध्मापितेषु शङ्खेषु सन्नादे लोमहर्षणे ॥२॥

सेना के गर्जन, बाजों के निःस्वन और शङ्खों की ध्वनि से कुरुसेना में घोर लोमहर्षण कोलाहल उठ खड़ा हुआ ॥२॥

अभिहारयत्सु शनकैर्भरतेषु युयुत्सुषु ।
रौद्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते सव्यसाची व्यदृश्यत ॥३॥

भरतवंशोद्भव कुरुवीरों के धीरे धीरे आगे बढ़ने पर उस घोर मुहूर्त में सव्यसाची अर्जुन दिखाई पड़े ॥३॥

बलानां वायसानां च पुरस्तात्सव्यसाचिनः ।
बहुलानि सहस्राणि प्राक्रीडंस्तत्र भारत ॥४॥

हे भारत ! इस समय अर्जुन के आगे २ गीध, कौए आदि मांसाहारी जन्तु सहस्रों की संख्या में मांस की अभिलाषा से चल रहे थे ॥४॥

मृगाश्च घोरसन्नादाः शिवाश्चाऽशिवदर्शनाः।
दक्षिणेन प्रयातानामस्माकं प्राणदंस्तथा ॥५॥

हम लोगों की ओर भी वन के अनेक जन्तु घोर नाद करने लगे और भयङ्कर दर्शन वाली गीदड़ियां हमारी दांयी ओर जाकर शब्द करने लगी ॥५॥

सनिर्घाता ज्वलन्त्यश्च पेतुरुल्काः सहस्रशः।
चचाल च मही कृत्स्ना भये घोरे समुत्थिते ॥६॥

इसी समय कड़कते हुए चमकीले सहस्रों उल्कापात होने लगे तथा इस प्रकार घोर भय के उपस्थित होने पर सारी पृथिवी डगमगाने लगी ॥६॥

विष्वग्वाताः सनिर्घाता रूक्षाः शर्करकर्षिणः।
ववुरायाति कौन्तेये संग्रामे समुपस्थिते ॥७॥

हे राजन्! ज्योंही संग्राम भूमि में कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने पैर रखा, त्योंही सब ओर धूलि, मिट्टी बरसाती हुई भीषण शब्द के साथ रूखी वायु चलने लगी ॥७॥

नाकुलिश्च शतानीको धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
पाण्डवानामनीकानि प्राज्ञौ तौ व्यूहतुस्तदा ॥८॥

नकुल-पुत्र शतानीक और पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न इन दोनों रणविद्या कुशल वीरों ने पाण्डवों की सेना का व्यूह बनाया ॥८॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतेन च।
त्रिभिरश्वसहस्रैश्च पदातीनां शतैः शतैः ॥९॥

अध्यर्धमात्रे धनुषां सहस्रे तनयस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थित्वा दुर्मर्षणोऽब्रवीत् ॥१०॥

एक सहस्र रथ, एकसौ हाथी, तीन सहस्र घुड़सवार और दश हजार पैदल सैनिक लेकर आधे २ धनुष की दूरी पर सहस्रों धनुष परिमित भूमि घेर कर सारी सेना के आगे तुम्हारा पुत्र दुर्मर्षण खड़ा होकर कहने लगा ॥१०॥

अद्य गाण्डीवधन्वानं तपन्तं युद्धदुर्मदम् ।
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥११॥

हे कौरवो ! तुम चिन्ता न करो । मैं आज युद्धदुर्मद, भीषणता के साथ युद्ध करने वाले, गाण्डीवधारी अर्जुन को समुद्र को वेला की भांति रोक रखूंगा ॥११॥

अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनञ्जयममर्षणम् ।
विषक्तं मयि दुर्धर्षमश्मकूटमिवाऽश्मनि ॥१२॥

आज रण में देखोगे, कि अत्यन्त असह्य दुर्धर्ष अर्जुन मुझसे इस तरह टकरावेगा, जैसे एक पत्थर की दूसरे पत्थर से टक्कर होती है ॥१२॥

तिष्ठध्वं रथिनो यूयं संग्राममभिकांक्षिणः ।
युध्यामि संहतानेतान्यशो मानं च वर्धयन् ॥१३॥

हे रथियो ! तुम सब लोग यद्यपि युद्ध करना चाह रहे हो, परन्तु अभी ठहरे रहो । मैं अकेला ही अपने मान और यश की वृद्धि करता हुआ इन सारे इकट्ठे ही पाण्डव वीरों से युद्ध करूंगा ।

एवं ब्रुवन्महाराज महात्मा स महामतिः ।
महेष्वासैर्वृतो राजन्महेष्वासो व्यवस्थितः ॥१४॥

हे महाराज ! इस प्रकार महा बुद्धिमान् महाधनुर्धर, महात्मा दुर्मर्षण, अनेक बड़े २ धनुषधारियों को साथ लेकर युद्ध के लिए खड़ा हो गया ॥१४॥

ततोऽन्तक इव क्रुद्धः सवज्र इव वासवः ।
दण्डपाणिरिवाऽसह्यो मृत्युः कालेन चोदितः ॥१५॥
शूलपाणिरिवाऽक्षोभ्यो वरुणः पाशवानिव ।
युगान्ताग्निरिवाऽर्चिष्मान्प्रधक्ष्यन्वै पुनः प्रजाः ॥१६॥
क्रोधामर्षबलोद्धूतो निवातकवचान्तकः ।
जयो जेता स्थितः सत्ये पारयिष्यन्महाव्रतम् ॥१७॥

इसके अनन्तर काल की भांति कुपित और वज्रधारी इन्द्र की भांति भीषण तथा दण्डपाणि यम की भांति असह्य, काल से प्रेरित मृत्यु की भांति भयङ्कर, शूलपाणि शंकर और पाशधारी वरुण के तुल्य क्षोभ रहित तथा प्रलय कालीन ज्वालाधारी अग्नि की भांति सारी प्रजा को भस्म करता हुआ, क्रोध और आवेश से युक्त, निवातकवचों का नाशक, सर्वविजयी, अर्जुन, अपने महाव्रत के पूर्ण करने की कामना से आगे बढ़ा ॥१५-१७॥

आमुक्तकवचः खड्गी जाम्बूनदकिरीटभृत् ।
शुभ्रमाल्याम्बरधरः स्वङ्गदश्चारुकुण्डलः ॥१८॥

रथप्रवरमास्थाय नरो नारायणानुगः ।

विधुन्वन्गाण्डिवं संख्ये बभौ सूर्य इवोदितः ॥१६॥

अर्जुन ने कवच पहन रखा था और खड्ग (तलवार) धारण कर रखा था। इसके मस्तक पर सुवर्ण का मुकुट सुशोभित था। शुभ्र माला और वस्त्र पहने हुए, उत्तम २ बाहुभूषण और कुण्डल धारी, नारायणावतार श्रीकृष्ण को साथ लिए हुए एवं सर्वश्रेष्ठ रथ पर बैठ कर अपने गाण्डीव धनुष को कपांते हुए नरावतार अर्जुन, रण में प्रचण्ड सूर्य की भांति देदीप्यमान दिखाई देने लगे।

सोऽग्रानीकस्य महत इषुपाते धनञ्जयः ।

व्यवस्थाप्य रथं राजञ्शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥२०॥

अब अर्जुन सेना के उस अग्रभाग पर स्थित हुआ, जिसमें बाणों की झड़ी लगनी थी। हे राजन्! इस स्थान पर रथ को खड़ा करके प्रतापी अर्जुन ने अपना शङ्ख बजाया ॥२०॥

अथ कृष्णोऽप्यसम्भ्रान्तः पार्थेन सह मारिष ।

प्राध्मापयत्पाञ्चजन्यं शङ्खप्रवरमोजसा ॥२१॥

हे आर्य! अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण भी बड़ी सावधानी से आगे बढ़ रहे थे। उन्होंने भी अपनी शक्ति लगा कर बड़े वेग से अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया ॥२१॥

तयोः शङ्खप्रणादेन तव सैन्ये विशाम्पते ।

आसन्संहृष्टरोमाणः कम्पिता गतचेतसः ॥२२॥

हे विशाम्पते ! उन दोनों की शङ्खध्वनि से तुम्हारी सेना में वीरों के रोमाञ्च खड़े हो गए और वे हक्के-बक्के होकर कम्पित से होने लगे ॥२२॥

यथा त्रस्यन्ति भूतानि सर्वाण्यशनिनिःस्वनात् ।
तथा शङ्खप्रणादेन वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥२३॥

बिजली के टूट कर पड़ने पर जैसे सारे प्राणी कांप उठते हैं, उसी तरह अर्जुन और श्रीकृष्ण के शङ्ख के शब्द से कौरव सैनिक भयभीत हो उठे ॥२३॥

प्रसुस्रुवुः शकृन्मूत्रं वाहनानि च सर्वशः ।
एवं सवाहनं सर्वमाविग्नमभवद्बलम् ॥२४॥

हे राजन् ! इस समय भय से कुरुसेना के अश्व आदि वाहन मूत्र और विष्ठा करने लगे । इस प्रकार सारी सेना और सारे वाहन व्याकुल हो उठे ॥२४॥

सीदन्ति स्म नरा राजञ्शङ्खशब्देन मारिष ।
विसंज्ञाश्चाऽभवन्केचित्केचिद्राजन्वितत्रसुः ॥२५॥

हे राजन् ! इन दोनों के शङ्ख के शब्द से बहुत से सैनिक इतने पीड़ित हो गए, कि कोई तो मूर्च्छित और कोई अत्यन्त कातर हो उठे ॥२५॥

ततः कपिर्महानादं सह भूतैर्ध्वजालयैः ।
अकरोद्व्यादितास्यश्च भीषयंस्तव सैनिकान् ॥२६॥

अर्जुन की ध्वजा पर बैठे हुए अन्य अनेक दिव्य प्राणियों के साथ वह दिव्य कपि भी मुँह फाड़ कर तुम्हारे सैनिकों को भयभीत करता हुआ गर्जना करने लगा ॥२६॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चाऽऽनकैः सह ।
पुनरेवाऽभ्यहन्यन्त तव सैन्यप्रहर्षणाः ॥२७॥

इस समय अनेक शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग और आनक नामक बाजे बजने लगे। इसी प्रकार तुम्हारी सेना के भी वीर प्रहर्षित होकर अपने २ बाजे बजाने लगे ॥२७॥

नानावादित्रसंह्रादैः क्ष्वेडितास्फोटिताकुलैः ।
सिंहनादैः समुत्कृष्टैः समाधूतैर्महारथैः ॥२८॥
तस्मिंस्तु तुमुले शब्दे भीरूणां भयवर्धने ।
अतीव हृष्टो दाशार्हमब्रवीत्पाकशासनिः ॥२९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनरणप्रवेशेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

अनेक बाजों से उत्साहित, बाहु और जंघा आदि पर ताल की फटकार, सिंहनाद, गर्जना, महारथियों की उछल कूद आदि कार्यों से महान् कोलाहल के बढ़ जाने और कायरों के भयभीत हो जाने पर बड़ी प्रसन्नता के साथ इन्द्र-पुत्र अर्जुन, दशार्हवंशोद्भव श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहने लगा ॥२९॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में अर्जुन के रण-प्रवेश का अट्ठासीवां अध्याय समाप्त हुआ

# नवासीवां अध्याय

अर्जुन उवाच—

चोदयाऽश्वान्हृषीकेश यत्र दुर्मर्षणः स्थितः।

एतद्भित्वा गजानीकं प्रवेक्ष्याम्यरिवाहिनीम् ॥१॥

अर्जुन बोले—हे हृषीकेश! अब तुम प्रथम अपने अश्वों को दुर्मर्षण के निकट ले चलो। मैं इस गज सेना को चीर कर शत्रु सेना में घुस जाना चाहता हूं ॥१॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना।

अचोदयद्धयांस्तत्र यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! सव्यसाची अर्जुन के इतना कहते ही महाबाहु श्रीकृष्ण ने अपने अश्वों को उधर चलाया, जिधर दुर्मर्षण स्थित था ॥२॥

स सम्प्रहारस्तुमुलः सम्प्रवृत्तः सुदारुणः।

एकस्य च बहूनां च रथनागनरक्षयः ॥३॥

अब अर्जुन और दुर्मर्षण का घोर दारुण संग्राम होने लगा। एक ओर अकेला अर्जुन था और दूसरी ओर अनेक वीर थे। इस युद्ध में रथ, हाथी और वीरों का महान् विनाश हो रहा था ॥३॥

ततः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान्।

परानवाकिरत्पार्थः पर्वतानिव नीरदः ॥४॥

अर्जुन ने इस प्रकार बाणों की झड़ी लगा दी, जिस तरह मेघ वर्षा करने लगता है। इसने सारे वीरों को इस ढंग से बाणों से आच्छादित कर दिया-जैसे मेघ पर्वतों को ढक देते हैं ॥४॥

ते चापि रथिनः सर्वे त्वरिताः कृतहस्तवत् ।
अवाकिरन्बाणजालैस्तत्र कृष्णधनञ्जयौ ॥५॥

हे राजन्! तुम्हारे पक्ष के वीर भी बड़ी शीघ्रता करने वाले (फुर्तीले) और वेग से हाथ चलाने वाले थे। इन्होंने भी अपने बाणों के जाल से श्रीकृष्ण और अर्जुन को बुरी तरह आच्छादित कर दिया ॥५॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्वार्यमाणः परैर्युधि ।
शिरांसि रथिनां पार्थः कायेभ्योऽपाहरच्छरैः ॥६॥

जब युद्ध में शत्रुओं ने अर्जुन को घेर लिया-तो वह कुपित हो उठा। महाबाहु अर्जुन, क्रोधातुर होकर इस समय शत्रुओं के शिरों को शरीरों से पृथक् करने लगा ॥६॥

उद्भ्रान्तनयनैर्वक्त्रैः सन्दष्टौष्टपुटैः शुभैः ।
सकुण्डलशिरस्त्राणैर्वसुधा समकीर्यत ॥७॥

आंखें निकली हुई, ओठ चाबते हुए, कुण्डल और शिरस्त्राण से संयुक्त, मस्तकों से पृथिवी व्याप्त हो गई ॥७॥

पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
विनिकीर्णानि योधानां वदनानि चकाशिरे ॥८॥

अर्जुन ने सारी सेना को चारों ओर से कमल वन के समान आन्दोलित कर डाला। इस समय रणभूमि में बिखरे हुए योद्धाओं के शुभ्र तन ओर चमक रहे थे ॥ ॥

तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसङ्घाः सविद्युतः ॥९॥

योद्धाओं के तपे हुए सुवर्ण निर्मित कवच रक्त में भीगे हुए थे, जो बिजली सहित मेघ समूह से दिखाई दे रहे थे ॥९॥

शिरसां पततां राजञ्शब्दोऽभूद्वसुधातले ।
कालेन परिपक्वानां तालानां पततामिव ॥१०॥

हे राजन ! ज्यों २ वीरों के मस्तक कट २ कर पृथिवी में गिरते थे, त्यों २ ऐसा शब्द होता था, मानो पृथिवी पर पके २ लाल वृक्ष के फल गिर रहे हों ॥१०॥

ततः कबन्धं किञ्चित्तु धनुरालम्ब्य तिष्ठति ।
किञ्चित्खड्गं विनिष्कृष्य भुजेनोद्यम्य तिष्ठति ॥११॥

इस समय कोई कबन्ध ( मस्तक हीन वीर ) कुछ धनुष का सहारा पाकर ही खड़ा था और कोई अपनी भुजा से तलवार खैंच कर सन्मुख स्थित था ॥११॥

पतितानि न जानन्ति शिरांसि पुरुषर्षभाः ।
अमृष्यमाणाः संग्रामे कौन्तेयं जयगृद्धिनः ॥१२॥

कुरुपक्षीय पुरुषप्रवीर, विजय की अभिलाषा में इतने डूब रहे थे, कि वे अर्जुन के वेग को रोकने में संलग्न हुए अपने कटे हुए मस्तकों का भी ज्ञान नहीं रखते थे ॥१२॥

हयानामुत्तमाङ्गैश्च हस्तिहस्तैश्च मेदिनी ।
बाहुभिश्च शिरोभिश्च वीराणां समकीर्यत ॥१३॥

अश्वों के मस्तक, हाथियों के सूंड और वीरों की भुजाओं से सारी पृथिवी व्याप्त हो गई ॥१३॥

अयं पार्थः कुतः पार्थ एष पार्थ इति प्रभो ।
तव सैन्येषु योधानां पार्थभूतमिवाऽभवत् ॥१४॥

हे प्रभो! यह अर्जुन आया, वह निकल गया, कहां अर्जुन पहुंच गया, इस प्रकार तुम्हारी सेना के सारे योद्धाओं को सम्पूर्ण युद्ध अर्जुनमय दिखाई दे रहा था ॥१४॥

अन्योऽन्यमपि चाऽऽजघ्नुरात्मानमपि चाऽपरे ।
पार्थभूतममन्यन्त जगत्कालेन मोहिताः ॥१५॥

ये काल से प्रेरित हुए वीर, अपने ही वीरों को शीघ्रता में मार बैठते थे। इस समय तो इनको जिधर देखो-उधर ही सारा जगत् अर्जुनमय दिखाई दे रहा था ॥१५॥

निष्टनन्तः सरुधिरा विसंज्ञा गाढवेदनाः ।
शयाना बहवो वीराः कीर्त्तयन्तः स्वबान्धवान् ॥१६॥

सभिन्दिपालाः सप्रासाः सशक्त्यृष्टिपरश्वधाः ।
सनिर्व्यूहाः सनिस्त्रिंशाः सशरासनतोमराः ॥१७॥

अनेक वीरों के शरीरों में घाव हो रहे थे, जिनसे रुधिर की धारा बह रही थी और उनमें बहुत ही वेदना थी। कुछ अचेत और कुछ चेत में पड़े हुए वीर अपने बान्धवों को चिल्ला रहे थे ॥१६॥

सधारणवर्माभरणाः सगदाः साङ्गदा रणे।
महाभुजगसङ्काशा बाहवः परिघोपमाः ॥१८॥

भिन्दिपाल, खड्ग, धनुष तोमर, बाण, कवच, आभरण, गदा, अङ्गद आदि शस्त्र और आभूषणों से सुशोभित वीरों की परिघ के समान भुजाएं रण में सर्प की भांति तड़फड़ा रही थीं ॥१८॥

उद्वेष्टन्ति विचेष्टन्ति सञ्चेष्टन्ति च सर्वशः।
वेगं कुर्वन्ति संरब्धा निकृत्ताः परमेषुभिः ॥१९॥

बड़े २ बाणों से काटे हुए, आवेशातुर वीर, रणभूमि में उछलते कूदते और तड़फड़ाते हुए अनेक प्रकार की चेष्टा कर रहे थे। इस प्रकार वे अपना वेग सब प्रकार से दिखा रहे थे ॥१९॥

यो यः स्म समरे पार्थं प्रतिसञ्चरते नरः।
तस्य तस्याऽन्तको बाणः शरीरमुपसर्पति ॥२०॥

अब जो २ वीर मनुष्य, अर्जुन के सन्मुख रण में पहुंच जाता था, उसी का अन्त करने वाला बाण, उसके शरीर में प्रवेश कर जाता था ॥२०॥

नृत्यतो रथमार्गेषु धनुर्व्यायच्छतस्तथा।
न कश्चित्तत्र पार्थस्य ददर्शाऽन्तरमण्वपि ॥२१॥

रथ के मार्ग में नाच सा करते हुए और धनुष चलाते हुए अर्जुन का किसी भी वीर से कुछ भी अन्तर (फासला) नहीं रह जाता था ॥२१॥

यत्तस्य घटमानस्य चिप्रं विचिपतः शरान् ।
लाघवात्पाण्डुपुत्रस्य व्यस्मयन्त परे जनाः ॥२२॥

बड़ी सावधानी से शीघ्रता के साथ बाण चलाते हुए पाण्डु-पुत्र अर्जुन की शीघ्रता के कारण शत्रु-वीर बड़ा ही आश्चर्य कर रहे थे ॥२२॥

हस्तिनं हस्तियन्तारमश्वमाश्विकमेव च ।
अभिनत्फाल्गुनो बाणै रथिनं च ससारथिम् ॥२३॥

हाथी, हाथी के सवार, अश्व, अश्वारोही, रथी और सारथि सबको अर्जुन ने अपने बाणों से बींध डाला २३॥

आवर्त्तमानमावृत्तं युध्यमानं च पाण्डवः ।
प्रमुखे तिष्ठमानं च न किञ्चिन्न निहन्ति सः ॥२४॥

सन्मुख आते हुए या आकर सामने डटे हुए और युद्ध करते हुए कोई ऐसा वीर नहीं बचा, जिसको अर्जुन ने मार कर नहीं गिरा दिया हो ॥२४॥

यथोदयन्वै गगने सूर्यो हन्ति महत्तमः ।
तथाऽर्जुनो गजानीकमवधीत्कङ्कपत्रिभिः ॥२५॥

आकाश में उदय होता हुआ सूर्य जैसे अन्धकार का नाश कर देता है। ऐसे ही अर्जुन अपने कङ्क पत्रधारी बाणोंसे गज-सेना का विध्वंस उड़ा रहा था ॥२५॥

हस्तिभिः पतितैर्भिन्नैस्तव सैन्यमदृश्यत ।
अन्तकाले यथा भूमिर्व्यवकीर्णा महीधरैः ॥२६॥

अर्जुन के बाणों से आहत होकर हाथी रणभूमि में पड़े, इस तरह दिखाई दे रहे थे, जैसे प्रलयकाल में पर्वतों से भूमि आच्छादित हो जाती है ॥२६॥

यथा मध्यन्दिने सूर्यो दुष्प्रेक्ष्यः प्राणिभिः सदा ।

तथा धनञ्जयः क्रुद्धो दुष्प्रेक्ष्यो युधि शत्रुभिः ॥२७॥

मध्याह्न काल में जैसे प्राणिसमूह से प्रचण्ड सूर्य देखा नहीं जा सकता है, उसी तरह रणभूमि में क्रोधाविष्ट अर्जुन अपने शत्रुओं द्वारा दुष्प्रेक्षणीय हो रहा था ॥२७॥

तत्तथा तव पुत्रस्य सैन्यं युधि परन्तप ।

प्रभग्नं द्रुतमाविग्नमतीव शरपीडितम् ॥२८॥

हे परन्तप ! यह इतना घोर संग्राम हुआ, कि अर्जुन के बाणों से पीड़ित, तुम्हारे पुत्र दुर्मर्षण की सेना शीघ्र ही व्याकुल हो उठी और भाग निकली ॥२८॥

मारुतेनेव महता मेघानीकं व्यदीर्यत ।

प्रकाल्यमानं तत्सैन्यं नाऽशकत्प्रतिवीक्षितुम् ॥२६॥

तीव्र वायु से जिस तरह मेघसमूह फट जाता है, उसी तरह अर्जुन के ललकारने पर तुम्हारी सेना उसकी ओर दृष्टि उठा कर देख भी नहीं सकी ॥२६॥

प्रतोदैश्चापकोटीभिर्हुङ्कारैः साधुवाहितैः ।

कशापार्ष्ण्यभिघातैश्च वाग्भिरुग्राभिरेव च ॥४०॥

चोदयन्तो हयांस्तूर्णं पलायन्ते स्म तावकाः ।
सादिनो रथिनश्चैव पत्तयश्चाऽर्जुनार्दिताः ॥३१॥

प्रतोद, (सांटे) चापकोटि, हुंकार, उत्तम रीति से हांकने, कशा (चाबुक) एड़ी की तरेर तथा तीव्र वाणी द्वारा अपने घोड़ों को भगाते हुए तुम्हारे वीर भाग निकले। अर्जुन से पीड़ित किये हुए तुम्हारे घुड़सवार, रथी और पैदलों की भी यही दशा हो रही थी ॥

पाष्ण्यंगुष्ठांकुशैर्नागं चोदयन्तस्तथा परे ।
शरैः सम्मोहिताश्चाऽन्ये तमेवाऽभिमुखा ययुः ॥३२॥
तव योधा हतोत्साहा विभ्रान्तमनसस्तदा ॥३३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनयुद्धे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

एड़ी, अंगुष्ठ, अंकुश आदि साधनों से अपने २ हाथियों को प्रेरित करते हुए और बाणोंसे मोहित हुए बहुत से गजारोही, अर्जुन की ओर ही भागे। इस समय तुम्हारे योद्धा बड़े हतोत्साह और विक्षिप्त से हो रहे थे ॥३२-३३॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में अर्जुन के युद्ध का नवासीवां अध्याय समाप्त हुआ।

---

# नव्वेवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

तस्मिन्प्रभग्ने सैन्याग्रे वध्यमाने किरीटिना ।
के नु तत्र रणे वीराः प्रत्युदीयुर्धनञ्जयम् ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! अर्जुन के आक्रमण से जब कौरव सेना का अग्रभाग छिन्न-भिन्न हो गया तो उस समय कौन वीर थे, जो अर्जुन के सन्मुख आए ॥१॥

आहोस्विच्छकटव्यूहं प्रविष्टा मोघनिश्चयाः ।
द्रोणमाश्रित्य तिष्ठन्ति प्राकारमकुतोभयम् ॥२॥

इस समय बहुत से वीरों के तो निश्चय ही विचार निष्फल हो गए। वे दुर्ग की भांत्ति की तरह द्रोणाचार्य का आश्रय लेने को शकट व्यूह में घुस गए ॥२॥

सञ्जय उवाच—

तथाऽर्जुनेन सम्भग्ने तस्मिंस्तव बलेऽनघ ।
हतवीरे हतोत्साहे पलायनकृतक्षणे ॥३॥
पाकशासनिनाऽभीक्ष्णं वध्यमाने शरोत्तमैः ।
न तत्र कश्चित्संग्रामे शशाकाऽर्जुनमीक्षितुम् ॥४॥

सञ्जय ने कहा—हे अनघ ! अब इन्द्र-पुत्र अर्जुन द्वारा तुम्हारी सेना के अग्रभाग को तोड़-फोड़ देने, सैंकड़ों वीरों के मार देने, उत्साहहीन कर देने, भगा देने तथा लगातार

तीखे बाणों से आहत कर देने पर भी कोई भी कौरव वीर रण में अर्जुन की ओर देखने तक को समर्थ नहीं हुआ ।।३-४।।

ततस्तव सुतो राजन्दृष्ट्वा सैन्यं तथा गतम् ।
दुःशासनो भृशं क्रुद्धो युद्धायाऽर्जुनमभ्यगात् ।।५।।

हे राजन् ! इस प्रकार जब तुम्हारी सेना की दशा तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने देखी-तो वह कुपित हुआ और अर्जुन से युद्ध करने को आगे बढ़ा ।।५।।

स काञ्चनविचित्रेण कवचेन समावृतः ।
जाम्बूनदशिरस्त्राणः शूरस्तीव्रपराक्रमः ।।६।।

दुःशासन ने सुवर्ण का विचित्र कवच पहन रखा था । उसके मस्तक पर सुवर्ण का ही शिरस्त्राण ( शिर का टोप ) था । वह बड़ा ही तीव्र पराक्रमी था ।।६।।

नागानीकेन महता ग्रसन्निव महीमिमाम् ।
दुःशासनो महाराज सव्यसाचिनमावृणोत् ।।७।।

हे महाराज ! इसके साथ बड़े भारी हाथियों की सेना थी, जिससे प्रतीत होता था, कि यह सारी पृथिवी को निगल जावेगा । इसने आगे बढ़कर अर्जुन को जा घेरा ।।७।।

ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ।
ज्याक्षेपनिनदैश्चैव विरावेण च दन्तिनाम् ।।८।।
भूर्दिशश्चाऽन्तरिक्षं च शब्देनाऽसीत्समावृतम् ।
स मुहूर्तं प्रतिभयो दारुणः समपद्यत ।।९।।

इस समय हाथियों के घण्टाओं का नाद, शङ्खों की ध्वनि, धनुष के चलाने से प्रत्यञ्चा की टङ्कार तथा हाथियों की चिंघाड़ से पृथिवी और आकाश में कोलाहल भर गया। यह समय थोड़ी देर के लिए बड़ा ही भयानक और दारुण हो गया॥६॥

तान्दृष्ट्वा पततस्तूर्णमंकुशैरभिचोदितान्।
व्यालम्बहस्तान्संरब्धान्सपक्षानिव पर्वतान्॥१०॥
सिंहनादेन महता नरसिंहो धनञ्जयः।
गजानीकममित्राणामभीतो व्यधमच्छरैः॥११॥

इसी प्रकार बड़े वेग से अंकुशों की प्रेरणासे आगे बढ़ाये हुए, सूंड को आगे लम्बी करके उठाते हुए, आवेश में भरे हुए पक्षधारी पर्वतों की भांति दुःशासन की सेना के गजों को आगे की ओर बढ़ता देखकर बड़े भारी सिंहनादसे नरसिंह अर्जुन, शत्रुओं की उस गज सेना को अपने तीक्ष्ण बाणोंसे निर्भीकताके साथ छेदने लगा।

महोर्मिणमिवोद्धूतं श्वसनेन महार्णवम्।
किरीटी तद्गजानीकं प्रविशन्मकरो यथा॥१२॥

वायु ने जैसे बड़ी २ तरङ्गों वाले समुद्र को उछाल दिया हो-इसी प्रकार उस गजसेना को आलोडित करता हुआ, समुद्र में मकर की भांति अर्जुन इसमें घुस गया॥१२॥

काष्ठातीत इवाऽऽदित्यः प्रतपन्स युगक्षये।
ददृशे दिक्षु सर्वासु पार्थः परपुरञ्जयः॥१३॥

शत्रुसमूहतापी अर्जुन, प्रलयकालीन, दिशाओं के क्रम से गमन को छोड़कर नीचे उतरे हुए सूर्य की भांति शत्रुओं को संतापित करता हुआ रणभूमि में सब ओर दिखाई देने लगा ॥१३॥

खुरशब्देन चाऽश्वानां नेमिघोषेण तेन च ।
तेन चोत्क्रुष्टशब्देन ज्यानिनादेन तेन च ॥१४॥

नानावादित्रशब्देन पाञ्चजन्यस्वनेन च ।
देवदत्तस्य घोषेण गाण्डीवनिनदेन च ॥१५॥
मन्दवेगा नरा नागा बभूवुस्ते विचेतसः ।
शरैराशीविषस्पर्शैर्निर्भिन्नाः सव्यसाचिना ॥१६॥

अर्जुन के अश्वों के खुर की टप-टपाहट, रथ की आहट, धनुष की टङ्कार, वीरों की गर्जना, अनेक बाजों का घोर रव, श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य शंख और अर्जुन के देवदत्त की शंख ध्वनि गाण्डीव धनुष के घोष से कुरुसेना के वीरों के वेग कम पड़ गए और वे अचेत से हो गए। अर्जुन ने विषैले सर्पों के तुल्य विष में बुझे हुए बाणों से इन सब को क्षत-विक्षत कर दिया ॥१४-१६॥

ते गजा विशिखैस्तीक्ष्णैर्युधि गाण्डीवचोदितैः ।
अनेकशतसाहस्रैः सर्वाङ्गेषु समर्पिताः ॥१७॥

गाण्डीव धनुष से निकले हुए तीक्ष्ण लाखों बाणोंसे दुःशासनकी गज सेना बहुत ही आहत हो गई ॥१७॥

आरावं परमं कृत्वा वध्यमानाः किरीटिना ।
निपेतुरनिशं भूमौ छिन्नपक्षा इवाऽद्रयः ॥१८॥

अर्जुन के बाणों द्वारा क्षत-विक्षत किये हुए कुरुसेना के हाथी, बड़े जोर से चिंघाड़ मार कर कटी पांखों वाले पर्वतों की भांति भूमि पर गिरने लगे ॥१८॥

अपरे दन्तवेष्टेषु कुम्भेषु च कटेषु च ।
शरैः समर्पिता नागाः क्रौञ्चवद्व्यनदन्मुहुः ॥१९॥

अर्जुन ने हाथियों के ओष्ठ, मस्तक और कपोलों में अर्जुन के बाण गाड़ गए, जिनसे वे हंस की तरह कूकाने लगे ॥१८॥

गजस्कन्धगतानां च पुरुषाणां किरीटिना ।
छिद्यन्ते चोत्तमाङ्गानि भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥२०॥

अर्जुन ने अपने नतपर्वधारी बाणों से हाथियों के कन्धों पर बैठे हुए पुरुषों के मस्तक काट २ कर भूमि पर बिछा दिए ॥२०॥

सकुण्डलानां पततां शिरसां धरणीतले ।
पद्मानामिव सङ्घातैः पार्थश्चक्रे निवेदनम् ॥२१॥

कुण्डलों से सुशोभित, पृथिवी पर कमलों के समूह की भांति गिरते हुए वीरों के मस्तकों से अर्जुनने रणभूमि को भर दिया; मानों कमलों से पृथिवी की पूजा की हो ॥२१॥

यन्त्रबद्धा विकवचा व्रणार्ता रुधिरोक्षिताः ।
भ्रमत्सु युधि नागेषु मनुष्या विललम्बिरे ॥२२॥

बाण या गोली फैंकने के यन्त्रों से युक्त, कटे हुए कवच वाले, क्षतों से भरे और रक्त से भीगे हुए वीर मनुष्य, चक्कर खाते हुए हाथियों से लटक २ कर कूदने लगे ॥२२॥

केचिदेकेन बाणेन सुयुक्तेन सुपत्रिणा ।
द्वौ त्रयश्च विनिर्भिन्ना निपेतुर्धरणीतले ॥२३॥

अच्छी तरह धनुष पर चढ़ा कर छोड़े हुए एक ही बाण से अर्जुन दो तीन हाथियों को बेंध कर गिराने लगा। इस प्रकार अर्जुन ने बहुत से हाथियों को भूमि में गिरा दिया ॥२३॥

अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
सारोहा न्यपतन्भूमौ द्रुमवन्त इवाऽचलाः ॥२४॥

बाणों से अच्छी तरह बिंधे हुए हाथी, अपने मुख से रुधिर का वमन करने लगे। वे अपने सवार के साथ इस प्रकार भूमि पर गिर पड़े, जैसे वृक्षों के साथ पर्वत गिर जाते हैं ॥२४॥

मौर्वीं ध्वजं धनुश्चैव युगमीषां तथैव च ।
रथिनां कुट्टयामास भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥२५॥

धनुष की डोरी, ध्वजा, धनुष, रथ का जुआ, ईषा (रथकाष्ठ) और बहुत से रथियों को अर्जुन ने अपने सन्नतपर्ववाले बाणों से बेंध डाला ॥२५॥

न सन्दधन्न चाऽऽकर्षन्न विमुञ्चन्न चोद्वहन् ।
मण्डलेनैव धनुषा नृत्यन्पार्थः स्म दृश्यते ॥२६॥

अर्जुन बाण चढ़ाता, धनुष खैंचता, बाण छोड़ता या फिर लेता हुआ कुछ भी दिखाई नहीं देता था। उसके तो धनुषका मण्डल सा बना हुआ था, जिसके मध्य में वह नाचता सा दिखाई दे रहा था ॥

अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
मुहूर्त्तान्न्यपतन्नन्ये वारणा वसुधातले ॥२७॥

बाणों से अत्यन्त बिंधे हुए हाथी रक्त का वमन करते हुए थोड़ी ही देर में दूसरी ओर पृथिवी पर गिरते दिखाई दिए ॥२७॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन्परमसंकुले ॥२८॥

हे महाराज ! इस महाघोर युद्ध में चारों ओर खड़े हुए अगणित कबन्ध दिखाई दे रहे थे ॥२८॥

सचापाः सांगुलित्राणाः सखड्गाः साङ्गदा रणे ।
अदृश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥२९॥

इसी तरह रणभूमि में धनुष, अंगुलीत्राण, खड्ग और अङ्गदों आदि अनेक सुवर्ण के आभूषणों से समन्वित वीरों की कटी हुई भुजाएँ दिखाई देती थी ॥२९॥

उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
चक्रैर्विमथितैरक्षैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥३०॥

चर्मचापधरैश्चैव व्यवकीर्णैस्ततस्ततः ।
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पतितैश्च महाध्वजैः ॥३१॥

निहतैर्वारणैरश्वैः क्षत्रियैश्च निपातितैः ।
अदृश्यत मही तत्र दारुणप्रतिदर्शना ॥३२॥

रथ की छतरी, चक्र, रथ में बैठने का स्थान, ईषा दण्ड, ऊंचे नीचे झुके हुए काष्ठ, टूटे फूटे अक्ष, टूटे हुए जुए, इधर उधर बिखरे

हुए ढाल, धनुष, बाण, भाला, हाथी, अश्व और गिरे हुए क्षत्रिय वीरों से व्याप्त हुई रणभूमि, भयानक दिखाई देने लगी ॥३२॥

एवं दुःशासनबलं वध्यमानं किरीटिना ।
सम्प्राद्रवन्महाराज व्यथितं सहनायकम् ॥३३॥

हे महाराज ! इस प्रकार मुकुटधारी अर्जुन द्वारा आहत हुई दुःशासन की बड़ी व्यथित गजसेना अपने दुःशासन नायक के साथ भाग निकली ॥३३॥

ततो दुःशासनस्त्रस्तः सहानीकः शरार्दितः ।
द्रोणं त्रातारमाकांक्षञ्शकटव्यूहमभ्ययात् ॥३४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुःशासनसैन्यपराभवे नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

इस प्रकार बाणों से क्षत-विक्षत हुआ दुःशासन, बड़ा घबड़ाया और वह अपनी रक्षा के निमित्त द्रोण की अभिलाषा करता हुआ शकट व्यूह में घुस गया ॥३४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में दुःशासन की सेना के पराजय का नव्वेवां अध्याय समाप्त हुआ



# इक्यानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

दुःशासनबलं हत्वा सव्यसाची महारथः ।
सिन्धुराजं परीप्सन्वै द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! महारथी अर्जुन, दुःशासन की सेना को मार पीट कर राजा जयद्रथ की खोज में आगे बढ़कर द्रोणाचार्य की सेना को तितर बितर करने लगा ॥१॥

स तु द्रोणं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् ।
कृताञ्जलिरिदं वाक्यं कृष्णस्याऽनुमतेऽब्रवीत् ॥२॥

आचार्य द्रोण अपने शकट व्यूह के मुख पर स्थित थे। उनको देखकर अर्जुन, श्रीकृष्ण के संकेत से हाथ जोड़कर द्रोणाचार्य से कहने लगे ॥२॥

शिवेन ध्याहि मां ब्रह्मन्स्वस्ति चैव वदस्व मे ।
भवत्प्रसादादिच्छामि प्रवेष्टुं दुर्भिदां चमूम् ॥३॥

हे ब्रह्मन! आप मुझे कल्याण का आशीर्वाद दो और मेरी कल्याण कामना करो। मैं आपके आशीर्वाद से इस दुर्भेद्य शकटव्यूह में घुस जाना चाहता हूँ ॥३॥

भवान्पितृसमो मह्यं धर्मराजसमोऽपि च ।
तथा कृष्णसमश्चैव सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥४॥

आप मेरे पिता और ज्येष्ठ भ्राता धर्मराज और श्रीकृष्ण के तुल्य पूज्य हैं; यह मैं सत्य कह रहा हूं, इसमें कोई बनावटी बात नहीं है

अश्वत्थामा यथा तात रक्षणीयस्त्वयाऽनघ ।
तथाऽहमपि ते रक्ष्यः सदैव द्विजसत्तम ॥५॥
तव प्रसादादिच्छेयं सिन्धुराजानमाहवे ।
निहन्तुं द्विपदां श्रेष्ठ प्रतिज्ञां रक्ष मे प्रभो ॥६॥

हे अनघ ! तात ! जैसे तुम अश्वत्थामा की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हो-हे द्विजसत्तम ! उसी तरह मैं भी आपकी रक्षा के योग्य ही हूं। मैं तो आपके अनुग्रह या आशीर्वाद से ही रण में सिन्धुराज जयद्रथ को मार गिराना चाहता हूं। हे नरश्रेष्ठ ! आप कृपा करके मुझे अशीष दें, कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दिखाऊं ॥६॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्तस्तदाऽऽचार्यः प्रत्युवाच स्मयन्निव ।
मामजित्वा न बीभत्सो शक्यो जेतुं जयद्रथः ॥७॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब अर्जुन ने इतना कहा-तो आचार्य द्रोण कुछ कुछ मुस्कुराए और बोले—हे अर्जुन ! मुझे जीते बिना तुम जयद्रथ को नहीं जीत सकते हो ॥७॥

एतावदुक्त्वा तं द्रोणः शरव्रातैरवाकिरत् ।
सरथाश्वध्वजं तीक्ष्णैः प्रहसन्वै ससारथिम् ॥८॥

बस ! इतना कह कर द्रोणाचार्य ने अर्जुन को बाण समूह से पाटना आरम्भ किया। द्रोण ने हंसते २ अपने तीक्ष्ण बाणों से

अर्जुन के रथ, अश्व, ध्वजा और सारथि सबको बाणों से बींध दिया ॥८॥

ततोऽर्जुनः शरव्रातान्द्रोणस्याऽऽवार्य सायकैः ।
द्रोणमभ्यद्रवद्राजन्घोररूपैर्महत्तरैः ॥९॥

अर्जुन ने भी अपने बाणसमूह से द्रोणाचार्य के बाणसमूह को रोक कर अपने घोररूपधारी बड़े २ बाणों से द्रोणाचार्य को आहत करना आरम्भ किया ॥९॥

विव्याध च रणे द्रोणमनुमान्य विशाम्पते ।
क्षत्रधर्मं समास्थाय नवभिः सायकैः पुनः ॥१०॥

हे विशाम्पते ! इस प्रकार पूज्य भाव प्रदर्शन करने के अनन्तर अर्जुन ने क्षत्रधर्म के अनुसार नौ बाण लेकर द्रोणाचार्य पर प्रहार किया ॥१०॥

तस्येषूनिषुभिश्छित्वा द्रोणो विव्याध तावुभौ ।
विषाग्निज्वलितप्रख्यैरिषुभिः कृष्णपाण्डवौ ॥११॥

द्रोणाचार्य ने भी अर्जुन के बाणों को अपने बाणों से रोककर विष और अग्नि के तुल्य तीखे बाणों से श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों को बींध दिया ॥११॥

इयेष पाण्डवस्तस्य बाणैश्छेत्तुं शरासनम् ।
तस्य चिन्तयतस्त्वेवं फाल्गुनस्य महात्मनः ॥१२॥
द्रोणः शरैरसम्भ्रान्तो ज्यां चिच्छेदाऽऽशु वीर्यवान् ।

विव्याध च हयानस्य ध्वजं सारथिमेव च ॥१३॥
अर्जुनं च शरैर्वीरः स्मयमानोऽभ्यवाकिरत् ।

अर्जुन ने द्रोणाचार्य के धनुष को अपने बाणों से काट देना चाहा। महावीर अर्जुन ने यह विचार ही किया था, कि वीर्यवान् द्रोण ने बड़ी सावधानी से अर्जुन के धनुष की डोरी काट दी तथा इसके सारथि, ध्वजा और अश्वों को आहत कर दिया और उसने हंसते २ अर्जुन को भी बाणों से पाट दिया ॥१३॥

एतस्मिन्नन्तरे पार्थः सज्यं कृत्वा महद्धनुः ॥१४॥
विशेषयिष्यन्नाचार्यं सर्वास्त्रविदुषां वरः ।
मुमोच षट्शतान्बाणान्गृहीत्वैकमिव द्रुतम् ॥१५॥

इसी बीच में सर्व शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, अर्जुन ने अपना विशाल धनुष खैंच लिया और अपनी शिष्यता की विशेषता दिखाने के लिए छ:सौ बाण चढ़ाए। वे इतनी शीघ्रता में चढ़ाए, कि मानो एक ही बाण के चढ़ाने का समय लगा हो ॥१४-१५॥

पुनः सप्तशतानन्यान्सहस्रं चाऽनिवर्तिनः ।
चिक्षेपाऽयुतशश्चाऽन्यांस्तेऽघ्नन्द्रोणस्य तां चमूम् ॥१६॥

अर्जुन ने फिर शीघ्रता से सात सौ और फिर एक सहस्र बाण चढ़ाए और दश सहस्र तक बाण छोड़े, जिससे द्रोणाचार्य की सेना आहत हो गई ॥१६॥

तैः सम्यगस्तैर्बलिना कृतिना चित्रयोधिना ।
मनुष्यवाजिमातङ्गा विद्धाः पेतुर्गतासवः ॥१७॥

विचित्र प्रकार से युद्ध करने वाले बलवान् अर्जुन ने इस ढङ्ग से बाण फेंके, कि बहुत से वीर मनुष्य, अश्व और हाथी विंध २ कर, तथा प्राणविहीन होकर पृथ्वी में गिरने लगे ॥१७॥

निमूताश्वध्वजाः पेतुः सञ्छिन्नायुधजीविताः ।
रथिनो रथमुख्येभ्यः सहसा शरपीडिताः ॥१८॥

अर्जुन के बाण से पीड़ित हुए अनेक रथी योद्धा, अपने उत्तम २ रथों से एकदम गिरने लगे। इनके सारथि, अश्व और ध्वजा कट २ कर छिन्न-भिन्न और आयुधों के आघात से उनके जीवन समाप्त हो गए ॥१७-१८॥

चूर्णिताक्षिप्तदग्धानां वज्रानिलहुताशनैः ।
तुल्यरूपा गजाः पेतुर्गिर्यग्राम्बुदवेश्मनाम् ॥१९॥

वज्र से चूर्णित पर्वत, वायु से बखेरे हुए मेघसमूह और अग्नि से दग्ध घरों की भांति हाथी गिरने लगे ॥१९॥

पेतुरश्वसहस्राणि प्रहतान्यर्जुनेषुभिः ।
हंसा हिमवतः पृष्ठे वारिविप्रहता इव ॥२०॥

इसी तरह अर्जुन के बाणों से आहत सहस्रों अश्व, जल प्रवाह से बहाए हुए हिमालय पर हंसों की तरह गिरने लगे ॥२०॥

रथाश्वद्विपपत्त्योघाः सलिलौघा इवाऽद्भुताः ।
युगान्तादित्यरश्म्याभैः पाण्डवास्त्रशरैर्हताः ॥२१॥

रथ, अश्व, गज और पैदलों के समूह, जल के अद्भुत प्रवाह की भांति थे, जिनको प्रलयकालिक सूर्य की किरणों के तुल्य अर्जुन के बाणों ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ॥२१॥

तं पाण्डवादित्यशरांशुजालं कुरुप्रवीरान्युधि निष्टपन्तम् ।
स द्रोणमेघः शरवृष्टिवेगैः प्राच्छादयन्मेघ इवाऽर्करश्मीन् ॥

अर्जुन रूपी सूर्य के बाण रूपी किरणसमूह जो कौरवों की सेना को रण में सन्तप्त कर रहे थे, द्रोण रूपी मेघ ने अपनी बाणरूपी वर्षा के द्वारा इस तरह ढक दिया जैसे मेघ, सूर्य को ढक देता है ॥२२॥

अथाऽत्यर्थं विसृष्टेन द्विषतामसुभोजिना ।
आजघ्ने वक्षसि द्रोणो नाराचेन धनञ्जयम् ॥२३॥

शत्रुओं के प्राण के भोजी, बड़े वेग से छोड़े हुए, बाण से द्रोणाचार्य ने अर्जुन की छाती में घाव कर दिया ॥२३॥

सविह्वलितसर्वाङ्गः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ।
धैर्यमालम्ब्य बीभत्सुर्द्रोणं विव्याध पत्रिभिः ॥२४॥

उसके सारे अङ्ग विकल हो गए-जैसे पृथिवी के कांपने पर पर्वत कांप उठता है। अर्जुन ने भी धैर्य धारण करके अपने बाणों से द्रोणाचार्य को क्षत-विक्षत कर दिया ॥२४॥

द्रोणस्तु पञ्चभिर्बाणैर्वासुदेवमताडयत् ।
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या ध्वजं चाऽस्य त्रिभिः शरैः ॥२५॥

द्रोण ने पांच बाण तो वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण के मारे और अर्जुन पर तेहत्तर बाण छोड़े। तीन बाणों से उसने उसकी ध्वजा काट गिराई ॥२५॥

विशेषयिष्यञ्छिष्यं च द्रोणो राजन्पराक्रमी।
अदृश्यमर्जुनं चक्रे निमेषाच्छरवृष्टिभिः ॥२६॥

ऐ राजन्! पराक्रमी द्रोणाचार्य भी अपनी गुरुता की विशेषता दिखाता हुआ अर्जुन पर बाण छोड़ने लगा। इसने क्षण भर में अपनी बाण वर्षा से अर्जुन को अदृश्य कर दिया ॥२६॥

प्रसक्तान्पततोऽद्राक्ष्म भारद्वाजस्य सायकान्।
मण्डलीकृतमेवाऽस्य धनुश्चाऽदृश्यताऽद्भुतम् ॥२७॥

मैंने भरद्वाजवंशोद्भव द्रोणाचार्य के बाणों को गिरते देखा है। इसके धनुष का मैंने मण्डल देखा था, जो बड़ा ही अद्भुत था।

तेऽभ्ययुः समरे राजन्वासुदेवधनञ्जयौ।
द्रोणसृष्टाः सुबहवः कङ्कपत्रपरिच्छदाः ॥२८॥

हे राजन्! वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण और धनञ्जय अर्जुन पर द्रोणाचार्य के छोड़े हुए, बहुत से कङ्कपत्र से समन्वित बाण चलने लगे ॥२८॥

तद् दृष्ट्वा तादृशं युद्धं द्रोणपाण्डवयोस्तदा।
वासुदेवो महाबुद्धिः कार्यवत्तामचिन्तयत् ॥२९॥
ततोऽब्रवीद्वासुदेवो धनञ्जयमिदं वचः।
पार्थ पार्थ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ॥३०॥

द्रोणमुत्सृज्य गच्छामः कृत्यमेतन्महत्तरम् ।
पार्थश्चाप्यब्रवीत्कृष्णं यथेष्टमिति केशवम् ॥३१॥

द्रोणाचार्य और पाण्डुपुत्र अर्जुन के इस घोर युद्ध को देखकर महाबुद्धिमान् श्रीकृष्ण ने इस समय एक कर्तव्य निश्चय किया। उन्होंने अर्जुन से यह वचन कहा–हे महाबाहो ! अर्जुन अब समय व्यतीत करना व्यर्थ है। हम लोग द्रोणाचार्य को छोड़कर चल पड़े; यही कार्य इस समय गौरवशाली है। अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण से कहा—जैसी आपकी इच्छा ॥२९-३१॥

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा द्रोणं प्रायान्महाभुजम् ।
परिवृत्तश्च बीभत्सुरगच्छद्विसृजञ्शरान् ॥३२॥

अब अर्जुन, द्रोणाचार्य की मन से परिक्रमा करके चल दिया और लौटकर बाण छोड़ता हुआ आगे बढ़ा ॥३२॥

ततोऽब्रवीत्स्वयं द्रोणः क्वेदं पाण्डव गम्यते ।
ननु नाम रणे शत्रुमजित्वा न निवर्त्तसे ॥३३॥

अब आचार्य द्रोण ने कहा–हे अर्जुन ! कहां चल दिया ? शत्रु को बिना जीते युद्ध में बचकर आगे निकल जाना वीर पुरुषों का नियम नहीं है ॥३३॥

अर्जुन उवाच—

गुरुर्भवान्न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते ।
न चास्ति स पुमाँल्लोके यस्त्वां युधि पराजयेत् ॥३४॥

अर्जुन ने कहा—हे भगवन्! आप तो हमारे गुरु और पूज्य हैं, शत्रु नहीं हैं। मैं तो आपका पुत्र तुल्य शिष्य हूं। संसार में कौन ऐसा पराक्रमी वीर है, जो तुमको जीत सके ॥३४॥

सञ्जय उवाच—

एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्जयद्रथवधोत्सुकः।
त्वरायुक्तो महाबाहुस्त्वत्सैन्यं समुपाद्रवत् ॥३५॥

सञ्जय बोले-इतना कहकर महाबाहु अर्जुन, सिन्धुराज जयद्रथ के वध की इच्छा से बड़ी शीघ्रता के साथ आगे बढ़े और उसने आगे बढ़कर तुम्हारी सेना पर आक्रमण किया ॥३५॥

तं चक्ररक्षौ पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ।
अन्वयातां महात्मानौ विशन्तं तावकं बलम् ॥३६॥

अर्जुन के चक्ररक्षक, उत्तमौजा और युधामन्यु थे, वे महावीर भी अर्जुन के साथ तुम्हारी सेना में घुस गए ॥३६॥

ततो जयो महाराज कृतवर्मा च सात्वतः।
काम्बोजश्च श्रुतायुश्च धनञ्जयमवारयन् ॥३७॥

हे महाराज! अब अर्जुन को यदुवंशोत्पन्न कृतवर्मा, जय, कम्बोजाधिपति, श्रुतायु आदि महारथियों ने आगे बढ़कर रोका।

तेषां दशसहस्राणि रथानामनुयायिनाम्।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥३८॥
मावेल्लका ललित्थाश्च केकया मद्रकास्तथा।
नारायणाश्च गोपालाः काम्बोजानां च ये गणाः ॥

इनके साथ दश सहस्र रथी चल रहे थे । इनमें अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति, मावेल्लक, ललित्थ, केकय, मद्रक, नारायण, गोपाल और काम्बोज वीरों के दल थे ॥३८-३९॥

कर्णेन विजिताः पूर्वं संग्रामे शूरसम्मताः ।
भारद्वाजं पुरस्कृत्य हृष्टात्मानोऽर्जुनं प्रति ॥४०॥

इन लोगों को कर्ण ने जीत कर राजा दुर्योधन के अनुयायी बनाया था। ये युद्ध में बड़े शूरवीर थे, जो भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य को आगे करके उत्साह के साथ अर्जुन पर झपट रहे थे ॥३९-४०॥

पुत्रशोकाभिसन्तप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवाऽन्तकम् ।
त्यजन्तं तुमुले प्राणान्सन्नद्धं चित्रयोधिनम् ॥४१॥

अर्जुन भी पुत्र अभिमन्यु की मृत्यु से प्राणियों के अन्त करने वाले मृत्यु की भांति कुपित हो रहे थे । उस घोर युद्ध में उन्हें प्राणों की कुछ भी अपेक्षा (परवा) नहीं रही थी। ये बड़े उत्साह-सम्पन्न और विचित्र ढंग से युद्ध करने वाले थे ॥४१॥

गाहमानमनीकानि मातङ्गमिव यूथपम् ।
महेष्वासं पराक्रान्तं नरव्याघ्रमवारयन् ॥४२॥

यूथपति मदोन्मत्त हाथी की तरह सेना में घुसते हुए, महाधनुर्धर, पराक्रमी, नरश्रेष्ठ, अर्जुन को पूर्वोक्त वीरों ने रोका ॥४२॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
अन्योन्यं वै प्रार्थयतां योधानामर्जुनस्य च ॥४३॥

और इनमें घोर लोमहर्षण युद्ध चल पड़ा। ये महारथी और अर्जुन एक दूसरे को ललकार रहे थे ॥४३॥

जयद्रथवधप्रेप्सुमायान्तं पुरुषर्षभम् ।
न्यवारयन्त सहिताः क्रिया व्याधिमिवोत्थितम् ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणातिक्रमे एकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

पुरुषप्रवीर अर्जुन, राजा जयद्रथ के वध की आकांक्षा से आगे बढ़ रहे थे। किसी बढ़े हुए रोग को रोकने के लिए इकट्ठी की आयुर्वेदिक क्रियाओं के तुल्य इन महारथियों ने अर्जुन का सामना किया ॥४४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में द्रोण के सामने से बचकर अर्जुन के आगे निकल जाने का इक्यानवेवां अध्याय समाप्त हुआ



# बानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

सन्निरुद्धस्तु तैः पार्थो महाबलपराक्रमः ।
द्रुतं समनुयातश्च द्रोणेन रथिनां वरः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब इस प्रकार कौरववीरों ने महाबली और पराक्रमी अर्जुन को आगे बढ़ने से रोक दिया तो

इसी समय द्रोणाचार्य भी रथिश्रेष्ठ अर्जुन का पीछा करते हुए वहीं आ पहुंचे ॥१॥

किरन्निषुगणांस्तीक्ष्णान्स रश्मीनिव भास्करः ।
तापयामास तत्सैन्यं देहं व्याधिगणो यथा ॥२॥

इस समय किरणों को सूर्य के सदृश अर्जुन तीक्ष्ण बाण-समूह को फैंक रहे थे। व्याधि जैसे देह को व्याकुल कर देता है, इसी तरह अर्जुन ने कौरवों की सेना को सन्तप्त कर दिया ॥२॥

अश्वो विद्धो रथश्छिन्नः सारोहः पातितो गजः ।
छत्राणि चापविद्धानि रथाश्चक्रैर्विनाकृताः ॥३॥

किसी का अश्व बींधा गया, किसी का रथ छिन्न-भिन्न हो गया, कहीं सवार के साथ हाथी गिर गया, छत्र खण्ड २ हो गए और अनेक रथ चक्रहीन दिखाई देने लगे ॥३॥

विद्रुतानि च सैन्यानि शरार्त्तानि समन्ततः ।
इत्यासीत्तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥४॥

अर्जुन के बाणों से व्याकुल सेना इधर उधर भागने लगी। इस प्रकार इतना तीव्र युद्ध हुआ, कि कुछ भी दिखाई नहीं देता था।

तेषां संयच्छतां संख्ये परस्परमजिह्मगैः ।
अर्जुनो ध्वजिनीं राजन्नभीक्ष्णं समकम्पयत् ॥५॥

हे राजन्! अब कौरव वीर और अर्जुन के परस्पर तीक्ष्ण सीधे बाणों के फैंकने पर रण में भीषणता उत्पन्न हो गई।

अर्जुन ने अपने बाणों से कौरवसेना को बड़ा ही विकम्पित कर दिया ॥५॥

सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां सत्यसङ्गरः।
अभ्यद्रवद्रथश्रेष्ठं शोणाश्वं श्वेतवाहनः ॥६॥

सत्यपराक्रमी, श्वेत अश्वों के वाहनवाला अर्जुन तो अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करना चाहता था, इससे इसने लालवर्ण के अश्वों वाले द्रोणाचार्य पर भी आक्रमण किया ॥६॥

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या मर्मभिद्भिरजिह्मगैः।
अन्तेवासिनमाचार्यो महेष्वासं समार्पयत् ॥७॥

आचार्य द्रोण ने भी अपने महाधनुर्धर शिष्य, अर्जुन पर सीधे शरीर में प्रवेश कर जाने वाले मर्मभेदी पचीस बाण छोड़े।

तं तूर्णमिव बीभत्सुः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
अभ्यधावदिषूनस्यन्निषुवेगविघातकान् ॥८॥

समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन ने बड़े वेग से द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। द्रोणाचार्य के बाणों के वेग का नाशक अर्जुन अपने तीक्ष्ण बाण छोड़ता हुआ आगे ही बढ़ रहा था ॥८॥

तस्याऽऽशु क्षिप्तान्भल्लान्हि भल्लैः सन्नतपर्वभिः।
प्रत्यविध्यदमेयात्मा ब्रह्मास्त्रं समुदीरयन्।

इस प्रकार महापराक्रमी अर्जुन ने अपने झुकी पर्ववाले तीक्ष्ण बाणों से वेग के साथ छोड़े हुए द्रोणाचार्य के बाणों को काट डाला। ये बाण ब्रह्मास्त्र द्वारा फैंके जा रहे थे ॥९॥

तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्याऽऽचार्यकं युधि ।
यतमानो युवा नैनं प्रत्यविध्यदर्जुनः ॥१०॥

इस समय आचार्य द्रोण का रण में अद्भुत पराक्रम देखा गया; जो बड़ा प्रयत्न करने पर भी नवयुवक अर्जुन इस वृद्ध आचार्य को नहीं बींध सका ॥१०॥

क्षरन्निव महामेघो वारिधाराः सहस्रशः ।
द्रोणमेघः पार्थशैलं ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥११॥

महामेघ जिस प्रकार सहस्रों जलधारा छोड़ता है, उसी तरह मेघरूपी द्रोणाचार्य, अर्जुनरूपी पर्वत पर बाणों की झड़ी लगा रहे थे ॥११॥

अर्जुनः शरवर्षं तद् ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष ।
प्रतिजग्राह तेजस्वी बाणैर्बाणान्निशातयन् ॥१२॥

हे आर्य ! तेजस्वी अर्जुन ने अपने ब्रह्मास्त्र से इतने बाण छोड़े, कि जिनसे द्रोणाचार्य के सारे बाणों को काट गिराया ॥१२॥

द्रोणस्तु पञ्चविंशत्या श्वेतवाहनमार्दयत् ।
वासुदेवं च सप्तत्या बाह्वोरुरसि चाऽऽशुगैः ॥१३॥

द्रोणाचार्य ने शीघ्रगामी पचीस बाण अर्जुन और सत्तर बाण श्रीकृष्ण की बाहु और छाती में मारे ॥१३॥

पार्थस्तु प्रहसन्धीमानाचार्यं संशरौघिणम् ।
विसृजन्तं शितान्बाणानवारयत तं युधि ॥१४॥

बुद्धिमान अर्जुन ने हँसते हँसते शरवर्षा कर आचार्य को जो तीक्ष्ण बाणों को बड़ी शीघ्रता से चला रहे थे, रण में वहीं रोक दिया ॥१४॥

अथ तौ बध्यमानौ तु द्रोणेन रथसत्तमौ ।
आवर्जयेतां दुर्धर्षं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥१५॥

जब द्रोणाचार्य ने रथि-श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण और अर्जुन को बहुत ही क्षत-विक्षत कर दिया, तो ये दुर्धर्ष, प्रलयकाल की आग के सदृश द्रोणाचार्य को छोड़ कर चल दिए ॥१५॥

वर्जयन्निशितान्बाणान्द्रोणचापविनिःसृतान् ।
किरीटमाली कौन्तेयो भोजानीकं व्यशातयत् ॥१६॥

द्रोणाचार्य के धनुष से निकले हुए बाणों को काटते हुए किरीटधारी अर्जुन बचकर निकल गए। अब उन्होंने भोजराज की सेना का विध्वंस करना आरम्भ किया ॥१६॥

सोऽन्तरा कृतवर्माणं काम्बोजं च सुदक्षिणम् ।
अभ्ययाद्वर्जयन्द्रोणं मैनाकमिव पर्वतम् ॥१७॥

इसी बीच में अर्जुन कम्बोजाधिपति सुदक्षिण और कृतवर्मा के सन्मुख पहुंचे । इन्होंने मैनाक पर्वत के समान अचल द्रोणाचार्य से लड़ना छोड़ दिया ॥१७॥

ततो भोजो नरव्याघ्रो दुर्धर्षं कुरुसत्तमम् ।
अविध्यत्तूर्णमव्यग्रो दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥१८॥

इसके अनन्तर नरवीर भोजराज कृतवर्मा ने दुर्धर्ष कुरुराज के वंशोद्भव अर्जुन को अव्यग्रता के साथ दश बाण छोड़कर बड़े वेग से आहत कर दिया ॥१८॥

तमर्जुनः शतेनाऽऽजौ राजन्विव्याध पत्रिणाम् ।
पुनश्चाऽन्यैस्त्रिभिर्बाणैर्मोहयन्निव सात्वतम् ॥१६॥

हे राजन्! अब अर्जुन ने सौ बाण छोड़कर, उसे आहत कर दिया और इसी के साथ तीन बाण छोड़े, जिनसे वृष्णिवंशज कृतवर्मा बड़े ही मोहित हो गए ॥१६॥

भोजस्तु प्रहसन्पार्थं वासुदेवं च माधवम् ।
एकैकं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ॥२०॥

भोजराज कृतवर्मा ने भी हंसते २ वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण और अर्जुन पर पचीस २ बाण पृथक् २ छोड़े ॥२०॥

तस्याऽर्जुनो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं त्रिसप्तभिः ।
शरैरग्निशिखाकारैः क्रुद्धाशीविषसन्निभैः ॥२१॥

अर्जुन ने भी इक्कीस बाण छोड़कर इसका धनुष काट डाला और अग्नि की ज्वाला के तुल्य भीषण और क्रुद्ध सर्प के समान भयानक बाणों से इसको आहत किया ॥२१॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय कृतवर्मा महारथः ।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं विव्याधोरसि भारत ॥२२॥

महाभारत चित्र संख्या ८६



द्रोणाचार्य का दुर्योधन को कवच पहिनाना

महाभारत द्रोणपर्व अ० ६४।३६

महारथी कृतवर्मा ने अब दूसरा धनुष उठाया। हे भारत ! इसने उस धनुष से पांच तीखे बाण छोड़कर अर्जुन को क्षत विक्षत कर दिया ॥२२॥

पुनश्च निशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध पञ्चभिः ।
तं पार्थो नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥२३॥

फिर कृतवर्मा ने पांच बाण छोड़कर अर्जुन को आहत किया। अर्जुन ने भी नौ बाण कृतवर्मा की छाती में मारे ॥२३॥

दृष्ट्वा विषक्तं कौन्तेयं कृतवर्मरथं प्रति ।
चिन्तयामास वार्ष्णेयो न नः कालात्ययो भवेत् ॥२४॥

जब वृष्णिश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने देखा, कि अर्जुन तो कृतवर्मा के साथ ही अटक गया, तो उन्होंने सोचा, इस तरह समय गवाँ देना अच्छा नहीं है ॥२४॥

ततः कृष्णोऽब्रवीत्पार्थं कृतवर्मणि मा दयाम् ।
कुरु सम्बन्धकं हित्वा प्रमथ्यैनं विशातय ॥२५॥

अब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, तुम कृतवर्मा पर दया न करो। सम्बन्ध का ध्यान छोड़ो और इस पर आक्रमण करके इसको क्षत-विक्षत करो ॥२५॥

ततः स कृतवर्माणं मोहयित्वाऽर्जुनः शरैः ।
अभ्यगाज्जवनैरश्वैः काम्बोजानामनीकिनीम् ॥२६॥

अब अर्जुन ने इतने तीक्ष्ण बाण छोड़े, कि जिनसे कृतवर्मा मूर्च्छित हो गया। इसके अनन्तर अर्जुन अपने वेगशाली अश्वों से काम्बोजों की सेना में घुस गया ॥२६॥

अमर्षितस्तु हार्दिक्यः प्रविष्टे श्वेतवाहने।
विधुन्वन्सशरं चापं पाञ्चाल्याभ्यां समागतः ॥२७॥

जब श्वेतवाहन अर्जुन इसको आहत करके आगे घुस गए, तो इससे वह कृतवर्मा बड़े आवेश में भर गया। इसने अपने बाण सहित धनुष को कँपाते हुए अर्जुन के चक्ररक्षक उत्तमौजा और युधामन्यु नामक पाञ्चालों पर आक्रमण किया ॥२७॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यावर्जुनस्य पदानुगौ।
पर्यवारयदायान्तौ कृतवर्मा रथेषुभिः ॥२८॥

अर्जुन के चक्ररक्षक पाञ्चाल वीर, उत्तमौजा और युधामन्यु, अर्जुन के साथ २ आगे बढ़ रहे थे। इनको आगे बढ़ते देखकर कृतवर्मा ने अपने रथ पर से तीक्ष्ण बाण छोड़ कर इन पर आक्रमण किया ॥२८॥

तावविध्यत्ततो भोजः कृतवर्मा शितैः शरैः।
त्रिभिरेव युधामन्युं चतुर्भिश्चोत्तमौजसम् ॥२९॥

भोजराज कृतवर्मा ने तीक्ष्ण बाणों से उनको बींध दिया। तीन बाण तो युधामन्यु के और चार बाण उत्तमौजा के शरीर में प्रवेश कर गए ॥२९॥

तावप्येनं शिविधतुर्दशभिर्दशभिः शरैः ।
त्रिभिरेव युधामन्युरुत्तमौजास्त्रिभिस्तथा ॥३०॥
सञ्चिच्छिदतुरप्यस्य ध्वजं कार्मुकमेव च ।

इन दोनों वीरों ने भी कृतवर्मा पर दश २ बाण छोड़े और फिर युधामन्यु ने तीन और उत्तमौजा ने भी तीन तीखे बाण चलाए। इन्होंने इन बाणों से कृतवर्मा का धनुष और ध्वजा काट डाली ।३०

अथाऽन्यद्धनुरादाय हार्दिक्यः क्रोधमूर्छितः ॥३१॥
कृत्वा विधनुषौ वीरौ शरवर्षैरवाकिरत् ।

हृदिक-पुत्र कृतवर्मा ने दूसरा धनुष उठाया। वह क्रोध में भरा हुआ था। इसने भी अपने बाणों की झड़ी लगाकर उन दोनों को धनुष विहीन कर दिया ॥३१॥

तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा भोजं विजघ्नतुः ॥३२॥
तेनाऽन्तरेण बीभत्सुर्विवेशाऽमित्रवाहिनीम् ।

इन दोनों ने फिर अन्य धनुष उठाए और भोजराज कृतवर्मा पर झपटे। इसी अन्तर में अर्जुन तो आगे बढ़कर शत्रुसेना में घुस गए ॥३२॥

न लेभाते तु तौ द्वारं वारितौ कृतवर्मणा ॥३३॥
धार्त्तराष्ट्रेष्वनीकेषु यतमानौ नरर्षभौ ।

कृतवर्मा ने इन दोनों वीर युधामन्यु और उत्तमौजा को सेना के मुख तक नहीं पहुंचने दिया। धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन की सेना में

घुसने का इन नर वीरों ने बड़ा ही प्रयत्न किया, परन्तु ये वहां पहुंचने में असमर्थ रहे ॥३३॥

अनीकान्यर्दयन्युद्धे त्वरितः श्वेतवाहनः ॥३४॥
नाऽवधीत्कृतवर्माणं प्राप्तमप्यारिसूदनः ।

श्वेत अश्व वाहनधारी अर्जुन रण में बड़े वेग से सेना को मारता हुआ आगे बढ़ा। इस अरिनाशक अर्जुन ने सामने आये हुए कृतवर्मा को किसी कारण से नहीं मारा ॥३४॥

तं दृष्ट्वा तु तथाऽऽयान्तं शूरो राजा श्रुतायुधः ॥३५॥
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धो विधुन्वानो महद्धनुः ।

जब अर्जुन को सेना में घुसा हुआ देखा, तो महावीर राजा श्रुतायु बड़े क्रोध से आगे बढ़ा। इसने अपने धनुष को कँपा कर अर्जुन पर आक्रमण किया ॥३५॥

स पार्थं त्रिभिरानर्च्छत्सप्तत्या च जनार्दनम् ॥३६॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन पार्थकेतुमताडयत् ।

इसने तीन बाण अर्जुन पर और सत्तर बाण श्रीकृष्ण पर छोड़े होंगे। क्षुर के समान तीक्ष्ण बाणों से इसने अर्जुन की ध्वजा को काट गिराया ॥३६॥

ततोऽर्जुनो नवत्या तु शराणां नतपर्वणाम् ॥३७॥
आजघान भृशं क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ।

राजा श्रुतायु ने अर्जुन पर नतपर्ववाले नब्बे बाण छोड़े। यह क्रोध में भर कर इस प्रकार आघात कर रहा था जैसे तोत्र नामक दण्ड से कोई गजों को आहत कर रहा हो ॥३७॥

स तं न ममृषे राजन्पाण्डवेयस्य विक्रमम् ॥३८॥
अथैनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समार्पयत् ।

हे राजन्! राजा श्रुतायु अर्जुन के वेग को नहीं सह सका। अर्जुन ने इसके ऊपर सतहत्तर बाण छोड़े होंगे ॥३८॥

तस्याऽर्जुनो धनुश्छित्वा शरावापं निकृत्य च ॥३९॥
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तभिर्नतपर्वभिः ।

क्रोधातुर अर्जुन ने इसके धनुष और कवच को काट कर इसकी छाती में नतपर्व वाले सात बाण मारे ॥३९॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय स राजा क्रोधमूर्छितः ॥४०॥
वासविं नवभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ।

राजा श्रुतायु क्रोध में भर रहा था, इसने दूसरा धनुष उठाया और उस धनुष से नौ बाण अर्जुन की छाती और भुजा में मारे।

ततोऽर्जुनः स्मयन्नेव श्रुतायुधमरिन्दमः ॥४१॥
शरैरनेकसाहस्रैः पीडयामास भारत ।

हे भारत! अरिमर्दन अर्जुन इसके प्रहारों पर मुस्कुरा रहे थे। अर्जुन ने कई सहस्र बाण छोड़कर इसको बड़ा ही आहत कर डाला ॥४१॥

अश्वांश्चास्यावधीत्तूर्णं सारथिं च महारथः ॥४२॥
विव्याध चैनं सप्तत्या नाराचानां महाबलः ।

महारथी, महाबली अर्जुन ने सत्तर बाण चलाकर बड़े वेग से इसके अश्वों और सारथि को मार गिराया और इसको भी बहुत क्षत-विक्षत कर डाला ॥४२॥

हताश्वं रथमुत्सृज्य स तु राजा श्रुतायुधः ॥४३॥
अभ्यद्रवद्रणे पार्थं गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।

राजा श्रुतायु ने अपने मृत अश्वों के रथ को छोड़ दिया। यह वीर्यवान् अब अपनी गदा लेकर अर्जुन पर झपटा ॥४३॥

वरुणस्याऽऽत्मजो वीरः स तु राजा श्रुतायुधः ॥४४॥
पर्णाशा जननी यस्य शीततोया महानदी ।

यह वीर-श्रेष्ठ राजा श्रुतायु वरुण का पुत्र कहलाता था। इसकी माता शीत जलपूर्ण महानदी पर्णाशा मानी गई है ॥४४॥

तस्य माताऽब्रवीद्राजन्वरुणं पुत्रकारणात् ॥४५॥
अवध्योऽयं भवेल्लोके शत्रूणां तनयो मम ।
वरुणस्त्वब्रवीत्प्रीतो ददाम्यस्मै वरं हितम् ॥४६॥

हे राजन्! इसकी माता महानदी ने अपने पुत्र के लिए वरुण से यह वरदान मांग रखा था, कि संसार में मेरा पुत्र अवध्य होवे। वरुण ने भी प्रसन्नता-पूर्वक उसको यह वरदान दे रखा था।

दिव्यमस्त्रं सुतस्तेऽयं येनाऽवध्यो भविष्यति ।
नाऽस्ति चाऽप्यमरत्वं वै मनुष्यस्य कथञ्चन ॥४७॥

मैं यह दिव्य अस्त्र तेरे पुत्र को प्रदान करता हूं, इससे यह सदा अवध्य होगा अन्यथा मनुष्य लोक में कोई अमर नहीं हो सकता है ॥४७॥

मरणाऽवश्यमर्तव्यं जातेन सरितां वरे।
दुर्धर्षस्त्वेष शत्रूणां रणेषु भविता सदा ॥४८॥
अस्त्रस्याऽस्य प्रभावाद्वै व्येतु ते मानसो ज्वरः।

हे नदी-श्रेष्ठ ! संसारी मनुष्य तो अवश्य मरते हैं, परन्तु यह रण में सदा शत्रुओं द्वारा आक्रमण के अयोग्य होगा। यह इस अस्त्र का ही प्रभाव होगा। तुम अपने मन से चिन्ता निकाल डालो।

इत्युक्त्वा वरुणः प्रादाद्गदां मन्त्रपुरस्कृताम् ॥४९॥
यामासाद्य दुराधर्षः सर्वलोके श्रुतायुधः।

इतना कहकर वरुण ने मन्त्रों से समन्वित एक गदा राजा श्रुतायु को प्रदान की। इसी गदा के कारण राजा श्रुतायु सारे संसार में दुराधर्ष हो रहा था ॥४९॥

उवाच चैनं भगवान्पुनरेव जलेश्वरः ॥५०॥
अयुद्ध्यति न मोक्तव्या सा त्वय्येव पतेदिति।
हन्यादेषा प्रतीपं हि प्रयोक्तारमपि प्रभो ॥५१॥

जलाधिपति भगवान वरुण ने फिर कहा—हे पुत्र ! जो तुमसे युद्ध न करता हो-तुम इस गदा को उस पर न छोड़ बैठना। हे वत्स ! इस प्रकार यह लौट पड़ती है और अपने प्रयोक्ता को ही मार देती है ॥५०-५१॥

न चाऽकरोत्स तद्वाक्यं प्राप्ते काले श्रुतायुधः ।
स तया वीरघातिन्या जनार्दनमताडयत् ॥५२॥

श्रुतायु इस विपत्ति के समय उस प्रतिज्ञा को नहीं निभा सका और इसने इस वीरघातिनी गदा का प्रहार श्रीकृष्ण पर कर दिया।

प्रतिजग्राह तां कृष्णः पीनेनांऽसेन वीर्यवान् ।
नाऽकम्पयत शौरिं सा विन्ध्यं गिरिमिवाऽनिलः ।

वीर्यवान् श्रीकृष्ण ने इस गदा का प्रहार अपने कंधे पर सह लिया। विन्ध्य पर्वत में वायु के समान शूरसेनवंशोद्भव श्रीकृष्ण पर इस गदा का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ ॥५३॥

प्रत्युद्यान्ती तमेवैषा कृत्येव दुरधिष्ठिता ।
जघान चाऽऽस्थितं वीरं श्रुतायुधममर्षणम् ॥५४॥

यह गदा कृत्या नामक भीषण देवी की तरह लौट पड़ी, क्योंकि इसका दुष्प्रयोग किया गया था। इसने क्रोध में भरे हुए स्वयं राजा श्रुतायु को ही मार गिराया ॥५४॥

हत्वा श्रुतायुधं वीरं धरणीमन्वपद्यत ।
गदां निवर्त्तितां दृष्ट्वा निहतं च श्रुतायुधम् ॥५५॥
हाहाकारो महांस्तत्र सैन्यानां समजायत ।

यह गदा राजा श्रुतायु को मार कर पृथिवी में गिर गई। जब गदा निवृत्त हो गई और राजा श्रुतायु मारा गया तो उस समय सेनाओं में बड़ा ही कोलाहल खड़ा हो गया ॥५५॥

स्वेनाऽस्त्रेण हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिन्दमम् ॥५६॥
अयुध्यमानाय ततः केशवाय नराधिप ।
क्षिप्ता श्रुतायुधेनाऽथ तस्मात्तमवधीद्गदा ॥५७॥

हे राजन ! अरिमर्दन राजा श्रुतायु को अपने अस्त्र द्वारा मरा हुआ देखकर लोग कहने लगे, कि राजा श्रुतायु ने युद्ध नहीं करने वाले श्रीकृष्ण पर गदा का प्रहार किया, इससे वह गदा द्वारा मारा गया ॥५६-५७॥

यथोक्तं वरुणेनाऽऽजौ तथा स निधनं गतः ।
व्यसुश्चाऽप्यपतद्भूमौ प्रेक्षतां सर्वधन्विनाम् ॥५८॥

वरुण ने जो बात कह दी थी-वही हुई और राजा श्रुतायु मारा गया। इस प्रकार सारे धनुषधारियों के देखते २ प्राण-विहीन होकर राजा श्रुतायु रणभूमि में गिर गया ॥५८॥

पतमानस्तु स बभौ पर्णाशायाः प्रियः सुतः ।
स भग्न इव वातेन बहुशाखो वनस्पतिः ॥५९॥

हे राजन् ! पृथिवी में पड़ा हुआ भी पर्णाशा का पुत्र राजा श्रुतायु ऐसा दिखाई देता था, जैसे वायु ने अनेक शाखा वाला वृक्ष उखाड़ कर डाल दिया हो ॥५९॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनामुख्याश्च सर्वशः ।
प्राद्रवन्त हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिन्दमम् ॥६०॥

जब सेना ने इस प्रकार अपने स्वामी अरिन्दम राजा श्रुतायु को मरा देखा, तो सैनिक और सेनापति रण छोड़कर भाग निकले ॥६०॥

ततः काम्बोजराजस्य पुत्रः शूरः सुदक्षिणः ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः फाल्गुनं शत्रुसूदनम् ॥६१॥

इसके अनन्तर काम्बोजाधिपति का पुत्र शूरवीर राजा सुदक्षिण अपने वेगशाली अश्वों द्वारा आगे बढ़ा और उसने शत्रुसूदन अर्जुन का मार्ग रोकना चाहा ॥६१॥

तस्य पार्थः शरान्सप्त प्रेषयामास भारत ।
ते तं शूरं विनिर्भिद्य प्राविशन्धरणीतलम् ॥६२॥

हे भारत ! इस पर अर्जुन ने सात बाण छोड़े । ये बाण इस कम्बोजाधिपति के शरीर को बींध कर भूमि में घुस गए ॥६२॥

सोऽतिविद्धः शरैस्तीक्ष्णैर्गाण्डीवप्रेषितैर्मृधे ।
अर्जुनं प्रति विव्याध दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥६३॥
वासुदेवं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनः पार्थं च पञ्चभिः ।

इस रण में गाण्डीव धनुष द्वारा छोड़े हुए तीक्ष्ण बाणों से कम्बोजाधिपति घायल हो गया । इसने भी कङ्क पक्षी के पंखों से युक्त बाणों से अर्जुन को बींध दिया । तथा तीन बाणों से वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण और पांच बाणों से अर्जुन को आहत किया ॥६३॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्वा केतुं चिच्छेद मारिष ॥६४॥
भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां तं च विव्याध पाण्डवः ।
स तु पार्थं त्रिभिर्विध्वा सिंहनादमथाऽनदत् ॥६५॥

हे आर्यगुणसम्पन्न ! अर्जुन ने इसके धनुष को काट कर इसकी ध्वजा को भी काट गिराया तथा अत्यन्त तीक्ष्ण बाण छोड़ कर पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने उसको भी बहुत आहत किया । कम्बोजाधिपति सुदक्षिण भी अर्जुन को तीन बाणों से आहत करके सिंहनाद करने लगा ॥६४-६५॥

सर्वपारसवीं चैव शक्तिं शूरः सुदक्षिणः ।
सघण्टां प्राहिणोद्घोरां क्रुद्धो गाण्डीवधन्वने ॥६६॥

शूरवीर राजा सुदक्षिण ने लोहमयी दृढ़ शक्ति उठाई और क्रुद्ध होकर घण्टाओं से विभूषित उस शक्ति को गाण्डीव धारी अर्जुन पर छोड़ा ॥६६॥

सा ज्वलन्ती महोल्केव तमासाद्य महारथम् ।
सविस्फुलिङ्गा निर्भिद्य निपपात महीतले ॥६७॥

महारथी अर्जुन पर महोल्का (तारे टूटने) के तुल्य, यह प्रदीप्त महाशक्ति गिरी, परन्तु गिरते ही इसके टुकड़े २ हो गए । इसमें से चिनगारियां निकल चलीं और यह व्यर्थ होकर भूमि पर गिर गई ॥६७॥

शक्त्या त्वभिहतो गाढं मूर्छयाऽभिपरिप्लुतः ।
समाश्वास्य महातेजाः सृक्किणी परिलेलिहन् ॥६८॥

इस महाशक्ति के महान् आघात से अर्जुन भी मूर्च्छित हो गया। थोड़ी देर में जब अर्जुन को शान्ति मिली, तो वह महा तेजस्वी क्रोध से अपने ओष्ठ चाटने लगा ॥६८॥

तं चतुर्दशभिः पार्थो नाराचैः कङ्कपत्रिभिः।
साश्वध्वजधनुःसूतां विव्याधाऽचिन्त्यविक्रमः ॥६९॥

कङ्क पत्नी के पंखों से युक्त चौदह बाणों से अचिन्त्य पराक्रमी अर्जुन ने उसके अश्व, ध्वजा, धनुष और सारथि को बींध डाला।

रथं चाऽन्यैः सुबहुभिश्चक्रे विशकलं शरैः।
सुदक्षिणं तं काम्बोजं मोघसङ्कल्पविक्रमम् ॥७०॥
बिभेद हृदि बाणेन पृथुधारेण पाण्डवः।

अर्जुन ने अन्य भी बहुत से बाण छोड़ कर रथ को चलनी कर दिया। इस प्रकार कम्बोजाधिपति राजा सुदक्षिण को मनोरथ हीन करके पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने एक पुष्ट तीखे बाण से उसके हृदय में प्रहार किया ॥७०॥

स भिन्नवर्मा स्रस्ताङ्गः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः ॥७१॥
पपाताऽभिमुखः शूरो यन्त्रमुक्त इव ध्वजः।
गिरेः शिखरजः श्रीमान्सुशाखः सुप्रतिष्ठितः ॥७२॥
निर्भग्न इव वातेन कर्णिकारो हिमात्यये।

इस बाण से इसका कवच कट गया, अङ्ग शिथिल हो गए और मुकुट तथा अङ्गद छिन्न-भिन्न हो गए। यन्त्र से टूटे हुए ध्वजा के तुल्य, यह शूरवीर अर्जुन के सन्मुख ही रणभूमि में गिर गया।

यह इस समय पर्वत की चोटी पर उत्पन्न, शोभाशाली, शाखाओं से सम्पन्न अच्छी तरह स्थित, वायु से वसन्त में गिराए हुए कर्णि-कार के महावृक्ष की तरह सुशोभित हो रहा था ॥७१-७२॥

शेते स्म निहतो भूमौ काम्बोजास्तरणोचितः ॥७३॥
महार्हाभरणोपेतः सानुमानिव पर्वतः ।

कम्बोज देश के उत्तम वस्त्र (गलीचों) पर सोने के योग्य, राजा सुदक्षिण हत होकर भूमि में गिर गया। इस पर बहुत से अमूल्य आभूषण लदे थे। यह शिखर धारी पर्वत के समान दिखाई दे रहा था ॥७३॥

सुदर्शनीयस्ताम्राक्षः कर्णिना स सुदक्षिणः ॥७४॥
पुत्रः काम्बोजराजस्य पार्थेन विनिपातितः ।

धनुष और आभूषणों से सुशोभित, महा सुन्दर लाल नेत्रधारी, कम्बोजराज का पुत्र सुदक्षिण इस प्रकार अर्जुन ने मार गिराया ।

धारयन्नग्निसङ्काशां शिरसा काञ्चनीं स्रजम् ॥७५॥
अशोभत महाबाहुर्व्यसुर्भूमौ निपातितः ।

अग्नि की शिखा के तुल्य चमकती हुई सुवर्ण माला को पहिने हुए, महाबाहु राजा सुदक्षिण मर कर भूमि में पड़ा हुआ भी अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥७५॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि व्यद्रवन्त सुतस्य ते ॥
हतं श्रुतायुधं दृष्ट्वा काम्बोजं च सुदक्षिणम् ॥७६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि श्रुतायुधसुदक्षिणवधे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥६२॥

हे राजन् ! अब राजा श्रुतायु और कम्बोजाधिपति राजा सुदक्षिण को मरा हुआ देखकर तुम्हारे पुत्र की सारी सेना भाग खड़ी हुई ।

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में राजा श्रुतायु और सुदक्षिण के वध का बानवेवां अध्याय समाप्त हुआ



## तिरानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

हते सुदक्षिणे राजन्वीरे चैव श्रुतायुधे ।
जवेनाऽभ्यद्रवन्पार्थं कुपिताः सैनिकास्तव ॥१॥

सञ्जय बोले— हे राजन् ! कम्बोजाधिपति सुदक्षिण और राजा श्रुतायु के मारे जाने पर तुम्हारे सैनिक कुपित होकर अर्जुन पर बुरी तरह झपटे ॥१॥

अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ।
अभ्यवर्षंस्ततो राजञ्शरवर्षैर्धनञ्जयम् ॥२॥

हे राजन् ! अभीषाह, शूरसेन, शिवि और वसाति संज्ञक क्षत्रियवीरों ने तो धनञ्जय अर्जुन पर बाणों की झड़ी सी लगादी ॥

तेषां षष्टिशतानन्यान्प्रामथ्नात्पाण्डवः शरैः ।
ते स्म भीताः पलायन्ते व्याघ्रात्क्षुद्रमृगा इव ॥३॥

हे राजन्! पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने अपने बाणों से इन वीरों के मध्य में प्रधान २ छःसौ वीरों को मार गिराया। शेष सैनिक व्याघ्र से भयभीत क्षुद्र मृगों की भांति रणभूमि से भाग निकले ॥३॥

ते निवृत्ताः पुनः पार्थं सर्वतः पर्यवारयन् ।
रणे सपत्नान्निघ्नन्तं जिगीषन्तं परान्युधि ॥४॥

इस घोर रण में अर्जुन शत्रुओं को बुरी तरह मार रहे थे और वे आज के युद्ध में ही सबको जीत लेना चाहते थे। इस तरह विकराल हुए अर्जुन पर फिर ये क्षत्रियवीर लौट कर टूट पड़े और उसे सब ओर से घेर लिया ॥४॥

तेषामापततां तूर्णं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
शिरांसि पातयामास बाहूंश्चाऽपि धनञ्जयः ॥५॥

ज्योंही ये वीर वापिस लौट कर आए-त्योंही अर्जुन ने बड़ी शीघ्रता से गाण्डीव धनुष से बाण छोड़ना आरम्भ किया। इस प्रकार धनञ्जय अर्जुन ने इन वीरों के शिर और बाहुओं को काट २ कर भूमि में बिछा दिया ॥५॥

शिरोभिः पातितैस्तत्र भूमिरासीन्निरन्तरा ।
अभ्रच्छायेव चैवाऽऽसीद् ध्वांक्षगृध्रबलैर्युधि ॥६॥

इस समय रणभूमि में इतने मस्तक पड़े हुए थे, कि उसमें थोड़ा सा भी अनन्तर दिखाई नहीं देता था। आकाश में उड़ते

हुए काक, गीध और बल नामक पक्षियों से रणभूमि के ऊपर बादल से छा रहे थे ॥६॥

तेषु तूत्साद्यमानेषु क्रोधामर्षसमन्वितौ ।
श्रुतायुश्चाऽच्युतायुश्च धनञ्जयमयुध्यताम् ॥७॥

जब इस प्रकार अर्जुन ने अभिषाह आदि क्षत्रिय वीरों को रण से पराङ्मुख कर दिया, तो क्रोध और आवेश में भरकर श्रुतायु और अच्युतायु नामक वीर अर्जुन के सन्मुख आए ॥७॥

बलिनौ स्पर्धिनौ वीरौ कुलजौ बाहुशालिनौ ।
तावेनं शरवर्षाणि सव्यदक्षिणमस्यताम् ॥८॥

ये दोनों वीर बड़े बलवान, युद्ध में विजय की लालसा करने वाले, कुलीन और बाहु-बल-शाली थे । इन्होंने दांयी और बांयी ओर होकर बाण वर्षा करना आरम्भ किया ॥८॥

त्वरायुक्तौ महाराज प्रार्थयानौ महद्यशः ।
अर्जुनस्य वधप्रेप्सू पुत्रार्थे तव धन्विनौ ॥९॥

हे महाराज ! ये बड़ी शीघ्रता कर रहे थे और अर्जुन के जीत लेने के महायश के अभिलाषी थे । ये धनुषधारी तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन की विजय के निमित्त अर्जुन का वध कर देना चाहते थे ॥९॥

तावर्जुनं सहस्रेण पत्रिणां नतपर्वणाम् ।
पूरयामासतुः क्रुद्धौ तटाकं जलदौ यथा ॥१०॥

इन दोनों ने नतपर्ववाले बाण सहस्रों की संख्या में छोड़े, जिनसे अर्जुन को इस तरह पाट दिया, जैसे मेघ तड़ाग को भर देता है ॥१०॥

श्रुतायुश्च ततः क्रुद्धस्तोमरेण धनञ्जयम् ।
आजघान रथश्रेष्ठः पीतेन निशितेन च ॥११॥

रथिश्रेष्ठ, राजा श्रुतायु क्रोध में भरा हुआ था। उसने विष में बुझा हुआ तीक्ष्ण तोमर ( बाणविशेष ) अर्जुन पर छोड़ा ॥११॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ।
जगाम परमं मोहं मोहयन्केशवं रणे ॥१२॥

इस बलवान् शत्रु के आघात से शत्रु-विजयी अर्जुन बहुत ही आहत हो गए। इन्हें थोड़ी देर को मूर्च्छा हो गई, जिससे श्रीकृष्ण भी शङ्कित से हो उठे ॥१२॥

एतस्मिन्नेव काले तु सोऽच्युतायुर्महारथः ।
शूलेन भृशतीक्ष्णेन ताडयामास पाण्डवम् ॥१३॥

इसी समय महारथी अच्युतायु ने भी एक अत्यन्त तीखा शूल उठाया और उससे अर्जुन पर प्रहार किया ॥१३॥

क्षते क्षारं स हि ददौ पाण्डवस्य महात्मनः ।
पार्थोऽपि भृशसंविद्धो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥१४॥

महावीर पाण्डव के एक क्षत के ऊपर इस दूसरे आघात ने क्षार ( नमक ) का काम दिया । अर्जुन इन आघातों से बहुत व्याकुल हो गया और वह रथ का दण्ड पकड़ कर आश्वासन लेने लगा ॥१४॥

ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते।

सिंहनादो महानासीद्धतं मत्वा धनञ्जयम् ॥१५॥

हे विशाम्पते ! इस समय तुम्हारी सेना में बड़ा ही सिंहनाद होने लगा। उन लोगों ने अर्जुन को मरा हुआ समझ लिया था ॥

कृष्णश्च भृशसन्तप्तो दृष्ट्वा पार्थं विचेतनम्।

आश्वासयत्सुहृद्याभिर्वाग्भिस्तत्र धनञ्जयम् ॥१६॥

कुन्ती-पुत्र अर्जुन को इस प्रकार व्याकुल देखकर श्रीकृष्ण बड़े सन्तप्त हुए। वे मीठी २ बातों से अर्जुन को आश्वासन देने लगे ॥

ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ लब्धलक्षौ धनञ्जयम्।

वासुदेवं च वार्ष्णेयं शरवर्षैः समन्ततः ॥१७॥

अब ये दोनों वीर रथिश्रेष्ठ अपने लक्ष्य की सफलता देखकर धनञ्जय अर्जुन और वृष्णिवंशोद्भव श्रीकृष्ण को अपनी बाणवर्षा से पाटने लगे ॥१७॥

सचक्रकूबररथं साश्वध्वजपताकिनम्।

अदृश्यं चक्रतुर्युद्धे तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥१८॥

हे राजन् ! चक्र, कूबर और समस्त रथ तथा अश्व, ध्वजा और पताकाओं के साथ अर्जुन को इन दोनों वीरों ने अपनी बाण-वर्षा से अदृश्य कर दिया ॥१८॥

प्रत्याश्वस्तस्तु बीभत्सुः शनकैरिव भारत।

प्रेतराजपुरं प्राप्य पुनः प्रत्यागतो यथा ॥१९॥

हे भारत ! धीरे २ अर्जुन को शान्ति आ गई। इस समय तो यमराज के पुर को जाकर मानो अर्जुन फिर लौट आया हो ॥१९॥

सञ्छन्नं शरजालेन रथं दृष्ट्वा सकेशवम् ।
शत्रू चाऽभिमुखौ दृष्ट्वा दीप्यमानाविवाऽनलौ ॥२०॥
प्रादुश्चक्रे ततः पार्थः शाक्रमस्त्रं महारथः ।
तस्मादासन्सहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ॥२१॥

जब अर्जुन ने श्रीकृष्ण सहित अपने रथ को बाण जाल से आच्छन्न और अग्नि के तुल्य देदीप्यमान दोनों शत्रुओं को सामने ही देखा, तो वह क्रोध से जल उठा । अब महारथी अर्जुन ने शक्रास्त्र का स्मरण करके उसका प्रादुर्भाव किया। इस शक्रास्त्र से नतपर्ववाले सहस्रों की संख्या में बाण निकलने लगे ॥२०-२१॥

ते जघ्नुस्तौ महेष्वासौ ताभ्यां मुक्तांश्च सायकान् ।
विचेरुराकाशगताः पार्थबाणविदारिताः ॥२२॥

इन बाणों ने उन दोनों महाधनुर्धर वीरों को आहत करना आरम्भ किया। इन्होंने उन दोनों वीरों के छोड़े हुए बाणों को भी आकाश में ही काट डाला। अर्जुन के बाणों से कटे हुए उन वीरों के बाण आकाश में उड़ने लगे ॥२२॥

प्रतिहत्य शरांस्तूर्णं शरवेगेन पाण्डवः ।
प्रतस्थे तत्र तत्रैव योधयन्वै महारथान् ॥२३॥

पाण्डु-पुत्र, अर्जुन अपने बाणों के वेग से उनके बाणों का वेग बड़ी शीघ्रता से रोक कर और जो महारथी सन्मुख आया उससे युद्ध करके आगे बढ़ने लगा ॥२३॥

तौ च फाल्गुनबाणौघैर्विबाहुशिरसौ कृतौ ।
वसुधामन्वपद्येतां वातनुन्नाविव द्रुमौ ॥२४॥

अर्जुन के बाण समूह से इन वीरों के बाहु और मस्तक कट गए और ये वायु से गिराए हुए वृक्ष की तरह पृथिवी में जा पड़े ॥

श्रुतायुषश्च निधनं वधश्चैवाऽच्युतायुषः ।
लोकविस्मापनमभूत्समुद्रस्येव शोषणम् ॥२५॥

राजा श्रुतायु और अच्युतायु की मृत्यु को सुनकर संसार को बड़ा आश्चर्य हुआ। यह घटना समुद्र के सुखा देने के सदृश थी ॥

तयोः पदानुगान्हत्वा पुनः पञ्चाशतं रथान् ।
प्रत्यगाद्भारतीं सेनां निघ्नन्पार्थो वरान्वरान् ॥२६॥

अर्जुन ने उनके पीछे चलने वाले पांच सौ रथी वीर भी मार डाले। इस प्रकार श्रेष्ठ २ वीरों को मारता हुआ अर्जुन कौरवों की सेना में घुस गया ॥२६॥

श्रुतायुषं च निहतं प्रेक्ष्य चैवाऽच्युतायुषम् ।
नियतायुश्च संक्रुद्धो दीर्घायुश्चैव भारत ॥२७॥

हे भारत ! श्रुतायु और अच्युतायु को मरा हुआ देखकर क्रोधातुर नियतायु और दीर्घायु आगे बढ़े ॥२७॥

पुत्रौ तयोर्नरश्रेष्ठौ कौन्तेयं प्रतिजग्मतुः ।
किरन्तौ विविधान्बाणान्पितृव्यसनकर्शितौ ॥२८॥

ये दोनों वीर, उन ही राजा श्रुतायु और अच्युतायु के पुत्र थे। ये नरश्रेष्ठ, अपने २ पिता की मृत्यु से क्रोशित होकर बाणवर्षा करते हुए अर्जुन पर झपटे ॥२८॥

तावर्जुनो मुहूर्त्तेन शरैः सन्नतपर्वभिः।
प्रेषयत्परमक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥२९॥

क्रोधातुर अर्जुन ने थोड़ी ही देर में अपने नतपर्ववाले बाणों से इन दोनों वीरों को भी यमराज के घर भेज दिया ॥२९॥

लोडयन्तमनीकानि द्विपं पद्मसरो यथा।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं पार्थं क्षत्रियपुङ्गवाः ॥३०॥

कमल ताल को मदोद्धत हाथी की तरह सेनासमूह को आलोडित करते हुए कौरव पक्ष के क्षत्रियश्रेष्ठ, अर्जुन के रोकने में कुछ भी समर्थ नहीं हुए ॥३०॥

अङ्गास्तु गजवारेण पाण्डवं पर्यवारयन्।
क्रुद्धाः सहस्रशो राजञ्शिक्षिता हस्तिसादिनः ॥३१॥
दुर्योधनसमादिष्टाः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः।
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च कलिङ्गप्रमुखा नृपाः ॥३०॥

हे राजन्! अब राजा दुर्योधन ने अङ्ग, प्राच्य, कलिङ्ग दाक्षिणात्य आदि राजाओं को अर्जुन के रोकने की आज्ञा दी। ये गज की सवारी में बड़े कुशल थे। सारे गजारोही वीर क्रुद्ध हो उठे। ये आज्ञा पाते ही पर्वताकार हाथी लेकर अपने २ गजसमूह के साथ अर्जुन की ओर बढ़े और इन्होंने जाकर अर्जुन को घेर लिया॥

तेषामापततां शीघ्रं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः।
निचकर्त शिरांस्युग्रो बाहूनपि सुभूषणान् ॥२३॥

इन गजारोही वीरों के झपटने पर अर्जुन ने भी अपने गाण्डीव-धनुष से बाण छोड़ना आरम्भ किया। इसने आभूषणों से विभूषित भुजाएँ और उन वीरों के शिरों को काटना आरम्भ किया ॥२३॥

तैः शिरोभिर्मही कीर्णा बाहुभिश्च सहाऽङ्गदैः।
बभौ कनकपाषाणा भुजगैरिव संवृता ॥२४॥

अङ्गद नामक आभूषणों से विभूषित बाहु और वीरों के मस्तकों से पृथिवी व्याप्त हो गई। इस समय पृथिवी सुवर्ण के पत्थरों से तथा सर्पों से व्याप्त सी दिखाई देने लगी ॥२४॥

बाहवो विशिखैश्छिन्नाः शिरांस्युन्मथितानि च।
पतमानान्यदृश्यन्त द्रुमेभ्य इव पक्षिणः ॥२५॥

बाणों से कटी हुई बाहु और धड़ से पृथक् हुए मस्तक, इस प्रकार भूमि में गिरे हुए थे, जैसे वृक्षों से पक्षी आ गिरे हों ॥

शरैः सहस्रशो विद्धा द्विपाः प्रस्रुतशोणिताः।
अदृश्यन्ताऽद्रयः काले गैरिकाम्बुस्रवा इव ॥२६॥

सहस्रों अर्जुन के बाणों से हाथी विंध गए, जिनके शरीर से रुधिर की धारा बह रह थी। ये इस ढंग के दिखाई देने लगे-जैसे वर्षाकाल में गैरिक आदि धातुओं से व्याप्त जलप्रवाह बह निकलता है ॥२६॥

निहताः शेरते स्माऽन्ये बीभत्सोर्निशितैः शरैः ।
गजपृष्ठगता म्लेच्छा नानाविकृतदर्शनाः ।३७॥

अर्जुन के बाणों से मारे हुए, म्लेच्छराज हाथियों की पीठ पर ही गिर गए। इनके आकार भी बड़े ही भीषण दिखाई दे रहे थे॥

नानावेषधरा राजन्नानाशस्त्रौघसंवृताः ।
रुधिरेणाऽनुलिप्ताङ्गा भान्ति चित्रैः शरैर्हताः ॥३८॥

हे राजन्! इनके अनेक वेष थे और ये अनेक प्रकार के शस्त्रों से व्याप्त थे। ये अनेक प्रकार के विचित्र बाणों से आहत हुए रुधिर से व्याप्त दिखाई दे रहे थे ॥३८॥

शोणितं निर्वमन्ति स्म द्विपाः पार्थशराहताः ।
सहस्रशश्छिन्नगात्राः सारोहाः सपदानुगाः ॥३९॥

अर्जुन के बाणों से आहत हाथी रक्त का वमन कर रहे थे। इस समय सहस्रों की संख्या में अपने गजारोही वीर और पैदल सैनिकों के सहित हाथी क्षत-विक्षत दिखाई दे रहे थे ॥३९॥

चुक्रुशुश्च निपेतुश्च बभ्रमुश्चाऽपरे दिशः ।
भृशं त्रस्ताश्च बहवः स्वानेव ममृदुर्गजाः ॥४०॥

कुछ हाथी चिल्लाते हुए सब ओर चक्कर लगा रहे थे और कुछ चिंघाड़ मार कर गिर जाते थे। इन व्याकुल हाथियों ने अपने ही बहुत से सैनिक कुचल डाले ॥४०॥

सान्तरायुधिनश्चैव द्विपांस्तीक्ष्णविषोपमाः ।
विदन्त्यसुरमायां ये सुघोरा घोरचक्षुषः ॥४१॥

यवनाः पारदाश्चैव शकाश्च सह बाल्हिकैः ।
काकवर्णा दुराचाराः स्त्रीलोलाः कलहप्रियाः ॥४२॥
द्राविडास्तत्र युध्यन्ते मत्तमातङ्गविक्रमाः ।
गोयोनिप्रभवाम्लेच्छा कालकल्पाः प्रहारिणाः ॥४३॥
दार्वातिसारा दरदाः पुण्ड्राश्चैव सहस्रशः ।
ते न शक्याः स्म संख्यातुं व्राताः शतसहस्रशः ॥४४॥
अभ्यवर्षन्त ते सर्वे पाण्डवं निशितैः शरैः ।
अवाकिरंश्च ते म्लेच्छा नानायुद्धविशारदाः ॥४५॥

हाथियों के नीचे घुसकर युद्ध करने वाले, तीक्ष्ण विष के समान भयानक, घोर आंखों वाले, असुरों की माया के ज्ञाता, घोर, यवन, पारद, शक, बाह्लीक, काकवर्ण के समानवर्ण वाले, दुराचारी स्त्रीलम्पट, कलहप्रिय, मदोन्मत्त हाथी के तुल्य पराक्रमी, द्राविड़, गौ की योनि से उत्पन्न, काल के तुल्य प्रहार कर्ता वीर म्लेच्छ, दार्वातिसार, दरद, पुण्ड्र आदि असंख्य जाति के थे। इनके लाखों की संख्या में झुण्ड थे। ये सारे इकट्ठे होकर अर्जुन पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। ये म्लेच्छ अनेक ढंग से युद्ध करने में कुशल थे। इन्होंने अर्जुन को बाणसमूह से व्याप्त कर दिया ॥४१-४५॥

तेषामपि ससर्जाऽऽशु शरवृष्टिं धनञ्जयः ।
सृष्टिस्तथाविधा ह्यासीच्छलभानामिवाऽऽयतिः ॥४६॥

धनञ्जय अर्जुन ने भी उन पर बाणवर्षा करना आरम्भ किया। शलभ पक्षियों की पंक्ति की तरह बाणों की पंक्ति दिखाई देती थी॥

अभ्रच्छायामिव शरैः सैन्ये कृत्वा धनञ्जयः ।
मुण्डार्धमुण्डाञ्जटिलानशुचीञ्जटिलाननान् ॥४७॥
म्लेच्छानशातयत्सर्वान्समेतानस्त्रतेजसा ।
शरैश्च शतशो विद्धास्ते सङ्घा गिरिचारिणः ।
प्राद्रवन्त रणे भीता गिरिगह्वरवासिनः ॥४८॥

धनञ्जय ने अपने बाणों से रणभूमि में बादल से छा दिए। अर्जुन ने अस्त्र के तेज से आधा मूंड मुँडाने वाले, बालों से भरे हुए, दाढ़ीदार, अनेक ढंग के म्लेच्छों को एक साथ ही काटना आरम्भ किया। पहाड़ी वीरों के सैंकड़ों झुण्ड अर्जुन के बाणों से बिंध गए। पर्वत की गुफाओं में रहने वाले अनेक वीर इस रण में भयभीत होकर भाग चले ॥४७-४८॥

गजाश्वसादिम्लेच्छानां पतितानां शितैः शरैः ।
बकाः कङ्का वृका भूमावपिबन्रुधिरं मुदा ।

अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से कटकर गिरे हुए, गज, अश्व तथा इनके सवार म्लेच्छों के रक्त को बक, कङ्क और भेड़िए आदि जन्तु आनन्द-पूर्वक पीने लगे ॥४९॥

पत्त्यश्वरथनागैश्च प्रच्छन्नकृतसंक्रमाम् ॥४९॥
शरवर्षप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ।
आवर्तयन्नदीमुग्रां शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥५०॥

पैदल, अश्व, रथ और हाथियों के सेतु से गमन के योग्य, बाणवर्षा की नौकावाली, केशरूपी सिवाल और शाद्वलवाली,

रक्त के प्रवाह की तरङ्गों से युक्त, उस नदी को रणभूमि में अर्जुन ने प्रवृत्त कर दी ॥५०॥

छिन्नांगुलीक्षुद्रमत्स्यां युगान्ते कालसन्निभाम् ।
प्राकरोद्गजसम्बाधां नदीमुत्तरशोणिताम् ॥५१॥

इसमें वीरों की कटी हुई अँगुलियां क्षुद्र मत्स्य के सदृश थीं। प्रलयकाल में भयानक रूप में प्रवृत्त नदी के तुल्य, हाथियों के द्वीपों वाली यह रक्त की नदी अर्जुन ने बहा दी ॥५१॥

देहेभ्यो राजपुत्राणां नागाश्वरथसादिनाम् ।
यथा स्थलं च निम्नं च न स्याद्वर्षति वासवे ॥५२॥
तथाऽऽसीत्पृथिवी सर्वा शोणितेन परिप्लुता ।

राजपुत्रों के हाथी, अश्व, रथ और सवारों के शरीर के रक्त से यह नदी प्रवृत्त हुई। वर्षाकाल में इन्द्र के बरसने पर जैसे स्थल और गड्ढे भर जाते हैं, वैसे ही सारी पृथिवी रक्त से भर गई ॥५२॥

षट्सहस्रान्हयान्वीरान्पुनर्दशशतान्वरान् ॥५३॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।

इस क्षत्रिय-श्रेष्ठ अर्जुन ने छः सहस्र अश्व और एक सहस्र बड़े २ वीर क्षत्रिय मृत्युलोक को भेज दिए ॥५३॥

शरैः सहस्रशो विद्धा विधिवत्कल्पिता द्विपाः ॥५४॥
शेरते भूमिमासाद्य शैला वज्रहता इव ।

युद्ध विधि के अनुसार छोड़े हुए सहस्रों बाणों से बड़े सजाये हुए हाथी, वज्र से तोड़े हुए पर्वत की भांति भूमि में पड़े थे ॥५४॥

स वाजिरथमातङ्गान्निघ्नन्व्यचरदर्जुनः ॥५५॥
प्रभिन्न इव मातङ्गो मृद्नन्नलवनं यथा ।

अश्व, रथ और हाथियों का वध करता हुआ अर्जुन रणाङ्गण में इस तरह घूम रहा था, जैसे नल नामक तृण के वन में मदोन्मत्त हाथी निःशङ्क घूमता है ॥५५॥

भूरिद्रुमलतागुल्मं शुष्केन्धनतृणोलपम् ॥५६॥
निर्दहेदनलोऽरण्यं यथा वायुसमीरितः ।
सेनारण्यं तव तथा कृष्णानिलसमीरितः ॥५७॥
शरार्चिरदहत्क्रुद्धः पाण्डवाग्निर्धनञ्जयः ।

बहुत से वृक्ष, लता, झाड़ी, शुष्कइन्धन, तृणसमूह से सम्पन्न वन को वायु से प्रदीप्त अग्नि जिस भांति जलाता है, उसी तरह श्रीकृष्णरूपी वायु से उद्दीप्त, बाणरूपी लम्पटों से युक्त, पाण्डु-पुत्र अर्जुन रूपी अग्नि, प्रज्वलित होकर सेना रूपी वन को जलाने लगा ॥५६-५७॥

शून्यान्कुर्वन्रथोपस्थान्मानवैः संस्तरन्महीम् ॥५८॥
प्रानृत्यदिव सम्बाधे चापहस्तो धनञ्जयः ।

इस रण के संकीर्ण स्थान में धनुषधारी अर्जुन ने बहुत से रथों के बैठने के स्थानों को खाली कर दिया। मनुष्यों से पृथिवी को पाट दिया। अर्जुन इस समय रणाङ्गण में नाच सा रहा था।

वज्रकल्पैः शरैर्भूमिं कुर्वन्नुत्तरशोणिताम् ॥५९॥
प्राविशद्भारतीं सेनां संक्रुद्धो वै धनञ्जयः ।
तं श्रुतायुस्तथाऽम्बष्ठो व्रजमानं न्यवारयत् ॥६०॥

अर्जुन ने अपने वज्र तुल्य बाणों से भूमि के ऊपर के पद्दत को शोणित से आर्द्र कर दिया। इस प्रकार क्रोध में भरे हुए, अर्जुन कौरवसेना में घुसे चले जाते थे। इस समय अर्जुन को राजा श्रुतायु और अम्बष्ठ ने आगे बढ़ने से रोका ॥५९-६०॥

तस्याऽर्जुनः शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ।
न्यपातयद्धयाञ्शीघ्रं यतमानस्य मारिष ॥६१॥
धनुश्चाऽस्याऽपरैश्छित्वा शरैः पार्थो विचक्रमे ।

हे राजन्! कङ्क पक्षी के पंखों से सुशोभित, तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन ने प्रयत्नशील राजा श्रुतायु के अश्वों को मार गिराया और अन्य बाणों से इसके धनुष को भी कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने काट दिया ॥६१॥

अम्बष्ठस्तु गदां गृह्य कोपपर्याकुलेक्षणः ॥६२॥
आससाद रणे पार्थं केशवं च महारथम् ।
ततः सम्प्रहरन्वीरो गदामुद्यम्य भारत ॥६३॥
रथमावार्य गदया केशवं समताडयत् ।

कोप से लाल नेत्रधारी, अम्बष्ठ भी गदा उठाकर रणस्थली में महारथी अर्जुन और श्रीकृष्ण के समीप पहुंचा। हे भारत! अब इस वीर ने गदा सम्हाल कर प्रहार करना चाहा। इसने रथ को रोककर गदा से श्रीकृष्ण पर प्रहार किया ॥६२-६३॥

गदया ताडितं दृष्ट्वा केशवं परवीरहा ॥६४॥
अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धः सोऽम्बष्ठं प्रति भारत ।

हे भारत ! शत्रुवीर नाशक अर्जुन ने जब अम्बष्ठ को श्रीकृष्ण पर प्रहार करते देखा, तो अर्जुन, अम्बष्ठके ऊपर अत्यन्त कुपित हो उठे ॥६४॥

ततः शरैर्हेमपुङ्खैः सगदं रथिनां वरम् ॥६५॥
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ।

अब अर्जुन ने सुवर्ण के मूल से सुशोभित बाणों से रथिश्रेष्ठ, गदाधारी, अम्बष्ठ को रण में इस तरह ढक दिया जैसे-आकाश में मेघ, सूर्य को आच्छादित कर देते हैं ॥६५॥

अथाऽपरै शरैश्चापि गदां तस्य महात्मनः ॥६६॥
अचूर्णयत्तदा पार्थस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।

इसके अनन्तर महाशक्तिशाली अर्जुन ने और बाण छोड़े और उन बाणों से उसने उसकी गदा के टुकड़े २ कर दिए । यह घटना सबको अद्भुत प्रतीत हुई ॥६६॥

अथ तां पतितां दृष्ट्वा गृह्याऽन्यां च महागदाम् ॥
अर्जुनं वासुदेवं च पुनः पुनरताडयत् ।

अम्बष्ठ ने जब अपनी गदा छिन्न-भिन्न हुई देखी-तो इसने फिर दूसरी महागदा उठाई और इस गदा से अर्जुन और श्रीकृष्ण पर बार २ प्रहार किया ॥६७॥

तस्याऽर्जुनः क्षुरप्राभ्यां सगदावुद्यतौ भुजौ ॥६८॥
चिच्छेदेन्द्रध्वजाकारौ शिरश्चाऽन्येन पत्रिणा ।

अर्जुन ने क्षुर के सदृश तीक्ष्ण बाणों से गदा सहित ऊपर को उठे हुए, इन्द्र ध्वजा के समान आकारधारी अम्बष्ट की बाहुओं को काट डाला तथा अन्य बाण से इसने उसका शिर भी काट कर गिरा दिया ॥६८॥

स पपात हतो राजन्वसुधामनुनादयन् ॥६९॥
इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टो यन्त्रनिर्मुक्तबन्धनः ।

हे राजन्! इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त हुआ अम्बष्ठ, पृथिवी को शब्दायमान करता हुआ, अपने यन्त्र से बन्धन रहित हुई इन्द्र ध्वजा के तुल्य भूमि पर गिर पड़ा ॥६९॥

रथानीकावगाढश्च वारणाश्वशतैर्वृतः ।
अदृश्यत तदा पार्थो घनैः सूर्य इवाऽऽवृतः ॥७०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अम्बष्ठवधे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

इस समय रथियों की सेना और सैंकड़ों हाथी और अश्वों से घेरा हुआ अर्जुन, बादलों से घेरे हुए सूर्य के सदृश दिखाई देने लगा ॥७०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में अम्बष्ठ के वध का तिरानवेवां अध्याय पूरा हुआ।

# चौरानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः प्रविष्टे कौन्तेये सिन्धुराजजिघांसया ।
द्रोणानीकं विनिर्भिद्य भोजानीकं च दुस्तरम् ॥१॥
काम्बोजस्य च दायादे हते राजन्सुदक्षिणे ।
श्रुतायुधे च विक्रान्ते निहते सव्यसाचिना ॥२॥
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु विध्वस्तेषु समन्ततः ।
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥३॥
त्वरन्नेकरथेनैव समेत्य द्रोणमब्रवीत् ।

सञ्जय कहने लगा—हे भरतर्षभ ! कुन्ती-पुत्र अर्जुन के सिन्धु-राज जयद्रथ के वध की अभिलाषा से दुस्तर कृतवर्मा की सेना को चीर कर द्रोणाचार्य की सेना में घुस जाने तथा कम्बोजाधिपति के पुत्र राजा सुदक्षिण के मार लेने, पराक्रमी श्रुतायुध के वध कर लेने, इस प्रकार सारी कुरुसेना के इधर उधर बखेर देने पर राजा दुर्योधन अपनी सेना को छिन्नभिन्न देखकर द्रोणाचार्य के पास बड़ी शीघ्रता से अकेला ही पहुंचा और उनसे कहने लगा ॥१-३॥

गतः स पुरुषव्याघ्रः प्रमथ्यैतां महाचमूम् ॥४॥
अथ बुद्ध्या समीक्षस्व किन्नु कार्यमनन्तरम् ।
अर्जुनस्य विघाताय दारुणेऽस्मिञ्जनक्षये ॥५॥

हे आचार्य ! यह पुरुष-प्रवीर अर्जुन, इस विशाल सेना का मन्थन करके भीतर घुस गया है। अब तुम अपनी सूक्ष्मबुद्धि से

सोचो-हम लोगों को क्या करना चाहिए ? जिससे इस दारुण संग्राम में अर्जुन का विनाश हो सके ॥४-५॥

यथा स पुरुषव्याघ्रो न हन्येत जयद्रथः ।
तथा विधत्स्व भद्रं ते त्वं हि नः परमा गतिः ॥६॥

हे आचार्य ! यह पुरुष प्रवीर अर्जुन, किसी तरह राजा जयद्रथ का वध न कर डाले, तुमको यही उपाय सोचना या करना है, क्योंकि हमारी तो तुम ही गति हो ॥६॥

असौ धनञ्जयाग्निर्हि कोपमारुतचोदितः ।
सेनाकक्षं दहति मे वह्निः कक्षमिवोत्थितः ॥७॥

तृणसमूह में लगी हुई आग की तरह यह अर्जुन रूपी अग्नि, कोप रूपी वायु से प्रेरित होकर मेरी सेनारूपी तृणसमूह (बागर) को बड़े वेग से जला रहा है ॥७॥

अतिक्रान्ते हि कौन्तेये भित्त्वा सैन्यं परन्तप ।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥८॥

हे परन्तप ! इस विशालसेना को चीर कर कुन्ती-पुत्र अर्जुन के आगे निकल जाने पर राजा जयद्रथ के रक्षकों को बड़ा ही संशय उत्पन्न हो गया है ॥८॥

स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्राणामासीद् ब्रह्मविदां वर ।
नाऽतिक्रमिष्यति द्रोणं जातु जीवन्धनञ्जयः ॥९॥

हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ! सारे राजाओं का यह दृढ़ ध्यान था, कि अर्जुन जीवित रहता हुआ द्रोण के सन्मुख से सेना में नहीं घुस सकता है ॥९॥

योऽसौ पार्थो व्यतिक्रान्तो मिपतस्ते महाद्युते ।
सर्वं ह्यद्याऽऽतुरं मन्ये नेदमस्ति बलं मम ॥१०॥

हे महाद्युते ! आपके देखते २ कुन्ती-पुत्र अर्जुन, मेरी सेना में घुस गया, जिस से मेरे सारे सेनापति चिन्तित हो गए हैं। मेरी सम्मतिमें तो अब मेरी सेना भी शेप रहती हुई दिखाई नहीं देतीहै

जानामि त्वां महाभाग पाण्डवानां हिते रतम् ।
तथा मुह्यामि च ब्रह्मन्कार्यवत्तां विचिन्तयन् ॥११॥

हे महाभाग ! मुझे यह विदित है, कि तुम कुछ पाण्डवों के हित में तत्पर हो, इसी से मैं अपने कार्यगौरव को देखकर बड़ा चिन्तित हो रहा हूं ॥११॥

यथाशक्ति च ते ब्रह्मन्वर्त्तये वृत्तिमुत्तमाम् ।
प्रीणामि च यथाशक्ति तच्च त्वं नाऽवबुध्यसे ॥१२॥

हे ब्रह्मन् ! मैं तो अपनी शक्ति के अनुसार तुम्हें पर्याप्त वेतन दे रहा हूं और प्रसन्न करने के यथाशक्ति साधन उपस्थित करता रहता हूँ, परन्तु तुम इस सबको कुछ भी नहीं समझते हो ॥१२॥

अस्मान्न त्वं सदा भक्तानिच्छस्यमितविक्रम ।
पाण्डवान्सततं प्रीणास्यस्माकं विप्रिये रतान् ॥१३॥

हे महापराक्रमी ! हम तो आपके भक्त हैं, तो भी आप हमारी अपेक्षा (परवा) नहीं करते हो और जो हमारे अहित में लगे हुए हैं, उन पाण्डवों की प्रसन्नता के लिए तुम सदा प्रयत्न करते हो ॥

अस्मानेवोपजीवंस्त्वमस्माकं विप्रिये रतः ।
न ह्यहं त्वां विजानामि मधुदिग्धमिव क्षुरम् ॥१४॥

तुम हम से ही तो वृत्ति पाते हो और हमारा ही विप्रिय करते हो। मुझे तो यह पता नहीं था, कि तुम शहद में मिली हुई छुरी हो।

नाऽदास्यच्चेद्वरं मह्यं भवान्पाण्डवनिग्रहे ।
नाऽवारयिष्यं गच्छन्तमहं सिन्धुपतिं गृहान् ॥१५॥

यदि तुम पाण्डवों के निग्रह में मुझे कुछ विश्वास नहीं दिलाते हो-तो मैं भी अपने घर जाते हुए राजा जयद्रथ को कभी नहीं रोकता ॥१५॥

मया त्वाशंसमानेन त्वत्तस्त्राणमबुद्धिना ।
आश्वासितः सिन्धुपतिर्मोहाद्दत्तश्च मृत्यवे ॥१६॥

मुझ मूर्ख को यह विश्वास था, कि तुम राजा जयद्रथ की रक्षा कर सकोगे, इसी कारण से मैंने उसे समझा कर रख लिया था यों कहो कि अपनी अज्ञानता से उसे मृत्यु के मुख में डाल दिया ॥

यमदंष्ट्रान्तरं प्राप्तो मुच्येताऽपि हि मानवः ।
नाऽर्जुनस्य वशं प्राप्तो मुच्येताऽऽजौ जयद्रथः ॥१७॥

मनुष्य, यमराज की दाढ़ों में पहुंच जाने पर छुट सकता है, परन्तु अर्जुन की कैंची में पहुंचा हुआ सिन्धुराज जयद्रथ रण में नहीं बच सकता है ॥१७॥

स तथा कुरु शोणाश्व यथा मुच्येत सैन्धवः ।
मम चाऽऽर्त्तप्रलापानां मा क्रुद्धः पाहि सैन्धवम् ॥

हे शोणाश्ववाहन ! आचार्य ! अब तुम ऐसा प्रयत्न करो-जिससे सिन्धुराज इस मृत्यु के मुख से बचे । आप मेरे इस दुःख में किए हुए प्रलाप पर क्रोध न करो और जैसे बने वैसे सिन्धुराज को बचा लो ॥१८॥

द्रोण उवाच—

नाऽभ्यसूयामि ते वाक्यमश्वत्थाम्नाऽसि मे समः ।
सत्यं तु ते प्रवक्ष्यामि तज्जुषस्व विशाम्पते ॥१९॥

द्रोण बोले—हे विशाम्पते ! मैं तेरे वचनों का उत्तर देना नहीं चाहता । मैं तुम्हें अपने पुत्र अश्वत्थामा के समान ही मानता हूं । अब मैं तुमसे एक सत्य वचन कहता हूं, तुम उसके ऊपर ध्यान दो ॥

सारथिः प्रवरः कृष्णः शीघ्राश्चाऽस्य हयोत्तमाः ।
अल्पं च विवरं कृत्वा तूर्णं याति धनञ्जयः ॥२०॥

श्रीकृष्ण बड़े ही कुशल सारथि हैं और अर्जुन के अश्व भी बड़ी शीघ्रता से चलने वाले हैं । व्यूह में थोड़ा सा भी छिद्र करके अर्जुन झटपट उससे सेना में घुस पड़ता है ॥२०॥

किं न पश्यसि बाणौघान्क्रोशमात्रे किरीटिनः ।
पश्चाद्रथस्य पतितान्क्षिप्ताञ्शीघ्रं हि गच्छतः ॥२१॥

हे राजन् ! क्या तुम नहीं देख रहे हो, कि अर्जुन द्वारा छोड़े हुए बाण कोश भर जाकर गिरते हैं । उसके फैंके हुए बाण, तो पीछे गिरते हैं और वह आगे निकल जाता है ॥२१॥

न चाऽहं शीघ्रयानेऽद्य समर्थो वयसाऽन्वितः ।
सेनामुखे च पार्थानामेतद्बलमुपस्थितम् ॥२२॥

मैं अर्जुन के साथ २ दौड़ने में असमर्थ हूं; क्योंकि मेरी उमर ढल गई है। इधर पाण्डवों की सेना हमारी सेना के मुख पर आ गई है ॥२२॥

युधिष्ठिरश्च मे ग्राह्यो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
एवं मया प्रतिज्ञातं क्षत्रमध्ये महाभुज ॥२३॥
धनञ्जयेन चोत्सृष्टो वर्त्तते प्रमुखे नृपः ।
तस्माद्व्यूहमुखं हित्वा नाऽहं योत्स्यामि फाल्गुनम् ॥

हे महाभुज ! मैंने तो सारे धनुर्धरों के सन्मुख राजा युधिष्ठिर के पकड़ने की प्रतिज्ञा की है। आज वह अर्जुन से पृथक् हो गया है और मेरे सामने ही आ पहुंचा है। अब मैं अपने व्यूह का मुख छोड़कर अर्जुन के पीछे जा नहीं सकता हूं ॥२३-२४॥

तुल्याभिजनकर्माणं शत्रुमेकं सहायवान् ।
गत्वा योधय मा भैस्त्वं त्वं ह्यस्य जगतः पतिः ॥२५॥

एक ही कुल में उत्पन्न अकेले शत्रु अर्जुन के साथ तुम युद्ध करो-डरो मत। तुम बहुत सी सहायता से सम्पन्न पृथ्वीपति हो ॥

राजा शूरः कृती दक्षो नेतुं परपुरञ्जयः ।
वीरः स्वयं प्रयाह्यत्र यत्र पार्थो धनञ्जयः ॥२६॥

तुम राजा, शूरवीर, कृतकृत्य, रणकुशल और शत्रुनाशक हो। जब तुम स्वयं वीर हो-तो उसका सामना करो और वहां पहुंचो-जहां कुन्ती-पुत्र अर्जुन पहुंच चुका है ॥२६॥

दुर्योधन उवाच—

कथं त्वामप्यतिक्रान्तः सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
धनञ्जयो मया शक्य आचार्य प्रतिबाधितुम् ॥२७॥

दुर्योधन ने कहा—हे आचार्य ! जब समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, आपको भी अर्जुन उलांघ गया-तो मैं उसके रोकने में कैसे समर्थ हो सकता हूं ॥२७॥

अपि शक्यो रणे जेतुं वज्रहस्तः पुरन्दरः ।
नाऽर्जुनः समरे शक्यो जेतुं परपुरञ्जयः ॥२८॥

रण में वज्रधारी इन्द्र जीता जा सकता है, परन्तु शत्रुपुर-विजेता अर्जुन को रण में नहीं जीता जा सकता है ॥२८॥

येन भोजश्च हार्दिक्यो भवांश्च त्रिदशोपमः ।
अस्त्रप्रतापेन जिता श्रुतायुश्च निबर्हितः ॥२९॥
सुदक्षिणश्च निहतः स च राजा श्रुतायुधः ।
श्रुतायुश्चाऽच्युतायुश्च म्लेच्छाश्चाऽयुतशो हताः ॥३०॥
तं कथं पाण्डवं युद्धे दहन्तमिव पावकम् ।
प्रतियोत्स्यामि दुर्धर्षं तमहं शस्त्रकोविदम् ॥३१॥

जिसने हृदिक-पुत्र कृतवर्मा और इन्द्र के समान पराक्रमी आपको भी अस्त्र बल से जीत लिया तथा राजा श्रुतायु को मार लिया, इसी तरह कम्बोजाधिपति राजा सुदक्षिण और दूसरे श्रुतायु का वध किया, श्रुतायु और अच्युतायु को मार कर हजारोंकी संख्या में म्लेच्छ मार डाले, अग्नि के समान संसार को दग्ध करने वाले,

शस्त्रकुशल, दुर्धर्ष, ऐसे पाण्डु-पुत्र अर्जुन से मैं रण में कैसे टक्कर ले सकता हूं ॥२६-३१॥

क्षमं च मन्यसे युद्धं मम तेनाऽद्य संयुगे ।
परवानस्मि भवति प्रेष्यवद्रक्ष मद्यशः ॥३२॥

हे आचार्य ! जो आप मुझे अर्जुन के साथ युद्ध करने में समर्थ मानते हो तो मैं तो रण में आपके अधीन हूं। आप सेवक की तरह मेरे यश की रक्षा कीजिए ॥३२॥

द्रोण उवाच—

सत्यं वदसि कौरव्य दुराधर्षो धनञ्जयः ।
अहं तु तत्करिष्यामि यथैनं प्रसहिष्यसि ॥३३॥

द्रोणाचार्य ने कहा—हे कुरुराज ! तुम सत्य कह रहे हो धनञ्जय अर्जुन बड़ा ही दुराधर्ष है। मैं वैसा ही उपाय करूंगा जिससे तुम उससे टक्कर ले सकोगे ॥३३॥

अद्भुतं चाऽद्य पश्यन्तु लोके सर्वधनुर्धराः ।
विषक्तं त्वयि कौन्तेयं वासुदेवस्य पश्यतः ॥३४॥

सारे धनुर्धर संसार में यह देखकर आश्चर्य करेंगे कि तुम अर्जुन के साथ युद्ध करते दिखाई पड़ोगे। श्रीकृष्ण भी इस घटना को बड़े चकित होकर देखेंगे ॥३४॥

एष ते कवचं राजंस्तथा बध्नामि काञ्चनम् ।
यथा न बाणा नाऽस्त्राणि प्रहरिष्यन्ति ते रणे ॥३५॥

हे राजन् ! मैं यह सुवर्ण का कवच तुम्हें पहिना देता हूं, जिससे तुम्हारे शरीर में न तो बाण प्रवेश करेंगे और न रण में किसी शस्त्र का आघात ही हो सकेगा ॥३५॥

यदि त्वां सासुरसुराः सयक्षोरगराक्षसाः ।
योधयन्ति त्रयो लोका सनरा नास्ति ते भयम् ॥३६॥

हे राजन् ! यदि असुर, सुर, यक्ष, उरग और राक्षसों को साथ लेकर त्रिलोकी के पुरुष भी तुमसे युद्ध करने आवेंगे-तो भी तुम्हें कोई भय नहीं हो सकेगा ॥३६॥

न कृष्णो न च कौन्तेयो च चाऽन्यः शस्त्रभृद्रणे ।
शरानर्पयितुं कश्चित्कवचे तव शक्ष्यति ॥३७॥

श्रीकृष्ण, कुन्ती-पुत्र अर्जुन तथा अन्य शस्त्रधारी कोई भी वीर, रण में तुम्हारे कवच को भेद कर बाण प्रहार करने में समर्थ नहीं हो सकेगा ॥३७॥

स त्वं कवचमास्थाय क्रुद्धमद्य रणेऽर्जुनम् ।
त्वरमाणः स्वयं याहि न त्वाऽसौ विसहिष्यति ॥३८॥

अब तुम कवच पहन कर क्रोध में भरे हुए अर्जुन के सन्मुख शीघ्रता से स्वयं पहुंचो । इस समय अर्जुन तुम्हारे वेग को सह नहीं सकेगा ॥३८॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वा त्वरन्द्रोणः स्पृष्ट्वाऽम्भो वर्म भास्वरम् ।
आबबन्धाऽद्भुततमं जपन्मन्त्रं यथाविधि ॥३९॥

सञ्जय ने कहा—इतना कहकर द्रोणाचार्य ने बड़ी शीघ्रता से जल का आचमन करके सुवर्ण का देदीप्यमान अद्भुत कवच मन्त्र जपते हुए यथाविधि राजा दुर्योधन को पहना दिया ॥३९॥

रणे तस्मिन्सुमहति विजयस्य सुतस्य ते ।
विसिस्मापयिषुर्लोकान्विद्यया ब्रह्मवित्तमः ॥४०॥

ब्रह्मवादी द्रोणाचार्य ने इस महान भीषण रण में तुम्हारे पुत्र की विजय के लिए, अपनी मन्त्रविद्या से लोकों को चकित करते हुए कवच को पहनाया ॥४०॥

द्रोण उवाच—

करोतु स्वस्ति ते ब्रह्म ब्रह्मा चापि द्विजातयः ।
सरीसृपाश्च ये श्रेष्ठास्तेभ्यस्ते स्वस्ति भारत ॥४१॥

द्रोण बोले—हे राजन् ! तुम्हारा ब्रह्म, ब्रह्मा, द्विजाति, उरग आदि दिव्य प्राणी कल्याण करें—उनसे तुमको कल्याण प्राप्त हो ।

ययातिर्नाहुषश्चैव धुन्धुमारो भगीरथः ।
तुभ्यं राजर्षयः सर्वे स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥४२॥

हे भारत ! नहुष-पुत्र ययाति, धुन्धुमार, भगीरथ आदि अनेक राजर्षि तुम्हारा कल्याण करें ॥४२॥

स्वस्ति तेऽस्त्वेकपादेभ्यो बहुपादेभ्य एव च ।
स्वस्त्यस्त्वपादकेभ्यश्च नित्यं तव महारणे ॥४३॥

हे राजन् ! इस महारण में एकपाद, बहुपाद और अपाद प्राणियों से तुम्हें कल्याण की प्राप्ति हो ॥४३॥

स्वाहा स्वधा शची चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा।
लक्ष्मीररुन्धती चैव कुरुतां स्वस्ति तेऽनघ ॥४४॥

हे अनघ ! स्वाहा,स्वधा, शची,लक्ष्मी, अरुन्धती आदि देवियां तेरे कल्याण में प्रवृत्त होवें ॥४४॥

असितो देवलश्चैव विश्वामित्रस्तथाऽङ्गिराः।
वसिष्ठः कश्यपश्चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते नृप ॥४५॥

असित देवल. विश्वामित्र, अङ्गिरा, वशिष्ठ, कश्यप आदि महर्षि तुम्हारे कल्याण के उत्पादक हों ॥४५॥

धाता विधाता लोकेशो दिशश्च सदिगीश्वराः।
स्वस्ति तेऽद्य प्रयच्छन्तु कार्तिकेयश्च षण्मुखः ॥४६॥

हे राजन् ! धाता, विधाता, लोकेश, दिशा और दिग्पाल तथा षडाननधारी कार्तिकेय, तुम्हारा कल्याण करें ॥४६॥

विवस्वान्भगवान्स्वस्ति करोतु तव सर्वशः।
दिग्गजाश्चैव चत्वारः क्षितिश्च गगनं ग्रहाः ॥४७॥

हे भारत ! तीक्ष्ण प्रकाशकारी, भगवान् सूर्य भी तुम्हारे कल्याण करने में प्रवृत्त हों। चारों दिग्गज, पृथ्वी, आकाश और ग्रह भी तुमको कल्याण प्रदान करें ॥४७॥

अधस्ताद्धरणीं योऽसौ सदा धारयते नृप।
शेषश्च पन्नगश्रेष्ठः स्वस्ति तुभ्यं प्रयच्छतु ॥४८॥

हे नृप ! जो पृथिवी के नीचे स्थित होकर सदा पृथिवी को धारण करता है, वह सर्पश्रेष्ठ शेषनाग भी तुम्हारा कल्याण करें॥

गान्धारे युधि विक्रम्य निर्जिताः सुरसत्तमाः ।
पुरा वृत्रेण दैत्येन भिन्नदेहाः सहस्रशः ॥४९॥
हृततेजोबलाः सर्वे तदा सेन्द्रा दिवौकसः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुर्वृत्राद्भीता महासुरात् ॥५०॥

हे गान्धारी-पुत्र ! पूर्वकाल में वृत्रासुर ने युद्ध में सारे देवताओंको जीत लिया । उनकी सारी देह क्षत-विक्षत हो गई और इन्द्रादि सारे देवोंके तेज का नाश हो गया । इस समय इस महासुर वृत्र से भयभीत होकर सारे देवता ब्रह्मा की शरण में पहुंचे ॥५०॥

देवा ऊचुः—

प्रमर्दितानां वृत्रेण देवानां देवसत्तम ।
गतिर्भव सुरश्रेष्ठ त्राहि नो महतो भयात् ॥५१॥

देवों ने कहा—हे देवसत्तम ! हम सब देवताओं को वृत्रासुर ने व्याकुल कर दिया है । हे सुरश्रेष्ठ ! आप इस महाभय से हमारी रक्षा करके हमारी गति बने ॥५१॥

अथ पार्श्वे स्थितं विष्णुं शक्रादींश्च सुरोत्तमान् ।
प्राह तथ्यमिदं वाक्यं विषण्णान्सुरसत्तमान् ॥५२॥

अब ब्रह्माजी ने अपने पार्श्व में बैठे हुए भगवान् विष्णु और इन्द्र आदि देवों से यह तथ्य वचन कहा—देवतागण इस समय बहुत ही व्याकुल हो रहे थे ॥५२॥

रक्ष्या मे सततं देवाः सहेन्द्राः सद्विजातयः ।
त्वष्टुः सुदुर्धरं तेजो येन वृत्रो विनिर्मितः ॥५३॥

हे महाभागो ! मुझे इन्द्र, देव और द्विजातियों की अवश्य रक्षा करनी है । यह वृत्रासुर इतना तेजस्वी इसलिए है, कि यह विश्वकर्मा के दुर्धर तेज से उत्पन्न है ॥५३॥

त्वष्ट्रा पुरा तपस्तप्त्वा वर्षायुतशतं तदा ।
वृत्रो विनिर्मितो देवाः प्राप्याऽनुज्ञां महेश्वरात् ॥५४।

पूर्वकाल में विश्वकर्मा ने सौ वर्ष तक घोर तप किया । इस तप के अनन्तर महेश्वर की आज्ञा से उसने वृत्रासुर को जन्म दिया ॥

स तस्यैव प्रसादाद्वो हन्यादेव रिपुर्बली ।
नाऽगत्वा शङ्करस्थानं भगवान्दृश्यते हरः ॥५५।

यह बलवान् शत्रु वृत्रासुर, विश्वकर्मा की कृपा से ही तुम्हारा नाश कर रहा है । अब भगवान् शङ्कर के स्थान पर बिना पहुंचे उनके दर्शन नहीं हो सकते हैं ॥५५॥

दृष्ट्वा जेष्यथ वृत्रं तं क्षिप्रं गच्छत मन्दरम् ।
यत्राऽऽस्ते तपसां योनिर्दक्षयज्ञविनाशनः ॥५६॥
पिनाकी सर्वभूतेशो भगनेत्रनिपातनः ।

भगवान् शङ्कर के दर्शन कर लेने पर तुम लोग वृत्रासुर को जीत सकोगे, अतएव शीघ्र मन्दराचल पर चलो । वहीं पर दक्ष यज्ञ के विनाशक, तपोनिधि, पिनाकी, सर्वभूतेश, भगदेवता के नेत्र उत्पाटक, भगवान् शङ्कर विद्यमान हैं ॥५६॥

ते गत्वा सहिता देवा ब्रह्मणा सह मन्दरम् ॥५७॥
अपश्यंस्तेजसां राशिं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।

अब सारे देव, ब्रह्मा को साथ लेकर मन्दराचल पर पहुंचे। वहां उन्होंने करोड़ों सूर्य के तुल्य तेजस्वी, भगवान् शङ्कर को देखा॥

सोऽब्रवीत्स्वागतं देवा ब्रूत किं करवाण्यहम् ॥
अमोघं दर्शनं मह्यं कामप्राप्तिरतोऽस्तु वः ।

श्रीशङ्कर बोले—हे देवो! तुम्हारा स्वागत हो-कहिए-मैं तुम्हारा क्या कार्य सम्पादन करूं। मेरा दर्शन निष्फल नहीं होता। अब तुम अपनी कामना को सिद्ध समझो ॥६॥

एवमुक्तास्तु ते सर्वे प्रत्यूचुस्तं दिवौकसः ॥५९॥
तेजो हृतं नो वृत्रेण गतिर्भव दिवौकसाम् ।

जब शङ्कर ने इतना कहा, तो सारे देवता इस प्रकार कहने लगे—हे भगवन्! हमारा तेज वृत्रासुर ने क्षीण कर दिया है, अब आप ही हम देवों के रक्षक बनिए॥५९॥

मूर्तीरीक्षस्व नो देव प्रहारैर्जर्जरीकृताः ।
शरणं त्वां प्रपन्नाः स्म गतिर्भव महेश्वर ॥६०॥

हे देव! तुम हमारी मूर्ति (शक्ल) तो देखो; जिसको उसने प्रहारों से जर्जर कर दिया है। हे महेश्वर! हम तुम्हारी शरण में प्राप्त हुए हैं, आप हमारी रक्षा करें ॥६०॥

शर्व उवाच—

विदितं वो यथा देवाः कृत्येयं सुमहाबला ।
त्वष्टुस्तेजोभवा घोरा दुर्निवार्याऽकृतात्मभिः ॥६१॥

शङ्कर बोले—हे देवो ! तुमको विदित है, कि एक महाबली कृत्या नाम की देवी विश्वकर्मा के तेज से उत्पन्न हो चुकी है। उसको साधारण मनुष्य निवृत्त नहीं कर सकते हैं ॥६१॥

अवश्यं तु मया कार्यं साह्यं सर्वदिवौकसाम् ।
ममेदं गात्रजं शक्र कवचं गृह्य भास्वरम् ॥६२॥
वधानाऽनेन मन्त्रेण मानसेन सुरेश्वर ।
वधायाऽसुरमुख्यस्य वृत्रस्य सुरघातिनः ॥६३॥

हे शक्र ! मुझे सारे देवों की अवश्य रक्षा करनी है । अब तुम मेरे शरीर से उत्पन्न, इस चमकीले कवच को ग्रहण करके, इस मानसिक मन्त्र के द्वारा धारण करो । हे सुरेश्वर ! इससे महाबली सुरनाशक वृत्रासुर के वध में बड़ी सहायता होगी ॥६३॥

द्रोण उवाच—

इत्युक्त्वा वरदः प्रादाद्वर्म तन्मन्त्रमेव च ।
स तेन वर्मणा गुप्तः प्रायाद्यत्र चमूं प्रति ॥६४॥

द्रोणाचार्य बोले—हे राजन ! इतना कहकर वरदायी भगवान् शङ्कर ने वह कवच और मन्त्र इन्द्र को प्रदान कर दिया। वह उस कवच से सुरक्षित होकर वृत्रासुर की सेना पर चढ़ दौड़ा ॥

नानाविधैश्च शस्त्रौघैः पात्यमानैर्महारणे ।
न सन्धिः शक्यते भेत्तुं वर्मबन्धस्य तस्य तु ॥६५॥

अब महारण में अनेक प्रकार के घोर शस्त्र चलने लगे, परन्तु कवच से सुरक्षित होने के कारण वृत्रासुर, इन्द्र के सन्धि बन्धनों को नहीं काट सका ॥६५॥

ततो जघान समरे वृत्रं देवपतिः स्वयम् ।
तं च मन्त्रमयं बन्धं वर्म चाऽङ्गिरसे ददौ ॥६६॥
अङ्गिराः प्राह पुत्रस्य मन्त्रज्ञस्य बृहस्पतेः ।
बृहस्पतिरथोवाच अग्निवेश्याय धीमते ॥६७॥
अग्निवेश्यो मम प्रादात्तेन बध्नामि वर्म ते ।
तवाऽद्य देहरक्षार्थं मन्त्रेण नृपसत्तम ॥६८॥

इसके अनन्तर देवपति इन्द्र ने स्वयं रण में वृत्रासुर को मार डाला। कुछ काल के पीछे इन्द्र ने उस मन्त्र को अङ्गिरा को प्रदान कर दिया। अङ्गिरा ने अपने पुत्र, मन्त्रविद्या के ज्ञाता बृहस्पति को यह मन्त्र दिया। बृहस्पति ने धीमान् अग्निवेश के लिए कवच धारण का मन्त्र बताया। अग्निवेश ने वह मन्त्र मुझे बता दिया है। उसी मन्त्र के द्वारा मैं तुम्हारे शरीर में कवच पहिना देता हूं। हे नृपसत्तम ! इस मन्त्र के द्वारा तुम्हारे शरीर की पूर्ण रक्षा होती रहेगी ॥६६-६८॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वा ततो द्रोणस्तव पुत्रं महाद्युतिम् ।
पुनरेव वचः प्राह शनैराचार्यपुङ्गवः ॥६९॥

सञ्जय ने कहा—आचार्यश्रेष्ठ, द्रोण ने इस प्रकार तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को समझाकर फिर धीरे से यह वचन कहा ॥६९॥

ब्रह्मसूत्रेण बध्नामि कवचं तव भारत ।
हिरण्यगर्भेण यथा बद्धं विष्णोः पुरा रणे ॥७०॥

हे भारत! मैं तुम्हारे कवच को ब्रह्मसूत्र से बांध देता हूं। इसी तरह पूर्वकाल में हिरण्यगर्भ ने विष्णु के शरीर में रण में जाने के समय कवच बांध दिया था ॥७०॥

यथा च ब्रह्मणा बद्धं संग्रामे तारकामये।
शक्रस्य कवचं दिव्यं तथा बध्नाम्यहं तव ॥७१॥

हे राजन्! तारकासुर के संग्राम में ब्रह्मा ने जिस ढंग से देवों के सेनापति के कवच बांधा, उसी दिव्य इन्द्र के कवच को मैं तेरे शरीर में धारण कर देता हूं ॥७१॥

बध्वा तु कवचं तस्य मन्त्रेण विधिपूर्वकम्।
प्रेषयामास राजानं युद्धाय महते द्विजः ॥७२॥

हे राजन्! इस प्रकार मन्त्र द्वारा विधिपूर्वक कवच बांध कर राजा दुर्योधन को इस महारण में द्रोणाचार्य ने भेज दिया ॥७२॥

स सन्नद्धो महाबाहुराचार्येण महात्मना।
रथानां च सहस्रेण त्रिगर्त्तानां प्रहारिणाम् ॥७३॥
तथा दन्तिसहस्रेण मत्तानां वीर्यशालिनाम्।
अश्वानां नियुतेनैव तथाऽन्यैश्च महारथैः ॥७४॥
वृतः प्रायान्महाबाहुरर्जुनस्य रथं प्रति।
नानावादित्रघोषेण यथा वैरोचनिस्तथा ७५॥

महावीर आचार्य द्वारा युद्ध के लिए इस प्रकार सन्नद्ध किया हुआ महाबाहु राजा दुर्योधन, प्रहार करने में कुशल त्रिगर्तों के एक

सहस्र रथी, महाशक्तिशाली, मदोन्मत्त एक सहस्र हाथी, दश हजार अश्व तथा अन्य महारथियों को साथ लेकर अर्जुन की ओर इस तरह बढ़ा-जैसे अनेक बाजों की ध्वनि के साथ बलि दैत्य युद्ध के लिए चला हो ॥७३-७५॥

ततः शब्दो महानासीत्सैन्यानां तव भारत ।
अगाधं प्रस्थितं दृष्ट्वा समुद्रमिव कौरवम् ॥७६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनकवचबन्धने चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

हे भारत ! अगाध समुद्र के उछलने के तुल्य, कुरुराज दुर्योधन के आगे बढ़ने पर तुम्हारी सेना में बड़ी हर्ष ध्वनि होने लगी ॥७६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में राजा दुर्योधन के कवच धारण करके युद्ध में प्रस्थान करने का चौरानवेवां अध्याय समाप्त हुआ ।



# पिच्चानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

प्रविष्टयोर्महाराज पार्थवार्ष्णेययो रणे ।
दुर्योधने प्रयाते च पृष्ठतः पुरुषर्षभे ॥१॥
जवेनाऽभ्यद्रवद् द्रोणं महता निःस्वनेन च ।
पाण्डवाः सोमकैः सार्धं ततो युद्धमवर्त्तत ॥२॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! जब इस प्रकार इस घोर संग्राम में कुन्ती-पुत्र अर्जुन और वृष्णिवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण घुस चुके-तो पीछे से वीर-श्रेष्ठ राजा दुर्योधन चल दिया । इधर सोमकों के साथ पाण्डवसेना महान् सिंहनाद करती हुई, बड़े वेगसे द्रोणाचार्य की सेना पर झपटी, जिससे महाभीषण संग्राम का आरम्भ हुआ ।

तद्युद्धमभवत्तीव्रं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च व्यूहस्य पुरतोऽद्भुतम् ॥३॥

इस समय व्यूह के मुख पर ही कौरव और पाण्डवों का बड़ा तीव्र, लोमहर्षण और भीषण युद्ध हुआ ॥३॥

राजन्कदाचिन्नाऽस्माभिर्दृष्टं तादृङ् न च श्रुतम् ।
यादृङ् मध्यगते सूर्ये युद्धमासीद्विशाम्पते ॥४॥

हे विशाम्पते ! हमने तो ऐसा युद्ध न कभी देखा और न सुना-जैसा मध्यान्हकाल में यह युद्ध हो रहा था ॥४॥

धृष्टद्युम्नमुखाः पार्था व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
द्रोणस्य सैन्यं ते सर्वे शरवर्षैरवाकिरन् ॥५॥

इस समय प्रहार करने में कुशल, सेना के व्यूह निर्माण से स्थिर, धृष्टद्युम्न आदि वीर और पाण्डव, द्रोणाचार्य की सेना को बाणवर्षा से व्याकुल करने लगे ॥५॥

वयं द्रोणं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
पार्षतप्रमुखान्पार्थानभ्यवर्षाम सायकैः ॥६॥

हम लोग भी शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य को आगे करके धृष्टद्युम्न आदि पार्षत और पाण्डव वीरों पर बाणों की वर्षा करने लगे ॥६॥

महामेघाविवोदीर्णौ मिश्रवातौ हिमात्यये ।
सेनाग्रे प्रचकाशेते रुचिरे रथभूषिते ॥७॥

शीतकाल के अन्त में वायु से उड़ाये हुए, उमड़ते हुए महामेघों की भांति, रथों विभूषित दोनों सेनाओं के अग्र भाग बड़े ही सुन्दर प्रतीत होते थे ॥७॥

समेत्य तु महासेने चक्रतुर्वेगमुत्तमम् ।
जान्हवीयमुने नद्यौ प्रावृषीवोल्बणोदके ॥८॥

वर्षाकाल में गङ्गा और यमुना के जल का वेग जिस तरह उल्बणता के साथ आगे बढ़ता है, इसी तरह दोनों सेना टकराकर अपना २ वेग दिखाने लगी ॥८॥

नानाशस्त्रपुरोवातो द्विपाश्वरथसंवृतः ।
गदाविद्युन्महारौद्रः संग्रामजलदो महान् ॥९॥

यह युद्ध का मेघ बड़ा ही तीव्र था, जो अनेक ढंग के शस्त्रों के वायु से युक्त, हाथी, अश्व और रथ से मिलकर बना हुआ, गदा रूपी बिजली से महाभीषण हो रहा था ॥९॥

भारद्वाजानिलोद्धूतः शरधारासहस्रवान् ।
अभ्यवर्षन्महासैन्यः पाण्डुसेनाग्निमुद्धतम् ॥१०॥

भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य रूपी वायु के झोकों से सम्पन्न और बाणों की सहस्रों धारा से समन्वित यह कौरव सेना का मेघ, पाण्डु सेनारूपी अग्नि की उद्धत ज्वाला पर बरसने लगा ॥१०॥

समुद्रमिव घर्मान्ते विशन्घोरो महानिलः ।
व्यक्षोभयदनीकानि पाण्डवानां द्विजोत्तमः ॥११॥

हे राजन् ! ग्रीष्म ऋतु के अनन्तर समुद्र में घुसते हुए महा वायु के तुल्य भीषण द्विज-श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य, पाण्डवों की सेना को विक्षोभित करने लगा ॥११॥

तेऽपि सर्वप्रयत्नेन द्रोणमेव समाद्रवन् ।
विभित्सन्तो महासेतुं वार्योघाः प्रबला इव ॥१२॥

पाण्डव भी सब कुछ प्रयत्न करके द्रोणाचार्य पर ऐसे झपटे जैसे प्रबल जल का प्रवाह बड़े भारी पुल को भेद जाता है ॥१२॥

वारयामास तान्द्रोणो जलौघमचलो यथा ।
पाण्डवान्समरे क्रुद्धान्पञ्चालांश्च सकेकयान् ॥१३॥

द्रोणाचार्य ने पर्वत की तरह दृढ़ रह कर पाण्डव रूप जल-वाह को वहीं रोक दिया। इस रण में केकयों के साथ पाञ्चाल बड़े क्रुद्ध हो रहे थे ॥१३॥

अथाऽपरे च राजानः परिवृत्य समन्ततः ।

महाबला रणे शूराः पञ्चालानन्ववारयन् ॥१४॥

इस समय अन्य कौरव पक्ष के राजा भी सब ओर से लौट पड़े। इन महाबली वीरोंने भी रण में पाञ्चालों को आगे नहीं बढ़ने दिया।

ततो रणे नरव्याघ्र पार्षतः पाण्डवैः सह ।

सञ्जघानाऽसकृद् द्रोणं बिभित्सुररिवाहिनीम् ॥१५॥

हे नरव्याघ्र! अब पाण्डवों के साथ पर्षतराजकुमार, शत्रुसेना के भेदने के अभिलाषी सेनापति धृष्टद्युम्न ने लगातार प्रहार करके द्रोण को आहत कर दिया ॥१५॥

यथैव शरवर्षाणि द्रोणो वर्षति पार्षते ।

तथैव शरवर्षाणि धृष्टद्युम्नोऽप्यवर्षत ॥१६॥

जिस ढङ्ग से द्रोणाचार्य, पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न पर बाण वर्षा कर रहा था, उसी तरह सेनापति धृष्टद्युम्न भी द्रोण पर बाणों की झड़ी लगा रहा था ॥१६॥

स निस्त्रिंशपुरोवातः शक्तिप्रासर्ष्टिसंवृतः ।

ज्याविद्युच्चापसंह्रादो धृष्टद्युम्नबलाहकः ॥१७॥

शरधाराश्मवर्षाणि व्यसृजत्सर्वतो दिशम् ।

निघ्नन्रथवराश्वौघान्प्लावयामास वाहिनीम् ॥१८॥

खड्ग रूपी वायु से सम्पन्न, शक्ति, प्रास और ऋष्टि आदि शस्त्र रूपी झोकों से संवृत, धनुष की डोरी रूपी बिजली से

समन्वित, धनुषरूपी गर्जना वाला, धृष्टद्युम्न रूपी मेघ, बाणरूपी ओलों को सब ओर से वर्षा करता हुआ उमड़ता चला आ रहा था। इसने इस समय बड़े २ श्रेष्ठ रथी और अश्वों को मार २ कर बिछा दिया। इस ढंग से यह सारी कुरुसेना को बाणों से आच्छादित करने लगा ॥१७-१८॥

यं यमार्च्छच्छरैर्द्रोणः पाण्डवानां रथव्रजम्।
ततस्ततः शरैर्द्रोणमपाकर्षत पार्षतः ॥१९॥

द्रोणाचार्य, जैसे २ पाण्डवों के रथिसमूह को बाणों से ढ़क रहा था, धृष्टद्युम्न भी उसी तरह बाणों से उसे पीछे धकेल देता था॥

तथा तु यतमानस्य द्रोणस्य युधि भारत।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य त्रिधा सैन्यमभिद्यत ॥२०॥

हे भारत! इस प्रकार द्रोणाचार्य के रण में प्रयत्न करने पर भी कुछ नहीं हुआ। इस समय धृष्टद्युम्न के पास पहुंच कर द्रोणाचार्य की सेना के तीन टुकड़े हो गए ॥२०॥

भोजमेकेऽभ्यवर्त्तन्त जलसन्धं तथाऽपरे।
पाण्डवैर्हन्यमानाश्च द्रोणमेवाऽपरे ययुः ॥२१॥

एक टुकड़ी भोजराज कृतवर्मा के पास रही, एक भाग राजा जलसंध की रक्षा में रहा और तीसरी टुकड़ी द्रोणाचार्य के पास रही। पाण्डवों के आघात से इस प्रकार कौरव सेना छिन्न-भिन्न हो गई ॥२१॥

सङ्घट्टयति सैन्यानि　　तु रथिनां वरः।
व्यधमच्चापि तान्यस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥२२॥

रथिप्रवर द्रोणाचार्य, अपनी सेना को जुटाते थे और महारथी धृष्टद्युम्न उसी तरह फिर बखेर देते थे ॥२२॥

धार्तराष्ट्रास्तथाभूता वध्यन्ते पाण्डुसृञ्जयैः ।
अगोपाः पशवोऽरण्ये बहुभिः श्वापदैरिव ॥२३॥

इस समय पाण्डवों की सेना और सृञ्जयवीर, धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन की सेना को इस ढंग से मार रहे थे, जैसे अरक्षित बहुत से पशुओं को अनेक वन के भयानक जीव वध कर रहे हों ॥२३॥

कालः स्म ग्रसते योधान्धृष्टद्युम्नेन मोहितान् ।
संग्रामे तुमुले तस्मिन्निति सम्मेनिरे जनाः ॥२४॥

इस घोर संग्राम में धृष्टद्युम्न से मोहित किये हुए वीरों को काल आकर ग्रसित कर रहा है-यह बात सब सैनिकों के मन में घर कर गई ॥२४॥

कुनृपस्य यथा राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करैः ।
द्राव्यते तद्वदापन्ना पाण्डवैस्तव वाहिनी ॥२५॥

दुष्ट राजा का राष्ट्र जिस तरह दुर्भिक्ष, व्याधि और चोरों के वश में पड़ जाता है, उसी तरह पाण्डवों से कौरवसेना व्याकुल होकर भाग निकली ॥२५॥

अर्करश्मिविमिश्रेषु शस्त्रेषु कवचेषु च ।
चक्षूंसि प्रत्यहन्यन्त सैन्येन रजसा तथा ॥२६॥

सूर्य किरणों के साथ पाण्डवों की सेना के शस्त्र और कवचों की चमक के मिल जाने से कौरव सेना की आंखें चकाचौंध में आ गईं और उठी हुई रेणु से भी सबकी आंखें भर गईं ॥२६॥

त्रिधाभूतेषु सैन्येषु वध्यमानेषु पाण्डवैः ।
अमर्षितस्ततो द्रोणः पञ्चालान्व्यधमच्छरैः ॥२७॥

जब पाण्डवों ने मार २ कर कौरवसेना के तीन भाग कर दिए-तो उससे द्रोणाचार्य बिगड़ उठा-उसने बाणों से पञ्चालों को बींधना आरम्भ किया ॥२७॥

मृद्नतस्तान्यनीकानि निघ्नतश्चापि सायकैः ।
बभूव रूपं द्रोणस्य कालाग्नेरिव दीप्यतः ॥२८॥

पाण्डवों की सेना का मर्दन करते और बाण छोड़ते हुए द्रोणाचार्य को रूप देदीप्यमान भीषण कलाग्नि के सदृश हो रहा था ॥२८॥

रथं नागं हयं चापि पत्तिनश्च विशाम्पते ।
एकैकेनेषुणा संख्ये निर्बिभेद महारथः ॥२९॥

हे विशाम्पते ! रथ, हाथी, अश्व और पैदल सैनिक में एक भी ऐसा नहीं बचा, जिसको महारथी द्रोण ने अपने बाण से बींध न दिया हो ॥२९॥

पाण्डवानां तु सैन्येषु नाऽस्ति कश्चित्स भारत ।
दधार यो रणे बाणान्द्रोणचापच्युतान्प्रभो ॥३०॥

हे भारत ! पाण्डवों की सेना में एक भी वीर ऐसा दिखाई नहीं देता था, जो रण में द्रोणाचार्य के धनुष से निकले हुए बाणों का सामना कर सके ॥३०॥

तत्पच्यमानमर्केण द्रोणसायकतापितम् ।

बभ्राम पार्षतं सैन्यं तत्र तत्रैव भारत ॥३१॥

हे भरतर्षभ ! इधर तो सूर्य प्रचण्ड होकर तपा रहा था, उधर द्रोणाचार्य के बाणों से पाण्डवसेना व्याकुल हो रही थी। इस तरह पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न की सेना इधर उधर चकराने लगी ॥

तथैव पार्षतेनापि काल्यमानं बलं तव ।

अभवत्सर्वतो दीप्तं शुष्कं वनमिवाऽग्निना ॥३२॥

इधर पर्षतवीर धृष्टद्युम्न ने भी तुम्हारी सेना को इतना ललकारा, कि वह भी अग्नि से प्रदीप्त शुष्क वन की तरह सन्तप्त हो उठी ॥३२॥

बाध्यमानेषु सैन्येषु द्रोणपार्षतसायकैः ।

त्यक्त्वा प्राणान्परं शक्त्या युध्यन्ते सर्वतोमुखाः ॥

द्रोणाचार्य और पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न द्वारा एक दूसरे की सेना के व्याकुल कर देने पर एक दूसरी ओर के वीर अपने २ प्राणों का ध्यान न करके सब ओर से युद्ध कर रहे थे ॥३३॥

तावकानां परेषां च युध्यतां भरतर्षभ ।

नाऽसीत्कश्चिन्महाराज योऽत्याक्षीत्संयुगं भयात् ॥३४॥

हे भरतर्षभ ! तुम्हारे और पाण्डवों के वीरों के इस तरह घोर युद्ध करने पर कोई ऐसा कायर वीर नहीं था, जिसने भय से रणभूमि को छोड़ दिया हो ॥३४॥

भीमसेनं तु कौन्तेयं सोदर्याः पर्यवारयन् ।
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ॥३५॥

हे राजन ! इस समय कुन्ती-पुत्र भीमसेन को सहोदर भ्राता कौरव महारथी विविंशति, चित्रसेन और विकर्ण ने जा घेरा ॥३५॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ क्षेमधूर्त्तिश्च वीर्यवान् ।
त्रयाणां तव पुत्राणां त्रय एवानुयायिनः ॥३६॥

अवन्ती राजकुमार विन्द और अनुविन्द, वीर्यवान् क्षेमधूर्ति, ये तीनों वीर, तुम्हारे तीनों पुत्रों के साथ आगे बढ़े ॥३६॥

बाह्लीकराजस्तेजस्वी कुलपुत्रो महारथः ।
सहसेनः सहामात्यो द्रौपदेयानवारयत् ॥३७॥

क्षत्रियों के वीर कुल में उत्पन्न, तेजस्वी, महारथी, बाल्हीकराज ने अपने मन्त्री और सेना के साथ द्रौपदी-पुत्रों को रोका ॥३७॥

शैब्यो गोवासनो राजा योधैर्दशशतावरैः ।
काश्यस्याऽभिभुवः पुत्रं पराक्रान्तमवारयत् ॥३८॥

गोवासन राजा शैव्य ने एक सहस्र योद्धा लेकर काशी के राजा महापराक्रमी अभिभू के पुत्र को जा घेरा ॥३८॥

अजातशत्रुं कौन्तेयं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मद्राणामीश्वरः शल्यो राजा राजानमावृणोत् ॥३९॥

अग्नि के समान देदीप्यमान कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर को भद्रदेश के अधिपति राजा शल्य ने रोका ॥३९॥

दुःशासनस्त्ववस्थाप्य स्वमनीकममर्षणः ।
सात्यकिं प्रययौ क्रुद्धः शूरो रथवरं युधि ॥४०॥

हे राजन्! क्रोध में भरे हुए शूरवीर दुःशासन ने अपनी सेना को ठीक २ खड़ी करके महारथी सात्यकि पर आक्रमण किया ॥

स्वकेनाऽहमनीकेन सन्नद्धः कवचावृतः ।
चतुःशतैर्महेष्वासैश्चेकितानमवारयम् ॥४१॥

मैं भी कवच धारण करके बहुत कुछ तय्यार था। मैं चार सौ धनुर्धर साथ लेकर चेकितान पर झपटा ॥४१॥

शकुनिस्तु सहानीको माद्रीपुत्रमवारयत् ।
गान्धारकैः सप्तशतैश्चापशक्त्यसिपाणिभिः ॥४२॥

अपनी सेना के साथ शकुनि ने चाप, शक्ति और खड्गधारी सात सौ गान्धारवीर साथ लेकर माद्री-पुत्र नकुल पर आक्रमण किया ॥४१॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम् ।
प्राणांस्त्यक्त्वा महेष्वासौ मित्रार्थेऽभ्युद्यतायुधौ ॥४३॥

विन्द और अनुविन्द ने मत्स्यदेशाधिपति विराट पर आक्रमण किया। इन दोनों धनुर्धर वीरों ने शस्त्र उठा कर और प्राणों की अपेक्षा (परवाह) न कर अपने मित्र दुर्योधन के निमित्त युद्ध करना आरम्भ किया ॥४३॥

शिखण्डिनं याज्ञसेनिं रुन्धानमपराजितम् ।
बाह्लीकः प्रतिसंयत्तः पराक्रान्तमवारयत् ॥४४॥

महापराक्रमी, किसी से पराजित नहीं होने वाले, सबके रोकने में समर्थ, यज्ञसेन (द्रुपद) के पुत्र शिखण्डी को बड़ी सावधानी से चलने वाले, बाल्हीक ने रोका ॥४४॥

धृष्टद्युम्नं तु पाञ्चाल्यं क्रूरैः सार्धं प्रभद्रकैः ।
आवन्त्यः सह सौवीरैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥४५॥

बड़ी क्रूर प्रभद्रक सेना के साथ आगे बढ़ते हुए पाञ्चाल वीर क्रोधातुर धृष्टद्युम्न को सौ वीरों की सेना को साथ लेकर अवन्ती-राजकुमार रोकने को आगे बढ़ा ॥४५॥

घटोत्कचं तथा शूरं राक्षसं क्रूरकर्मिणम् ।
अलायुधोऽद्रवत्तूर्णं क्रुद्धमायान्तमाहवे ॥४६॥

क्रोध में भर कर आगे बढ़ते हुए क्रूरकर्मा राक्षसराज घटोत्कच को बड़ी शीघ्रता से अलायुध ने रोका ॥४६॥

अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं कुन्तिभोजो महारथः ।
सैन्येन महता युक्तः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥४७॥

दूसरी ओर क्रोधातुर राक्षस अलम्बुष कौरवों की ओर से आगे बढ़ा। उसको महारथी कुन्तीभोज ने बड़ी भारी सेना लेकर रोका।

सैन्धवः पृष्ठतस्त्वासीत्सर्वसैन्यस्य भारत ।
रक्षितः परमेष्वासैः कृपप्रभृतिभी रथैः ॥४८॥

हे भारत ! सिन्धुराज जयद्रथ इन सब सेनाओं के पीछे था। इसकी महाधनुर्धर कृपाचार्य आदि अनेक महारथी रक्षा कर रहे थे

तस्याऽऽस्तां चक्ररक्षौ द्वौ सैन्धवस्य वृहत्तमौ ।
द्रौणिर्दक्षिणतो राजन्सूतपुत्रश्च वामतः ॥४६॥

हे राजन्! इस समय राजा जयद्रथ के दो बड़े वीर चक्र-रक्षक बने हुए थे। दांयी ओर तो द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा और बांयी ओर सूत-पुत्र कर्ण थे ॥४६॥

पृष्ठगोपास्तु तस्याऽऽसन्सौमदत्तिपुरोगमाः ।
कृपश्च वृषसेनश्च शलः शल्यश्च दुर्जयः ॥५०॥
नीतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ।
सैन्धवस्य विधायैवं रक्षां युयुधिरे ततः ॥५१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे
पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

इसकी पृष्ठ के रक्षक अन्य सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा आदि योद्धा थे। कृपाचार्य, वृषसेन, शल, दुर्जय शल्य आदि महारथी, सिन्धुराज की रक्षा में तत्पर होकर युद्ध कर रहे थे। ये सारे ही युद्धविद्या में कुशल, महाधनुर्धर और नीतिमान् थे ॥५०-५१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में घोर युद्ध का पिचानवेवां अध्याय समाप्त हुआ।



# छियानवेवां अध्याय

राजन्संग्राममाश्चर्यं शृणु कीर्तयतो मम।
कुरूणां पाण्डवानां च यथा युद्धमवर्तत ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! आप कौरव और पाण्डवों के इस आश्चर्यजनक युद्ध को सुनो-जो उनमें हुआ है। मैं आपको उसे सुनाता हूँ ॥१॥

भारद्वाजं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम्।
अयोधयन् रणे पार्था द्रोणानीकं बिभित्सवः ॥२॥

हे भारत! पाण्डव, द्रोणाचार्य के शकटव्यूह को छिन्न-भिन्न कर देना चाहते थे, अतएव वे व्यूह के मुख पर स्थित भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य के समीप पहुंच कर युद्ध करने लगे ॥२॥

रक्षमाणः स्वकं व्यूहं द्रोणोऽपि सह सैनिकैः।
अयोधयद्रणे पार्थान्प्रार्थयानो महद्यशः ॥३॥

आचार्य द्रोण भी इस युद्ध में अपने विजयरूप महान् यश की लालसा में निमग्न थे। उन्होंने रण में अपने व्यूह की रक्षा करते हुए पाण्डवों से युद्ध करना आरम्भ किया ॥३॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं दशभिः शरैः।
आजघ्नतुः सुसंक्रुद्धौ तव पुत्रहितैषिणौ ॥४॥

हे महाराज ! तुम्हारे पुत्र के हित में तत्पर अवन्ती राजकुमार विन्दानुविन्द ने दश बाण छोड़कर राजा विराट को आहत किया। ये दोनों बड़े क्रोध में भरे हुए थे ॥४॥

विराटश्च महाराज तावुभौ समरे स्थितौ ।
पराक्रान्तौ पराक्रम्य योधयामास सानुगौ ॥५॥

हे भारत ! राजा विराट ने भी इन पराक्रमी, रण में बड़ी वीरता से सेना सहित स्थित, विन्द और अनुविन्द से बड़े पराक्रम के साथ युद्ध करना आरम्भ किया ॥५॥

तेषां युद्धं समभवद्दारुणं शोणितोदकम् ।
सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने ॥६॥

इन तीनों वीरों का बड़ा दारुण युद्ध हुआ, जिसमें रुधिर की कीचड़ हो गई। यह युद्ध वन में मदोत्कट दो हाथियों के साथ सिंह के सदृश हो रहा था ॥६॥

बाल्हीकं रभसं युद्धे याज्ञसेनिर्महाबलः ।
आजघ्ने विशिखैस्तीक्ष्णैर्घोरैर्मर्मास्थिभेदिभिः ॥७॥

बड़े वेग से आगे बढ़ने वाले बाल्हीकराज को यज्ञसेन के महाबली पुत्र शिखण्डी ने मर्मस्थल और अस्थियों के भेद देने वाले तीक्ष्ण बाणों से आहत कर दिया ॥७॥

बाल्हीको याज्ञसेनिं तु हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः ॥८॥

बाल्हीकराज भी क्रोध में जल रहे थे। उन्होंने सुवर्ण मूल से सुन्दर नतपर्ववाले, शिला पर तीक्ष्ण किए हुए नौ बाणों से बड़े आवेश में आघात किया ॥८॥

तद्युद्धमभवद्घोरं शरशक्तिसमाकुलम् ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥९॥

यह युद्ध बड़ा भीषण था, कि जिसमें बाण और शक्ति आदि शस्त्रों का बहुत ही अधिक प्रयोग हो रहा था। इसको देखकर कायरों को भय और वीरों को उत्साह होता था ॥९॥

ताभ्यां तत्र शरैर्मुक्तैरन्तरिक्षं दिशस्तथा ।
अभवत्संवृत्तं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥१०॥

इन दोनों पक्ष के वीरों ने इतने बाण छोड़; कि जिससे आकाश और सारी दिशाएँ भर गईं। रणभूमि में अन्य कुछ भी ज्ञात नहीं होता था ॥१०॥

शैब्यो गोवासनो युद्धे काश्य त्रं महारथम् ।
ससैन्यो योधयामास गजः प्रतिगजं यथा ॥११॥

गोवासन शैव्य भी अपनी सेना लेकर एक हाथी से दूसरे की भांति महारथी काशीराज-पुत्र से भिड़ गया ॥११॥

बाल्हीकराजः संक्रुद्धो द्रौपदेयान्महारथान् ।
मनः पञ्चेन्द्रियाणीव शुशुभे योधयन्रणे ॥१२॥

हे राजन्! क्रोधाविष्ट, बाल्हीकराज, रणाङ्गण में द्रौपदी के पांचों महारथी पुत्रों से इस तरह टक्कर लेता हुआ सुशोभित हो

रहा था जैसे-साधुपुरुष का मन साधना के समय पांचों इन्द्रियों से भगड़ता हुआ सुशोभित होता है ॥१२॥

अयोधयंस्ते सुभृशं तं शरौघैः समन्ततः ।
इन्द्रियार्था यथा देहं शश्वद्देहवतां वर ॥१३॥

हे मनुजश्रेष्ठ ! महारथी द्रौपदी पुत्र भी अपने बाण समूह को छोड़ते हुए बड़ी वीरता से युद्ध करने लगे, जैसे-इन्द्रियों के अर्थ, शब्द स्पर्शादि, देह को क्लेश देते हैं ॥१३॥

वार्ष्णेयं सात्यकिं युद्धे पुत्रो दुःशासनस्तव ।
आजघ्ने सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥१४॥

हे राजन् ! आपका पुत्र दुःशासन वृष्णिवंशोत्पन्न सात्यकि से युद्ध करने आगे बढ़ा । इसने तीक्ष्ण, नतपर्व वाले नौ बाण सात्यकि पर छोड़े ॥१४॥

सोतिविद्धो बलवता महेष्वासेन धन्विना ।
ईषन्मूर्च्छां जगामाऽऽशु सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥

महाधनुर्धर, लक्ष्य भेदने में कुशल, बलवान् दुःशासन द्वारा विद्ध हुआ, महापराक्रमी सात्यकि साधारण सी मूर्च्छा को प्राप्त हो गया ॥१५॥

समाश्वस्तस्तु वार्ष्णेयस्तव पुत्रं महारथम् ।
विव्याध दशभिस्तूर्णं सायकैः कङ्कपत्रिभिः ॥१६॥

हे भारत ! थोड़ी ही देर में जब वृष्णिश्रेष्ठ सात्यकि को चेतनता प्राप्त हुई-तो उसने कङ्कपत्रधारी दश बाणों से दुःशासन को आहत कर दिया ॥१६॥

तावन्योन्यं दृढं विद्धावन्योन्यशरपीडितौ ।
रेजतुः समरे राजन्पुष्पिताविव किंशुकौ ॥१७॥

हे राजन ! एक दूसरे के बाण से ये दोनों महारथी वीर बहुत ही व्याहत हो गए। ये दोनों रणाङ्गण में खिले हुए किंशुक (ढाक) के वृक्ष से लाल प्रतीत होते थे ॥१७॥

अलम्बुषस्तु संक्रुद्धः कुन्तिभोजशरार्दितः ।
अशोभत भृशं लक्ष्म्या पुष्पाढ्य इव किंशुकः ॥१८॥

इधर अलम्बुष राक्षसराज भी कुन्तिभोज के बाणों से आहत होकर पुष्पों से भरे हुए किंशुक वृक्ष की भांति युद्ध की शोभा से सुशोभित हुआ ॥१८॥

कुन्तिभोजं ततो रक्षो विध्वा बहुभिरायसैः ।
अनदद्भैरवं नादं वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥१९॥

यह राक्षसराज अलम्बुष भी अपने बहुत से लोहमय बाणों से राजा कुन्तिभोज को बींध कर तुम्हारी सेना के मुख पर खड़ा हुआ भीषण नाद करने लगा ॥१९॥

ततस्तौ समरे शूरौ योधयन्तौ परस्परम् ।
ददृशुः सर्वसैन्यानि शक्रजम्भौ यथा पुरा ॥२०॥

अब ये दोनों शूरवीर, रण में युद्ध करते हुए सारी सेना को इन्द्र और जम्भासुर से प्रतीत होते थे ॥२०॥

शकुनिं रभसं युद्धे कृतवैरं च भारत ।
माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ शरैश्चाऽर्दयतां भृशम् ॥२१॥
तुमुलः स महान्राजन्प्रावर्त्तत जनक्षयः ।

हे भारत ! बड़े वेग से युद्ध करने वाले, दृढ़ वैरधारी, शकुनि से दोनों माद्री-पुत्र नकुल और सहदेव भिड़ रहे थे। क्रोधातुर होकर इन दोनों ने शकुनि को अपने बाणों से बड़ा ही व्याकुल कर दिया। हे महाराज ! अब बड़ा ही भीषण जन संहार होने लगा।

त्वया सञ्जनितोऽत्यर्थं कर्णेन च विवर्धितः ॥२२॥
रक्षितस्तव पुत्रैश्च क्रोधमूलो हुताशनः ।
य इमां पृथिवीं राजन्दग्धुं सर्वां समुद्यतः ॥२३॥

हे राजन् ! तुमने जिसे अच्छी तरह उत्पन्न किया, कर्ण ने जिसे बढ़ाया, तुम्हारे पुत्र दुर्योधनादि ने जिसकी रक्षा की, वह क्रोधरूपी अग्नि, आज इस सारी पृथिवी को दग्ध करने को उद्यत हो गया है ॥२२-२३॥

शकुनिः पाण्डुपुत्राभ्यां कृतः स विमुखः शरैः ।
न स्म जानाति कर्त्तव्यं युद्धे किञ्चित्पराक्रमम् ॥२४॥

पाण्डु-पुत्र नकुल और सहदेव ने अपने बाणों से शकुनि को विमुख कर दिया। वह इस समय किसी कर्तव्य को निश्चित न कर सका और न कोई रण में पराक्रम दिखा सका ॥२४॥

विमुखं चैनमालोक्य माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
ववर्षतुः पुनर्बाणैर्यथा मेघौ महागिरिम् ॥२५॥

इसको रण से विमुख देखकर महारथी माद्री-पुत्र, फिर महापर्वत पर मेघवर्षा की भांति बाणों की वर्षा करने लगे ॥२५॥

स वध्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
संप्रायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणानीकाय सौबलः ॥२६॥

नकुल और सहदेव के सन्नतपर्वधारी बहुत से बाणों से आहत होकर सुबल-पुत्र शकुनि, बड़े वेगवाले अश्वों से रणभूमि से द्रोणाचार्य की सेना की ओर निकल गया ॥२६॥

घटोत्कचस्तथा शूरं राक्षसं तमलायुधम् ।
अभ्ययाद्भृशं युद्धे वेगमास्थाय मध्यमम् ॥२७॥

घटोत्कच ने भी उस शूरवीर, तीव्र वेग वाले अलायुध नामक राक्षसराज पर मध्यम वेग के साथ आक्रमण किया ॥२७॥

तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाऽभवत् ।
यादृशं हि पुरा वृत्तं रामरावणयोर्मृधे ॥२८॥

हे महाराज ! इन दोनों राक्षसराजों का बड़ा ही विचित्र युद्ध हुआ, जैसा पूर्वकाल में राम रावण का हुआ था ।२८॥

ततो युधिष्ठिरो राजा मद्रराजानमाहवे ।
विध्वा पञ्चाशता बाणैः पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥२९॥

अब राजा युधिष्ठिर ने रण में पचास बाणों से राजा शल्य को बींध कर फिर सात बाणों से उसे आहत कर दिया ॥२९॥

ततः प्रववृते युद्धं तयोरत्यद्भुतं नृप !
यथा पूर्वं महद्युद्धं शम्बरामरराजयोः ॥३०॥

हे नृपसत्तम ! अब इन दोनों का बड़ा अद्भुत युद्ध चल पड़ा, जैसा पूर्वकाल में इन्द्र और शम्बरासुर का युद्ध हुआ था ॥३०॥

विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च तवाऽऽत्मजः ।
अयोधयन्भीमसेनं महत्या सेनया वृताः ॥३१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

हे भारत ! तुम्हारे पुत्र विविंशति, चित्रसेन और विकर्ण, बड़ी भारी सेना लेकर भीमसेन से लड़ने को प्रवृत्त हुए ॥३१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में द्वन्द्वयुद्ध का छियानवेवां अध्याय समाप्त हुआ

---

# सत्तानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तथा तस्मिन्प्रवृत्ते तु संग्रामे लोमहर्षणे ।
कौरवेयांस्त्रिधा भूतान्पाण्डवाः समुपाद्रवन् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! जब इस प्रकार लोमों का हर्षित कर देने वाला संग्राम चल पड़ा—तो तीन भागों में बँटे हुए कौरवों पर पाण्डवों ने आक्रमण किया ॥१॥

जलसन्धं महाबाहुं भीमसेनोऽभ्यवर्त्तत ।
युधिष्ठिरः सहानीकः कृतवर्माणमाहवे ॥२॥

महाबाहु जलसन्ध पर भीमसेन ने आक्रमण किया। इसी रण में सेना को साथ लिए धर्मराज युधिष्ठिर बाणवर्षा करते हुए कृतवर्मा पर झपटे ॥२॥

किरंस्तु शरवर्षाणि रोचमान इवांऽशुमान् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमभ्यद्रवद्रणे ॥३॥

हे महाराज ! किरणों को फैंकने वाले चमकते हुए सूर्य की तरह बाण वर्षा करता हुआ पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न, आचार्य द्रोण पर चढ़ दौड़ा ॥३॥

ततः प्रववृत्ते युद्धं त्वरतां सर्वधन्विनाम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च संक्रुद्धानां परस्परम् ॥४॥

इसके अनन्तर एक दूसरे पर क्रोध करते हुए, शीघ्रताकारी इन सारे धनुर्धर कौरव और पाण्डवों में भीषण युद्ध होने लगा।

संक्षये तु तथा भूते वर्त्तमाने महाभये ।
द्वन्द्वीभूतेषु सैन्येषु युध्यमानेष्वभीतवत् ॥५॥

हे राजन् ! इस प्रकार जनसंहार के प्रवृत्त होने और महाभय के उपस्थित होने पर तथा दोनों ओर की सेनाओं के मुठभेड़ हो जाने पर निर्भीकता से युद्ध होने लगा ॥५॥

द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण बली बलवता सह ।
यदक्षिपत्पृषत्कौघांस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥६॥

बलवान् आचार्य द्रोण, महाबली पाञ्चालराज के पुत्र धृष्टद्युम्न के साथ भिड़कर बाणों का जाल छोड़ने लगा, जो बहुत ही अद्भुत कर्म था ॥६॥

पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
चक्राते द्रोणपञ्चाल्यौ नृणां शीर्षाण्यनेकशः ॥७॥

अब आचार्य द्रोण और पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न ने सब ओर कमल वन के तुल्य सेना समूह का विध्वंस कर डाला। जिस ओर देखो-उधर ही बहुत से शिर ही शिर दिखाई देते थे ॥७॥

विनिकीर्णानि वीराणामनीकेषु समन्ततः ।
वस्त्राभरणशस्त्राणि ध्वजवर्मायुधानि च ॥८॥

बड़े २ वीरों के सेना की टुकड़ियों में सब ओर सैनिकों के वस्त्र, आभूषण, शस्त्र, ध्वजा, कवच और अस्त्र पड़े हुए दिखाई दे रहे थे ॥८॥

तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसङ्घाः सविद्युतः ॥९॥

तपाये हुए सुवर्ण द्वारा निर्मित रुधिर में भीगे हुए, कवच, बिजली से समन्वित मेघ समूह से दिखाई पड़ते थे ॥९॥

कुञ्जराश्वनरानन्ये पातयन्ति स्म पत्रिभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः ॥१०॥

ये महारथी, तालवृक्ष के तुल्य विशाल २ धनुषों को खैंच २ कर छोड़े हुए तीखे बाणों से हाथी, अश्व और वीरों को मार २ कर गिराने लगे ॥१०॥

असिचर्माणि चापानि शिरांसि कवचानि च ।
विप्रकीर्यन्त शूराणां सम्प्रहारे महात्मनाम् ॥११॥

इस महाघोर युद्ध में महावीरों के खड्ग, ढाल, धनुष, शिर और कवच सब ओर बिखरे हुए दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥११॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन्परमसंकुले ॥१२॥

हे महाराज ! इस महाभीषण रणाङ्गण में अगणित कबन्ध (रुण्ड) सब ओर दौड़ते दिखाई दे रहे थे ॥१२॥

गृध्राः कङ्का बकाः श्येना वायसा जम्बुकास्तथा ।
बहुशः पिशिताशाश्च तत्राऽदृश्यन्त मारिष ।

हे आर्यगुणसम्पन्न ! राजन् ! गीध, कङ्क, बक, श्येन, वायस, गीदड़ आदि अनेक मांसभक्षक जन्तु रणभूमि में सर्वत्र दिखाई दे रहे थे ॥१३॥

भक्षयन्तश्च मांसानि पिबन्तश्चाऽपि शोणितम् ।
विलुम्पन्तश्च केशांश्च मज्जाश्च बहुधा नृप ॥१४॥

हे नृप ! ये जन्तु, मांस खा रहे थे और रुधिर पीते जाते थे । इन्होंने मृतकों के बाल दूर फैंक दिए और ये उनकी मज्जा को चाट गए ॥१४॥

आकर्षन्तः शरीराणि शरीरावयवांस्तथा ।
नराश्वगजसङ्घानां शिरांसि च ततस्ततः ॥१५॥

रणभूमि में सब ओर मांसभोजी जन्तु, अश्व आदि वाहन और वीरों के शरीर तथा शरीरों के अङ्गों को एवं नर, अश्व और गजसमूह के मस्तकों को इधर उधर खैंच रहे थे ॥१५॥

कृतास्त्रा रणदीक्षाभिर्दीक्षिता रणशालिनः ।
रणे जयं प्रार्थयाना भृशं युयुधिरे तदा ॥१६॥

इस समय रणदीक्षा से दीक्षित, रणविद्या में कुशल, अस्त्र विद्या के ज्ञाता वीर, अपनी २ जय चाहते हुए बड़ी शक्ति लगा कर लड़ रहे थे ॥१६॥

असिमार्गान्बहुविधान्विचेरुः सैनिका रणे ।
ऋष्टिभिः शक्तिभिः प्रासैः शूलतोमरपट्टिशैः ॥१७॥
गदाभिः परिघैश्चाऽन्यैरायुधैश्च भुजैरपि ।
अन्योन्यं जघ्निरे क्रुद्धा युद्धरङ्गगता नराः ॥१८॥

रणभूमि में बहुत से सैनिक अनेक प्रकार के तलवार के हाथ दिखा रहे थे। ऋष्टि, शक्ति, प्रास, शूल, तोमर, पट्टिश, गदा, परिघ तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र और भुजाओं से एक दूसरे पर प्रहार करते थे। वीर लोग युद्ध रूपी रङ्गमञ्च पर नट का सा कार्य दिखा रहे थे ॥१८॥

रथिनो रथिभिः सार्धमश्वारोहाश्च सादिभिः ।
मातङ्गा वरमातङ्गैः पदाताश्च पदातिभिः ॥१९॥

हे राजन् ! अब रथियों के साथ रथी, घुड़सवारों के साथ घुड़सवार, हाथियों के साथ उत्तम हाथी, पैदलों के साथ पैदल टक्कर ले रहे थे ॥१६॥

क्षीबा इवाऽन्ये चोन्मत्ता रङ्गेष्विव च वारणाः ।
उच्चुक्रुशुरथाऽन्योन्यं जघ्नुरन्योन्यमेव च ॥२०॥

बड़े पुष्ट, मदोन्मत्त, गजराज, रणाङ्गण भूमि में एक दूसरे के ऊपर गर्जना के साथ झपट कर चोट पहुंचा रहे थे ॥२०॥

वर्तमाने यथा युद्धे निर्मर्यादे विशाम्पते ।
धृष्टद्युम्नो हयानश्वैर्द्रोणस्य व्यत्यमिश्रयत् ॥२१॥

हे विशाम्पते ! इस युद्ध में सब मर्यादा छोड़कर प्रवृत्त होने पर सेनापति धृष्टद्युम्न ने अपने अश्वों को द्रोणाचार्य के अश्वों पर छोड़ा-जो परस्पर रलमिल गए ॥२१॥

ते हयाः साध्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः ।
पारावतसवर्णाश्च रक्तशोणाश्च संयुगे ॥२२॥

वायु के समान वेगशील, परस्पर मिले हुए पारावत (कबूतर) वर्ण और लाल वर्ण के अश्व, रणस्थली में बड़े ही सुशोभित हो रहे थे ॥२२॥

पारावतसवर्णास्ते रक्तशोणविमिश्रिताः ।
हयाः शुशुभिरे राजन्मेघा इव सविद्युतः ॥२३॥

हे राजन् ! धृष्टद्युम्न के पारावत कबूतर के वर्ण के अश्व और चमकीले द्रोण के लाल अश्व, बिजली से सम्पन्न मेघ के सदृश सुन्दर दिखाई देते थे ॥२३॥

धृष्टद्युम्नस्तु सम्प्रेक्ष्य द्रोणमभ्याशमागतम् ।
असिचर्माऽऽददे वीरो धनुरुत्सृज्य भारत ॥२४॥

हे भारत ! जब धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को अपने समीप आये हुए देखा-तो वीर धृष्टद्युम्न ने धनुष छोड़कर ढाल तलवार उठा ली

चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म पार्षतः परवीरहा ।
ईषया समतिक्रम्य द्रोणस्य रथमाविशत् ॥२५॥

शत्रुवीरनाशक, पर्षतवंशश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न दुष्कर कर्म कर दिखाने की इच्छा से उलांघ कर ईषा (रथाग्रभाग) के द्वारा द्रोणाचार्य के रथ पर चढ़ गया ॥२५॥

अतिष्ठद्युगमध्ये स युगसन्नहनेषु च ।
जघानाऽर्धेषु चाश्वानां तत्सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥२६॥

वहां वह रथ के जुये तथा रथ के सन्नहन (सारथि से अग्र भाग) पर स्थित होकर अश्वों पर प्रहार करने लगा। इस बात को देखकर सैनिक, धृष्टद्युम्न की प्रशंसा करने लगे ॥२६॥

खड्गेन चरतस्तस्य शोणाश्वानधितिष्ठतः ।
न ददर्शाऽन्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥२७॥

द्रोण के लाल अश्वों पर चढ़े हुए और करवाल (तलवार) चलाते हुए धृष्टद्युम्न के बीच में कोई अन्तर द्रोणाचार्य को

दिखाई नहीं देता था, कि वह प्रहार कर सके। यह आक्रमण बड़ा ही अद्भुत माना गया ॥२७॥

यथा श्येनस्य पतनं वनेष्वामिषगृद्धिनः ।
तथैवाऽऽसीदभीसारस्तस्य द्रोणं जिघांसतः ॥२८॥

हे राजन् ! मांसलोलुप, श्येन (बाज) का वन में जैसे आक्रमण होता है, उसी तरह द्रोणाचार्य के वध की इच्छा से, किये गए धृष्टद्युम्न का यह भीषण आक्रमण था ॥२८॥

ततः शरशतेनाऽस्य शतचन्द्रं समाक्षिपत् ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य खड्गं च दशभिः शरैः ॥२९॥

अब द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न की ढाल पर सैंकड़ों बाण छोड़े और दश बाणों से उसकी तलवार काट गिराई ॥२९॥

हयांश्चैव चतुःषष्ट्या शराणां जघ्निवान्बली ।
ध्वजं छत्रं च भल्लाभ्यां तथा तौ पार्ष्णिसारथी ॥

महाबली द्रोण ने चौसठ बाण धृष्टद्युम्न के अश्वों पर फैंके तथा ध्वजा, छत्र और पार्ष्णिरक्षकों को दो २ बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया ॥३०॥

अथाऽस्मै त्वरितो बाणमपरं जीवितान्तकम् ।
आकर्णपूर्णं चिक्षेप वज्रं वज्रधरो यथा ॥३१॥

अब द्रोणाचार्य ने बड़ी शीघ्रता से धृष्टद्युम्न के जीवन का अन्त कर देने वाला बाण, कान तक धनुष को खैंच कर वज्र को वज्र-धारी इन्द्र के सदृश छोड़ा ॥३१॥

तं चतुर्दशभिस्तीक्ष्णैर्बाणैश्चिच्छेद सात्यकिः ।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नं व्यमोचयत् ॥३२॥

सात्यकि ने उस बाण को अपने चौदह तीक्ष्ण बाण छोड़कर काट डाला और इस तरह आचार्य द्रोण के चक्कर में फंसे हुए धृष्टद्युम्न को उसने छुड़ा लिया ॥३२॥

सिंहेनेव मृगं ग्रस्तं नरसिंहेन मारिष ।
द्रोणेन मोचयामास पाञ्चाल्यं शिनिपुङ्गवः ॥३३॥

हे आर्य ! सिंह के चंगुल में फंसे हुए मृग की तरह नरश्रेष्ठ द्रोणाचार्य के पंजों में फंसे हुए पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न को शिनिवंशश्रेष्ठ सात्यकि ने बचा लिया ॥३३॥

सात्यकिं प्रेक्ष्य गोप्तारं पाञ्चाल्यं च महाहवे ।
शराणां त्वरितो द्रोणः षड्विंशत्या समार्पयत् ॥३४॥

इस भीषण युद्ध में आचार्य ने महारथी सात्यकि को पाञ्चालराजकुमार का रक्षक देखकर तथा पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न को इस ढंग से आक्रमण करते देखकर उसने बड़ी शीघ्रता से छब्बीस बाण छोड़े ॥३४॥

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो ग्रसन्तमपि सृञ्जयान् ।
प्रत्यविध्यच्छितैर्बाणैः षड्विंशत्या स्तनान्तरे ॥३५॥

जब शिनि-पौत्र सात्यकि ने सृञ्जयों को ग्रसते हुए द्रोण को देखा, तो उसने भी छब्बीस तीक्ष्ण बाण द्रोणाचार्य की छाती में मारे ॥३५॥

ततः सर्वे रथास्तूर्णं पाञ्चाल्या जयगृद्धिनः ।
सात्वताभिसृते द्रोणे धृष्टद्युम्नमवाक्षिपन् ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणधृष्टद्युम्नयुद्धे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥६७॥

अब विजयाभिलाषी, पाञ्चालवीर, सात्वतवंशोद्भव सात्यकि को द्रोणाचार्य से लड़ता देखकर वे धृष्टद्युम्न को दूसरी ओर ले गए।

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में द्रोण और धृष्टद्युम्न के युद्ध का सत्तानवेवां अध्याय पूरा हुआ।

## अट्ठानवेवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

बाणे तस्मिन्निकृते तु धृष्टद्युम्ने च मोचिते।
तेन वृष्णिप्रवीरेण युयुधानेन सञ्जय ॥१॥

अमर्षितो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
नरव्याघ्रः शिनेः पौत्रे द्रोणः किमकरोद्युधि ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले–हे सञ्जय ! द्रोणाचार्य के भयङ्कर बाण को काट देने और धृष्टद्युम्न के वृष्णिवंशोद्भव सात्यकि द्वारा छुड़ा देने पर क्रोध में भरे हुए समस्त धनुषधारियों में श्रेष्ठ, महाधनुर्धर, वीर-

श्रेष्ठ, द्रोण ने युद्ध में सात्यकि के साथ क्या कर्म करके दिखाया- मुझे यह सुनाओ ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

सम्प्रद्रुतः क्रोधविषो व्यादितास्यशरासनः ।
तीक्ष्णधारेषुदशनः सितनाराचदंष्ट्रवान् ॥३॥
संरम्भामर्षताम्राक्षो महोरग इव श्वसन् ।
नरवीरः प्रमुदितः शोणैरश्वैर्महाजवैः ॥४॥
उत्पतद्भिरिवाऽऽकाशे क्रामद्भिरिव पर्वतम् ।
रुक्मपुङ्खाञ्शरानस्यन्युयुधानमुपाद्रवत् ॥५॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! क्रोधरूपी विष से भरे हुए, धनुषरूपी खोले हुए मुख से युक्त, तीक्ष्ण धार वाले बाणों रूपी दांतों से समन्वित, श्वेत बाणों की दाढ़ों वाले, क्रोध से लाल २ नेत्र धारी, महासर्प की तरह श्वास लेते हुए, नरवीर द्रोणाचार्य, महा वेग-शाली लाल अश्वों के द्वारा वेग से दौड़े। अब ये आकाश में उड़ना और पर्वतों का उल्लंघन करना सा चाह रहे थे। द्रोणाचार्य सुवर्ण मूलधारी बहुत से बाण छोड़ता हुआ सात्यकि पर बड़े वेग से झपटा ॥३-५॥

शरपातमहावर्षं रथघोषबलाहकम् ।
कार्मुकाकर्षविक्षेपं नाराचबहुविद्युतम् ॥६॥
शक्तिखड्गाशनिधरं क्रोधवेगसमुत्थितम् ।
द्रोणमेघमनावार्यं हयमारुतचोदितम् ॥७॥

दृष्ट्वैवाऽभिपतन्तं तं शूरः परपुरञ्जयः ।
उवाच सूतं शैनेयः प्रहसन्युद्धदुर्मदः ॥८॥

द्रोणाचार्य की बाणवर्षा जलधारा सी पड़ रही थी । रथ की ध्वनि, मेघों की गर्जना के समान थी । धनुष का खैंचना बिजली सा प्रतीत होता था । बहुत से बाण; बिजली की तरह सरसरा रहे थे । शक्ति और खड्ग वज्र सा कड़क रहा था । क्रोध का वेग था । इस प्रकार किसी से नहीं रुकनेवाला द्रोण रूपी मेघ चढ़ा चला आता था । अश्व रूपी वायु, इस मेघ को उड़ा रहे थे इस प्रकार द्रोण रूपी मेघ को उमड़ते देख कर युद्ध में दुर्मद, शत्रु-पुरनाशक सात्यकि भी हंसता २ अपने सारथिसे कहने लगा।

एनं वै ब्राह्मणं शूरं स्वकर्मण्यनवस्थितम् ।
आश्रयं धार्त्तराष्ट्रस्य राज्ञो दुःखभयापहम् ॥९॥
शीघ्रं प्रजवितैरश्वैः प्रत्युद्याहि प्रहृष्टवत् ।
आचार्यं राजपुत्राणां सततं शूरमानिनम् ॥१०॥

हे सूत ! तुम अपने ब्रह्म कर्म के परित्यागी, धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन के आश्रयभूत, राजा दुर्योधन के भय और दुःख के नाशक, राजकुमारों के आचार्य, सदा योद्धा होने के अभिमान में चूर, इस ब्राह्मण महावीर पर बड़ी प्रसन्नता से मेरे वेगशील अश्वों द्वारा आक्रमण करो ॥९-१०॥

ततो रजतसङ्काशा माधवस्य हयोत्तमाः ।
द्रोणस्याऽभिमुखाः शीघ्रमगच्छन्वातरंहसः ॥११॥

अब यदुवंशोद्भव सात्यकि के चांदी के सदृश श्वेत अश्व, द्रोणाचार्य की ओर वायु के वेग की समानता करते हुए बड़ी शीघ्रता से झपटे ॥११॥

ततस्तौ द्रोणशैनेयौ युयुधाते परन्तपौ ।
शरैरनेकसाहस्रैस्ताडयन्तौ परस्परम् ॥१२॥

अब द्रोणाचार्य और सात्यकि का परस्पर युद्ध होने लगा। ये दोनों ही अपने २ शत्रु के जीत लेने वाले थे। ये परस्पर सहस्रों की संख्या में बाण छोड़कर परस्पर ताड़ना कर रहे थे ॥१२॥

इषुजालावृतं व्योम चक्रतुः पुरुषर्षभौ ।
पूरयामासतुर्वीरावुभौ दश दिशः शरैः ॥१३॥

इन दोनों पुरुषप्रवीरों ने बाणजाल से आकाश को भर दिया तथा दशों दिशाओं को अपने २ बाणों से व्याप्त कर दिया ॥१३॥

मेघाविवाऽऽतपापाये धाराभिरितरेतरम् ।
न स्म सूर्यस्तदा भाति न ववौ च समीरणः ॥१४॥

ग्रीष्म के अनन्तर वर्षा ऋतु में मेघों की धारा की तरह बाण धारा छोड़ते हुए, दोनों वीर सुशोभित हो रहे थे। इस समय न तो सूर्य चमक रहा था और न वायु चलता था ॥१४॥

इषुजालावृतं घोरमन्धकारं समन्ततः ।
अनाधृष्यमिवाऽन्येषां शूराणामभवत्तदा ॥१५॥
अन्धकारीकृते लोके द्रोणशैनेययोः शरैः ।

बाणजाल से आवृत्त होने के कारण सब ओर अन्धकार छा गया। इस समय इनकी ऐसी अवस्था थी, कि इनमें किसी भी अन्य वीर की गति नहीं थी। द्रोणाचार्य और महारथी सात्यकिने अपने बाणों से इस समय संसार में अन्धेरा कर दिया ॥१५॥

तयोः शीघ्रास्त्रविदुषोर्द्रोणसात्वतयोस्तदा ॥१६॥
नाऽन्तरं शरवृष्टीनां ददृशे नरसिंहयोः ।

हे राजन्! ये दोनों नरवीर द्रोणाचार्य और सात्यकि, इस प्रकार शीघ्र बाण फेंकना जानते थे, कि इनकी बाण-वर्षा में कुछ भी अन्तर दिखाई नहीं देता था ॥१६॥

इषूणां सन्निपातेन शब्दो धाराभिघातजः ॥१७॥
शुश्रुवे शक्रमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ।

बाणों के लगातार पड़ने और उनकी धारों के टकराने से उत्पन्न हुआ घोर शब्द, इन्द्र द्वारा छोड़े हुए वज्र की ध्वनि के तुल्य रण में सुनाई दे रहा था ॥१७॥

नाराचैर्व्यतिविद्धानां शराणां रूपमाबभौ ॥१८॥
आशीविषविदष्टानां सर्पाणामिव भारत ।

हे भारत! नाराच नामक विशेष (खास) बाणों से अन्य बाणों का टकराना ऐसा प्रतीत होता था, जैसे आशीविष सर्पों का साधारण सर्पों से टक्कर हो रही हो ॥१८॥

तयोर्ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे युद्धशौण्डयोः ॥१९॥
अजस्रं शैलशृङ्गाणां वज्रेणाऽऽहन्यतामिव ।

द्रोणाचार्य और महारथी सात्यकि दोनों ही युद्ध विद्या में बड़े कुशल थे। इनके धनुष की प्रत्यञ्चा का शब्द लगातार पर्वत पर पड़ने वाले वज्र की ध्वनि सा सुनाई देता था ॥१९॥

उभयोस्तौ रथौ राजंस्ते चाऽश्वास्तौ च सारथी ॥२०॥
रुक्मपुङ्खैः शरैश्छिन्नाश्चित्ररूपा बभुस्तदा ।

हे राजन्! ये दोनों महारथी, उनके अश्व और दोनों सारथि, सुवर्ण के पुङ्ख वाले बाणों से इतने छिद गए, कि वे बड़े ही अद्भुत दिखाई देते थे ॥२०॥

निर्मलानामजिह्मानां नाराचानां विशाम्पते ॥२१॥
निर्मुक्ताशीविषाभानां सम्पातोऽभूत्सुदारुणः ।

हे विशाम्पते! चमकीले, सीधे जाने वाले, नाराचों का पतन, कांचुली से रहित आशीविष सर्पों की भांति दारुण दिखाई दे रहा था ॥२१॥

उभयोः पतिते छत्रे तथैव पतितौ ध्वजौ ॥२२॥
उभौ रुधिरसिक्ताङ्गावुभौ च विजयैषिणौ ।

दोनों के छत्र गिर चुके और ध्वजाएँ भी कट गई थीं। दोनों के शरीर रुधिरमें भीगे हुए थे और दोनों ही विजयके अभिलाषी थे।

स्रवद्भिः शोणितं गात्रैः प्रस्रुताविव वारणौ ॥२३॥
अन्योन्यमभ्यविध्येतां जीवितान्तकरैः शरैः ।

दोनों के शरीर से रुधिर इस भांति बह रहा था, जैसे हाथी के शरीर से मद धारा बह रही हो। ये जीवन का अन्त कर देने वाले बाणों से एक दूसरे को बींध रहे थे ॥२३॥

गर्जितोत्कृष्टसन्नादाः शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनाः ॥२४॥
उपारमन्महाराज व्याजहार न कश्चनः ।

हे महाराज ! गर्जना, चिल्लाना और सिंहनाद तथा शङ्ख और दुन्दुभियों की ध्वनि, इस समय सब बन्द हो गई और कोई कुछ भी न बोलता था ॥२४॥

तूष्णींभूतान्यनीकानि योधा युद्धादुपारमन् ॥२५॥
ददर्श द्वैरथं ताभ्यां जातकौतूहलो जनः ।

सेनाएँ चुप हो गई। योद्धा युद्ध से पृथक् हो गए। सारे सैनिकों को इनके युद्ध के देखने का कौतूहल हो गया ॥२५॥

रथिनो हस्तियन्तारो हयारोहाः पदातयः ॥२६॥
अवैक्षन्ताऽचलैर्नेत्रैः परिवार्य नरर्षभौ ।

महारथी, गजारोही, अश्वारोही और पैदल सैनिक अपना २ गोल बनाकर अचल नेत्रों से इन दोनों नरवीरों के युद्ध कौशल को देखने लगे ॥२६॥

हस्त्यनीकान्यतिष्ठन्त तथाऽनीकानि वाजिनाम् ॥२७॥
तथैव रथवाहिन्यः प्रतिव्यूह्य व्यवस्थिताः ।

अब हाथियों और अश्वों की सेना खड़ी रह गई और इसी तरह रथों की सेना भी अपना व्यूह बनाकर खड़ी रही ॥२७॥

मुक्ताविद्रुमचित्रैश्च मणिकाञ्चनभूषितैः ॥२८॥
ध्वजैराभरणैश्चित्रैः कवचैश्च हिरण्मयैः ।

वैजयन्तीपताकाभिः परिस्तोमाङ्गकम्बलैः ॥२६॥
विमलैर्निशितैः शस्त्रैर्हयानां च प्रकीर्णकैः ।
जातरूपमयीभिश्च राजतीभिश्च मूर्द्धसु ॥३०॥
गजानां कुम्भमालाभिर्दन्तवेष्टैश्च भारत ।
सबलाकाः सखद्योताः सैरावतशतह्रदाः ॥३१॥
अदृश्यन्तोष्णपर्याये मेघानामिव वागुराः ।
अपश्यन्नस्मदीयाश्च ते च यौधिष्ठिराः स्थिताः ॥३२॥

हे भारत ! मुक्ता, विद्रुम (मूंगा) से विचित्र, मणि और सुवर्ण से विभूषित ध्वजा तथा चित्र विचित्र आभूषण, सुवर्ण मय कवच, गजों पर लगी हुई बड़ी छोटी झंडियां, हाथियों की सुन्दर झूलें और कम्बल, तीक्ष्ण धार पर चढ़े हुए शस्त्र, अश्वों के चमकीले चामर, चांदी सोनेकी हाथियोंके कुम्भकी मालाएँ, हाथियों के दांतो के वेष्टन बड़े चमक रहे थे। ये सब वस्तुएँ ग्रीष्म ऋतु के चले जाने पर वर्षाऋतु में बलाका, ( बकपंक्ति ) खद्योत, ( जुगनूं ) ऐरावत हाथी और बिजली से युक्त मेघों के सदृश प्रतीत होती थीं। इन सबकी शोभा को हमारी और राजा युधिष्ठिर की सेना खड़ी र आश्चर्य के साथ देख रह थी ॥२८-३२॥

तद्युद्धं युयुधानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।
विमानाग्रगता देवा ब्रह्मसोमपुरोगमाः ॥३३॥
सिद्धचारणसङ्घाश्च विद्याधरमहोरगाः ।
गतप्रत्यागताक्षेपैश्चित्रैरस्त्रविघातिभिः ॥३४॥
विविधैर्विस्मयं जग्मुस्तयोः पुरुषसिंहयोः ।

हे राजन्! महात्मा द्रोणाचार्य और सात्वतवंशश्रेष्ठ, सात्यकि के इस युद्ध को विमानों पर बैठे हुए ब्रह्मा, सोम आदि देवता, सिद्ध और चारणोंके समूह, विद्याधर, महोरग आदि आकाशचारी प्राणी, देख रहे थे। ये इन दोनों पुरुषप्रवीरों के हाथों के सञ्चालन, (पैंतरे) विचित्र शस्त्रों के आघात तथा अन्य अनेक क्रियाओं से बड़ा ही आश्चर्य मान रहे थे ॥३४॥

हस्तलाघवमस्त्रेषु दर्शयन्तौ महाबलौ ॥३५॥
अन्योन्यमभिविध्येतां शरैस्तौ द्रोणसात्यकी ।

महाबली द्रोणाचार्य और सात्यकि, अपना २ अस्त्रलाघव (फ़ुर्ती) दिखाते हुए बाणों से एक दूसरे को बींधने लगे ॥३५॥

ततो द्रोणस्य दाशार्हः शरांश्चिच्छेद संयुगे ॥३६॥
पत्रिभिः सुदृढैराशु धनुश्चैव महाद्युतेः ।

दशार्हवंशोत्पन्न सात्यकि ने रण में महाद्युति द्रोणाचार्य के बाण और धनुष अपने दृढ़ बाणों से काट गिराए ॥३६॥

निमेषान्तरमात्रेण भारद्वाजोऽपरं धनुः ॥३७॥
सज्यं चकार तदपि चिच्छेदाऽस्य च सात्यकिः ।

हे भारत! एक ही क्षण में भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य ने दूसरा धनुष चढ़ा लिया, परन्तु सात्यकि ने अपने हस्त-लाघव से उसे भी तत्काल काट गिराया ॥३७॥

ततस्त्वरन्पुनर्द्रोणो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ॥३८॥
सज्यं सज्यं धनुश्चाऽस्य चिच्छेद निशितैः शरैः ।

अब द्रोणाचार्य ने बड़ी शीघ्रता से फिर अन्य धनुष उठाया, परन्तु सात्यकि भी जिस २ धनुष को द्रोणाचार्य चढ़ाते थे, उसे ही काट गिराते थे ॥३८॥

एवमेकशतं छिन्नं धनुषां दृढधन्विना ॥३९॥
न चाऽन्तरं तयोर्दृष्टं सन्धाने छेदनेऽपि च ।

इस प्रकार दृढ़ धनुषधारी सात्यकि ने महात्मा द्रोण के एकसौ धनुष काट डाले। आश्चर्य की बात तो यह है, कि उन धनुषों के उठाने और काटने में कितना अन्तर रहता था, इसे किसी ने भी नहीं देख पाया ॥३९॥

ततोऽस्य संयुगे द्रोणो दृष्ट्वा कर्माऽतिमानुषम् ॥४०॥
युयुधानस्य राजेन्द्र मनसैतदचिन्तयत् ।
एतदस्त्रबलं रामे कार्त्तवीर्ये धनञ्जये ॥४१॥
भीष्मे च पुरुषव्याघ्रे यदिदं सात्वतां वरे ।

हे राजेन्द्र ! आचार्य द्रोण, महावीर सात्यकि के इस मनुष्यातिशायी युद्धकौशल को देखकर मन में विचारने लगा, कि यह अस्त्रबल तो परशुराम, कार्तवीर्यार्जुन, अर्जुन, भीष्म और पुरुषव्याघ्र श्रीकृष्ण में ही देखा गया था या आज इस यदुवंशश्रेष्ठ सात्यकि में देखा है ॥४०-४१॥

तं चाऽस्य मनसा द्रोणः पूजयामास विक्रमम् ॥४२॥
लाघवं वासवस्येव सम्प्रेक्ष्य द्विजसत्तमः ।

हे राजन् ! द्विज-श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य, इन्द्र के समान सात्यकि का यह हस्तलाघव (हाथ की फुर्ती) देखकर मन ही मन उसके पराक्रम की प्रशंसा करने लगे ॥४२॥

ततोऽपाऽस्त्रविदां श्रेष्ठस्तथा देवाः सवासवाः ॥४३॥
न तामालक्षयामासुर्लघुतां शीघ्रचारिणः ।

इस प्रकार अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य तथा इन्द्रादिदेव, उस शीघ्रता करने वाले सात्यकि के इस लाघव को देख भी नहीं पाते थे ॥४३॥

देवाश्च युयुधानस्य गन्धर्वाश्च विशाम्पते ॥४४॥
सिद्धचारणसङ्घाश्च विदुर्द्रोणस्य कर्म तत् ।

हे विशाम्पते ! महारथी सात्यकि और आचार्य द्रोण के इस भीषण कर्म को देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारण खड़े २ देख रहे थे ॥४४॥

ततोऽन्यद्धनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥४५॥
अस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो योधयामास भारत ।

हे भारत ! क्षत्रियों के मर्दन करने वाले, अस्त्र विद्या के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ द्रोण ने फिर धनुष उठाया और उससे युद्ध करने लगा ॥४५॥

तस्याऽस्त्राण्यस्त्रमायाभिः प्रतिहत्य स सात्यकिः ॥
जघान निशितैर्बाणैस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।

अस्त्र चलाने के ढंग को सुचारु रीति से जानने वाले, सात्यकि ने अपने तीक्ष्ण बाणों से द्रोणाचार्य के अस्त्रों को काट गिराया। यह भी लोगों को बड़ा ही आश्चर्यकारी प्रतीत हुआ ॥४६॥

तस्याऽतिमानुषं कर्म दृष्ट्वाऽन्यैरसमं रणे ॥४७॥
युक्तं योगेन योगज्ञास्तावकाः समपूजयन् ।

हे राजन्! अन्य वीरों से नहीं होने वाले सात्यकि के इस असाधारण युद्ध के प्रकारों के अनुकूल, कर्म को देखकर युद्ध विद्या के तत्त्वज्ञ, तुम्हारे महारथी भी सात्यकि की प्रशंसा करने लगे।

यदस्त्रमस्यति द्रोणस्तदेवाऽस्यति सात्यकिः ॥४८॥
तमाचार्योऽथ सम्भ्रान्तोऽयोधयच्छत्रुतापनः ।

द्रोणाचार्य, जैसे अस्त्र का प्रयोग करता था, महावीर सात्यकि भी वैसे ही अस्त्र का प्रयोग करके उसे काट देता था। शत्रुतापी, आचार्य, बड़ी व्यग्रता से सात्यकि के साथ युद्ध कर रहे थे ॥४८॥

ततः क्रुद्धो महाराज धनुर्वेदस्य पारगः ॥४९॥
वधाय युयुधानस्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ।

हे महाराज! धनुर्वेद का पारगामी, द्रोणाचार्य, अब क्रोधातुर हो उठा और उसने सात्यकि के वध के लिए दिव्य अस्त्र उठाया ॥

तदाग्नेयं महाघोरं रिपुघ्नमुपलक्ष्य सः ॥५०॥
दिव्यमस्त्रं महेष्वासो वारुणं समुदैरयत् ।

जब महाधनुर्धर सात्यकि ने शत्रुनाशक दिव्य आग्नेयास्त्र को आता देखा-तो आपने भी अपने दिव्य वारुणास्त्र का प्रयोग किया ॥५०॥

हाहाकारो महानासीद् दृष्ट्वा दिव्यास्त्रधारिणौ ॥५१॥
न विचेरुस्तदाऽऽकाशे भूतान्याकाशगान्यपि ।

हे भरतर्षभ ! दिव्य अस्त्रों के धारी, इन दोनों महावीरों को देखकर संसार में हाहाकार मच गया । इस समय आकाशचारी प्राणी भी आकाश से खसक गए और कहीं दिखाई नहीं पड़े ॥५१॥

अस्त्रं ते वारुणाग्नेये ताभ्यां बाणसमाहिते ॥५२॥
न यावदभ्यपद्येतां व्यावर्त्तदथ भास्करः ।

जब इन दोनों ने अपने २ दिव्य अस्त्रों पर बाण चढ़ाया था और अभी छोड़ा भी नहीं था, कि इतने में सूर्य पश्चिम की ओर चल दिया ॥५२॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ॥५३॥
नकुलः सहदेवश्च पर्यरक्षन्त सात्यकिम् ।

इस समय राजा युधिष्ठिर, पाण्डु-पुत्र भीमसेन, नकुल और सहदेव, सात्यकि की रक्षा कर रहे थे ॥५३॥

धृष्टद्युम्नमुखैः सार्धं विराटश्च सकेकयः ॥५४॥
मत्स्याः शाल्वेयसेनाश्च द्रोणमाजग्मुरञ्जसा ।

इसी समय धृष्टद्युम्न आदि वीरों के साथ राजा विराट, केकयराज, मत्स्य और शाल्वेयवीर, वहीं सात्यकि की रक्षा के निमित्त बड़े वेग से आ पहुंचे ॥५४॥

दुःशासनं पुरस्कृत्य राजपुत्राः सहस्रशः ॥५५॥
द्रोणमभ्युपपद्यन्त सपत्नैः परिवारितम् ।

ततो युद्धमभूद्राजंस्तेषां तव च धन्विनाम् ॥५६॥
रजसा संवृते लोके शरजालसमावृते ।

जब इन शत्रुवीरों ने द्रोणाचार्य को घेर लिया-तो दुःशासन को आगे करके सहस्रों राजपूत, द्रोणाचार्य की रक्षा के निमित्त बढ़ आए। हे राजन्! अब तुम्हारे और पाण्डवों के धनुर्धरों में भीषण रण मचा ॥५५-५६॥

सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किञ्चन ।
सैन्येन रजसा ध्वस्ते निर्मर्यादमवर्त्तत ॥५७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणसात्यकियुद्धे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

हे भरतर्षभ! इस समय युद्धस्थल रज और बाणों के जाल से भर गया। सारा आकाश आच्छादित हो रहा था, जिससे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। अब रज से सेना के व्याप्त कर लेने पर युद्ध भी मर्यादा छोड़कर चल पड़ा ॥५७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में द्रोण और सात्यकि के युद्ध का अट्ठानवेवां अध्याय समाप्त हुआ ।



# निन्यानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

विवर्त्तमाने त्वादित्ये तत्राऽस्तशिखरं प्रति ।
रजसाऽऽकीर्यमाणे च मन्दीभूते दिवाकरे ॥१॥
तिष्ठतां युद्ध्यमानानां पुनरावर्त्ततामपि ।
भज्यतां जयतां चैव जगाम तदहः शनैः ॥२॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! जब सूर्य अस्तगिरि की ओर चल पड़ा और धूलि से आकाश भर गया तथा सूर्य मन्दीभूत दिखाई देने लगा-तो अनेक योद्धा कभी युद्ध में ठहरते, कभी युद्ध करते, कभी लौटकर आते, कभी भाग जाते और कभी विजयी हो जाते थे-इधर तो-इस तरह रण में हो रहा था और उधर सूर्यदेव छुपने को चल रहे थे ॥१-२॥

तथा तेषु विषक्तेषु सैन्येषु जयगृद्धिषु ।
अर्जुनो वासुदेवश्च सैन्धवायैव जग्मतुः ॥३॥

जब इस प्रकार सेनाएँ अपने अपने विजय में आसक्त थीं, तो उस समय अर्जुन और श्रीकृष्ण, सिन्धराज की ओर बढ़े चले जा रहे थे ॥३॥

रथमार्गप्रमाणं तु कौन्तेयो निशितैः शरैः ।
चकार तत्र पन्थानं ययौ येन जनार्दनः ॥४॥

श्रीकृष्ण, जिस ओर से राजा जयद्रथ के पास अर्जुन का रथ ले जा रहे थे; उसी ओर रथ के गमनके योग्य, अर्जुन अपने बाणों से मार्ग बनाता चल रहा था ॥४॥

यत्र यत्र रथो याति पाण्डवस्य महात्मनः ।
तत्र तत्रैव दीर्यन्ते सेनास्तव विशाम्पते ॥५।

हे विशाम्पते ! महात्मा पाण्डु-पुत्र अर्जुन का जिस २ मार्ग से रथ आगे बढ़ता था, उसी ओर तुम्हारी सेना काई की तरह फट जाती थी ॥५॥

रथशिक्षां तु दाशार्हो दर्शयामास वीर्यवान् ।
उत्तमाधममध्यानि मण्डलानि विदर्शयन् ॥६॥

महापराक्रमी, दशार्हवंशोद्भव श्रीकृष्ण अपने रथ चलाने की कुशलता दिखा रहे थे। ये रथ के उत्तम, मध्यम, अधम नामक मण्डलों को समय २ पर बनाते जाते थे ॥६॥

ते तु नामाङ्किताः पीताः कालज्वलनसन्निभाः ।
स्नायुनद्धाः सुपर्वाणः पृथवो दीर्घगामिनः ॥७॥
वैणवाश्चाऽऽयसाश्चोग्रा ग्रसन्तो विविधानरीन् ।
रुधिरं पतगैः सार्धं प्राणिनां पपुराहवे ॥८॥

विष में बुझे हुए, नामाङ्कित काल और अग्नि के तुल्य, स्नायु (आंतों) से बंधे हुए, नतपर्वधारी, दूर तक गमन करने वाले, बड़े २ बाँस और लोह के बाण, अनेक वैरियों का संहार कर रहे थे। ये बाण, पक्षियों के समान उड़ते हुए वीरों का रक्त पी जाते थे।

रथस्थितोऽग्रतः क्रोशं यानस्यत्यर्जुनः शरान् ।
रथे क्रोशमतिक्रान्ते तस्य ते घ्नन्ति शात्रवान् ।६॥

रथ में स्थित अर्जुन, कोश भर की दूरी से जिन बाणों को फेंकता था, रथ का वेग इतना तीव्र था, कि रथके कोश भर आगे निकल जाने पर वे बाण शत्रु का वध करते थे ॥६॥

तार्क्ष्यमारुतरंहोभिर्वाजिभिः साधुवाजिभिः ।
तदाऽगच्छद्धृषीकेशः कृत्स्नं विस्मापयञ्जगत् ॥१०॥

गरुड़ और वायु के तुल्य वेग से चलने वाले उत्तम २ अश्वों से सारे जगत् को अचम्भित करते हुए श्रीकृष्ण, आगे बढ़े चले जाते थे ॥१०॥

न तथा गच्छति रथस्तपनस्य विशाम्पते ।
नेन्द्रस्य न तु रुद्रस्य नापि वैश्रवणस्य च ॥११॥
नाऽन्यस्य समरे राजन्गतपूर्वस्तथा रथः ।
यथा ययावर्जुनस्य मनोभिप्रायशीघ्रगः ॥१२॥

हे विशाम्पते ! इस तरह सूर्य, इन्द्र, रुद्र, कुबेर तथा अन्य किसी देवता का रण में रथ नहीं जा सका था, जिस तरह अर्जुन का रथ मनोरथों के समान वेग से आगे बढ़ रहा था ॥११-१२॥

प्रविश्य तु रणे राजन्केशवा परवीरहा ।
सेनामध्ये हयांस्तूर्णं चोदयामास भारत ॥१३॥

हे राजन् ! शत्रुवीरनाशक, श्रीकृष्ण रण में प्रविष्ट होकर सेना के मध्य में अश्वों को बड़ी शीघ्रता से चलाने लगे ॥१३॥

ततस्तस्य रथौघस्य मध्यं प्राप्य हयोत्तमः ।
कृच्छ्रेण रथमूहुस्तं क्षुत्पिपासासमन्विताः ॥१४॥

अर्जुन के अश्व, शत्रु के रथों की सेना के मध्य में पहुंच गए, परन्तु अब ये अश्व, रथ के ले चलने में असमर्थ हो गए, क्योंकि भूख और प्यास से बड़े ही आतुर थे ॥१४॥

क्षताश्च बहुभिः शस्त्रैर्युद्धशौण्डैरनेकशः ।
मण्डलानि विचित्राणि विचेरुस्ते मुहुर्मुहुः ॥१५॥

यद्यपि युद्धनिपुण अनेक वीरों ने इन अश्वों के शरीरों में शस्त्रों से बहुत से घाव कर दिए, परन्तु ये तब भी युद्ध में अनेक मण्डल बांधते हुए बढ़े चले जा रहे थे ॥१५॥

हतानां वाजिनागानां रथानां च नरैः सह ।
उपरिष्टादतिक्रान्ताः शैलाभानां सहस्रशः ॥१६॥

हे राजन् ! अनेक वीरों के साथ मरे हुए अश्व, हाथी और रथियों के अनेक पर्वत के समान ढेर के ऊपर से वे अश्व, बड़े पराक्रम से चल पाते थे ॥१६॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरावावन्त्यौ भ्रातरौ नृप ।
सहसेनौ समार्छेतां पाण्डवं क्लान्तवाहनम् ॥१७॥

हे नृप ! इसी समय अवन्तीराजकुमार दोनों भ्राता, विन्द और अनुविन्द, अपनी सेना को साथ लेकर अर्जुन पर झपटे । इस समय अर्जुन के अश्व बहुत ही थक चुके थे ॥१७॥

तावर्जुनं चतुःषष्ट्या सप्तत्या च जनार्दनम् ।
शराणां च शतैरश्वानविध्येतां मुदान्वितौ ॥१८॥

इन दोनों वीरों ने अर्जुन पर चौंसठ और श्रीकृष्ण पर सत्तर बाण छोड़े तथा बड़ी प्रसन्नता से सौ बाण अश्वों पर चला दिए ॥

तावर्जुनो महाराज नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघान रणे क्रुद्धो मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥१९॥

हे महाराज ! अर्जुन ने भी नतपर्ववाले मर्मभेदी बाण इन पर छोड़े । अर्जुन, मर्म पर प्रहार करना जानता था और इस समय रण में कुपित भी हो रहा था ॥१९॥

ततस्तौ तु शरौघेण बीभत्सुं सहकेशवम् ।
आच्छादयेतां संरब्धौ सिंहनादं च चक्रतुः ॥२०॥

ये दोनों अवन्ती राजकुमार भी बड़े आवेश में भरे हुए थे, उन्होंने बाणों की झड़ी लगाकर अर्जुन और श्रीकृष्ण को आच्छादित कर दिया । इसके बाद वे बड़े वेग से सिंहनाद करने लगे ॥

तयोस्तु धनुषी चित्रे भल्लाभ्यां श्वेतवाहनः ।
चिच्छेद समरे तूर्णं ध्वजौ च कनकोज्ज्वलौ ॥२१॥

श्वेत अश्वों के वाहन वाले अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उनके विचित्र धनुष काट डाले और रण में बड़ी शीघ्रता से सुवर्ण के समान उज्ज्वल ध्वजा को काट गिराया ॥२१॥

अथाऽन्ये धनुषी राजन्प्रगृह्य समरे तदा ।
पाण्डवं भृशसंक्रुद्धावर्दयामासतुः शरैः ॥२२॥

हे राजन्! अब इन वीरों ने अन्य धनुष उठा लिए और अत्यन्त क्रोधित होकर ये पाण्डु-पुत्र अर्जुन को अपने तीक्ष्ण बाणों से आहत करने लगे ॥२२॥

तयोस्तु भृशसंक्रुद्धः शराभ्यां पाण्डुनन्दनः ।
धनुषी चिच्छिदे तूर्णं भूय एव धनञ्जयः ॥२३॥

हे भारत! इनके बाणों के आघात से अर्जुन बड़ा कुपित हो उठा। उसने फिर शीघ्रता करके इनका धनुष काट गिराया ॥२३॥

तथाऽन्यैर्विशिखैस्तूर्णं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
जघानाऽश्वांस्तथा सूतौ पार्ष्णी च सपदानुगौ ॥२४॥

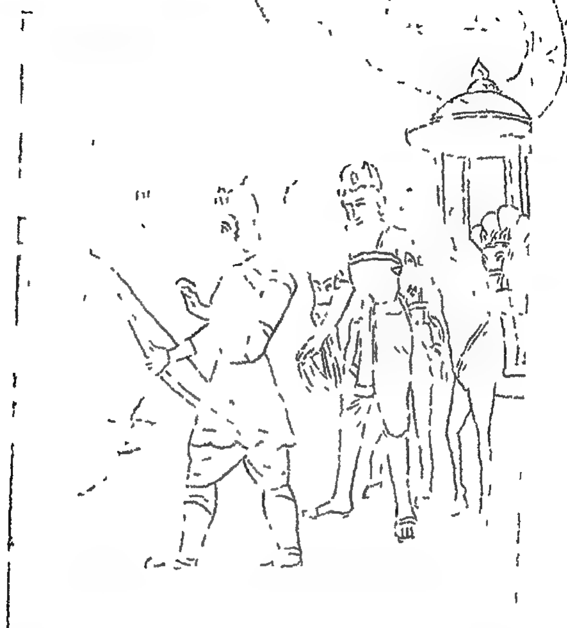
अर्जुन ने फिर शीघ्रता से सुवर्ण मूलवाले, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए बाण छोड़े, जिनसे उसने अश्व, सारथि और पार्ष्णिरक्षक तथा उनके सहचरों को मार गिराया ॥२४॥

ज्येष्ठस्य च शिरः कायात्क्षुरप्रेण न्यकृन्तत ।
स पपात हतः पृथ्व्यां वातरुग्ण इव द्रुमः ॥२५॥

अर्जुन ने क्षुर के सदृश एक अन्य तीक्ष्ण बाण छोड़ा-जिससे बड़े भ्राता का शिर काट कर नीचे गिरा दिया। वह अब वायु से उखाड़े हुए वृक्ष की तरह पृथ्वी पर गिर गया ॥१५॥

विन्दं तु निहतं दृष्ट्वा ह्यनुविन्दः प्रतापवान् ।
हताश्वं रथमुत्सृज्य गदां गृह्य महाबलः ॥२६॥
अभ्यवर्त्तत संग्रामे भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ।
गदया रथिनां श्रेष्ठो नृत्यन्निव महारथः ॥२७॥

महाभारत चित्र संख्या ८७



अर्जुन के बाण से जलाशय बन गया

महाभारत द्रोणपर्व अध्याय ६६ । ५६

हे राजन् ! अपने भ्राता विन्द को मरा हुआ देखकर प्रतापी महाबाहु अनुविन्द, अश्वहीन रथ को छोड़कर और गदा लेकर अपने भाई का बदला लेने के लिए बड़ी भीषणता से रण में अर्जुन पर झपटा। यह रथियों में श्रेष्ठ महारथी अनुविन्द, गदा लेकर रणभूमि में नाचता सा आगे बढ़ रहा था ॥२६-२७॥

अनुविन्दस्तु गदया ललाटे मधुसूदनम् ।
स्पृष्ट्वा नाऽकम्पयत्क्रुद्धो मैनाकमिव पर्वतम् ॥२८॥

महारथी अनुविन्द ने इस गदा से मधुसूदन श्रीकृष्ण के मस्तक पर प्रहार किया। यद्यपि यह बहुत क्रोधित हो रहा था, तो भी गदा के प्रहार से मैनाक पर्वत की तरह अचल श्रीकृष्ण को कुछ भी कम्पित नहीं कर सका ॥२८॥

तस्याऽर्जुनः शरैः षड्भिर्ग्रीवां पादौ भुजौ शिरः ।
निचकर्त स सञ्छिन्नः पपाताऽद्रिचयो यथा ॥२९॥

अर्जुन ने छः बाण छोड़कर उसकी ग्रीवा, दोनों पैर, दोनों भुजा और शिर में प्रहार किया। इन बाणों से इसके ये सारे अंग कट गए और यह पर्वत राशि की भांति कटकर नीचे गिर गया ॥२९॥

ततस्तौ निहतौ दृष्ट्वा तयो राजन्पदानुगाः ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः किरन्तः शतश शरान् ॥३०॥

हे राजन् ! इनके साथी सैनिकों ने जब देखा-कि ये दोनों वीर मारे गए-तो वे क्रोधपूर्वक बहुत से बाण छोड़ते हुए रणभूमि से भाग निकले ॥३०॥

तानर्जुनः शरैस्तूर्णं निहत्य भरतर्षभ ।
व्यरोचत यथा वह्निर्दावं दग्ध्वा हिमात्यये ॥३१॥

हे भरतर्षभ ! बड़े वेग से बाण छोड़ते हुए अर्जुन ने उनमें से बहुतों को मार गिराया। इस समय ग्रीष्मकाल में वन को दग्ध करने वाले अग्नि के सदृश अर्जुन दिखाई दे रहे थे ॥३१॥

तयोः सेनामतिक्राम्य कृच्छ्रादिव धनञ्जयः ।
विबभौ जलदं हित्वा दिवाकर इवोदितः ॥३२॥

हे राजन् ! इन दोनों वीरों की सेना से बड़ी कठिनता से पार निकल कर मेघों से निकले हुए प्रचण्ड सूर्य की भांति अर्जुन देदीप्यमान दिखाई देने लगे ॥३२॥

तं दृष्ट्वा कुरवस्त्रस्ताः प्रहृष्टाश्चाऽभवन्पुनः ।
अभ्यवर्तन्त पार्थं च समन्ताद्भरतर्षभ ॥३३॥

हे भरतर्षभ ! अर्जुन को इस प्रकार पराक्रम करते हुए देख कर कौरव भयभीत हो गए, परन्तु फिर उत्साह में भर कर अर्जुन पर सब ओर से टूट पड़े ॥३३॥

श्रान्तं चैनं समालक्ष्य ज्ञात्वा दूरे च सैन्धवम् ।
सिंहनादेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥३४॥

इन्होंने अर्जुन को थका हुआ और सिन्धुराज को दूर देखकर बड़ा आनन्द मनाया। ये बड़ी भारी गर्जना करके अर्जुन को सब ओर से घेर कर खड़े हो गए ॥३४॥

तांस्तु दृष्ट्वा सुसंरब्धानुत्स्मयन्पुरुषर्षभः ।
शनकैरिव दाशार्हमर्जुनो वाक्यमब्रवीत् ॥३५॥

इन कौरवों को आवेश में देखकर मुस्कुराता हुआ पुरुष-श्रेष्ठ अर्जुन, दशार्हवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण से इस प्रकार धीरे २ वचन बोले ॥

शरार्दिताश्च ग्लानाश्च हया दूरे च सैन्धवः ।
किमिहाऽनन्तरं कार्यं ज्यायिष्ठं तव रोचते ॥३६॥

हे दाशार्ह ! मेरे अश्व तो बाणों से व्याकुल और दुःखी हो रहे हैं और अभी सिन्धुराज दूर है । इस समय तुमको कौनसा कार्य प्रथम करना उचित प्रतीत होता है ॥३६॥

ब्रूहि कृष्ण यथातत्त्वं त्वं हि प्राज्ञतमः सदा ।
भवन्नेत्रा रणे शत्रून्विजेष्यन्तीह पाण्डवाः ॥३७॥

हे कृष्ण ! तुम बहुत बुद्धिमान् हो । हम लोग रण में तुम्हारे मार्ग दिखाने पर ही शत्रु को जीतने में समर्थ होते हैं । अब जो ठीक हो-वही ढंग बताओ ॥३७॥

मम त्वनन्तरं कृत्यं यद्वै तत्त्वं निबोध मे ।
हयान्विमुच्य हि सुखं विशल्यान्कुरु माधव ॥३८॥

हे भगवन् ! अब जो आवश्यक कृत्य हो-उसको हमें बताओ । हे माधव ! मेरी तो ऐसी इच्छा है, कि अश्वों को खोल कर इनके बाण निकाल देने चाहिए ॥३८॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः प्रत्युवाच तम् ।
ममाऽप्येतन्मतं पार्थ यदिदं ते प्रभाषितम् ॥३९॥

जब इस प्रकार अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा-तो श्रीकृष्ण बोले — हे अर्जुन ! मेरी भी यही सम्मति है-जो तुमने कहा है ॥३६॥

अर्जुन उवाच —

अहमावारयिष्यामि सर्वसैन्यानि केशव ।
त्वमप्यत्र यथान्यायं कुरु कार्यमनन्तरम् ॥४०॥

अर्जुन कहने लगे—हे केशव ! मैं तो सारी सेनाओं को रोके रहूंगा और जो तुम अश्वों के लिए करना ठीक समझो-वह शीघ्र कर लो ॥४०॥

सञ्जय उवाच—

सोऽवतीर्य रथोपस्थादसम्भ्रान्तो धनञ्जयः ।
गाण्डीवं धनुरादाय तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ॥४१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! अब अर्जुन रथ के ऊपर से नीचे उतरा। उसे कुछ भी व्याकुलता नहीं थी ! यह गाण्डीव धनुष लेकर अचल पर्वत की भांति स्थित हो गया ॥४१॥

तमभ्यधावन्क्रोशन्तः क्षत्रिया जयकांक्षिणः ।
इदं छिद्रमिति ज्ञात्वा धरणीस्थं धनञ्जयम् ॥४२॥

अब सिंहनाद करते हुए विजयाभिलाषी कौरव क्षत्रियवीर दौड़े, कि अर्जुन, अब पृथ्वी पर स्थित है, इस छिद्र ( कमजोरी ) में आक्रमण करना चाहिए ॥४२॥

तमेकं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ।
विकर्षन्तश्च चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥४३॥

इस अकेले अर्जुन को कौरवों के रथिसमूह ने घेर लिया। इन्होंने धनुष चढ़ा रखे थे और ये बाण छोड़ रहे थे ॥४३॥

शस्त्राणि च विचित्राणि क्रुद्धास्तत्र व्यदर्शयन्।
छादयन्तः शरैः पार्थं मेघा इव दिवाकरम् ॥४४॥

हे भारत ! क्रोध में भरे हुए, कौरववीर, अपने २ शस्त्रों का कौशल दिखाने लगे। इन्होंने सूर्य को मेघों की तरह अर्जुन को बाणों से आच्छादित कर दिया ॥४४॥

अभ्यद्रवन्त वेगेन क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम्।
नरसिंहं रथोदाराः सिंहं मत्ता इव द्विपाः ॥४५॥

कौरव क्षत्रियवीर, महारथी क्षत्रिय-श्रेष्ठ नरसिंह अर्जुन पर इतने वेग से झपटे जैसे-सिंह पर मदोन्मत्त हाथी झपटते हैं ॥४५॥

तत्र पार्थस्य भुजयोर्महद्बलमदृश्यत।
यत्क्रुद्धो बहुलाः सेनाः सर्वतः समवारयत् ॥४६॥

अब अर्जुन की बाहुओं के महान् बल का परिचय मिला-जो क्रोध में भरे हुए अर्जुन ने बहुत सी सेना को एक बार ही रोक दिया ॥४५॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतो विभुः।
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं सर्वानेव समावृणोत् ॥४७॥

इस शक्तिशाली अर्जुन ने अपने अस्त्रों से शत्रुओं के सारे अस्त्रों को काट गिराया और फिर इतने शीघ्र बाण छोड़े-कि जिनसे सारे वीर आच्छादित हो गए ॥४७॥

तत्राऽन्तरिक्षे बाणानां प्रगाढानां विशाम्पते ।
सङ्घर्षेण महार्चिष्मान्पावकः समजायत ॥४८॥

हे विशाम्पते ! अर्जुन के बाण इतने गहराई से छोड़े हुए थे, कि आकाश में उनके संघर्ष से महान् ज्वालाओं से संयुक्त अग्नि उत्पन्न हो गया ॥४८॥

तत्र तत्र महेष्वासैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः ।
हयैर्नागैश्च सम्भिन्नैर्नदद्भिश्चाऽरिकर्षणैः ॥४९॥
संरब्धैश्चाऽरिभिर्वीरैः प्रार्थयद्भिर्जयं मृधे ।
एकस्थैर्बहुभिः क्रुद्धैरूष्मेव समजायत ॥५०॥

हे भरतर्षभ ! इधर उधर रक्त में भीगे हुए, श्वास लेते हुए महाधनुर्धर, क्षत-विक्षत हुए हाथी-घोड़े, शत्रुनाशक, आवेश में भरे हुए, और गर्जते हुए, विजयालापी एक ही स्थान पर बहुत से खड़े हुए शत्रुवीरों से उस स्थान पर ग्रीष्मकाल सा उपस्थित हो गया ॥५०॥

शरोर्मिणं ध्वजावर्त्तं नागनक्रं दुरत्ययम् ।
पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥५१॥
असंख्येयमपारं च रथोर्मिणमतीव च ।
उष्णीषकमठं छत्रपताकाफेनमालिनम् ॥५२॥
रणसागरमक्षोभ्यं मातङ्गाङ्गशिलाचितम् ।
वेलाभूतस्तदा पार्थः पत्रिभिः समवारयत् ॥५३॥

इस समय कौरवों की सेना का समुद्र उलट पड़ा था । उसमें बाणों की लहरें, ध्वजाओं के आवर्त, हाथियों के भीषण नक्र, पैदलों

के मत्स्य, शङ्ख दुन्दुभियों का नाद समुद्रध्वनि, रथों की बड़ी २ तरंगें, वीरों की पगड़ी के कछुए, छत्र पताका आदि की फेनमाला और हाथियों के शरीर बीच २ में पड़े हुए पर्वतखण्ड थे । इस अक्षुभित रण सागर को वेला की तरह रोक देने वाला अर्जुन था, जिसने अपने बाणों से इस समुद्र को आगे बढ़ने से रोका ॥

धृतराष्ट्र उवाच—

अर्जुने धरणीं प्राप्ते हयहस्ते च केशवे।
एतदन्तरमासाद्य कथं पार्थो न घातितः ॥५४॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! अर्जुन तो धरणी पर खड़ा था और श्रीकृष्ण के हाथ में अश्व थे। इस अन्तर (मौके) को पाकर भी कौरववीरों ने अर्जुन को क्यों नहीं मार गिराया ॥५४॥

सञ्जय उवाच—

सद्यः पार्थिव पार्थेन निरुद्धाः सर्वपार्थिवाः ।
रथस्था धरणीस्थेन वाक्यमच्छान्दसं यथा ॥५५॥

सञ्जय ने कहा—हे नृपते ! यद्यपि अर्जुन पृथ्वी में खड़ा था, तो भी उसने रथ में बैठे हुए सारे रथियों को असंस्कृत वाणी की तरह रोक दिया ॥५५॥

स पार्थः पार्थिवान्सर्वान्भूमिस्थोऽपि रथस्थितान् ।
एको निवारयामास लोभः सर्वगुणानिव ॥५६॥

हे राजन् ! अकेले अर्जुन ने भूमि में स्थित होकर भी रथस्थित राजाओं को इस तरह रोक दिया जैसे-लोभ सारे गुणों को अपने भीतर नहीं आने से रोक देता है ॥५६॥

ततो जनार्दनः संख्ये प्रियं पुरुषसत्तमम् ।
असम्भ्रान्तो महाबाहुरर्जुनं वाक्यमब्रवीत् ॥५७॥

अभी तक महाबाहु, श्रीकृष्ण कुछ भी व्याकुल नहीं थे-वे रण में पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन से यह वचन बोले ॥५७॥

उदपानमिहाऽश्वानां नाऽलमस्ति रणेऽर्जुन ।
परीप्सन्ते जलं चेमे पेयं न त्ववगाहनम् ॥५८॥

हे अर्जुन! अश्वों के जल पीने के योग्य यहां कोई जलाशय नहीं है। ये तो पीने का जल चाहते हैं, इनको नहाने की आवश्यकता नहीं है ॥५८॥

इदमस्तीत्यसम्भ्रान्तो ब्रुवन्नस्त्रेण मेदिनीम् ।
अभिहत्याऽर्जुनश्चक्रे वाजिपानं सरः शुभम् ॥५९॥

हे भारत! कुछ भी आतुरता नहीं रखने वाले अर्जुन ने कहा—लो यह जल रहा—इतना कहकर उसने पृथ्वी में बाण मारा, जिससे अश्वों के पीने योग्य जलाशय वहीं बन गया ॥५९॥

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
सुविस्तीर्णं प्रसन्नाम्भः प्रफुल्लवरपङ्कजम् ॥६०॥

इस सरोवर पर हंस कारण्डव आदि पक्षी कलोलें और चक्रवाक क्रीड़ा करने लगे। यह जलाशय बहुत बड़ा था, जिसमें स्वच्छ जल और खिले हुए कमल सुशोभित हो गए ॥६०॥

कूर्ममत्स्यगणाकीर्णमगाधमृषिसेवितम् ।
आगच्छन्नारदमुनिर्दर्शनार्थं कृतं क्षणात् ॥६१॥

हे राजन्! कछुवे, मत्स्यों के समूह से व्याप्त, अगाध, ऋषियों से सेवित, अर्जुन द्वारा क्षण भर में बनाये हुए, इस सरोवर को देखने के लिये नारद मुनि आए ॥६१॥

शरवंशशरस्थूणं शराच्छादनमद्भुतम् ।
शरवेश्माऽकरोत्पार्थस्त्वष्टेवाऽद्भुतकर्मकृत् ॥६२॥

अर्जुन ने बाणों की ही थूणी और बाणों का ही अद्भुत आच्छादन बना कर एक उत्तम घर सा बना दिया। इसका यह कर्म विश्वकर्मा की तरह बड़ा ही विचित्र था ॥६२॥

ततः प्रहस्य गोविन्दः साधु साध्वित्यथाऽब्रवीत् ।
शरवेश्मनि पार्थेन कृते तस्मिन्महात्मना ॥६३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां जयद्रथवधपर्वणि विन्दानुविन्दवधे अर्जुनसरोनिर्माणे च एकोनशततमोऽध्यायः ॥६६॥

अब श्रीकृष्ण कुछ मुस्कुराए और अर्जुन की बड़ी प्रशंसा करने लगे। महावीर अर्जुन ने बाणों का घर बनाकर बहुत ही चमत्कार-जनक कार्य किया ॥६३॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में विन्दानुविन्द के वध और अर्जुन के सरोवर के बनाने का निन्यानवेवां अध्याय समाप्त हुआ।

# सौवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

सलिले जनिते तस्मिन्कौन्तेयेन महात्मना।
निस्तारिते द्विपत्सैन्ये कृते च शरवेश्मनि ॥१॥
वासुदेवो रथात्तूर्णमवतीर्य महाद्युतिः।
मोचयामास तुरगान्वितुन्नान्कङ्कपत्रिभिः ॥२॥
अदृष्टपूर्वं तद् दृष्ट्वा साधुवादो महानभूत्।
सिद्धचारणसङ्घानां सैनिकानां च सर्वशः ॥३॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ! महाबली अर्जुन द्वारा उस स्थान पर जल निकाल देने, शत्रुसेना के पराभूत कर देने और बाणों द्वारा गृह रचना कर देने पर महाकान्तिवान् वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण, रथ से बड़ी शीघ्रता के साथ उतर पड़े। उन्होंने कङ्कपत्रधारी बाणों को निकाल कर अश्वों को पीड़ा रहित किया और जल पीने को छोड़ दिया। पूर्वकाल में इतनी धीरता के साथ कभी युद्ध नहीं देखा गया। इस धीरता की सिद्ध, चारणोंके संघ और सारे सैनिक प्रशंसा करने लगे॥१-३॥

पदातिनं तु कौन्तेयं युध्यमानं महारथाः।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥४॥

कौरव महारथी, पैदल ही कुन्ती-पुत्र अर्जुन को लड़ता देखकर भी उसे रोकने में समर्थ नहीं हो सके—यह बड़ा ही अद्भुत कर्म हुआ॥४॥

आपतत्सु रथौघेषु प्रभूतगजवाजिषु ।
नाऽसम्भ्रमत्तदा पार्थस्तदस्य पुरुषानति ॥५॥

रथसमूह के आक्रमण करने और बहुत से हाथी घोड़ों के झपटने पर भी अर्जुन को कुछ घबराहट नहीं हुई। यह उसके पुरुषातिशायी पराक्रम की महिमा है ॥५॥

व्यसृजन्त शरौघांस्ते पाण्डवं प्रति पार्थिवाः ।
न चाऽव्यथत धर्मात्मा वासविः परवीरहा ॥६॥

राजा लोग, पाण्डु-पुत्र अर्जुन पर बाणवर्षा कर रहे थे, परन्तु शत्रु-विजेता धर्मात्मा इन्द्र-पुत्र अर्जुन कुछ भी विचलित नहीं होते थे ॥६॥

शतानि शरजालानि गदाप्रासांश्च वीर्यवान् ।
आगतानग्रसत्पार्थः सरितः सागरो यथा ॥७॥

वीर्यवान् अर्जुन, अपने शत्रुओं के छोड़े हुए सैकड़ों बाण-समूह, गदा और प्रासों को इस तरह लीन करने लगा-जैसे समुद्र, नदियों को अपने में लीन कर लेता है ॥७॥

अस्त्रवेगेन महता पार्थो बाहुबलेन च ।
सर्वेषां पार्थिवेन्द्राणामग्रसत्ताञ्शरोत्तमान् ॥८॥

अर्जुन अपने बाहुबल और महान् अस्त्रवेग से सारे राजाओं के बाणसमूहों को नष्ट करने लगा ॥८॥

तत्तु पार्थस्य विक्रान्तं वासुदेवस्य चोभयोः ।
अपूजयन्महाराज कौरवा महदद्भुतम् ॥९॥

किमद्भुततमं लोके भविताऽप्यथ वा ह्यभूत् ।
यदश्वान्पार्थगोविन्दौ मोचयामासतू रणे ॥१०॥

हे महाराज ! इस समय वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण और कुन्ती-पुत्र अर्जुन-इन दोनों के महा अद्भुत पराक्रम की प्रशंसा करते हुए, कौरव महारथी कहने लगे, कि क्या ऐसी आश्चर्यजनक अद्भुत घटना लोक में आगे होगी या हुई है, जो अर्जुन और श्रीकृष्ण ने रण में जल पिलाने और अश्वों के बाण निकालने को उन्हें खोल दिया ॥८-१०॥

भयं विपुलमस्मासु तावधत्तां नरोत्तमौ ।
तेजो विदधतुश्चोग्रं विस्रब्धौ रणमूर्धनि ॥११॥

इन नरवीरों ने हम लोगों के मनों में बड़ा ही आतङ्क बैठा दिया और रणाङ्गण में बड़ी निःशङ्कता से तेज को धारण किया ।

अथ स्मयन्हृषीकेशः स्त्रीमध्य इव भारत ।
अर्जुनेन कृते संख्ये शरगर्भगृहे तथा ॥१२॥
उपावर्तयदव्यग्रस्तानश्वान्पुष्करेक्षणः ।
मिषतां सर्वसैन्यानां त्वदीयानां विशाम्पते ॥१३॥

हे भारत ! इस समय भी श्रीकृष्ण कुछ मुसकुरा रहे थे । वे इतने निःशङ्क थे, मानो अपने को स्त्रियों के मध्य में स्थित समझते हों । रणभूमि में अर्जुन ने जो बाणों का घर बना दिया था, कमलनयन श्रीकृष्ण ने उसमें बिना किसी घबराहट के अश्वों को

टहलाया। हे विशाम्पते ! इस समय तुम्हारी सारी सेना खड़ी २ देखती रही ॥१२-१३॥

तेषां श्रमं च ग्लानिं च वमथुं वेपथुं व्रणान्।
स व्यपानुदत्कृष्णः कुशलो ह्यश्वकर्मणि ॥१४॥

श्रीकृष्ण, अश्वसञ्चालन में बड़े कुशल थे। उन्होंने उन अश्वों का श्रम, ग्लानि, उगाल, कँपकपी, व्रण आदि सारी व्याधियां दूर कर दी ॥१४॥

शल्यानुद्धृत्य पाणिभ्यां परिमृज्य च तान्हयान्।
उपावर्त्य यथान्यायं पाययामास वारि सः ॥१५॥

भगवान कृष्ण ने अपने हाथों से उनके बाण निकाले और उनको थपथपाया तथा विधिपूर्वक टहलाकर अश्वों को जल पिलाया ॥१५॥

स ताँल्लब्धोदकान्स्नाताञ्जग्धान्नान्विगतक्लमान्।
योजयामास संहृष्टः पुनरेव रथोत्तमे ॥१६॥

श्रीकृष्ण ने उनको जल पिलाने के अनन्तर स्नान कराया और अन्न (दाना) खिलाकर उनकी थकान उतार दी। इतने करने के पीछे उनको फिर बड़ी प्रसन्नता से रथ में जोड़ा ॥१६॥

स तं रथवरं शौरिः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
समास्थाय महातेजाः सार्जुनः प्रययौ द्रुतम् ॥१७॥

शूरसेनवंशज, सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण, महारथी अर्जुन को उस रथ में बैठाकर अर्जुन के साथ २ बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़े ॥१७॥

रथं रथवरस्याऽऽजौ युक्तं लब्धोदकैर्हयैः ।
दृष्ट्वा कुरुबलश्रेष्ठाः पुनर्विमनसोऽभवन् ॥१८॥

इस रथि-श्रेष्ठ अर्जुन के रथ के अश्वों को जल पिलाकर रथ में जोड़े हुए देख कर कुरुसेना के वीर कुछ उदासीन हो गए।

विनिःश्वसन्तस्ते राजन्भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ।
धिगहो धिग्गतः पार्थः कृष्णश्चेत्यब्रुवन्पृथक् ॥१९॥

हे राजन्! हमारे महारथी, दांत टूटे हुए सर्प की तरह श्वास लेते हुए अपने २ को धिक्कारने लगे, कि देखो ! अर्जुन और श्रीकृष्ण किस तरह निकल गए हैं ॥१९॥

तत्सैन्यं सर्वतो दृष्ट्वा लोमहर्षणमद्भुतम् ।
त्वरध्वमिति चाऽऽक्रन्दन्नैतदस्तीति चाऽब्रुवन् ॥
सर्वक्षत्रस्य मिषतो रथेनैकेन दंशितौ ।
बालः क्रीडनकेनेव कदर्थीकृत्य नो बलम् ॥२१॥

इन वीरों ने प्रथम अपनी लोमहर्षण सेना की ओर देखा और कहा-कि तुम लोग शीघ्रता करो-यह ठीक नहीं हुआ; जो सारे क्षत्रिय वीरों के देखते २ एक ही रथ से बड़ी तय्यारी के साथ हमारी सेना को कदर्थित करके श्रीकृष्णार्जुन, ऐसे निकल गए, जैसे-बालक अपने रचे हुए खेलों को बिगाड़ कर भाग जाता है॥२०-२१॥

क्रोशतां यतमानानामसंसक्तौ परन्तपौ ।
दर्शयित्वाऽऽत्मनो वीर्यं प्रयातौ सर्वराजसु ॥२२।

ये वीर बड़े ही चिल्ला रहे थे और उनके रोकने का प्रयत्न करते थे, तो भी सारे राजाओं के मध्य में अपना पराक्रम दिखाकर ये दोनों परन्तप श्रीकृष्ण और अर्जुन, बिना किसी रुकावट के आगे निकल गए ॥२२॥

तौ प्रयातौ पुनर्दृष्ट्वा तदाऽन्ये सैनिकाऽब्रुवन् ।
त्वरध्वं कुरवः सर्वे वधे कृष्णकिरीटिनोः ॥२३॥

उन दोनों महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुन को आगे लपकते देखकर कुछ सैनिक बोले—हे कुरुओ ! तुम कृष्ण और अर्जुन के वध के निमित्त शीघ्र आक्रमण करो ॥२३॥

रथयुक्तो हि दाशार्हो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
जयद्रथाय यात्येष कदर्थीकृत्य नो रणे ॥२४॥

देखो ? सारे धनुर्धरों के देखते २ दशार्हवंशोद्भव श्रीकृष्ण महारथी अर्जुन के साथ हमारी सेना को कदर्थित करके राजा जयद्रथ पर चढ़ा चला जाता है ॥२४॥

तत्र केचिन्मिथो राजन्समभाषन्त भूमिपाः ।
अदृष्टपूर्वं संग्रामे तद् दृष्ट्वा महदद्भुतम् ॥२५॥

हे राजन ! वहां कुछ राजा परस्पर इस तरह की भी बातें बना रहे थे, कि रण में ऐसा कार्य कर दिखाना बड़ा ही अद्भुत कार्य है। हमने तो कभी ऐसा कृत्य नहीं देखा ॥२५॥

सर्वसैन्यानि राजा च धृतराष्ट्रोऽत्ययं गतः ।
दुर्योधनापराधेन क्षत्रं कृत्स्ना च मेदिनी ॥२६॥

विलयं समनुप्राप्ता तच्च राजा न बुध्यते ।
इत्येवं क्षत्रियास्तत्र ब्रुवन्त्यन्ये च भारत ॥२७॥

हे भारत ! अब तो यही दिखाई पड़ता है, कि राजा दुर्योधन के अपराध से सारी सेना, क्षत्रियजाति और सारी पृथिवी का विध्वंस हो जावेगा। राजा धृतराष्ट्र का तो बुरी तरह नाश होगा, परन्तु इस बात को राजा धृतराष्ट्र नहीं समझता। हे राजन्! इस प्रकार जहां तहां क्षत्रिय वीर कहने लगे ॥२६-२७॥

सिन्धुराजस्य यत्कृत्यं गतस्य यमसादनम् ।
तत्करोतु वृथादृष्टिर्धार्त्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ॥२८॥

राजा जयद्रथ के यमराज के घर जाने का जो ढङ्ग है, मूर्ख-बुद्धि धृतराष्ट्र-पुत्र राजा दुर्योधन अपनी मूर्खता से वैसे ही काम कर रहा है। उसे जो सूझती है, वह उलटी ही सूझती है ॥२८॥

ततः शीघ्रतरं प्रायात्पाण्डवः सैन्धवं प्रति ।
विवर्त्तमाने तिग्मांशौ हृष्टैः पीतोदकैर्हयैः ॥२९॥

अब पाण्डु-पुत्र अर्जुन, सिन्धुराज की ओर बड़ी शीघ्रता से बढ़े चले जा रहे थे। अश्व, जल पान करके हर्शित हो चुके थे। इस समय सूर्य ढलने चल दिया था ॥२९॥

तं प्रयान्तं महाबाहुं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं योधाः क्रुद्धमिवाऽन्तकम् ॥३०॥

हे राजन् ! सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, महाबाहु अर्जुन के आगे बढ़ने पर क्रुद्ध हुए अन्तक के सदृश उसे कोई योद्धा भी रोकने में समर्थ नहीं हो सका ॥३०॥

विद्राव्य तु ततः सैन्यं पाण्डवः शत्रुतापनः ।
यथा मृगगणान्सिंहः सैन्धवार्थे व्यलोडयत् ॥३१॥

शत्रुनाशक अर्जुन, सारी सेना को छिन्न-भिन्न करके सिन्धुराज की ओर बढ़े। ये मृगों को सिंह की तरह सिन्धुराज के वध के निमित्त सारी सेना को आलोडित कर रहे थे ॥३१॥

गाहमानस्त्वनीकानि तूर्णमश्वानचोदयत् ।
बलाकाभं तु दाशार्हः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥३२॥

हे भारत ! बक के तुल्य श्वेतवर्णधारी अश्वों को हांकते हुए, दशार्हवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण, सेना को आलोडित करते हुए और अपने पाञ्चजन्य शङ्ख को बजाते हुए आगे बढ़े चले जा रहे थे ।

कौन्तेयेनाऽग्रतः सृष्टा न्यपतन्पृष्ठतः शराः ।
तूर्णात्तूर्णतरं ह्यश्वाः प्रावहन्वातरंहसः ॥३३॥

अर्जुन, जिन बाणों को आगे की ओर छोड़ते थे, वे बाण रथ के पीछे पड़ते थे, क्योंकि वायु के वेग के तुल्य अश्व बड़ी ही शीघ्रता से सरपट भागे चले जा रहे थे ॥३३॥

ततो नृपतयः क्रुद्धाः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ।
क्षत्रिया बहवश्चाऽन्ये जयद्रथवधैषिणम् ॥३४॥

अब बहुत से क्षत्रिय राजा, जयद्रथ के वध के अभिलाषी अर्जुन को क्रोध में भर कर घेर कर खड़े हो गए ॥३४॥

सैन्येषु विप्रयातेषु धिष्ठितं पुरुषर्षभम् ।
दुर्योधनोऽन्वयात्पार्थं त्वरमाणो महाहवे ॥३५॥

जब ये सेना भी लौट गई और पुरुषप्रवीर अर्जुन, वहीं दृढ़ता से खड़ा रहा, तो उस पर इस घमसान युद्ध में राजा दुर्योधन ने स्वयं आक्रमण किया ॥३५॥

वातोद्धूतपताकं तं रथं जलदनिःस्वनम् ।
घोरं कपिध्वजं दृष्ट्वा विषण्णा रथिनोऽभवन् ॥३६॥

मेघ के समान ध्वनि करने वाले, वायु से प्रकम्पित पताका धारी, भीषण, कपिमूर्ति से चिन्हित अर्जुन की ध्वजा को देखकर सारे कौरव महारथी उदास हो गए ॥३६॥

दिवाकरेऽथ रजसा सर्वतः संवृते भृशम् ।
शरार्त्ताश्च रणे योधाः शेकुः कृष्णौ न वीक्षितुम् ॥३७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सैन्यविस्मये शततमोऽध्यायः ॥१००॥

हे राजन् ! सब ओर मिट्टी से सूर्य के अत्यन्त आवृत हो जाने पर बाणोंसे छिदे हुए कौरववीर श्रीकृष्ण और अर्जुन की ओर देख भी नहीं सकते थे ॥३७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सेना के विस्मय का सौवां अध्याय समाप्त हुआ ।



# एक सौ एकवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

स्रंसन्त इव मज्जानस्तावकानां भयान्नृप ।
तौ दृष्ट्वा समतिक्रान्तौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥१॥
सर्वे तु प्रतिसंरब्धा ह्रीमन्तः सत्वचोदिताः ।
स्थिरीभूता महात्मानः प्रत्यगच्छन्धनञ्जयम् ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे नराधिप! इस समय तुम्हारे योद्धाओं को इतना भय चढ़ गया, कि उनकी मज्जा पिघल सी रही थी। जब इन वीरों ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को आगे बढ़ा हुआ देखा-तो ये भी आवेश में भर गए। ये सब लज्जाशील और आत्म-बल से सम्पन्न थे। ये सारे महारथी स्थित होकर अर्जुन पर प्रहार करने लगे ॥२॥

ये गताः पाण्डवं युद्धे रोषामर्षसमन्विताः ।
तेऽद्यापि न निवर्त्तन्ते सिन्धवः सागरादिव ॥३॥

हे भारत! परन्तु जो वीर अर्जुन के सन्मुख युद्ध करने पहुंच गए-वे अभी तक समुद्र में पहुंचे हुए नदी के प्रवाह की तरह उलटे नहीं आए ॥३॥

असन्तस्तु न्यवर्त्तन्त वेदेभ्य इव नास्तिकाः ।
नरकं भजमानास्ते प्रत्यपद्यन्त किल्बिषम् ॥४॥

हे राजन्! जो वीर आत्म-बल से रहित थे, वे वेद से नास्तिक की तरह युद्ध से उलट पड़े। उनकी नरक में जाने की इच्छा थी; तभी तो उन्होंने इस पाप को स्वीकार किया ॥४॥

तावतीत्य रथानीकं विमुक्तौ पुरुषर्षभौ ।
दृदृशाते यथा राहोरास्यान्मुक्तौ प्रभाकरौ ॥५॥

दोनों पुरुषप्रवीर अर्जुन और श्रीकृष्ण, रथों की सेना का अतिक्रमण करके ऐसे दिखाई पड़ते थे, जैसे-राहु के मुख से सूर्य चन्द्र निकल आए हों ॥५॥

मत्स्याविव महाजालं विदार्य विगतक्लमौ ।
तथा कृष्णावदृश्येतां सेनाजालं विदार्य तत् ॥६॥

हे भरतर्षभ ! बड़े भारी जाल को चीर कर क्रम रहित दो महान् मत्स्यों की तरह सेना-जाल को चीर कर श्रीकृष्ण और अर्जुन बाहर दिखाई पड़े ॥६॥

विमुक्तौ शस्त्रसम्बाधाद् द्रोणानीकात्सुदुर्भिदात् ।
अदृश्येतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ ॥७॥

दुर्भेद्य द्रोणाचार्य की सेना के शस्त्र समूह को चीर कर दोनों महावीर बाहर निकल आए। अब वे प्रलयकाल के सूर्य की तरह दिखाई देने लगे ॥७॥

अस्त्रसम्बाधनिर्मुक्तौ विमुक्तौ शस्त्रसङ्कटात् ।
अदृश्येतां महात्मानौ शत्रुसम्बाधकारिणौ ॥८॥

जब ये दोनों महात्मा, अस्त्रों के घेरे और शस्त्रों के समूह से बाहर निकल आए, तो शत्रु के बाधक होकर प्रतीत होने लगे ॥८॥

विमुक्तौ ज्वलनस्पर्शान्मकरास्याज्झषाविव ।
अक्षोभयेतां सेनां तौ समुद्रं मकराविव ॥९॥

अग्नि के समान भीषण, मकर के मुख से छूटे हुए मृत्यु की भांति ये दोनों बाहर निकल आये। अब ये दो मकरों की तरह सारे कौरव सेना के समुद्र को आलोडित करने लगे ॥९॥

तावकास्तव पुत्राश्च द्रोणानीकस्थयोस्तयोः।
नैतौ तरिष्यतो द्रोणमिति चक्रुस्तदा मतिम् ॥१०॥

जब श्रीकृष्ण और अर्जुन द्रोणाचार्य की सेना में फंस गए थे, तब तुम्हारे पुत्र और तुम्हारी सेना यह समझ रही थी, कि ये यहां से अब नहीं निकल सकते ॥१०॥

तौ तु दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ द्रोणानीकं महाद्युती।
नाऽऽशशंसुर्महाराज सिन्धुराजस्य जीवितम् ॥११॥

हे महाराज! जब ये महाद्युति, द्रोणाचार्य की सेना को पार कर गए, तब ही सब लोगों ने समझ लिया, कि अब राजा जयद्रथ के प्राण संकट में पड़ गए ॥११॥

आशा बलवती राजन्सिन्धुराजस्य जीविते।
द्रोणहार्दिक्ययोः कृष्णौ न मोक्ष्येते इति प्रभो ॥१२॥
तामाशां विफलीकृत्य सन्तीर्णौ तौ परन्तपौ।
द्रोणानीकं महाराज भोजानीकं च दुस्तरम् ॥१३॥

हे राजन्! सिन्धुराज के प्राण बचने की बड़ी आशा थी, कि द्रोण और कृतवर्मा अर्जुन और कृष्ण को आगे नहीं बढ़ने देंगे; परन्तु उस आशा को निष्फल करके परन्तप कृष्णार्जुन आगे बढ़

ही गए। उन्होंने दुस्तर द्रोणाचार्य और भोजराज कृतवर्मा की सेना को पार कर ही लिया ॥१२-१३॥

अथ दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ ज्वलिताविव पावकौ ।
निराशाः सिन्धुराजस्य जीवितं न शशंसिरे ॥१४॥

हे महाराज! जब कौरववीरों ने प्रज्वलित अग्नि के तुल्य देदीप्यमान कृष्णार्जुन को द्रोण और कृतवर्मा की सेना को उत्तीर्ण करते देखा-तो अब उनको बड़ी निराशा हुई और सिन्धुराज के जीवन में उनको कोई आशा न रही ॥१४॥

मिथश्च समभाषेतामभीतौ भयवर्धनौ ।
जयद्रथवधे वाचस्तास्ताः कृष्णधनञ्जयौ ॥१५॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन, विरोधियों के भय के वर्द्धक तथा आप निर्भय थे। अब ये राजा जयद्रथ के वध के विषय में योजना तय्यार करने लगे ॥१५॥

असौ मध्ये कृतः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
चक्षुर्विषयसम्प्राप्तो न मे मोक्ष्यति सैन्धवः ॥१६॥

अर्जुन ने कहा—यद्यपि इन धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधनादि ने राजा जयद्रथ को छः महारथियों के मध्य में खड़ा कर दिया है, परन्तु यदि वह मेरी दृष्टि के सन्मुख आ गया, तो जीता नहीं बच सकता है ॥१६॥

यद्यस्य समरे गोप्ता शक्रो देवगणैः सह ।
तथाऽप्येनं निहंस्याव इति कृष्णावभाषताम् ॥१७॥

यदि इस रण में इसका रक्षक स्वयं इन्द्र भी आ जावे, तो भी हम इसको मार कर छोड़ेंगे-इस तरह की दोनों वीर (कृष्णार्जुन) बातें कर रहे थे ॥१७॥

इति कृष्णौ महाबाहू मिथः कथयतां तदा ।
सिन्धुराजमवेक्षन्तौ त्वत्पुत्रा बहु चुक्रुशुः ॥१८॥

इस प्रकार महाबाहु कृष्णार्जुन बातें ही कर रहे थे, कि दूर से उनको राजा जयद्रथ दिखाई पड़े। इस समय तुम्हारे पुत्र बहुत चीखने और चिल्लाने लगे ॥१८॥

अतीत्य मरुधन्वानं प्रयान्तौ तृषितौ गजौ ।
पीत्वा वारि समाश्वस्तौ तथैवाऽऽस्तामरिन्दमौ ॥१९॥

अरिमर्दन श्रीकृष्ण और अर्जुन, इस तरह सेना को चीर कर बाहर आए, कि जैसे-प्यासे हाथी मरुस्थल को उलांघ कर बाहर आ गए हों। अब तो ये इतने प्रसन्न दिखाई देते हैं, जैसे प्यासे हाथी पानी पीकर प्रसन्न हो गए हों ॥१९॥

व्याघ्रसिंहगजाकीर्णानतिक्रम्य च पर्वतान् ।
वणिजाविव दृश्येतां हीनमृत्यू जरातिगौ ॥२०॥

हे राजन्! व्याघ्र, सिंह और गजों से व्याप्त पर्वतों को लांघकर मृत्यु से बचे हुए, क्लेश मुक्त, दो व्यापारियों की भांति अर्जुन और श्रीकृष्ण दिखाई देते थे ॥२०॥

तथा हि मुखवर्णोऽयमनयोरिति मेनिरे ।
तावका वीक्ष्य मुक्तौ तौ विक्रोशन्ति स्म सर्वशः ॥२१॥

इन दोनों का मुख भी उन वैश्यों की भांति प्रसन्न था ऐसा सबको प्रतीत होता था। उन दोनों को देखकर कौरववीर सब ओर से कोलाहाल मचाने लगे ॥२१॥

द्रोणादाशीविषाकाराज्ज्वलितादिव पावकात् ।
अन्येभ्यः पार्थिवेभ्यश्च भास्वन्ताविव भास्करौ ॥२२॥
विमुक्तौ सागरप्रख्याद् द्रोणानीकादरिन्दमौ ।
अदृश्येतां मुदा युक्तौ समुत्तीर्यार्णवं यथा ॥२३॥

आशीविष सर्प के समान तथा प्रज्वलित अग्नि के तुल्य भीषण द्रोण तथा अन्य राजाओं से मुक्त हुए दो चमकीले सूर्य के समान, अरिमर्दन कृष्णार्जुन, समुद्र की भांति उछलती हुई द्रोण की सेना से निकल कर ऐसे प्रसन्न दिखाई दिए-जैसे समुद्रों को तैर कर मनुष्य दिखाई देता है ॥२२-२३॥

अस्त्रौघान्महतो मुक्तौ द्रोणहार्दिक्यरक्षितात् ।
रोचमानावदृश्येतामिन्द्राग्न्योः सदृशौ रणे ॥२४॥

द्रोणाचार्य और कृतवर्मा के रक्षण में चलने वाले, अस्त्रधारियों से बचकर निकले हुए श्रीकृष्णार्जुन, इन्द्र और अग्नि के तुल्य प्रदीप्त दिखाई दे रहे थे ॥२४॥

उद्भिन्नरुधिरौ कृष्णौ भारद्वाजस्य सायकैः ।
शितैश्चितौ व्यरोचेतां कर्णिकारैरिवाऽचलौ ॥२५॥

भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य के बाणों से कृष्णार्जुन के रक्त की धारा बह रही थी। ये इन तीक्ष्ण बाणों से व्याप्त हुए ऐसे दिखाई देते थे, जैसे-लाल कनेर से व्याप्त कोई दो पर्वत हों ॥२५॥

द्रोणग्राहह्रदान्मुक्तौ शक्त्याशीविषसङ्कटात् ।
अयः शरोग्रमकरात्क्षत्रियप्रवराम्भसः ॥२६॥
ज्याघोषतलनिर्ह्रादाद्गदानिस्त्रिंशविद्युतः ।
द्रोणास्त्रमेघान्निर्मुक्तौ सूर्येन्दू तिमिरादिव ॥२७॥
बाहुभ्यामिव सन्तीर्णौ सिन्धुषष्ठाः समुद्रगाः ।
तेषां ते सरितः पूर्णा महाग्रहसमाकुलाः ॥२८॥
इति कृष्णौ महेष्वासौ प्रशस्तौ लोकविश्रुतौ ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त द्रोणास्त्रबलवारणात् ॥२९॥

द्रोणाचार्य रूपी ग्राह से युक्त तड़ाग, शक्ति रूपी आशीविष के संकट, लोह के बाणरूपी उग्र मकर, क्षत्रियश्रेष्ठों के जलप्रवाह, धनुष की डोरी की ध्वनिरूपी गर्जना, गदा और खड्ग की बिजली एवं द्रोण के अस्त्ररूपी मेघ से कृष्णार्जुन बाहर निकले। ये अन्धकार से बाहर आये हुए सूर्य और चन्द्रमा की भांति प्रतीत हो रहे थे। इन्होंने बड़े २ ग्राहों से भरी हुई छःओं समुद्रगामी सिन्ध आदि महानदियों को बाहुओं से ही पार करने के तुल्य इस सेना को पार किया। इन दोनों लोकविश्रुत महावीर, महाधनुर्धर श्रीकृष्ण और अर्जुन को द्रोण के अस्त्रबल और गजसेना से मुक्त हुए सब कौरववीरोंने अब समझ लिया ॥२६-२९॥

जयद्रथं समीपस्थामवेक्षन्तौ जिघांसया ।
रुरुं निपाने लिप्सन्तौ व्याघ्राविव व्यतिष्ठताम् ॥३०॥

हे राजन्! सिन्धुराज के पास पहुंचे हुए ये दोनों महावीर, सिन्धुराज को इस प्रकार वध की इच्छा से देख रहे थ, जैसे-मृग को चाट जाने की इच्छा रखने वाले दो व्याघ्र अपने ओष्ठ चाट रहे हों ॥३०॥

यथा हि मुखवर्णोऽयमनयोरिति मेनिरे ।
तव योधा महाराज हतमेव जयद्रथम् ॥३१॥

हे महाराज! तुम्हारे योद्धाओं ने इनके मुख को ऐसा भीषण देखा, जिससे इनको राजा जयद्रथ के वध में विश्वास हो गया।

लोहिताक्षौ महाबाहू संयुक्तौ कृष्णपाण्डवौ ।
सिन्धुराजमभिप्रेक्ष्य हृष्टौ व्यनदतां मुहुः ॥३२॥

महाबाहु कृष्णार्जुन की आंखें लाल हो रही थीं, ये दोनों एक साथ राजा जयद्रथ को देखकर प्रसन्नता के साथ बार बार गर्जना करने लगे ॥३२॥

शौरेरभीषुहस्तस्य पार्थस्य च धनुष्मतः ।
तयोरासीत्प्रभा राजन्सूर्यपावकयोरिव ॥३३॥

हे राजन्। श्रीकृष्ण के हाथ में तो अश्वों की रास थी और अर्जुन के हाथ में धनुप था। सूर्य और अग्नि की चमक के तुल्य इन दोनों की चमक दिखाई दे रही थी ॥३३॥

हर्ष एव तयोरासीद् द्रोणानीकप्रमुक्तयोः ।
समीपे सैन्धवं दृष्ट्वा श्येनयोरामिषं यथा ॥३४॥

द्रोणाचार्य की सेना से मुक्त होने पर ये बड़े ही प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। इन्होंने श्येन (बाज) के समीप पड़े हुए मांस की तरह अपने राजा जयद्रथ की ओर देखा ॥३४॥

तौ तु सैन्धवमालोक्य वर्त्तमानमिवाऽन्तिके ।
सहसा पेततुः क्रुद्धो क्षिप्रं श्येनाविवाऽमिषम् ॥३५॥

वे सिन्धुराज को समीप में ही मांसखण्ड की तरह पड़े हुए देखकर मांस पर दो श्येनों की तरह दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुन उन पर टूट पड़े ॥३५॥

तौ दृष्ट्वा तु व्यतिक्रान्तौ हृषीकेशधनञ्जयौ ।
सिन्धुराजस्य रक्षार्थं पराक्रान्तः सुतस्तव ॥३६॥

जब तुम्हारे पुत्र ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को आक्रमण करते देखा तो सिन्धुराज की रक्षा के निमित्त तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन भी आगे बढ़ा ॥३६॥

द्रोणेनाऽऽबद्धकवचो राजा दुर्योधनस्ततः ।
ययावेकरथेनाऽऽजौ हयसंस्कारवित्प्रभो ॥३७॥

हे नराधिप! तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन, अश्वों के चलाने में कुशल था। उसके द्रोणाचार्य ने कवच बांध दिया था, अतएव वह अकेला ही रण में अर्जुन के सन्मुख आगे बढ़ा ॥३७॥

कृष्णपार्थौ महेष्वासौ व्यतिक्रम्याऽथ ते सुतः ।
अग्रतः पुण्डरीकाक्षं प्रतीयाय नराधिप ॥३८॥

हे राजन् ! आपका पुत्र, राजा दुर्योधन महाधनुर्धर श्रीकृष्णार्जुन पर आक्रमण कर अब श्रीकृष्ण के सन्मुख डट कर खड़ा हो गया।

ततः सर्वेषु सैन्येषु वादित्राणि प्रहृष्टवत् ।
प्रावाद्यन्त व्यतिक्रान्ते तव पुत्रे धनञ्जयम् ॥३९॥

अब तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के अर्जुन पर आक्रमण करने से सारी सेना में बड़ी प्रसन्नता के बाजे बजने लगे ॥३९॥

सिंहनादरवाश्चाऽऽसञ्शङ्खशब्दविमिश्रिताः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनं तत्र कृष्णयोः प्रमुखे स्थितम् ॥४०॥

इस समय शंख ध्वनियों से मिली हुई सिंहध्वनि होने लगी, क्योंकि राजा दुर्योधन ने कृष्णार्जुन पर आक्रमण किया है ॥४०॥

ये च ते सिन्धुराजस्य गोप्तारः पावकोपमाः ।
ते प्राहृष्यन्त समरे दृष्ट्वा पुत्रं तव प्रभो ॥४१॥

हे प्रभो ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को आक्रमण करता देखकर अग्नि के तुल्य देदीप्यमान सिन्धुराज के रक्षक महारथी बड़े ही प्रसन्न हुए ॥४१॥

दृष्ट्वा दुर्योधनं कृष्णो व्यतिक्रान्तं सहानुगम् ।
अब्रवीदर्जुनं राजन्प्राप्तकालमिदं वचः ॥४२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनागमे
एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

हे राजन्! अपनी सेना के साथ राजा दुर्योधन को आक्रमण करता देखकर भगवान् कृष्ण, अर्जुन से समयानुकूल यह वचन बोले ॥४२॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में दुर्योधन के आक्रमण का एक सौ एकवां अध्याय पूरा हुआ

---

# एक सौ दोवां अध्याय

वासुदेव उवाच—

दुर्योधनमतिक्रान्तमेतं पश्य धनञ्जय ।

अत्यद्भुतमिमं मन्ये नाऽस्त्यस्य सदृशो रथः ॥१॥

श्रीकृष्ण कहने लगे—हे धनञ्जय! यह सामने से देखो-राजा दुर्योधन आ गया है। इसने यह बड़ा अद्भुत कार्य किया है। मैं इसके सदृश अन्य किसी महारथी को कौरवों के दल में नहीं समझता हूं ॥१॥

दूरपाती महेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।

दृढास्त्रश्चित्रयोधी च धार्तराष्ट्रो महाबलः ॥२॥

यह महाबली धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन बड़ा धनुर्धर और युद्ध दुर्मद है, यह अस्त्र विद्या में भी बड़ा कुशल है। इसका बाण बहुत दूरी पर भी अपने लक्ष्य को बींध लेता है । इसके पास बड़े २ दृढ़ अस्त्र हैं, जिनसे यह बड़ा ही विचित्र युद्ध करता है ॥२॥

अत्यन्तसुखसंवृद्धो मानितश्च महारथः ।
कृती च सततं पार्थ नित्यं द्वेष्टि च बान्धवान् ॥३॥

हे पार्थ ! राजा दुर्योधन बड़े सुख में पला है। इस महारथी का संसार में बड़ा आदर है। यह अपने कार्यों में कृतार्थ हो चुका है और सदा अपने बान्धवों में आगे बढ़ जाना चाहता है ॥३॥

तेन युद्धमहं मन्ये प्राप्तकालं तवाऽनघ ।
अत्र वो द्यूतमायत्तं विजयायेतराय वा ॥४॥

हे अनघ ! अब वह समय आ गया है, जिसमें तुम्हारी और राजा दुर्योधन की ठनेगी। यह ऐसा द्यूत (जुआ) होगा, जिसमें जय पराजय का अन्तिम निर्णय हो जावेगा ॥४॥

अत्र क्रोधविषं पार्थ विमुञ्च चिरसम्भृतम् ।
एष मूलमनर्थानां पाण्डवानां महारथः ॥५॥

हे कौन्तेय ! आज तुम चिरकाल से भरे हुए अपने विष को उगल लेना। यही महारथी दुर्योधन है, जो पाण्डवों की विपत्ति का मूल कारण है ॥५॥

सोऽयं प्राप्तस्तवाऽऽक्षेपं पश्य साफल्यमात्मनः ।
कथं हि राजा राज्यार्थी त्वया गच्छेत संयुगम् ॥६॥

अब यह तुम्हारी चोट की झपट में आ रहा है। आज तुम अपना सारा बल लगाकर अपनी सफलता का मार्ग शुद्ध कर लो। राज्य का अभिलाषी राजा दुर्योधन, राजा होकर भी तुम्हारे साथ युद्ध में आ डटा है-यह इसकी महान् वीरता है ॥६॥

दिष्ट्या त्विदानीं सम्प्राप्त एष ते बाणगोचरम् ।

यथाऽयं जीवितं जह्यात्तथा कुरु धनञ्जय ॥७॥

हे धनञ्जय ! यह बड़े हर्ष की बात है, कि आज राजा दुर्योधन तुम्हारे बाण की झपेट में आ गया है। अब तुम भी ऐसा प्रयत्न करो, जिससे आज यह जीता बचकर न निकल जावे ॥७॥

ऐश्वर्यमदसम्मूढो नैष दुःखमुपेयिवान् ।

न च ते संयुगे वीर्यं जानाति पुरुषर्षभ ॥८॥

हे पुरुषर्षभ ! राजा दुर्योधन ऐश्वर्य के मद से मोहित हो रहा है। इसने कभी दुःख नहीं देखे हैं। इस कोमलता के कारण तुम जैसे कर्कश के सन्मुख यह अपना पराक्रम नहीं दिखा सकेगा ॥८॥

त्वां हि लोकास्त्रयः पार्थ ससुरासुरमानुषाः ।

नोत्सहन्ते रणे जेतुं किमुतैकः सुयोधनः ॥९॥

हे अर्जुन ! सुर, असुर और मनुष्यों के सहित तीनों लोक, तुमको रण में नहीं जीत सकते हैं, फिर अकेले बेचारे दुर्योधन की तो क्या शक्ति है ॥९॥

स दिष्ट्या समनुप्राप्तस्तव पार्थ रथान्तिकम् ।

जह्येनं त्वं महाबाहो यथा वृत्रं पुरन्दरः ॥१०॥

हे पार्थ ! यह बड़े हर्ष की बात है, कि वह तुम्हारे रथ के पास ही आ पहुंचा। हे महाबाहो ! आज तुम वृत्रासुर को इन्द्र के तुल्य इस कुरुराज को मार कर दिखाओ ॥१०॥

एष ह्यनर्थे सततं पराक्रान्तस्तवाऽनघ ।

निकृत्या धर्मराजं च द्यूते वञ्चितवानयम् ॥११॥

हे अनघ ! यही वह व्यक्ति है, जो तुम्हारे दुःखों के खड़े करने में सदा अपनी शक्ति दिखाता रहता था। इसी ने छल के साथ द्यूत (जुआ) में धर्मराज को जीता है ॥११॥

बहूनि सुनृशंसानि कृतान्येतेन मानद ।

युष्मासु पापमतिना अपापेष्वेवनित्यदा ॥१२॥

तमनार्यं सदा क्रुद्धं पुरुषं कामरूपिणम् ।

आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा जहि पार्थाऽविचारयन् ॥१३॥

हे मानद ! इस दुर्मति ने नित्य सदाचारपरायण तुम लोगों के साथ बड़े ही अनुचित नीच व्यवहार किए हैं। हे पार्थ ! तुम इस अनार्य, सदा क्रोध में भरे रहने वाले, कामनाओं के लक्ष्य, कुरुराज को युद्ध में बड़ीवीरतापूर्ण आर्य बुद्धि बनाकर इसका वध कर डालो; कुछ सोचने विचारने का काम नहीं है ॥१२-१३॥

निकृत्या राज्यहरणं वनवासं च पाण्डव ।

परिक्लेशं च कृष्णाया हृदि कृत्वा पराक्रम ॥१४॥

हे पाण्डव ! छल से राज्य का छिनना, वनवास और द्रौपदी के क्लेश को विचार कर आज तुम अपना पराक्रम दिखा दो ॥१४॥

दिष्ट्यैष तव बाणानां गोचरे परिवर्त्तते ।

प्रतिघाताय कार्यस्य दिष्ट्या च यततेऽग्रतः ॥१५॥

इससे अधिक हर्ष की और क्या बात होगी, जो वह तुम्हारे बाण-गोचर हुआ है। यह तुम्हारे आघातों के प्रत्युत्तर देने को बड़े हर्ष से सन्मुख खड़ा हुआ है ॥१५॥

दिष्ट्या जानाति संग्रामे योद्धुं यं हि त्वया सह।
दिष्ट्या च सफलाः पार्थ सर्वे कामा ह्यकामिताः ॥१६॥

राजा दुर्योधन, तुम्हारे साथ युद्ध करने योग्य युद्धकला को अच्छी तरह जानता है। हे पार्थ! यह बड़े हर्ष का स्थान है, कि आज अचानक तुम्हारी सारी कामनाएँ पूर्ण होने को हैं ॥१६॥

तस्माज्जहि रणे पार्थ धार्त्तराष्ट्रं कुलाधमम्।
यथेन्द्रेण हतः पूर्वं जम्भो देवासुरे मृधे ॥१७॥

हे पार्थ! अब तुम इन सब बातों को सोचकर कुलाधम दुर्योधनको देवासुर संग्राममें जम्भासुर को इन्द्र की तरह मार गिराओ

अस्मिन्हते त्वया सैन्यमनाथं भिद्यतामिदम्।
वैरस्याऽस्याऽस्त्ववभृथो मूलं छिन्धि दुरात्मनाम् ॥१८॥

हे महाबाहो! ज्यों ही तुम राजा दुर्योधन को मार लोगे-बस? यह सारी सेना अनाथ होकर भाग जावेगी। अब इस वैररूपी यज्ञ का यह अन्तिम स्नान होना चाहिए। तुम दुरात्माओं की मूल को ही काट फैंको ॥१८॥

सञ्जय उवाच—

तं तथेत्यब्रवीत्पार्थः कृत्यरूपमिदं मम।
सर्वमन्यदनादृत्य गच्छ यत्र सुयोधनः ॥१९॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन्! श्रीकृष्ण के इतने वचन सुन कर अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण! सचमुच मेरा यही सर्व प्रधान कार्य है। अब तुम भी मेरे रथ को सब कुछ छोड़कर उधर ही मोड़ दो-जिधर राजा दुर्योधन आ रहा है ॥१६॥

येनैतद्दीर्घकालं नो भुक्तं राज्यमकण्टकम् ।
अप्यस्य युधि विक्रम्यच्छिन्द्यां मूर्धानमाहवे ॥२०॥

इसने हमारे राज्य को बहुत लम्बे समय तक निष्कण्टकता से भोगा है। अब मैं आज रण में पराक्रम दिखाकर इसका मस्तक काट डालूंगा ॥२०॥

अपि तस्य ह्यनर्हाया: परिक्लेशस्य माधव ।
कृष्णाया: शक्नुयां गन्तुं पदं केशप्रधर्षणे ॥२१॥

हे माधव! सम्भव है, आज मैं क्लेश के अयोग्य द्रौपदी के बालों के पकड़ने के बदले को चुका सकूं ॥२१॥

इत्येवं वादिनौ कृष्णौ हृष्टौ श्वेतान्हयोत्तमान् ।
प्रेषयामासतु: संख्ये प्रेप्सन्तौ तं नराधिपम् ॥२२॥

हे राजन्! इस प्रकार बड़ी प्रसन्नता से दोनों वीर कृष्णार्जुन बातें कर रहे थे। अब इन्होंने अपने उत्तम श्वेत अश्वों को राजा दुर्योधन की ओर चलाया ॥२२॥

तयो: समीपं सम्प्राप्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
न चकार भयं प्राप्ते भये महति मारिष ॥२३॥

हे भरतर्षभ! इन दोनों के समीप आ जाने पर भी तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को कोई भय नहीं हुआ। यद्यपि यह बड़ा भारी भय उपस्थित हुआ था ॥२३॥

तदस्य क्षत्रियास्तत्र सर्व एवाऽभ्यपूजयन् ।
यदर्जुनहृषीकेशौ प्रत्युद्यातौ न्यवारयत् ॥२४॥

इस समय राजा दुर्योधन की सारे क्षत्रियवीरों ने प्रशंसा की; जो इसने बड़े वेग से बढ़ते हुए कृष्णार्जुन के रोकने की चेष्टा की।

ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते ।
महानादो ह्यभूत्तत्र दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥२५॥

हे विशाम्पते! इसके अनन्तर तुम्हारी सेना में बड़ा सिंहनाद होने लगा, जो अर्जुन के सन्मुख कुरुराज दुर्योधन को युद्ध में प्रवृत्त देखा ॥२५॥

तस्मिञ्जनसमुन्नादे प्रवृत्ते भैरवे सति ।
कदर्थीकृत्य ते पुत्रः प्रत्यमित्रमवारयत् ॥२६॥

इस प्रकार जब सेना के जनसमूह में यह भीषण कोलाहल हो रहा था, तो अपने शत्रु, अर्जुन के आक्षेपों को व्यर्थ करता हुआ, राजा दुर्योधन युद्ध करने लगा ॥२६॥

आवारितस्तु कौन्तेयस्तव पुत्रेण धन्विना ।
संरम्भमगमद्भूयः स च तस्मिन्परन्तपः ॥२७॥

जब धनुर्धर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने अर्जुन को आगे बढ़ने से रोक दिया-तो परन्तप कुन्ती-पुत्र अर्जुन को राजा दुर्योधन पर बड़ा क्रोध आया ॥२७॥

तौ दृष्ट्वा प्रतिसंरब्धौ दुर्योधनधनञ्जयौ ।
अभ्यवैक्षन्त राजानो भीमरूपाः समन्ततः ॥२८॥

राजा दुर्योधन और महारथी अर्जुन को क्रोध में भरे हुए देखकर बड़े २ भीषण रूपधारी राजा लोग भी सब ओर इनका युद्ध देखने खड़े हो गए ॥२८॥

दृष्ट्वा तु पार्थं संरब्धं वासुदेवं च मारिष ।
प्रहसन्नेव पुत्रस्ते योद्धुकामः समाह्वयत् ॥२९॥

हे मारिष ! जब तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने अर्जुन और वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण को क्रोध में भरा हुआ देखा-तो वह मुस्कुराने और युद्ध की इच्छा से उन्हें ललकारने लगा ॥२९॥

ततः प्रहृष्टो दाशार्हः पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
व्यक्रोशेतां महानादं दध्मतुश्चाऽम्बुजोत्तमौ ॥३०॥

अब दशार्हवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और पाण्डु-पुत्र अर्जुन बड़े उत्साह में भर गए। इन्होंने अपने २ शङ्ख बजाए और बड़े वेग से सिंहनाद किया ॥३०॥

तौ हृष्टरूपौ सम्प्रेक्ष्य कौरवेयास्तु सर्वशः ।
निराशाः समपद्यन्त पुत्रस्य तव जीविते ॥३१॥

इन दोनों को इतना उत्साहित देखकर सारे कौरववीर एक बार-तो तुम्हारे पुत्र के जीवन में निराश से हो गए ॥३१॥

शोकमापुः परे चैव कुरवः सर्व एव ते ।
अमन्यन्त च पुत्रं ते वैश्वानरमुखे हुतम् ॥३२॥

हे राजन्! बहुत से कौरववीर तो इस बात का शोक कने लगे। सारांश यह है, कि सारे कौरवों ने राजा दुर्योधन को इस समय अग्नि के मुख में पड़ा हुआ समझा ॥३२॥

तथा तु दृष्ट्वा योधास्ते प्रहृष्टौ कृष्णपाण्डवौ।
हतो राजा हतो राजेत्यूचिरे च भयार्दिताः ॥३३॥

हे भारत! इस प्रकार आवेश और उत्साह में भरे हुए कृष्णार्जुन को देखकर तुम्हारे योद्धा भयातुर होकर यही कह रहे थे, कि अब राजा दुर्योधन मारे जाते दिखाई दे रहे हैं ॥३३॥

जनस्य सन्निनादं तु श्रुत्वा दुर्योधनोऽब्रवीत्।
व्येतु वो भीरहं कृष्णौ प्रेषयिष्यामि मृत्यवे ॥३४॥

हे भरतर्षभ! मनुष्यों के इस कोलाहल को सुनकर राजा दुर्योधन बोले—तुम लोग घबराओ नहीं। मैं अभी कृष्णार्जुन को मृत्यु के समर्पित किये देता हूं ॥३४॥

इत्युक्त्वा सैनिकान्सर्वाञ्जयापेक्षी नराधिपः।
पार्थमाभाष्य संरम्भादिदं वचनमब्रवीत् ॥३५॥

विजयाभिलाषी राजा दुर्योधन सारे सैनिकों से इस प्रकार कहकर क्रोध-पूर्वक अर्जुन को सम्बोधित करके यह वचन बोले ॥

पार्थ यच्छिक्षितं तेऽस्त्रं दिव्यं पार्थिवमेव च।
तद्दर्शय मयि क्षिप्रं यदि जातोऽसि पाण्डुना ॥३६॥

हे अर्जुन! तुमने लोक और इन्द्रलोक में जो अस्त्र चलाना सीखा है, आज उन सबको यदि तुम पाण्डु से उत्पन्न हो-तो मेरे ऊपर चला देखना ॥३६॥

यद्बलं तव वीर्यं च केशवस्य तथैव च।
तत्कुरुष्व मयि क्षिप्रं पश्यामस्तव पौरुषम् ॥३७॥

हे कौन्तेय! जो तेरे शरीर में बल या पराक्रम है तथा कृष्ण जो शक्ति रखते हैं, उन सबका मुझ पर प्रयोग कर देखो। मैं तुम्हारा पौरुष देखना चाहता हूं ॥३७॥

असमत्परोक्षं कर्माणि कृतानि प्रवदन्ति ते।
स्वामिसत्कारयुक्तानि यानि तानीह दर्शय ॥३८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनवचने द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

तू अपने स्वामी से सत्कार पाने योग्य कर्मों को मेरे परोक्ष में करके दिखा रहा है-ऐसा लोग कहते हैं। आज तुम उनको मेरे सन्मुख करके दिखाओ ॥३८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में दुर्योधन के वाक्य का एक सौ दोवां अध्याय समाप्त हुआ।

—※:※—

# एक सौ तीनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वाऽर्जुनं राजा त्रिभिर्मर्मातिगैः शरैः।
अभ्यविध्यन्महावेगैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! इतना कहकर राजा दुर्योधन ने मर्म को भेद देने वाले तीन बाण छोड़े और चार बाण छोड़कर अर्जुन के चारों अश्वों को बींध दिया ॥१॥

वासुदेवं च दशभिः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे।
प्रतोदं चाऽस्य भल्लेनच्छित्वा भूमावपातयत् ॥२॥

इसी तरह इन्होंने वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण की छाती में दश बाण मारे तथा इनके प्रतोद (सांठे) को अपने बाण से काट कर भूमि में गिरा दिया ॥२॥

तं चतुर्दशभिः पार्थश्चित्रपुङ्खैः शिलाशितैः।
अविध्यत्तूर्णमव्यग्रस्ते चाऽभ्रश्यन्त वर्मणि ॥३॥

अर्जुन ने भी शिला पर तीक्ष्ण किये हुए विचित्र मूलधारी चौदह बाण बड़ी सावधानी से छोड़े, परन्तु वे कुरुराज के कवच पर टकराकर चकनाचूर हो गए ॥३॥

तेषां नैष्फल्यमालोक्य पुनर्नव च पञ्च च।
प्राहिणोन्निशितान्बाणांस्ते चाऽभ्रश्यन्त वर्मणः ॥४॥

जब अर्जुन ने अपने बाणों को निष्फल जाते देखा-तो फिर चौदह तीक्ष्ण बाण फैके-वे भी कवच पर जाकर छिन्न-भिन्न हो गए।

अष्टाविंशांस्तु तान्बाणानस्तान्विप्रेक्ष्य निष्फलान् ।
अब्रवीत्परवीरघ्नः कृष्णोऽर्जुनमिदं वचः ॥५॥

इस प्रकार जब अट्ठाईस बाण निष्फल हो गए-तो यह देखकर शत्रुवीरनाशक श्रीकृष्ण अर्जुन से यह वचन बोले ॥५॥

अदृष्टपूर्वं पश्यामि शिलानामिव सर्पणम् ।
त्वया सम्प्रेषिताः पार्थ नाऽर्थं कुर्वन्ति पत्रिणः ॥६॥

हे पार्थ ! आज तो मैं ऐसा ढंग देख रहा हूं-जैसा पूर्व में कभी नहीं देखा था। तुम्हारे बाण पत्थर पर टकराने की तरह रपट जाते हैं और अपना कुछ काम नहीं कर पाते हैं ॥६॥

कच्चिद्गाण्डीवजः प्राणस्तथैव भरतर्षभ ।
मुष्टिश्च ते यथापूर्वं भुजयोश्च बलं तव ॥७॥
न वा कच्चिदयं कालः प्राप्तः स्यादद्य पश्चिमः ।
तव चैवाऽस्य शत्रोश्च तन्ममाऽऽचक्ष्व पृच्छतः ॥८॥

हे भरतर्षभ ! तुम्हारे गाण्डीव धनुषमें पूर्व के समान ही शक्ति तो है ? तुम्हारी मुट्ठी भी वैसी ही है और भुजाओं का बल भी शिथिल तो नहीं हुआ है ? क्या आज तुम्हारा विपरीत काल उपस्थित हो गया है और क्या तुम्हारे शत्रु के दिन अच्छे आ गए, जो यह बात हो रही है ? तुम इस विषय में अपना मत बताओ ? ॥७-८॥

विस्मयो मे महान्पार्थ तव दृष्ट्वा शरानिमान् ।
व्यर्थान्निपतितान्संख्ये दुर्योधनरथं प्रति ॥९॥

हे पार्थ ! तुम्हारे इन बाणों को दुर्योधन के रथ पर निष्फल पड़ते देखकर मुझे बड़ा ही अचम्भा हो रहा है ॥९॥

वज्राशनिसमा घोराः परकायात्रभेदिनः ।
शराः कुर्वन्ति ते नाऽर्थं पार्थ काऽद्य विडम्बना ॥१०॥

हे कौन्तेय ! तुम्हारे तो बाण वज्र के समान घोर और शत्रु शरीर के भेदने वाले थे । आज वे अपना कार्य क्यों नहीं करके दिखा रहे हैं ॥१०॥

अर्जुन उवाच—

द्रोणेनैषा मतिः कृष्ण धार्त्तराष्ट्रे निवेशिता ।
अभेद्या हि ममाऽस्त्राणामेषा कवचधारणा ॥११॥

अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण ! द्रोणाचार्य ने धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन को यह सब कुछ सिखा दिया है । उसने इस ढंग से कवच धारण किया है, जिससे मेरे बाण इस कवच को नहीं भेद पाते हैं ॥११॥

अस्मिन्नन्तर्हितं कृष्ण त्रैलोक्यमपि वर्मणि ।
एको द्रोणो हि वेदैतदहं तस्माच्च सत्तमात् ॥१२॥

हे कृष्ण ! इस कवच में त्रिलोकी की शक्ति विद्यमान है । इस कवच धारण की क्रिया को अकेला द्रोणाचार्य ही जानता है । उसी महानुभाव ने इसे मुझे भी सिखा रखा है ॥१२॥

न शक्यमेतत्कवचं बाणैर्भेत्तुं कथञ्चन ।
अपि वज्रेण गोविन्द स्वयं मघवता युधि ॥१३॥

हे गोविन्द ! इस कवच को युद्ध में इन्द्र भी अपने वज्र से नहीं छेद सकता; फिर यह मेरे बाणों से भी किसी प्रकार नहीं भेदा जा सकेगा ॥१३॥

जानंस्त्वमपि वै कृष्ण मां विमोहयसे कथम् ।
यद्वृत्तं त्रिषु लोकेषु यच्च केशव वर्त्तते ॥१४॥

हे कृष्ण ! तुम तो सब कुछ जानते हो, मुझे क्यों चक्कर में डाल रहे हो। हे केशव ! जो कुछ त्रिलोकी में हो रहा है, वह आपसे क्या छिपा है ॥१४॥

तथा भविष्यद्यच्चैव तत्सर्वं विदितं तव ।
न त्विदं वेद वै कश्चिद्यथा त्वं मधुसूदन ॥१५॥

हे मधुसूदन ! यही क्या ? आगे जो भी कुछ होने वाला है, वह भी सब कुछ आपको ज्ञात है; अन्य किसी की शक्ति नहीं है, जो तुम्हारी तरह सब कुछ जान लेता हो ॥१५॥

एष दुर्योधनः कृष्ण द्रोणेन विहितामिमाम् ।
तिष्ठत्यभीतवत्संख्ये बिभ्रत्कवचधारणाम् ॥१६॥

हे कृष्ण ! राजा दुर्योधन, द्रोणाचार्य के पहिनाये हुए कवच को धारण करके रण में अत्यन्त निर्भीक भाव से स्थित है ॥१६॥

यत्त्वत्र विहितं कार्यं नैष तद्वेत्ति माधव ।
स्त्रीवदेष बिभर्त्येतां युक्तां कवचधारणाम् ॥१७॥

हे माधव ! इस कवच को पहिन कर क्या करना चाहिए ? इस का इस दुर्योधन को कुछ भी ज्ञान नहीं है। यह तो इस उपयोगी

कवच धारण को इस ढंग से पहिने हुए है, जैसे कोई स्त्री ने कवच पहिन लिया हो ॥१७॥

पश्य बाह्वोश्च मे वीर्यं धनुषश्च जनार्दन ।
पराजयिष्ये कौरव्यं कवचेनाऽपि रक्षितम् ॥१८॥

हे जनार्दन ! अब तुम मेरी भुजा और मेरे धनुष का बल देखना । मैं इस कुरुराज को अवश्य पराजित करके छोड़ूंगा । चाहे यह कितना भी कवच पहिने हुए हो ॥१८॥

इदमङ्गिरसे प्रादाद्देवेशो वर्म भास्वरम् ।
तस्माद् बृहस्पतिः प्राप ततः प्राप पुरन्दरः ॥१९॥
पुनर्ददौ सुरपतिर्मह्यं वर्म ससंग्रहम् ।

इस देदीप्यमान कवच को इन्द्र ने अङ्गिरा को दिया-अङ्गिरा से बृहस्पति ने पाया । बृहस्पति ने इसमें कुछ तीव्रता करके इन्द्र को फिर सिखाया । देवराज इन्द्र ने इस कवच को विधिपूर्वक मुझे प्रदान किया है ॥१९॥

दैवं यद्यस्य वर्मैतद् ब्रह्मणा वा स्वयं कृतम् ॥२०॥
नैनं गोप्स्यति दुर्बुद्धिमद्य बाणहतं मया ।

यह कवच चाहे देवों द्वारा बनाया गया हो या स्वयं ब्रह्मा ने रचा हो, परन्तु यह कवच आज मेरे बाण से इस दुर्बुद्धि दुर्योधन को बचा नहीं सकेगा ॥२०॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वाऽर्जुनो बाणानभिमन्त्र्य व्यकर्षयत् ॥२१॥
मानवास्त्रेण मानार्हस्तीक्ष्णावरणभेदिना ।

सञ्जय ने कहा—इतना कहकर मान के योग्य अर्जुन ने भी बाणों को अभिमन्त्रित करके तूणीर से खैंचा और तीक्ष्ण आवरण को भेद देने वाले, मानवास्त्र से उनको दुर्योधन पर छोड़ दिया ॥

विकृष्यमाणांस्तेनैव धनुर्मध्यगताञ्छरान् ॥२२॥
तानस्याऽस्त्रेण चिच्छेद द्रौणिः सर्वास्त्रघातिना ।

उस तीव्र अस्त्र द्वारा फैंके हुए, उन तीव्र बाणों को सब अस्त्रों के घाती अस्त्र से द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने बीच में ही काट गिराया ॥२२॥

तान्निकृत्तानिषून्दृष्ट्वा दूरतो ब्रह्मवादिना ॥२३॥
न्यवेदयत्केशवाय विस्मितः श्वेतवाहनः ।

ब्रह्मवादी अश्वत्थामा द्वारा दूर से ही अपने बाणों को कटा हुआ देखकर श्वेत वाहनधारी अर्जुन ने चकित होकर श्रीकृष्ण से कहा ॥

नैतदस्त्रं मया शक्यं द्विः प्रयोक्तुं जनार्दन ॥२४॥
अस्त्रं मामेव हन्याद्धि हन्याच्चापि बलं मम ।

हे जनार्दन ! अब मैं तो इस अस्त्र को दुबारा नहीं चला सकता। यदि दुबारा इस अस्त्र का प्रयोग किया गया-तो यह अस्त्र मुझे या मेरी सेना का ही नाश कर बैठेगा ॥२४॥

ततो दुर्योधनः कृष्णौ नवभिर्नवभिः शरैः ॥२५॥
अविध्यत रणे राजञ्शरैराशीविषोपमैः ।

हे राजन् ! अब राजा दुर्योधन ने नौ २ आशीविष सर्प के तुल्य भीषण बाण छोड़कर रण में श्रीकृष्णार्जुन पर प्रहार किया ॥

भूय एवाऽभ्यवर्षच्च समरे कृष्णपाण्डवौ ॥२६॥
शरवर्षेण महता ततोऽहृष्यन्त तावकाः ।
चक्रुर्वादित्रनिनदान्सिंहनादरवांस्तथा ॥२७॥

इतना ही नहीं राजा दुर्योधन ने फिर तीव्रता के साथ श्रीकृष्ण और अर्जुन पर बड़ी भारी बाणवर्षा करना आरम्भ किया, जिसको देखकर तुम्हारे पक्ष के वीर बड़े ही प्रफुल्लित हुए और बाजों की ध्वनि तथा सिंहनाद करने लगे ॥२६-२७॥

ततः क्रुद्धो रणे पार्थः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
नाऽपश्यच्च ततोऽस्याऽङ्गं यन्न स्याद्वर्मरक्षितम् ॥२८॥

इस बाणवर्षा को देखकर अर्जुन कुपित हो उठा और ओष्ठ चाटने लगा। इसको दुर्योधन का कोई अङ्ग प्रहार के योग्य नहीं दिखाई दिया, जो कवच से सुरक्षित न हो ॥२८॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सुमुक्तैरन्तकोपमैः ।
हयांश्चकार निर्देहानुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥२९॥

अब अर्जुन ने काल के तुल्य तीखे बाण, धनुष को अच्छी तरह खैंच कर छोड़े, जिनसे राजा दुर्योधन के अश्व और दोनों पार्ष्णि (पृष्ठ) रक्षक मारे गए ॥२९॥

धनुरस्याऽच्छिनत्तूर्णं हस्तावापं च वीर्यवान् ।
रथं च शकलीकर्तुं सव्यसाची प्रचक्रमे ॥३०॥

महापराक्रमी अर्जुन ने कुरुराज दुर्योधन का धनुष और करतालत्राण भी काट गिराया और रथ के टुकड़े २ उड़ा देने के लिए तय्यारी की ॥३०॥

दुर्योधनं च बाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यां विरथीकृतम् ।
आविद्ध्यद्धस्ततलयोरुभयोरर्जुनस्तदा ॥३१॥

सव्यसाची अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से राजा दुर्योधन को रथ से भी हीन कर दिया और इसके दोनों हाथों के तलुओं को अपने बाणों से बींध लिया ॥३१॥

प्रयत्नज्ञो हि कौन्तेयो नखमांसान्तरेषुभिः ।
स वेदनाभिराविग्नः पलायनपरायणः ॥३२॥

कुन्ती-पुत्र अर्जुन युद्ध की सब कलाओं को जानता था । इसने जो बाण मारे, वे राजा दुर्योधन के नखों को छेदते हुए करतल में पार हो गए । मर्म स्थान की इस वेदना से दुर्योधन तिलमिला उठा और भागने की चेष्टा करने लगा ॥३२॥

तं कृच्छ्रामापदं प्राप्तं दृष्ट्वा परमधन्विनः ।
समापेतुः परीप्सन्तो धनञ्जयशरार्दितम् ॥३३॥

हे राजन्! जब इस प्रकार राजा दुर्योधन को आपत्ति में फँसा देखा-तो कौरवपक्ष के बड़े २ धनुर्धर अर्जुन के बाणों से पीड़ित कुरुराज की सहयता के लिए आ पहुंचे ॥३३॥

तं रथैर्बहुसाहस्रैः कल्पितैः कुञ्जरैर्हयैः ।
पदात्योघैश्च संरब्धैः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥३४॥

अब कई सहस्र रथी, सजे हुए हाथी घोड़े और आवेश-पूर्ण पैदल सैनिकों ने धनञ्जय को आकर घेर लिया ॥३४॥

अथ नाऽर्जुनगोविन्दौ न रथो वा व्यदृश्यत ।
अस्त्रवर्षेण महता जनौघैश्चाऽपि संवृतौ ॥३५॥

इस समय श्रीकृष्ण और अर्जुन तथा उनका रथ, महान् बाणवर्षा और जनसमूह से इतना ढक गया, कि दिखाई ही नहीं पड़ता था ॥३५॥

ततोऽर्जुनोऽस्त्रवीर्येण निजघ्ने तां वरूथिनीम् ।
तत्र व्यङ्गीकृताः पेतुः शतशोऽथ रथद्विपाः ॥३६॥

अर्जुन ने भी अपने अस्त्र-बल से उस सेना का संहार करना आरम्भ किया। इस समय रणाङ्गण में सैंकड़ों हाथी और रथी अङ्ग हीन होकर गिरने लगे ॥३६॥

ते हता हन्यमानाश्च न्यगृह्णंस्तं रथोत्तमम् ।
स रथस्तम्भितस्तस्थौ क्रोशमात्रे समन्ततः ॥३७॥

हे भारत ! अब तक बहुत से सैनिक मारे गए और मारे जा रहे थे। इन्होंने भी बड़े आवेशमें आकर रथिश्रेष्ठ अर्जुन को घेर रखा था। यह इस समय चारों ओर से कोश भर तक फैली हुई सेना से घिरा था और रथ बिल्कुल आगे नहीं बढ़ सकता था ॥

ततोऽर्जुनं वृष्णिवीरस्त्वरितो वाक्यमब्रवीत् ।
धनुर्विस्फारयाऽत्यर्थमहं ध्मास्यामि चाऽम्बुजम् ॥३८॥

वृष्णिवीर श्रीकृष्ण ने जब यह देखा-तो वे अर्जुन से कहने लगे। हे कौन्तेय ! तुम अपने धनुष को अत्यन्त तीव्रता के साथ चलाओ-मैं शङ्ख बजाता हूँ ॥३८॥

ततो विस्फार्य बलवद्गाण्डीवं जघ्निवान्रिपून् ।
महता शरवर्षेण तलशब्देन चाऽर्जुनः ॥३९॥

इसके अनन्तर अर्जुन बल-पूर्वक गाण्डीव धनुष को खेंच २ कर बड़ी भारी बाणवर्षा से शत्रुओं को मारने लगा। इस समय अर्जुन की करतल ध्वनि भी बड़ी ही भीषण सुनाई पड़ती थी ॥

पाञ्चजन्यं च बलवान्दध्मौ तारेण केशवः ।
रजसा ध्वस्तपक्ष्मान्तः प्रस्विन्नवदनो भृशम् ॥४०॥

श्रीकृष्ण ने भी अपने पाञ्चजन्य शङ्ख को बड़े उच्च स्वर में बजाया। इस समय श्रीकृष्ण की आंखों की पलकें धूलि में सनी हुई थी और बल-पूर्वक शङ्ख बजाने से स्वेद (पसीना) बिन्दु शरीर में झलक रहे थे ॥४०॥

तस्य शङ्खस्य नादेन धनुषो निःस्वनेन च ।
निःसत्त्वाश्च सत्त्वाश्च क्षितौ पेतुस्तदा जनाः ॥४१॥

श्रीकृष्ण के शङ्खनाद और अर्जुन के धनुर्नाद से जीवित ही वीर, मृतक से होकर भूमि पर गिर गए ॥४१॥

तैर्विमुक्तो रथो रेजे वाय्वीरित इवाऽम्बुदः ।
जयद्रथस्य गोप्तारस्ततः क्षुब्धाः सहानुगाः ॥४२॥

वायु से प्रेरित मेघ की भांति इन शत्रुओं से मुक्त हुआ अर्जुन का रथ सुशोभित होने लगा। अब राजा जयद्रथ के रक्षक महारथी, अपने साथियों के साथ व्याकुल हो गए ॥४२॥

ते दृष्ट्वा सहसा पार्थं गोप्तारः सैन्धवस्य तु ।
चक्रुर्नादान्महेष्वासाः कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥४३॥

सिन्धुराज के रक्षक, महाधनुर्धर महारथी एक दम उपस्थित हुए अर्जुन को देखकर गर्जना करने लगे, जिनकी गर्जना से पृथ्वी कांप उठी ॥४३॥

बाणशब्दरवांश्चोग्रान्विमिश्राञ्शङ्खनिःस्वनैः ।
प्रादुश्चक्रुर्महात्मानः सिंहनादरवानपि ॥४४॥

हे भरतर्षभ ! ये महावीर भी शङ्खनादों के साथ मिले हुए उग्र बाणों के शब्दों तथा सिंहनादों को बड़े उच्चस्वर में करने लगे ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां समुत्थितम् ।
प्रदध्मतुः शङ्खवरौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥४५॥

जब वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण और अर्जुन ने तुम्हारे वीरों के किये हुए घोर सिंहनाद को सुना, तो उन्होंने भी अपने २ शङ्ख बजाए ॥४५॥

तेन शब्देन महता पूरितेयं वसुन्धरा ।
सशैला सार्णवद्वीपा सपाताला विशाम्पते ॥३६॥

हे विशाम्पते ! उनके शङ्खनाद की विशाल ध्वनि से पर्वत और समुद्रों सहित यह सारी पृथ्वी कांप उठी और पाताल में भी कोलाहल हो गया ॥४६॥

स शब्दो भरतश्रेष्ठ व्याप्य सर्वा दिशो दश ।
प्रतिसस्वान तत्रैव कुरुपाण्डवयोर्बले ॥४७॥

हे भरतश्रेष्ठ ! यह शब्द बड़ी तीव्रता से दशों दिशाओं में भर गया, जो कौरव और पाण्डवों की सेना में प्रतिध्वनित हो उठा।

तावका रथिनस्तत्र दृष्ट्वा कृष्णधनञ्जयौ ।
सम्भ्रमं परमं प्राप्तास्त्वरमाणा महारथाः ॥४८॥

हे राजन ! तुम्हारे महारथी, श्रीकृष्ण और अर्जुन को देख कर बड़े चक्कर में पड़े। वे बड़ी घबराहट और शीघ्रता के साथ उनके रोकने का प्रयत्न करने लगे ॥४८॥

अथ कृष्णौ महाभागौ तावका वीक्ष्य दंशितौ ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धास्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥४९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनपराजये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

हे भरतर्षभ ! तुम्हारे महावीरों ने सब तरह से सन्नद्ध महावीर श्रीकृष्ण और अर्जुन को देखकर बड़े क्रोध में भर कर उन पर आक्रमण किया, जो बड़ा ही अद्भुत कृत्य दिखाई पड़ा ॥४९॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में दुर्योधन पराजय का एक सौ तीनवां अध्याय पूरा हुआ।

# एक सौ चारवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तावका हि समीक्ष्यैवं वृष्ण्यन्धककुरूत्तमौ ।
प्रागत्वरञ्जिघांसन्तस्तथैव विजयः परान् ॥१॥
सुवर्णचित्रैर्वैयाघ्रैः स्वनवद्भिर्महारथैः ।

सञ्जय बोले—हे नराधिप ! तुम्हारे पक्ष के महारथी भी वृष्णि-अन्धकवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और कुरूत्तम अर्जुन को इस प्रकार युद्ध करते देखकर बड़ी शीघ्रता से आक्रमण करने लगे। इसी तरह अर्जुन भी कौरव वीरों का नाश करने में तत्पर हुए ॥१॥

दीपयन्तो दिशः सर्वा ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥२॥
रुक्मपृङ्खैश्च दुष्प्रेक्ष्यैः कार्मुकैः पृथिवीपते ।
कूजद्भिरतुलान्नादान्कोपितैस्तुरगैरिव ॥३॥
भूरिश्रवाः शलः कर्णो वृषसेनो जयद्रथः ।

हे पृथिवीपते ! प्रदीप्त अग्नि के तुल्य सुवर्ण से चित्रित, व्याघ्र चर्म धारी, सिंहनाद करने वाले, दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए, महारथी, सुवर्ण के मूल वाले, बाण और चमकीले धनुषों के साथ अतुल गर्जना करते हुए आ पहुंचे। ये आवेश में भरे हुए अश्वों पर सवार थे ॥२-३॥

कृपश्च मद्रराजश्च द्रौणिश्च रथिनां वरः ॥४॥
ते पिबन्त इवाऽऽकाशमश्वैरष्टौ महारथाः ।
व्यराजयन्दश दिशो वैयाघ्रैर्हेमचन्द्रकैः ॥५॥

भूरिश्रवा, शल, कर्ण, वृषसेन, जयद्रथ, कृप, मद्रराज शल्य और रथिश्रेष्ठ अश्वत्थामा-ये आठों महारथी, आकाश को पीते हुए से वहीं आ धमके। ये सुवर्ण के चन्द्रों से देदीप्यमान व्याघ्रचर्मों से दशों दिशाओं को सुशोभित कर रहे थे ॥४-५॥

ते दंशिताः सुसंरब्धा रथैर्मेघौघनिःस्वनैः ।
समावृण्वन्दश दिशः पार्थस्य निशितैः शरैः ॥६॥

मेघसमूह के सदृश गर्जना करने वाले रथों से तय्यार हुए इन कौरव महारथियों ने तीक्ष्ण बाणों से दशों दिशाओं को आवृत कर दिया ॥६॥

कौलूतका हयाश्चित्रा वहन्तस्तान्महारथान् ।
व्यशोभन्त तदा शीघ्रा दीपयन्तो दिशो दश ॥७॥

ये महारथी, कौलूतक देशोत्पन्न विचित्र अश्वों पर सवार थे! ये शीघ्रगामी अश्व, दशों दिशाओं को चमकाते हुए, सुशोभित होने लगे ॥७॥

आजानेयैर्महावेगैर्नानादेशसमुत्थितैः ।
पार्वतीयैर्नदीजैश्च सैन्धवैश्च हयोत्तमैः ॥८॥
कुरुयोधवरा राजंस्तव पुत्रं परीप्सवः ।
धनञ्जयरथं शीघ्रं सर्वतः समुपाद्रवन् ॥९॥

हे राजन्! पारस, पर्वत, सिन्ध आदि अनेक उत्तम २ देशों में उत्पन्न उत्तम २ अश्वों से युक्त, कुरुवंश के महारथी, तेरे पुत्र

की सहायता के लिये सब ओर से धनञ्जय के रथ को घेर कर बाणवर्षा करने लगे ॥८-९॥

ते प्रगृह्य महाशङ्खान्दध्मुः पुरुषसत्तमाः ।
पूरयन्तो दिवं राजन्पृथिवीं च ससागराम् ॥१०॥
तथैव दध्मतुः शङ्खौ वासुदेवधनञ्जयौ ।

हे राजन् ! ये पुरुष-प्रवीर, समुद्रपर्यन्त पृथिवी तथा दशों दिशाओं को शब्द से भरते हुए बड़े २ शङ्खों को बजाने लगे। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने भी अपने २ शङ्ख बजाए ॥१०॥

प्रवरौ सर्वदेवानां सर्वशङ्खवरौ भुवि ॥११॥
देवदत्तं च कौन्तेयः पाञ्चजन्यं च केशवः ।

समस्त देवों के शंखों से श्रेष्ठ, उत्तम देवदत्त शङ्ख को अर्जुन और पाञ्चजन्य को श्रीकृष्ण ने बजाया ॥११॥

शब्दस्तु देवदत्तस्य धनञ्जयसमीरितः ॥१२॥
पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च दिशश्चैव समावृणोत् ।

हे राजन् ! अर्जुन द्वारा बजाये हुए, देवदत्त शङ्ख की ध्वनि ने सम्पूर्ण पृथिवी, आकाश और दिशाओं को शब्दायमान कर दिया।

तथैव पाञ्चजन्योऽपि वासुदेवसमीरितः ॥१३॥
सर्वशब्दानतिक्रम्य पूरयामास रोदसी ।

इसी तरह वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण द्वारा बजाये हुए पाञ्चजन्य शङ्ख ने भी सारे शब्दों को दबा कर आकाश और पृथिवी को भर दिया ॥१३॥

तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने दारुणे नादसंकुले ॥१४॥
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ।
प्रवादितासु भेरीषु झर्झरेष्वानकेषु च ॥१५॥
मृदङ्गेष्वपि राजेन्द्र वाद्यमानेष्वनेकशः ।
महारथाः समाहूता दुर्योधनहितैषिणः ॥१६॥
अमृष्यमाणास्तं शब्दं क्रुद्धाः परमधन्विनः ।
नानादेश्या महीपालाः स्वसैन्यपरिरक्षिणः ॥१७॥
अमर्षिता महाशङ्खान्दध्मुर्वीरा महारथाः ।

हे राजन्! इस प्रकार दारुण ध्वनि उठ खड़ी हुई, जिससे भीरुओं को भय और शूरवीरों को हर्ष होने लगा । जब भेरी बजने लगी, झर्झर और आनक ध्वनि हो उठी, मृदङ्गादि बाजे अनेक भांति से बजने लगे, तो अर्जुन ने राजा दुर्योधन के हितैषी महारथियों को ललकारा। इन महाधनुर्धरों ने भी इस ललकार को नहीं सहा और वे बहुत ही क्रोध में भर गए । अनेक देशोत्पन्न महारथी वीर, राजा महाराज, अपनी २ सेना की सुरक्षा में स्थित होकर क्रोध-पूर्वक बड़े २ शङ्खों को बजाने लगे ॥१४-१७॥

कृते प्रतिकरिष्यन्तः केशवस्याऽर्जुनस्य च ॥१८॥
बभूव तव तत्सैन्यं शङ्खशब्दसमीरितम् ।

जिस २ तरह श्रीकृष्ण और अर्जुन शंख बजाते या शस्त्र चलाते थे, उसी तरह उनका प्रतिकार करते हुए, तुम्हारी सेना भी शङ्ख शब्द से गूंज उठी ॥१८॥

उद्विग्नरथनागाश्वमस्वस्थमिव वा विभो ॥१९॥
तत्प्रविद्धमिवाऽऽकाशं शूरैः शङ्खविनादितम् ।
बभूव भृशमुद्विग्नं निर्घातैरिव नादितम् ॥२०॥

हे विभो ! इस ध्वनि से रथी, हाथी और अश्व उद्विग्न हो उठे । शूरवीरों के शङ्ख से विनादित आकाशध्वनि से भर सा गया, जैसे-बिजली की कड़क से भर गया हो । इस तरह सम्पूर्ण जगत् अत्यन्त उद्विग्न हो उठा ॥१९-२०॥

स शब्दः सुमहान्राजन्दिशः सर्वा व्यनादयत् ।
त्रासयामास तत्सैन्यं युगान्त इव सम्भृतः ॥२१॥

हे राजन् ! यह इतना विस्तीर्ण शब्द था, कि सारी दिशाएँ भर गईं । इस समय प्रलयकालीन परिस्थिति हो गई थी, जिससे सारी सेना कांप उठी ॥२१॥

ततो दुर्योधनोऽष्टौ च राजानस्ते महारथाः ।
जयद्रथस्य रक्षार्थं पाण्डवं पर्यवारयन् ॥२२॥

अब राजा दुर्योधन और आठों महारथी, राजा सिन्धुराज की रक्षा के निमित्त पाण्डु-पुत्र अर्जुन को घेर कर खड़े हो गये ॥२२॥

ततो द्रौणिस्त्रिसप्तत्या वासुदेवमताडयत् ।
अर्जुनं च त्रिभिर्भल्लैर्ध्वजमश्वांश्च पञ्चभिः ॥२३॥

हे राजन् ! सबसे प्रथम द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने तेहत्तर बाण मार कर वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण पर आक्रमण किया और

अर्जुन पर तीन बाण छोड़े तथा पांच बाण छोड़कर अर्जुन की ध्वजा और चारों अश्वों पर प्रहार किया ॥२३॥

तमर्जुनः पृषत्कानां शतैः षड्भिरताडयत् ।
अत्यर्थमिव संक्रुद्धः प्रतिविद्धे जनार्दने ॥२४॥

श्रीकृष्ण के विंध जाने पर अर्जुन क्रोध से जल उठा और उसने छः सौ बाण अश्वत्थामा पर छोड़े ॥२४॥

कर्णं च दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिस्तथा ।
शल्यस्य सशरं चापं मुष्टौ चिच्छेद वीर्यवान् ॥२५॥

वीर्यवान् अर्जुन ने दश बाण से कर्ण, तीन से वृषसेन को बींध कर बाण सहित धनुष को मुष्टि के समीप से काट डाला ।

गृहीत्वा धनुरन्यत्तु शल्यो विव्याध पाण्डवम् ।
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥२६॥
कर्णो द्वात्रिंशता चैव वृषसेनश्च सप्तभिः ।
जयद्रथस्त्रिसप्तत्या कृपश्च दशभिः शरैः ॥२७॥

अब मद्रराज शल्य ने दूसरा धनुष उठाया और पाण्डु-पुत्र अर्जुन को बींध डाला । भूरिश्रवा ने भी सुवर्णजटित, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए तीन बाण छोड़े । कर्ण ने बत्तीस और वृषसेन ने सात बाण चलाए । राजा जयद्रथ ने तेहत्तर और कृपाचार्य ने दश बाण छोड़े ॥२६-२७॥

मद्रराजश्च दशभिर्विव्यधुः फाल्गुनं रणे ।
ततः शराणां षष्ट्या तु द्रौणिः पार्थमवाकिरत् ॥२८॥
विव्यासुदेवं च विंशत्या पुनः पार्थं च पञ्चभिः ।

मद्रराज शल्य ने रणभूमि में दश बाण छोड़कर अर्जुन को आहत किया । इसी तरह द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने भी साठ बाण छोड़कर अर्जुन को क्षत-विक्षत कर दिया । इसने फिर बीस बाण छोड़कर श्रीकृष्ण और पांच बाणों से अर्जुन को आहत किया ।

प्रहसंस्तु नरव्याघ्रः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥२९॥
प्रत्यविध्यत्स तान्सर्वान्दर्शयन्पाणिलाघवम् ।

हे भारत ! श्रीकृष्ण को सारथि बनाये हुए श्वेत अश्वों के रथ में बैठे हुए, नरश्रेष्ठ अर्जुन ने हँसते २ अपना हस्तकौशल दिखा कर इन सबको बींध दिया ॥२९॥

कर्णं द्वादशभिर्विध्वा वृषसेनं त्रिभिः शरैः ॥३०॥
शल्यस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे व्यकृन्तत ।

अर्जुन ने बारह बाण कर्ण और तीन बाण वृषसेन पर छोड़े तथा राजा शल्य के धनुष को मुट्ठी के पास से फिर काट गिराया ।

सौमदत्तिं त्रिभिर्विध्वा शल्यं च दशभिः शरैः ॥३१॥
शितैरग्निशिखाकारैर्द्रौणिं विव्याध चाऽष्टभिः ।

सव्यसाची अर्जुन ने सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा पर तीन और शल्य पर दश बाण छोड़े तथा अग्नि की लपटों के सदृश तीक्ष्ण आठ बाणों से अश्वत्थामा को आहत किया ॥३१॥

गौतमं पञ्चविंशत्या सैन्धवं च शतेन ह ॥३२॥
पुनर्द्रौणिं च सप्तत्या शराणां सोऽभ्यताडयत् ।

अर्जुन लगातार बाण छोड़ रहे थे । उन्होंने पचीस बाण गौतम-पुत्र कृप और सौ बाण सिन्धुराज जयद्रथ पर चलाए तथा सत्तर बाण छोड़कर फिर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा को आहत किया ॥३२॥

भूरिश्रवास्तु संक्रुद्धः प्रतोदं चिच्छिदे हरेः ॥३३॥
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या बाणानामाजघान ह ।

अब भूरिश्रवा क्रोध में भर गया था। इसने श्रीकृष्ण के प्रतोद (चाबुक) को काट डाला और तेहत्तर बाण छोड़ कर अर्जुन को आहत किया ॥३३॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैस्तानरीञ्श्वेतवाहनः ॥३४॥
प्रत्यषेधद् द्रुतं क्रुद्धो महावातो घनानिव ॥३५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे
चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

हे राजन् ! श्वेतवाहनधारी अर्जुन ने सौ तीक्ष्ण बाण क्रोध-पूर्वक छोड़ कर उन सब शत्रुओं को मेघ को आंधी की तरह इधर उधर उड़ा दिया ॥३४-३५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में छः महारथियों के साथ अर्जुन के युद्ध के आरम्भ का एक सौ चारवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

# एक सौ पांचवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

ध्वजान्बहुविधाकारान्भ्राजमानानतिश्रिया।
पार्थानां मामकानां च तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा— हे सञ्जय! अब तुम अनेक भांति की कान्ति से देदीप्यमान हमारे और पाण्डव पक्ष के वीरों की ध्वजाओं का वर्णन सुनाओ ॥१॥

सञ्जय उवाच—

ध्वजान्बहुविधाकाराञ्शृणु तेषां महात्मनाम्।
रूपतो वर्णतश्चैव नामतश्च निबोध मे ॥२॥

सञ्जय बोले-हे राजन्! मैं तुमको इन सब वीरों की अनेक भांति की ध्वजाओं को सुनाता हूं, तुम ध्यान से सुनो। मैं उन सब ध्वजाओं के आकार, वर्ण और नाम भी बताऊंगा ॥२॥

तेषां तु रथमुख्यानां रथेषु विविधा ध्वजाः।
प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र ज्वलिता इव पावकाः ॥३॥

हे राजेन्द्र! इन प्रधान २ रथियों के रथों में जो अनेक प्रकार की ध्वजाएँ थी, वे जाज्वल्यमान अग्नि के सदृश दिखाई देती थीं ॥३॥

काञ्चनाः काञ्चनापीडाः काञ्चनस्रगलंकृताः।
काञ्चनानीव शृङ्गाणि काञ्चनस्य महागिरेः ॥४॥

ये ध्वजाएँ सुवर्ण की बनी हुई, सुवर्ण माला से अलंकृत और सुवर्ण दण्ड से सुशोभित थीं। ये सुवर्ण के महागिरि की चोटी सी प्रतीत होती थीं ॥४॥

अनेकवर्णा विविधाः ध्वजा परमशोभनाः।

ते ध्वजाः संवृतास्तेषां पताकाभिः समन्ततः ॥५॥

ये ध्वजाएँ अत्यन्त सुन्दर और अनेक वर्ण की थीं। इन ध्वजाओं के साथ ही अन्य छोटी २ पताकाएँ भी लगी हुई थीं ॥५॥

नानावर्णविरागाभिः शुशुभुः सर्वतो वृताः।

पताकाश्च ततस्तास्तु श्वसनेन समीरिताः ॥६॥

नृत्यमाना व्यदृश्यन्त रङ्गमध्ये विलासिकाः।

इन्द्रायुधसवर्णाभाः पताका भरतर्षभ ॥७॥

दोधूयमाना रथिनां शोभयन्ति महारथान्।

ये पताकाएँ भी अनेक वर्ण के रागों से सुरञ्जित हुई रथ के सब ओर लगी हुई थीं और वायु से प्रेरित होकर रङ्गशाला में नर्तकी की भांति नांचती सी दिखाई देती थीं। हे भरतर्षभ! बहुत सी पताकाएँ इतनी चित्र विचित्र थीं, जो इन्द्र-धनुष के आकार की दिखाई देती थी। ये इस तरह रथ पर फड़फड़ाती थीं; कि जिससे इन महारथियों के बड़े २ रथ चमक उठते थे ॥६-७॥

सिंहलांगूलमुग्रास्यं ध्वजं वानरलक्षणम् ॥८॥

धनञ्जयस्य संग्रामे प्रत्यदृश्यत भैरवम्।

सिंह की लांगूल ( पूंछ ) वाली, विशाल मुखधारी बानर के चिन्ह से चिन्हित संग्राम में सबसे भीषण अर्जुन की ध्वजा दिखाई देती थी ॥८॥

स वानरवरो राजन्पताकाभिरलंकृतः ॥९॥

त्रासयामास तत्सैन्यं ध्वजो गाण्डीवधन्वनः ।

हे राजन् ! यह वानराङ्कित ध्वजा, अन्य पताकाओं से भी विभूषित थी । गाण्डीवधारी अर्जुन की इस ध्वजा को देखकर सारी कौरव सेना डर जाती थी ॥९॥

तथैव सिंहलांगूलं द्रोणपुत्रस्य भारत ॥१०॥

ध्वजाग्रं समपश्याम बालसूर्यसमप्रभम् ।

हे भारत ! द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा की ध्वजा में सिंह की लांगूल ( पूंछ ) का चिन्ह था । इस ध्वजा का अग्रभाग प्रातःकालीन सूर्य के सदृश चमका करता था ॥१०॥

काञ्चनं पवनोद्धूतं शक्रध्वजसमप्रभम् ॥११॥

नन्दनं कौरवेन्द्राणां द्रौणेर्लक्ष्म समुच्छ्रितम् ।

यह ध्वजा भी सुवर्ण से बनी हुई और पवन से विकम्पित इन्द्र ध्वजा के तुल्य थी, जिसको देखकर सारे कौरव वीर प्रफुल्लित हो उठते थे । यह रथ के ऊपर बहुत ही ऊँची लगी हुई थी ॥११॥

हस्तिकक्ष्या पुनर्हैमी बभूवाऽधिरथेर्ध्वजः ॥१२॥

आहवे खं महाराज ददृशे पूरयन्निव ।

हे महाराज ! अधिरथ-पुत्र कर्ण की ध्वजा भी सुवर्ण जटित थी। इसमें हाथी की शृङ्खला का चिन्ह था। यह रण में आकाश में फैली हुई उड़ती रहती थी ॥१२॥

पताका काञ्चनी स्रग्वी ध्वजे कर्णस्य संयुगे ॥१३॥
नृत्यतीव रथोपस्थे श्वसनेन समीरिता ।

सुवर्ण मय, सुवर्ण माला से सुशोभित अनेक पताकाएँ, कर्ण की ध्वजा के साथ रथ पर लगी हुई रण में दिखाई पड़ती थीं। ये वायु से प्रेरित हुई रथ के ऊपर नांच सा कर रहीं थीं ॥१३॥

आचार्यस्य तु पाण्डूनां ब्राह्मणस्य तपस्विनः ॥१४॥
गोवृषो गौतमस्याऽऽसीत्कृपस्य सुपरिष्कृतः ।

पाण्डवों के आचार्य, तपस्वी ब्राह्मण, गौतम गोत्रोत्पन्न कृपाचार्य की ध्वजा में देदीप्यमान वृषभ (सांड) का चिन्ह था ॥१४॥

स तेन भ्राजते राजन्गोवृषेण महारथः ॥१५॥
त्रिपुरघ्नरथो यद्वद्गोवृषेण विराजता ।

हे राजन् ! यह महारथी कृपाचार्य, इस वृषभ चिन्हाङ्कित ध्वजा से ऐसे सुशोभित होते थे, जैसे उत्तम वृषभ से युक्त रथों में भगवान् शङ्कर विराज रहे हों ॥१५॥

मयूरो वृषसेनस्य काञ्चनो मणिरत्नवान् ॥१६॥
व्याहरिष्यन्निवाऽतिष्ठत्सेनाग्रमुपशोभयन् ।

इसी तरह मणि रत्नों से जटित सुवर्ण मय मयूर का चिन्ह राजा वृषसेन की ध्वजा में था। यह सेना के अग्रभाग में ऐसा खिल रहा था, मानो अभी मुख से बोलने वाला है ॥१६॥

तेन तस्य रथो भाति मयूरेण महात्मनः ॥१७॥

यथा स्कन्दस्य राजेन्द्र मयूरेण विराजता।

हे राजेन्द्र! इस महावीर का रथ इस सुवर्ण मय मयूर से ऐसा सुशोभित हो रहा था, जैसे मयूर वाहन से शङ्कर-पुत्र कार्तिकेय सुशोभित हो रहे हों ॥१७॥

मद्रराजस्य शल्यस्य ध्वजाग्रेऽग्निशिखामिव ॥१८॥

सौवर्णी प्रतिपश्याम सीतामप्रतिमां शुभाम्।

हे राजन्! मद्रराज शल्य की ध्वजा के मध्य में अग्नि शिखा के समान प्रज्वलित, सुवर्ण की अद्भुत सीता (हलकी-फल) का चिन्ह था ॥१८॥

सा सीता भ्राजते तस्य रथमास्थाय मारिष ॥१९॥

सर्वबीजविरूढेव यथा सीता श्रिया वृता।

हे आर्य! यह सीता ( हलकाभाग ) उसकी ध्वजा में रथ पर ऐसी सुशोभित हो रही थी, जैसे सम्पूर्ण शोभा से युक्त सारे बीजों के उत्पन्न करने में समर्थ, सुवर्ण की साक्षात् सीता (हल) हो।

वराहः सिन्धुराजस्य राजतोऽभिविराजते ॥२०॥

ध्वजाग्रेऽलोहितार्काभो हेमजालपरिष्कृतः।

सिन्धुराज राजा जयद्रथ की ध्वजा में चांदी का वराह (शूकर) का चिन्ह था, जो प्रातःकाल के लाल सूर्य के समान सुशोभित था, क्योंकि वह भी प्रायः सुवर्ण जटित था ॥२०॥

शुशुभे केतुना तेन राजतेन जयद्रथः ॥२१॥
यथा देवासुरे युद्धे पुरा पूषा स्म शोभते ।

इस रजतमयी ध्वजा से राजा जयद्रथ इतने सुशोभित हो रहे थे, जितने देवासुर संग्राम में रजत की ध्वजा वाले पूषा देवता सुशोभित थे ॥२१॥

सौमदत्तेः पुनर्यूपो यज्ञशीलस्य धीमतः ॥२२॥
ध्वजः सूर्य इवाऽऽभाति सोमश्चाऽत्र प्रदृश्यते ।

यज्ञ करने में परायण, सोमदत्त के पुत्र बुद्धिमान् भूरिश्रवा की ध्वजा में यज्ञ का स्तूप था। यह ध्वजा भी सूर्य के सदृश चमकीली थी । इसमें यज्ञस्तूप के साथ सोमरस का दृश्य भी था ॥२२॥

स यूपः काञ्चनो राजन्सोमदत्तेर्विराजते ॥२३॥
राजसूये मखश्रेष्ठे यथा यूपः समुच्छ्रितः ।

हे राजन्! सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा की यह यूप चिन्हाङ्कित ध्वजा इस ढंग से सुशोभित हो रही थी, जैसे सर्वोत्तम राजसूय यज्ञ में उठा हुआ यज्ञस्तम्भ सुशोभित होता है ॥२३॥

शल्यस्य तु महाराज राजतो द्विरदो महान् ॥२४॥
केतुः काञ्चनचित्राङ्गैर्मयूरैरुपशोभितः ।

हे महाराज! राजा शल्य की ध्वजा में एक चांदी का विशाल हाथी का चिन्ह था, जिसके साथ ही सुवर्ण के रङ्ग विरङ्गे मयूर भी लगे थे ॥२४॥

स केतुः शोभयामास सैन्यं ते भरतर्षभ ॥२५॥
यथा श्वेतो महानागो देवराजचमूं तथा ।

हे भरतर्षभ ! यह हाथी के चिन्ह से युक्त रजतमयी ध्वजा इतनी उत्तम प्रतीत होती थी, जैसे देवसेना में इन्द्र का ऐरावत हाथी सुशोभित हो रहा हो ॥२५॥

नागो मणिमयो राज्ञो ध्वजः कनकसंवृतः ॥२६॥
किङ्किणीशतसंह्रादो भ्राजंश्चित्रो रथोत्तमे ।
व्यभ्राजत भृशं राजन्पुत्रस्तव विशाम्पते ॥२७॥
ध्वजेन महता संख्ये कुरूणामृषभस्तदा ।

हे विशाम्पते ! राजा दुर्योधन की ध्वजा में सुवर्ण का मणि जटित, सैकड़ों किङ्किणियों से सुशोभित, बड़ा विचित्र हाथी का चिन्ह था, जो तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के विशाल रथ पर बड़ा ही सुन्दर प्रतीत होता है। कुरुराज इस विशाल ध्वजा से रण में चमक रहे थे ॥२६-२७॥

नवैते तव वाहिन्यामुच्छ्रिताः परमध्वजाः ॥२८॥
व्यदीपयंस्ते पृतनां युगान्तादित्यसन्निभाः ।

हे राजन् ! इस समय तुम्हारी सेना में ये नौ ध्वजा उड़ रही थी, जो प्रलयकाल के सूर्य के सदृश तुम्हारी सेना को देदीप्यमान कर रही थी ॥२८॥

दशमस्त्वर्जुनस्याऽऽसीदेक एव महाकपिः ॥२९॥
अदीप्यताऽर्जुनो येन हिमवानिव वह्निना ।

कपि चिन्ह से अङ्कित अकेली दशवीं ध्वजा अर्जुन की थी। इससे अर्जुन, इस प्रकार प्रदीप्त हो रहे थे; जैसे अग्नि शिखा से ऊंचा हिमालय पर्वत चमक रहा हो ॥२६॥

ततश्चित्राणि शुभ्राणि सुमहान्ति महारथाः ॥३०॥
कार्मुकाण्यादददुस्तूर्णमर्जुनार्थे परन्तपाः ।

बस ! फिर क्या था, इन सारे परन्तप महारथियों ने बड़े २ विचित्र, विशाल, सुन्दर धनुष, अर्जुन पर प्रहार करने के निमित्त उठा लिए ॥३०॥

तथैव धनुरायच्छत्पार्थः शत्रुविनाशनः ॥३१॥
गाण्डीवं दिव्यकर्मा तद्राजन्दुर्मन्त्रिते तव ।

हे राजन् ! तुम्हारी दुर्मन्त्रणा से उत्पन्न इस युद्ध में दिव्य कर्म करने वाले शत्रुनाशक अर्जुन ने भी अपना गाण्डीव धनुष खैंच लिया ॥३१॥

तवाऽपराधाद्राजानो निहता बहुशो युधि ॥३२॥
नानादिग्भ्यः समाहूताः सहयाः सरथद्विपाः ।

हे राजन् ! यह तुम्हारी ही एक भूल हुई है, जिससे अनेक दिशाओं से आये हुए अनेक राजा अपने २ रथ, हाथी और अश्वों के साथ इस रण में भेंट चढ़ गए ॥३२॥

तेषामासीद्व्यतिक्षेपो गर्जतामितरेतरम् ॥३३॥
दुर्योधनमुखानां च पाण्डूनामृषभस्य च ।

अब इन दोनों ओर के योद्धाओं में एक दूसरे पर आक्षेप और परस्पर गर्जना होने लगी। जिसमें दुर्योधन आदि वीर एक ओर तथा पाण्डव-श्रेष्ठ अर्जुन दूसरी ओर था ॥३३॥

तत्राऽद्भुतं परं चक्रे कौन्तेयः कृष्णसारथिः ॥३४॥
यदेको बहुभिः सार्धं समागच्छदभीतवत् ।

कृष्ण सारथि, कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने बड़ा ही अद्भुत कार्य कर दिखाया, जो अकेले ने ही इन बड़े २ नौ महारथियों के साथ निर्भीक भाव से युद्ध ठान दिया ॥३४॥

अशोभत महाबाहुर्गाण्डीवं विक्षिपन्धनुः ॥३५॥
जिगीषुस्तान्नरव्याघ्रो जिघांसुश्च जयद्रथम् ।

यह महाबाहु नरव्याघ्र, अर्जुन, इन सब महारथियों को जीत कर राजा जयद्रथ को मार देना चाहता था, अतएव उसने बड़ी तीव्रता से गाण्डीव धनुष खेंचना आरम्भ किया ॥३५॥

तत्राऽर्जुनो नरव्याघ्रः शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ॥३६॥
अदृश्यांस्तावकान्योधान्प्रचक्रे शत्रुतापनः ।

शत्रुतापी नरव्याघ्र, अर्जुन, सहस्रों बाण छोड़ता हुआ तुम्हारे योद्धाओं को अदृश्य करने लगा ॥३६॥

ततस्तेऽपि नरव्याघ्राः पार्थं सर्वे महारथाः ॥३७॥
अदृश्यं समरे चक्रुः सायकौघैः समन्ततः ।

इसी तरह नर प्रवीर तुम्हारे महारथी भी अपने सब ओर से बाण छोड़कर रण में कुन्ती-पुत्र अर्जुन को अदृश्य करने लगे॥

संवृते नरसिंहैस्तु कुरूणामृषभेऽर्जुने ॥
महानासीत्समुद्भूतस्तस्य सैन्यस्य निःस्वनः ॥३८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि ध्वजवर्णने पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

इस प्रकार इन अनेक महारथी और कुरुवंशश्रेष्ठ अर्जुन के रण में परस्पर भिड़ जाने पर उस सेना में महान् कोलाहल उठ खड़ा हुआ ॥३८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में ध्वजा के वर्णन का एक सौ पांचवां अध्याय समाप्त हुआ



# एक सौ छःवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

अर्जुने सैन्धवं प्राप्ते भारद्वाजेन संवृताः ।
पञ्चालाः कुरुभिः सार्धं किमकुर्वत सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! इधर तो अर्जुन सिन्धुराज के पास पहुंच गए और उधर द्रोणाचार्य से घेरे हुए पञ्चालों का कौरवों के साथ कैसा घमसान युद्ध हुआ-यह बताओ ॥१॥

सञ्जय उवाच—

अपराह्णे महाराज संग्रामे लोमहर्षणे।
पञ्चालानां कुरूणां च द्रोणद्यूतमवर्त्तत ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! दोपहर दिन के ढलने पर पञ्चाल और कौरवों का बड़ा ही लोमहर्षण युद्ध हुआ। इस समय पञ्चालों का द्रोणाचार्य के साथ रणद्यूत ( युद्धरूपी जुआ ) चल रहा था ॥२॥

पञ्चाला हि जिघांसन्तो द्रोणं संहृष्टचेतसः।
अभ्यमुञ्चन्त गर्जन्तः शरवर्षाणि मारिष ॥३॥

हे सर्वगुणसम्पन्न! राजर्षे! पाञ्चाल लोग बड़े ही हर्ष में भरे हुए, द्रोणाचार्य को मार देना चाहते थे, अतएव वे गर्जना करते हुए बड़ी तीव्र बाण वर्षा करने लगे ॥३॥

ततस्तु तुमुलस्तेषां संग्रामोऽवर्त्तताऽद्भुतः।
पञ्चालानां कुरूणां च घोरो देवासुरोपमः ॥४॥

इसके अनन्तर पञ्चाल और कौरवों में बड़ा लोमहर्षण संग्राम होने लगा, जो देवासुर संग्राम की भांति बड़ा ही भीषण था ॥४॥

सर्वे द्रोणरथं प्राप्य पञ्चालाः पाण्डवैः सह।
तदनीकं बिभित्सन्तो महास्त्राणि व्यदर्शयन् ॥५॥

अब पाञ्चाल पाण्डव सेना के साथ द्रोण के रथ के समीप पहुंच चुके थे। ये पाञ्चालवीर अपना अस्त्र कौशल दिखाते हुए द्रोणाचार्य की सेना को छेदने लगे ॥५॥

द्रोणस्य रथपर्यन्तं रथिनो रथमास्थिताः ।
कम्पयन्तोऽभ्यवर्त्तन्त वेगमास्थाय मध्यमम् ॥६॥

पञ्चाल रथी अपने २ रथों पर बैठ कर मध्यम वेग के साथ ही द्रोण की सेना को कम्पित करते हुए द्रोणाचार्य के रथ के समीप पहुँच गए ॥६॥

तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
प्रवपन्निशितान्बाणान्महेन्द्राशनिसन्निभान् ॥७॥

अब केकयदेशाधिपति बृहत्क्षत्र ने महेन्द्र के वज्र के तुल्य तीखे बाण छोड़कर द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया ॥७॥

तं तु प्रत्युद्ययौ शीघ्रं क्षेमधूर्तिर्महायशाः ।
विमुञ्चन्निशितान्बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥८॥

इस बृहत्क्षत्र के सन्मुख (मुक़ाबिले) महायशस्वी क्षेमधूर्ति सैंकड़ों हजारों की संख्या में बाण छोड़ता हुआ कौरवों की ओर से आगे बढ़ा ॥८॥

धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
त्वरितोऽभ्यद्रवद् द्रोणं महेन्द्र इव शम्बरम् ॥९॥

हे राजन् ! शम्बरासुर पर इन्द्र की भांति एक ओर अत्यन्त बलवान् चेदिराज धृष्टकेतु, द्रोणाचार्य पर झपटा ॥९॥

तमापतन्तं सहसा व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ।
वीरधन्वा महेष्वासस्त्वरमाणः समभ्ययात् ॥१०॥

मुख खोलकर काल की तरह झपटते हुए राजा धृष्टकेतु को देखकर महा धनुषधारी वीरधन्वा बड़ी शीघ्रता से उसकी ओर आगे बढ़ा ॥१०॥

युधिष्ठिरं महाराजं जिगीषुं समवस्थितम् ।
सहानीकं ततो द्रोणो न्यवारयत वीर्यवान् ॥११॥

विजय के अभिलाषी राजा युधिष्ठिर को सेना सहित आगे बढ़ता देखकर महापराक्रमी द्रोण ने उसे वहीं रोक दिया ॥११॥

नकुलं कुशलं युद्धे पराक्रान्तं पराक्रमी ।
अभ्यगच्छत्समायान्तं विकर्णस्ते सुतः प्रभो ॥१२॥

हे प्रभो ! नकुल भी युद्ध विद्या में बड़ा कुशल और पराक्रमी है। उसको झपटते देख महा-पराक्रमी तुम्हारे पुत्र विकर्ण ने उसका मार्ग रोका ॥१२॥

सहदेवं तथाऽऽयान्तं दुर्मुखः शत्रुकर्षणः ।
शरैरनेकसाहस्रैः समवाकिरदाशुगैः ॥१३॥

इसी तरह आगे बढ़ते हुए सहदेव को शत्रुकर्षण दुर्मुख ने अनेक सहस्र शीघ्रगामी बाण छोड़कर आच्छादित कर दिया ॥

सात्यकिं तु नरव्याघ्रं व्याघ्रदत्तस्त्ववारयत् ।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैः कम्पयन्वै मुहुर्मुहुः ॥१४॥

महावीर सात्यकि को व्याघ्रदत्त ने रोक दिया। यह लगातार बड़े २ तीखे बाण छोड़ रहा था ॥१४॥

द्रौपदेयान्नरव्याघ्रान्मुञ्चतः सायकोत्तमान् ।
संरब्धान्रथिनः श्रेष्ठान्सौमदत्तिरवारयत् ॥१५॥

रथिश्रेष्ठ, नरवीर, द्रौपदी-पुत्र भी आवेश में भरे हुए श्रेष्ठ उत्तम बाण छोड़ रहे थे, इन सबको सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा ने रोका ॥१५॥

भीमसेनं तदा क्रुद्धं भीमरूपो भयानकः ।
प्रत्यवारयदायान्तमार्ष्यशृङ्गिर्महारथः ॥१६॥

हे राजन्! आवेग के साथ आक्रमण करते हुए भीमसेन को भयानक आकारधारी, भीषण पराक्रमी, ऋष्यशृङ्ग राक्षस के पुत्र महारथी अलम्बुष ने आगे नहीं बढ़ने दिया ॥१६॥

तयोः समभवद्युद्धं नरराक्षसयोर्मृधे ।
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोर्नृप ॥१७॥

हे नृपते! इन दोनों नरवीर भीमसेन और राक्षसराज अलम्बुष का इतना भीषण युद्ध हुआ जैसा पूर्वकाल में राम और रावण का युद्ध था ॥१७॥

ततो युधिष्ठिरो द्रोणं नवत्या नतपर्वणाम् ।
आजघ्ने भरतश्रेष्ठः सर्वमर्मसु भारत ॥१८॥

हे भारत! अब भरतवंशश्रेष्ठ, राजा युधिष्ठिर ने झुके पर्व वाले नब्बे बाण छोड़कर आचार्य द्रोण को प्रत्येक मर्म स्थान पर आहत कर दिया ॥१८॥

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या निजघान स्तनान्तरे।
रोषितो भरतश्रेष्ठ कौन्तेयेन यशस्विना ॥१६॥

हे भरत-श्रेष्ठ! कुन्ती-पुत्र धर्मराज द्वारा कुपित किए हुए द्रोणाचार्य ने धर्मराज के वक्षस्थल में पच्चीस तीखे बाण मारे॥

भूय एव तु विंशत्या सायकानां समाचिनोत्।
साश्वसूतध्वजं द्रोणः पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥२०॥
ताञ्शरान्द्रोणमुक्तांस्तु शरवर्षेण पाण्डवः।
अवारयत धर्मात्मा दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥२१॥

आचार्य द्रोण ने फिर सारे धनुर्धरों के देखते २ धर्मराज के अश्व, सारथि और ध्वजा पर वीस बाण छोड़े, परन्तु धर्मात्मा पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर ने भी बाणवर्षा करके अपना हस्तलाघव (फुर्ती) दिखाते हुए उन बाणों को बीच में ही काट गिराया॥२०-२१॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य संयुगे।
चिच्छेद समरे धन्वी धनुस्तस्य महात्मनः ॥२२॥

अब धनुर्धर द्रोणाचार्य, राजा युधिष्ठिर पर झल्ला उठे और रणभूमि में उन्होंने महावीर राजा युधिष्ठिर के धनुष को ही काट डाला॥२२॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः।
शरैरनेकसाहस्रैः पूरयामास सर्वतः ॥२३॥

इधर तो धर्मराज का धनुष काटा गया और उधर महारथी द्रोण ने बड़ी शीघ्रता से बाणवर्षा करना आरम्भ किया। उन्होंने

सहस्त्रों की संख्या में इतने बाण छोड़े, कि जिनसे धर्मराज को पाट दिया ॥२३॥

अदृश्यं वीक्ष्य राजानं भारद्वाजस्य सायकैः ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त हतमेव युधिष्ठिरम् ॥२४॥

भरद्वाजवंशज द्रोणाचार्य के बाणों से अदृश्य धर्मराज को देखकर सारे वीरों ने राजा युधिष्ठिर को मारा हुआ मान लिया।

केचिच्चैनममन्यन्त तथैव विमुखीकृतम् ।
हतो राजेति राजेन्द्र ब्राह्मणेन महात्मना ॥२५॥

हे राजेन्द्र ! कुछ वीरों ने समझा, कि राजा युधिष्ठिर रण छोड़कर निकल गए और किसी ने समझा, कि महावीर ब्राह्मण द्रोणाचार्य ने धर्मराज को पकड़ लिया है ॥२५॥

स कृच्छ्रं परमं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
त्यक्त्वा तत्कार्मुकं छिन्नं भारद्वाजेन संयुगे ॥२६॥
आददेऽन्यद्धनुर्दिव्यं भास्वरं वेगवत्तरम् ।

इस समय धर्मराज बड़ी झंझट में पड़ गए। इसने द्रोणाचार्य द्वारा काटे हुए धनुष को रणभूमि में फेंक दिया और दूसरा चमकीला, वेगशील दिव्य धनुष उठाया ॥२६॥

ततस्तान्सायकांस्तत्र द्रोणमुक्तान्सहस्रशः ॥२७॥
चिच्छेद समरे वीरस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।

अब वीर धर्मराज भी अपने धनुष से रण में द्रोण के फेंके हुए सहस्त्रों बाणों को काटने लगे-यह बड़ा ही अद्भुत दृश्य था ॥२७॥

छित्वा तु ताञ्शरान्राजन्क्रोधसंरक्तलोचनः ॥२८॥
शक्तिं जग्राह समरे गिरीणामपि दारिणीम् ।

हे राजन ! इस प्रकार द्रोण के बाण काट कर धर्मराज ने पर्वतों को भी चीर देने वाली शक्ति उठाई। इस समय राजा युधिष्ठिर की आंखें क्रोध से लाल हो रही थी ॥२८॥

स्वर्णदण्डां महाघोरामष्टघण्टां भयावहाम् ॥२९॥
समुत्क्षिप्य च तां हृष्टो ननाद बलवद्बली ।
नादेन सर्वभूतानि त्रासयन्निव भारत ॥३०॥

इस शक्ति के स्वर्ण का दण्ड और आठ घण्टी लगी थी। इस महाघोर शक्ति को फैंककर बलवान धर्मराज ने बड़े बल के साथ गर्जना की। हे भारत ! इस गर्जना से सारे प्राणी एकदम घबरा उठे ॥२९-३०॥

शक्तिं समुद्यतां दृष्ट्वा धर्मराजेन संयुगे ।
स्वस्ति द्रोणाय सहसा सर्वभूतान्यथाऽब्रुवन् ॥३१॥

इस घोर संग्राम में धर्मराज द्वारा फैंकी हुई शक्ति को देखकर सारे प्राणी द्रोणाचार्य के लिए कल्याण कामना करने लगे ॥३१॥

सा राजभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसन्निभा ।
प्रज्वालयन्ती गगनं दिशः सप्रदिशस्तथा ॥३२॥
द्रोणान्तिकमनुप्राप्ता दीप्तास्या पन्नगी यथा ।

राजा युधिष्ठिर के हाथ से छोड़ी हुई, कांचुली हीन सर्प के सदृश भीषण दिशा और प्रदिशाओं सहित आकाश को प्रज्वलित करती हुई वह द्रोण के पास पहुंची। यह सर्पिणी के सदृश लपलपा रही थी ॥२२॥

तामापतन्तीं सहसा दृष्ट्वा द्रोणो विशाम्पते ॥२३॥
प्रादुश्चक्रे ततो ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदां वरः ।

हे विशाम्पते! अस्त्रविद्याकुशल द्रोणाचार्य ने भी उस आती हुई भीषण शक्ति को देखकर अपने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया ॥

तदस्त्रं भस्मसात्कृत्वा तां शक्तिं घोरदर्शनाम् ॥२४॥
जगाम स्यन्दनं तूर्णं पाण्डवस्य यशस्विनः ।

उस ब्रह्मास्त्र ने उस भयङ्कर शक्ति को भस्मीभूत करके यशस्वी धर्मराज के रथ पर बड़े वेग से आक्रमण किया ॥२४॥

ततो युधिष्ठिरो राजा द्रोणास्त्रं तत्समुद्यतम् ॥२५॥
अशामयन्महाप्राज्ञो ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष ।

हे आर्य! महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर ने भी द्रोणाचार्य के फेंके हुए ब्रह्मास्त्र को अपने ब्रह्मास्त्र द्वारा काट डाला ॥२५॥

विध्वा तं च रणे द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥२६॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेदाऽस्य महद्धनुः ।

धर्मराज ने अपने नतपर्ववाले पांच बाणों से रण में द्रोण को आहत करके क्षुरे के तुल्य तीक्ष्ण बाणों से इसके धनुष को भी काट डाला ॥२६॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणः क्षत्रियमर्दन ॥३७॥
गदां चिक्षेप सहसा धर्मपुत्राय मारिष ।

हे मारिष ! क्षत्रिय वीरों के मर्दन करने वाले द्रोणाचार्य ने अपने कटे हुए धनुष को फैंककर धर्मराज पर अचानक एक गदा का प्रहार किया ॥३७॥

तामापतन्तीं सहसा गदां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ॥३८॥
गदामेवाऽग्रहीत्क्रुद्धश्चिक्षेप च परन्तप ।

हे परन्तप ! राजा युधिष्ठिर ने जब अपने ऊपर गदा आती देखी-तो उसने भी गदा उठाई और क्रोध में भर कर द्रोणाचार्य पर प्रहार किया ॥३८॥

ते गदे सहसा मुक्ते समासाद्य परस्परम् ॥३९॥
संघर्षात्पावकं मुक्त्वा समेयातां महीतले ।

वे दोनों चलाई हुई गदाएँ मार्ग में परस्पर टकरा गईं और अग्नि की ज्वाला छोड़कर भूमि में गिर गईं ॥३९॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य मारिष ॥४०॥
चतुर्भिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्हयाञ्जघ्ने शरोत्तमैः ।

हे आर्य ! अब द्रोण, धर्मराज पर बड़ा कुपित हुआ और उसने चार तीखे और चमकीले बाण छोड़कर धर्मराज के अश्वों को आहत कर दिया ॥४०॥

चिच्छेदैकेन भल्लेन धनुश्चेन्द्रध्वजोपमम् ॥४१॥
केतुमेकेन चिच्छेद पाण्डवं चाऽर्दयत्त्रिभिः ।

इसके अनन्तर आचार्य द्रोण ने एक बाण से धर्मराज की इन्द्र ध्वजा के तुल्य ध्वजा को और दूसरे से धनुष को काट कर तीन बाणों से पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर को आहत किया ॥४१॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य युधिष्ठिरः ॥४२॥
तस्थावूर्ध्वभुजो राजा व्यायुधो भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ ! अब राजा युधिष्ठिर, अपने मृत अश्व वाले रथ से कूद पड़े और अश्व हीन होने के कारण ऊपर को भुजा उठा कर खड़े हो गए ॥४२॥

विरथं तं समालोक्य व्यायुधं च विशेषतः ॥४३॥
द्रोणो व्यमोहयच्छत्रून्सर्वसैन्यानि वा विभो ।

हे विभो ! जब द्रोणाचार्य ने रथ और आयुधों से रहित राजा युधिष्ठिर को देखा, तो वह सारी सेना और शत्रुओं को विमोहित करने लगा ॥४३॥

मुञ्चंश्चेपुगणांस्तीक्ष्णाँल्लघुहस्तो दृढव्रतः ॥४४॥
अभिदुद्राव राजानं सिंहो मृगमिवोल्बणः ।

द्रोणाचार्य बाण जाल छोड़ते हुए और अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा के अनुसार हाथ की लाघवता (फुर्ती) को दिखाते हुए मृग की ओर मदोद्धत सिंह की तरह राजा युधिष्ठिर पर झपटे ॥४४॥

तमभिद्रुतमालोक्य द्रोणेनाऽमित्रघातिना ॥४५॥
हाहेति सहसा शब्दः पाण्डूनां समजायत ।

शत्रुघाती, द्रोणाचार्य द्वारा राजा युधिष्ठिर पर इस आक्रमण को देखकर पाण्डवों की सेना में हाहाकार मच गया ॥४५॥

हतो राजा हतो राजा भारद्वाजेन मारिष ॥४६॥
इत्यासीत्सुमहाञ्शब्दः पाण्डुसैन्यस्य भारत ।

हे भारत ! भरद्वाज-पुत्र द्रोण द्वारा राजा युधिष्ठिर अभी मारा जाता है-यह कोलाहल पाण्डवों की सारी सेना में मच गया ॥४६॥

ततस्त्वरितमारुह्य सहदेवरथं नृपः ।
अपायाज्जवनैरश्वैः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥४७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरापयाने
षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

हे राजन् ! कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने जब यह आक्रमण देखा तो वह झपट कर सहदेव के रथ पर चढ़ गया और बड़े वेग वाले अश्वों के द्वारा रणभूमि से बाहर निकल गया ॥४७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में राजा युधिष्ठिर के रण से निकल जाने का एक सौ छःवां अध्याय समाप्त हुआ



# एक सौ सातवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

बृहत्क्षत्रमथाऽऽयान्तं कैकेयं दृढविक्रमम् ।
क्षेमधूर्तिर्महाराज विव्याधोरसि मार्गणैः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! महापराक्रमी आक्रमण करते हुए केकयराज बृहत्क्षत्र को देखकर क्षेमधूर्ति ने अपने बाणों से उसके वक्षस्थल में प्रहार किया ॥१॥

बृहत्क्षत्रस्तु तं राजा नवत्या नतपर्वणाम् ।
आजघ्ने त्वरितो राजन्द्रोणानीकबिभित्सया ॥२॥

हे राजन् ! द्रोणाचार्य की सेना के भेदन कर देने के लिए राजा बृहत्क्षत्र ने नतपर्ववाले नव्वे बाण क्षेमधूर्ति पर छोड़े ॥२॥

क्षेमधूर्तिस्तु संक्रुद्धः कैकेयस्य महात्मनः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन ह ॥३॥

हे भारत ! राज क्षेमधूर्ति ने भी क्रोध में भर कर महावीर केकयराजके धनुषको विषमें बुझे हुए तीक्ष्ण बाण से काट डाला ।

अथैनं छिन्नधन्वानं शरेणाऽऽनतपर्वणा ।
विव्याध समरे तूर्णं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ॥४॥

जब नतपर्व वाले बाण से केकयराज का धनुष कट गया, तो सब धनुषधारियों में श्रेष्ठ केकयराज बृहत्क्षत्र को क्षेमधूर्ति ने अपने बाणों से आच्छादित कर दिया ॥४॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय बृहत्क्षत्रो हसन्निव ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे क्षेमधूर्तिं महारथम् ॥५॥

अब राजा बृहत्क्षत्र ने भी हंसते २ दूसरा धनुष उठाया और उसके द्वारा इसने महारथी क्षेमधूर्ति को अश्व, सारथि और रथ हीन बना दिया ॥५॥

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
जहार नृपतेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥६॥

इसके अनन्तर इसने दूसरा विष में बुझा हुआ तीक्ष्ण बाण धनुप पर चढ़ाया और उसके द्वारा इसने राजा क्षेमधूर्ति के कुण्डलों से उज्ज्वल शिर को शरीर से पृथक् कर दिया ॥६॥

तच्छिन्नं सहसा तस्य शिरः कुञ्चितमूर्धजम् ।
सकिरीटं महीं प्राप्य बभौ ज्योतिरिवाऽम्बरात् ॥७॥

हे राजन् ! बांके बालों से शोभायमान, कटा हुआ राजा क्षेमधूर्ति का मुकुट सहित मस्तक, आकाश से गिरी हुई ज्योति के सदृश सुशोभित होने लगा ॥७॥

तं निहत्य रणे हृष्टो बृहत्क्षत्रो महारथः ।
सहसाऽभ्यपतत्सैन्यं तावकं पार्थकारणात् ॥८॥

इस घोर संग्राम में राजा क्षेमधूर्ति को महारथी बृहत्क्षत्र, मार कर बड़ा प्रसन्न हुआ और वह कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर के हित की चिन्ता से एकदम तुम्हारी सेना में घुस गया ॥८॥

धृष्टकेतुं तथाऽऽयान्तं द्रोणहेतोः पराक्रमी ।
वीरधन्वा महेष्वासो वारयामास भारत ॥९॥

हे भारत ! इसी तरह द्रोण के ऊपर आक्रमण करने के निमित्त झपटते हुए राजा धृष्टकेतु को देखकर महाधनुर्धर वीरधन्वा ने उसे रोका ॥९॥

तौ परस्परमासाद्य शरदंष्ट्रौ तरस्विनौ ।
शरैरनेकसाहस्रैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥१०॥

बाण रूपी दाढ़ों से भीषण, अत्यन्त वेगवान्, राजा धृष्टकेतु और वीरधन्वा एक दूसरे के आगे पहुंच कर सहस्रों की संख्या में बाण छोड़ कर एक दूसरे को मारने लगे ॥१०॥

तावुभौ नरशार्दूलौ युयुधाते परस्परम् ।
महावने तीव्रमदौ वारणाविव यूथपौ ॥११॥

हे राजन् ! ये दोनों नरशार्दूल भी निर्जन वन में तीव्र मदधारी, यूथपति दो हाथियों की तरह परस्पर युद्ध करने लगे ॥११॥

गिरिगह्वरमासाद्य शार्दूलाविव रोषितौ ।
युयुधाते महावीर्यौ परस्पर जिघांसया ॥१२॥

पर्वत की गुफा में पहुंचे हुए रोष पूर्ण दो सिंहों की भांति एक दूसरे के वध के इच्छुक, ये दोनों महापराक्रमी राजा धृष्टकेतु और वीर धन्वा युद्ध करने लगे ॥१२॥

तद्युद्धमासीत्तुमुलं प्रेक्षणीयं विशाम्पते ।
सिद्धचारणसङ्घानां विस्मयाद्भुतदर्शनम् ॥१३॥

हे विशाम्पते ! यह युद्ध इतना घमसान था, कि जिसको देखने के निमित्त सिद्ध चारणों के समूह बड़े कुतूहल से आकाश में उपस्थित थे ॥१३॥

वीरधन्वा ततः क्रुद्धो धृष्टकेतोः शरासनम् ।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन प्रहसन्निव भारत ॥१४॥

हे भारत ! अब राजा वीरधन्वा ने क्रोध में भर कर धृष्टकेतु के धनुष को हंसते २ अपने बाण से काट डाला ॥१४॥

तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं चेदिराजो महारथः ।
शक्तिं जग्राह विपुलां हेमदण्डामयस्मयीम् ॥१५॥

महारथी चेदिराज धृष्टकेतु ने उस धनुष को फैंक कर सुवर्ण दण्ड से सुशोभित लोहमयी विशाल शक्ति को उठाया ॥१५॥

तां तु शक्तिं महावीर्यां दोर्भ्यामायम्य भारत ।
चिक्षेप सहसा यत्तो वीरधन्वरथं प्रति ॥१६॥

हे भारत ! उस बड़ी विशाल शक्तिधारिणी शक्ति को चेदिराज धृष्टकेतु ने बड़ी सावधानी से वीरधन्वा के रथ पर फैंका ॥१६॥

तया तु वीरघातिन्या शक्त्या त्वभिहतो भृशम् ।
निर्भिन्नहृदयस्तूर्णं निपपात रथान्महीम् ॥१७॥

इस वीरघातिनी शक्ति से वीरधन्वा बड़ा आहत हुआ । इसका हृदय बिंध गया और यह बड़ी शीघ्रता से रथ से नीचे गिर पड़ा ॥१७॥

तस्मिन्विनिहते वीरे त्रैगर्तानां महारथे ।

बलं तेऽभज्यत विभो पाण्डवेयैः समन्ततः ॥१८॥

हे विभो ! इस त्रिगर्तवीर वीरधन्वा के मारे जाने पर पाण्डवों ने इसकी सेना को मारपीट कर दूर भगा दिया ॥१८॥

सहदेवे ततः षष्टिं सायकान्दुर्मुखोऽक्षिपत् ।

ननाद च महानादं तर्जयन्पाण्डवं रणे ॥१६॥

अब धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्मुख ने पाण्डु-पुत्र सहदेव पर साठ बाण छोड़े और रण में पाण्डवों को भयभीत करने के निमित्त, बड़ी गर्जना के साथ सिंहनाद किया ॥१६॥

माद्रेयस्तु ततः क्रुद्धो दुर्मुखं च शितैः शरैः ।

भ्राता भ्रातरमायान्तं विव्याध प्रहसन्निव ॥२०॥

अब माद्री-पुत्र सहदेव भी कुपित हो गया। उसने आक्रमण करते हुए, दुर्मुख पर तीक्ष्ण बाण छोड़े । इस समय सहदेव भ्राता ने अपने भाई दुर्मुख पर हंसते २ प्रहार किया ॥२०॥

तं रणे रभसं दृष्ट्वा सहदेवं महाबलम् ।

दुर्मुखो नवभिर्बाणैस्ताडयामास भारत ॥२१॥

हे भारत ! जब महाबली सहदेव को बड़ी तीव्रता से रण में बढ़ते देखा-तो दुर्मुख ने नौ बाणों से उस पर प्रहार किया ॥२१॥

दुर्मुखस्य तु भल्लेन छित्वा केतुं महाबलः ।

जघान चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥२२॥

महाबली सहदेव ने एक बाण से दुर्मुख की ध्वजा और चार तीखे बाणों से इसके चारों अश्वों को मार गिराया ॥२२॥

अथाऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन ह ।
चिच्छेद सारथेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥२३॥

अब सहदेव ने एक त्रिपपीत तीक्ष्ण बाण उठाया और उससे ज्वलित कुण्डलों से शोभायमान सारथि के शिर को शरीर से पृथक् कर दिया ॥२३॥

क्षुरप्रेण च तीक्ष्णेन कौरव्यस्य महद्धनुः ।
सहदेवो रणे छित्वा तं च विव्याध पञ्चभिः ॥२४॥

हे राजन्! अब सहदेव ने क्षुरे के समान तीक्ष्ण बाण से कुरुवंशश्रेष्ठ, दुर्मुख का धनुष भी काट डाला और पाँच बाण छोड़ कर उसको बुरी तरह क्षत-विक्षत कर दिया ॥२४॥

हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दुर्मुखो विमनास्तदा ।
आरुरोह रथं राजन्निरमित्रस्य भारत ॥२५॥

हे भारत! जब दुर्मुख के अश्व मारे गए, तो वह बड़ा उदासीन हो गया। हे राजन्! वह अपने अश्वहीन रथ को छोड़कर बड़ी शीघ्रता से निरमित्र के रथ पर जा चढ़ा ॥२५॥

सहदेवस्ततः क्रुद्धो निरमित्रं महाहवे ।
जघान पृतनामध्ये भल्लेन परवीरहा ॥२६॥

अब शत्रुनाशक सहदेव झल्ला उठा, इसने घमसान युद्ध में सेना के देखते २ निरमित्र को एक बाण से मार गिराया ॥२६॥

स पपात रथोपस्थान्निरमित्रो जनेश्वरः ।
त्रिगर्त्तराजस्य सुतो व्यथयंस्तव वाहिनीम् ॥२७॥

हे राजन्! त्रिगर्तराज का पुत्र राजा निरमित्र रथ के ऊपर से नीचे गिर पड़ा, जिसको देखकर तुम्हारी सेना में शोक छा गया।

तं तु हत्वा महाबाहुः सहदेवो व्यरोचत ।
यथा दाशरथी रामः खरं हत्वा महाबलम् ॥२८॥

महाबाहु सहदेव, राजा निरमित्र को मारकर महाबली खर राक्षस को मारकर सुशोभित होने वाले राम की भांति प्रकाशित हो उठे ॥२८॥

हाहाकारो महानासीत्त्रिगर्त्तानां जनेश्वर ।
राजपुत्रं हतं दृष्ट्वा निरमित्रं महारथम् ॥२६॥

हे जनेश्वर! महारथी राजपुत्र निरमित्र को मृतक देखकर त्रिगर्तों की सेना में हाहाकार मच गया ॥२६॥

नकुलस्ते सुतं राजन्विकर्णं पृथुलोचनम् ।
मुहूर्त्ताज्जितवाँल्लोके तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥३०॥

हे राजन्! पाण्डु-पुत्र नकुल ने मोटी २ आंखों वाले तुम्हारे पुत्र विकर्ण को क्षण भर में जीत लिया, जिसको लोक में बड़ा ही अद्भुत कर्म माना गया ॥३०॥

सात्यकिं व्याघ्रदत्तस्तु शरैः सन्नतपर्वभिः ।
चक्रेऽदृश्यं साश्वसूतं सध्वजं पृतनान्तरे ॥३१॥

हे राजन! राजा व्याघ्रदत्त ने अपने सन्नत पर्वधारी बाणों से सेना के मध्य में सात्यकि को अश्व, सारथि और ध्वजा के साथ पाट दिया ॥३१॥

तान्निवार्य शराञ्शूरः शैनेयः कृतहस्तवत् ।
साश्वसूतध्वजं बाणैर्व्याघ्रदत्तमपातयत् ॥३२॥

हे भरतर्षभ! हाथ की तीव्रता में कुशल, शिनिपौत्र, शूरवीर, सात्यकि ने उन बाणों को काटकर अपने बाणों से अश्व, सारथि और ध्वजा सहित राजा व्याघ्रदत्त को रणभूमि में गिरा दिया ॥

कुमारे निहते तस्मिन्मागधस्य सुते प्रभो ।
मागधाः सर्वतो यत्ता युयुधानमुपाद्रवन् ॥३३॥

हे प्रभो! मगध राजकुमार व्याघ्रदत्त के मार देने पर उसके सैनिक मागध वीर बड़ी सावधानी से सात्यकि पर टूट पड़े ॥३३॥

विसृजन्तः शरांश्चैव तोमरांश्च सहस्रशः ।
भिन्दिपालांस्तथा प्रासान्मुद्गरान्मुसलानपि ॥३४॥
अयोधयन्रणे शूराः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।

ये वीर योधा बहुत से बाण, सहस्रों तोमर, भिन्दिपाल, प्रास, मुद्गर, मुसल आदि शस्त्र लेकर युद्धदुर्मद सात्यकि पर रण में प्रहार करने लगे ॥३४॥

तांस्तु सर्वान्स बलवान्सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥३५॥
नाऽतिकृच्छ्राद्धसन्नेव विजिग्ये पुरुषर्षभः ।

हे राजन् ! इन सबको थोड़ी ही देर में हँसते २ पुरुषश्रेष्ठ युद्धदुर्मद, बलवान् सात्यकि ने सीधी तरह से जीत लिया ॥

मागधान्द्रवतो दृष्ट्वा हतशेषान्समन्ततः ॥३६॥
बलं तेऽभज्यत विभो युयुधानशरार्दितम् ।

हे विभो ! मारने से बचे हुए मागधवीरों को भागते देखकर सात्यकि के बाण से पीड़ित तुम्हारी सेना सब ओर से भाग खड़ी हुई ॥३६॥

नाशयित्वा रणे सैन्यं त्वदीयं माधवोत्तमः ॥३७॥
विधुन्वानो धनुः श्रेष्ठं व्यभ्राजत महायशाः ।

यदुवंशश्रेष्ठ, महायशस्वी सात्यकि रण में तुम्हारी सेना का नाश करके अपने उत्तम धनुष को कँपाता हुआ सुशोभित होने लगा ॥३७॥

भज्यमानं बलं राजन्सात्वतेन महात्मना ॥३८॥
नाऽभ्यवर्त्तत युद्धाय त्रासितं दीर्घबाहुना ।

हे राजन् ! महावीर दीर्घबाहु सात्यकि द्वारा नष्ट भ्रष्ट किया हुआ सेना समूह फिर युद्ध के लिए नहीं लौट सका ॥३८॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धः सहसोद्वृत्य चक्षुषी ।
सात्यकिं सत्यकर्माणं स्वयमेवाऽभिदुद्रुवे ॥३९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

हे भारत! जब द्रोणाचार्य ने मुंह फेर कर आंखों से सात्यकि का यह कृत्य देखा-तो क्रोध से जल उठा और उसने सत्यकर्म सात्यकि पर स्वयं आक्रमण किया ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सात्यकि के भीषण संग्राम का एक सौ सातवां अध्याय समाप्त हुआ

---

# एक सौ आठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

द्रौपदेयान्महेष्वासान्सौमदत्तिर्महायशाः ।

एकैकं पञ्चभिर्विध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ! इधर महायशस्वी सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा ने पांच २ बाण मारकर महाधनुर्धर प्रत्येक द्रौपदी-पुत्र को बींध दिया और उन पर सात २ बाण छोड़े ॥१॥

ते पीडिता भृशं तेन रौद्रेण सहसा विभो ।

प्रमूढा नैव विविदुर्मृधे कृत्यं स्म किञ्चन ॥२॥

हे विभो! अचानक महाभयङ्कर रूपधारी भूरिश्रवा द्वारा पीड़ित हुए द्रौपदी-पुत्र इतने मोहित हो गए, कि उनको अब रण में क्या करना चाहिए—यह कुछ भी नहीं सूझता था ॥२॥

नाकुलिश्च शतानीकः सौमदत्तिं नरर्षभम् ।
द्वाभ्यां विध्वाऽनदद्धृष्टः शराभ्यां शत्रुकर्शनः ॥३॥

इस समय शत्रुनाशक नकुल-पुत्र शतानीक, नरप्रवीर भूरिश्रवा को दो बाणों से बींधकर बड़ी भारी गर्जना करने लगा ॥

तथेतरे रणे यत्तास्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
विव्यधुः समरे तूर्णं सौमदत्तिममर्षणम् ॥४॥

इसके अनन्तर अन्य भी द्रौपदी-पुत्रों ने तीन २ बाण मारकर क्रोधातुर सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा को रण में बड़ी सावधानी से छेद डाला ॥४॥

स तान्प्रति महाराज चिक्षेप पञ्च सायकान् ।
एकैकं हृदि चाऽऽजघ्ने एकैकेन महायशाः ॥५॥

हे महाराज ! अब महायशस्वी भूरिश्रवा ने भी पांच बाण छोड़े, जिनमें एक २ बाण से प्रत्येक द्रौपदीपुत्र को बींध लिया ।५।

ततस्ते भ्रातरः पञ्च शरैर्विद्धा महात्मनः ।
परिवार्य रणे वीरं विव्यधुः सायकैर्भृशम् ॥६॥

इस महावीर भूरिश्रवा के बाणों से विंधे हुए पांचो भाइयों ने उसे घेर लिया और अत्यन्त तीक्ष्ण बाण मारकर उसको आहत करना आरम्भ किया ॥६॥

आर्जुनिस्तु हयांस्तस्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥७॥

भैमसेनिर्धनुश्छित्वा सौमदत्तेर्महात्मनः ।
ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः ॥८॥

क्रोधातुर अर्जुन-पुत्र ने तीक्ष्ण चार बाण छोड़ कर उसके अश्वों को यमलोक भेज दिया और भीमसेन-पुत्र ने महावीर भूरिश्रवा के धनुष को अपने तीक्ष्ण बाणों से काट डाला। इस तरह धनुष को काट कर उसने बड़ी गर्जना की ॥७-८॥

यौधिष्ठिरिर्ध्वजं तस्य छित्वा भूमावपातयत् ।
नाकुलिश्चाऽथ यन्तारं रथनीडादपाहरत् ॥९॥

हे राजन! राजा युधिष्ठिर के पुत्र प्रतिविन्ध्य ने उसकी ध्वजा काटकर भूमि में गिरा दी और नकुल-पुत्र शतानीक ने सारथि को मारकर रथ के ऊपर से नीचे गिरा लिया ॥९॥

साहदेविस्तु तं ज्ञात्वा भ्रातृभिर्विमुखीकृतम् ।
क्षुरप्रेण शिरो राजन्निचकर्त्त महात्मनः ॥१०॥

हे राजन्! जब सहदेव-पुत्र ने देखा, कि अपने भाइयों ने उसे बहुत ही रण से विमुख कर दिया है, तो उसने एक क्षुर के समान तीक्ष्ण बाण निकाला और उससे उसका मस्तक काटकर भूमि पर गिरा दिया ॥१०॥

तच्छिरो न्यपतद्भूमौ तपनीयविभूषितम् ।
भ्राजयत्तं रणोद्देशं बालसूर्यसमप्रभम् ॥११॥

हे भारत ! सुवर्ण के आभूषणों से उज्ज्वल, बालसूर्य तुल्य तेजधारी वह शिर, भूमि में गिरकर अपने उस भाग को देदीप्यमान करने लगा ॥११॥

सौमदत्तेः शिरो दृष्ट्वा निहतं तन्महात्मनः ।
वित्रस्तास्तावका राजन्प्रदुद्रुवुरनेकधा ॥१२॥

हे राजन् ! ज्योंही तुम्हारी सेना के वीरों ने महाबली सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा का मस्तक शरीर से पृथक् देखा, त्योंही वे घबरा गए और अनेक मार्गों से भाग निकले ॥१२॥

अलम्बुषस्तु समरे भीमसेनं महाबलम् ।
योधयामास संक्रुद्धो लक्ष्मणं रावणिर्यथा ॥१३॥

एक ओर रण में राक्षसराज अलम्बुष क्रोधाविष्ट हुआ महाबली भीमसेन से लक्ष्मण से मेघनाद की तरह भीषण युद्ध कर रहा था ॥१३॥

सम्प्रयुद्धौ रणे दृष्ट्वा तावुभौ नरराक्षसौ ।
विस्मयः सर्वभूतानां प्रहर्षः समजायत ॥१४॥

इस घमसान युद्ध में राक्षस और मनुष्य भीमसेन का युद्ध देखकर सारे प्राणियों को बड़ा आश्चर्य और हर्ष हुआ ॥१४॥

आर्ष्यशृङ्गिं ततो भीमो नवभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध प्रहसन्राजन्राक्षसेन्द्रममर्षणम् ॥१५॥

हे राजन् ! ऋष्यशृङ्ग-पुत्र अलम्बुष राक्षस पर हंसते २ भीमसेन ने नौ तीक्ष्ण बाण मारे, जिनसे क्रोधातुर राक्षसराज बड़ा ही क्षत-विक्षत हो गया ॥१५॥

तद्रक्षः समरे विद्धं कृत्वा नादं भयावहम् ।
अभ्यद्रवत्ततो भीमं ये च तस्य पदानुगाः ॥१६॥

इस प्रकार रण में राक्षसराज को बींधकर भयानक सिंहनाद करने वाले भीमसेन पर उसके अनुचर सैनिक राक्षस बड़े वेग से झपटे ॥१६॥

स भीमं पञ्चभिर्विध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
भैमान्परिजघानाऽऽशु रथांस्त्रिशतमाहवे ॥१७॥
पुनश्चतुःशतान्हत्वा भीमं विव्याध पत्रिणा ।

उस राक्षसराज ने अब फिर भीमसेन को सन्नतपर्वधारी पांच बाणों से आहत किया और भीमसेन के साथी तीन सौ रथियों को मार गिराया और दूसरे ही झटके में इसने अन्य चार सौ रथियों को मारकर भीमसेन को भी एक तीक्ष्ण बाण से आहत किया ॥१७॥

सोऽतिविद्धस्तथा भीमो राक्षसेन महाबलः ॥१८॥
निपपात रथोपस्थे मूर्छयाऽभिपरिप्लुतः ।

महाबली राक्षस द्वारा क्षत विक्षत हुआ भीमसेन रथ के बीच में मूर्च्छा से व्याप्त होकर गिर गया ॥१८॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मारुतिः क्रोधमूर्छितः ॥१९॥
विकृष्य कार्मुकं घोरं भारसाधनमुत्तमम् ।
अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैरर्दयामास सर्वतः ॥२०॥

हे राजन्! जब वायु-पुत्र भीमसेन को चेतनता आई, तो वह क्रोध से झल्ला उठा और अपने बल को सह लेने वाले दृढ़ धनुष को उठाकर सब ओर से राक्षसराज अलम्बुष पर तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगा ॥१९-२०॥

स विद्धो बहुभिर्बाणैर्नीलाञ्जनचयोपमः।
शुशुभे सर्वतो राजन्प्रफुल्ल इव किंशुकः ॥२१॥

हे राजन! नील पर्वत के समान आकारधारी वह राक्षसराज बहुत से बाणों से बिंध कर खिले हुए, किंशुक (ढाक) वृक्ष के तुल्य सुन्दर प्रतीत होने लगा ॥२१॥

स वध्यमानः समरे भीमचापच्युतैः शरैः।
स्मरन्भ्रातृवधं चैव पाण्डवेन महात्मना ॥२२॥
घोरं रूपमथो कृत्वा भीमसेनमभाषत।

भीमसेन के धनुष द्वारा छोड़े हुए बाणों से रण में आहत हुआ राक्षसराज अलम्बुष, पाण्डु-पुत्र महाबली भीमसेन द्वारा किये हुए अपने भ्राता बकासुर के वध का स्मरण करके और अपना भयानक रूप बना कर भीमसेन से बोला ॥२२॥

तिष्ठेदानीं रणे पार्थ पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥२३॥
बको नाम सुदुर्बुद्धे राक्षसप्रवरो बली।
परोक्षं मम तद्वृत्तं यद्भ्राता मे हतस्त्वया ॥२४॥

हे कुन्ती-पुत्र! भीमसेन! तू रण में ठहर कर मेरे पराक्रम को देख। हे दुर्बुद्धि! तूने राक्षसों में श्रेष्ठ मेरे भ्राता बलवान् बकको मेरे परोक्ष में मार डाला है-आज उसका बदला चुकाऊंगा।

एवमुक्त्वा ततो भीममन्तर्धानं गतस्तदा ।
महता शरवर्षेण भृशं तं समवाकिरत् ॥२५॥

हे राजन् ! भीमसेन से इतना कह कर वह राक्षसराज अन्तर्हित हो गया और छुपा २ ही बड़ी भारी बाणवर्षा करके भीमसेन को पाटने लगा ॥२५॥

भीमस्तु समरे राजन्नदृश्ये राक्षसे तदा ।
आकाशं पूरयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२६॥

हे राजेन्द्र ! जब राक्षसराज अदृश्य हो गया, तो रण में भीमसेन ने अपने सन्नतपर्व वाले बाणों से आकाश को भरना आरम्भ किया ॥१६॥

स वध्यमानो भीमेन निमेषाद्रथमास्थितः ।
जगाम धरणीं चैव क्षुद्रः खं सहसाऽगमत् ॥२७॥

जब इस प्रकार भीमसेन ने अलम्बुष को आहत किया, तो वह क्षण भर में रथ में आ बैठा। यह नीच क्षण भर में पृथिवी में और क्षण भर में आकाश में उड़ जाता था ॥२७॥

उच्चावचानि रूपाणि चकार सुबहूनि च ।
अणुर्बृहत्पुनः स्थूलो नादान्मुञ्चन्निवाऽम्बुदः ॥२८॥
उच्चावचास्तथा वाचो व्याजहार समन्ततः ।
निपेतुर्गगनाच्चैव शरधाराः सहस्रशः ॥२९॥

इसने अनेक टेढ़े तीखे रूप बनाए तथा छोटे मोटे और बड़े आकार धारण किये एवं मेघ के तुल्य भारी गर्जना की। इसी तरह

इसने सब ओर से अनेक प्रकार की तीखी वाणी का उच्चारण किया और सहस्रों मार्गों से इसकी बाणधारा आकाश से बरसने लगी ॥२८-२९॥

शक्तयः कणपाः प्रासाः शूलपट्टिशतोमराः ।
शतघ्न्यः परिघाश्चैव भिन्दिपालाः परश्वधाः ॥३०॥
शिलाः खड्गा गुडाश्चैव ऋष्टीर्वज्राणि चैव ह ।
सा राक्षसविसृष्टा तु शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ॥३१॥

शक्ति, कणप, प्रास, शूल, पट्टिश, तोमर, शतघ्नी, परिघ, भिन्दिपाल, परशु, शिला, खड्ग, गुड़, (गोले) ऋष्टि, वज्रादि अनेक शस्त्रों की दारुण वर्षा उस राक्षस अलम्बुष ने बरसाई ॥३०-३१॥

जघान पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान्रणमूर्धनि ।
तेन पाण्डवसैन्यानां सूदिता युधि वारणाः ॥३२॥
हयाश्च बहवो राजन्पत्तयश्च तथा पुनः ।
रथेभ्यो रथिनः पेतुस्तस्य नुन्नाः स्म सायकैः ॥३३॥

हे भरतर्षभ ! इस राक्षसराज अलम्बुष ने पाण्डु-पुत्र भीमसेन के बहुत से सैनिक मार डाले तथा पाण्डव वीरों के रण में अनेक हाथी भी मार गिराये। बहुत से अश्व, पैदल सैनिक और रथी वीर उसके बाणों से आहत होकर रणभूमि में लेट गये ॥३२-३३॥

शोणितोदां रथावर्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम् ।
छत्रहंसां कर्दमिनीं बाहुपन्नगसंकुलाम् ॥३४॥

नदीं प्रवर्त्तयामास रक्षोगणसमाकुलाम् ।
वहन्तीं बहुधा राजंश्चेदिपञ्चालसृञ्जयाम् ॥३५॥

हे राजन् ! इस भयानक आकारधारी राक्षस ने रक्त रूपी जल से पूर्ण, रथों के भँवरों से व्याप्त, हाथी रूपी ग्राहों से परिपूर्ण, छत्ररूपी हंसों से समन्वित, योद्धाओं की भुजा रूपी सर्पोंसे सम्पन्न, रक्त की कीचड़ वाली एक नदी प्रवृत्त की, जिसके ऊपर चारों ओर राक्षससेना घूम रही थी और उसमें चेदि, पञ्चाल और सृञ्जय वीर वहे जा रहे थे ॥३४-३५॥

तं तथा समरे राजन्विचरन्तमभीतवत् ।
पाण्डवा भृशसंविग्नाः प्रापश्यंस्तस्य विक्रमम् ॥३६॥

हे राजन् ! इस प्रकार निर्भीक भाव से विचरते हुए राक्षस तथा उसके महापराक्रम को देखकर पाण्डव अत्यन्त उद्विग्न हो उठे ॥३६॥

तावकानां तु सैन्यानां प्रहर्षः समजायत ।
वादित्रनिनदश्चोग्रः सुमहान्रोमहर्षणः ॥३७॥

इस समय तुम्हारी सेना में बड़ा ही आनन्द हो रहा था और इतने बाजे बज रहे थे, कि जिनको सुनकर साधारण मनुष्य के रोमाञ्च खड़े हो जाते थे ॥३७॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य पाण्डवः ।
नाऽमृष्यत यथा नागस्तलशब्दं समीरितम् ॥३८॥

हे भारत ! तुम्हारी सेना के इस सिंहनाद को सुनकर करतल-ध्वनि को सर्प की तरह पाण्डवों को वह सहन न हो सकी ॥३८॥

ततः क्रोधाभिताम्राक्षो निर्दहन्निव पावकः ।
सन्दधे त्वाष्ट्रमस्त्रं स स्वयं त्वष्टेव मारुतिः ॥३९॥

अग्नि की तरह प्रज्वलित हुआ भीमसेन क्रोध से जल उठा। इसकी आंखें लाल हो गई। इस वायु-पुत्र भीमसेन ने अब त्वाष्ट्र नामक अस्त्र को स्वयं त्वष्टादेव की तरह धारण किया।

ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन्समन्ततः ।
तैः शरैस्तव सैन्यस्य विद्रवः सुमहानभूत् ॥४०॥

हे राजन ! उस त्वाष्ट्र नामक अस्त्र से सैंकड़ों बाण सब ओर छूटने लगे। उस बाण वर्षा से तुम्हारी सेना में बहुत ही भगदड़ पड़ गई ॥४०॥

तदस्त्रं प्रेरितं तेन भीमसेनेन संयुगे ।
राक्षसस्य महामायां हत्वा राक्षसमर्दयत् ॥४१॥

भीमसेन ने ज्योंही रण में इस त्वाष्ट्र नामक अस्त्र को घुमाया, तो उससे राक्षस की सारी माया नष्ट हो गई और उसने इससे इस राक्षसराज अलम्बुष को भी जा पीड़ित किया ॥४१॥

स वध्यमानो बहुधा भीमसेनेन राक्षसः ।
सन्त्यज्य समरे भीमं द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥४२॥

इस प्रकार भीमसेन द्वारा आहत किया हुआ राक्षसराज अलम्बुष, भीमसेन को रण में ही छोड़कर द्रोणाचार्य की सेना में घुस गया ॥४२॥

तस्मिंस्तु निर्जिते राजन्राक्षसेन्द्रे महात्मना ।
अनादयन्सिंहनादैः पाण्डवाः सर्वतोदिशम् ॥४३॥

हे राजेन्द्र ! महावीर भीमसेन द्वारा राक्षसेन्द्र अलम्बुष के जीत लेने पर सब ओर से पाण्डव सैनिक घोर सिंहनाद करने लगे । ॥४३॥

अपूजयन्मारुतिं च संहृष्टास्ते महाबलम् ।
प्रह्लादं समरे जित्वा यथा शक्रं मरुद्गणाः ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषपराजये अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

हे भारत ! वे बड़े आह्लादित होकर इस महाबली वायु-पुत्र भीमसेन की इस तरह पूजा करने लगे-जैसे प्रह्लाद के जीतने पर देवों ने देवराज इन्द्र की पूजा की थी ॥४४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में अलम्बुष के पराजय का एक सौ आठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

# एक सौ नौवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अलम्बुषं तथा युद्धे विचरन्तमभीतवत् ।
हैडिम्बिः प्रययौ तूर्णं विव्याध निशितैः शरैः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार निर्भीक भाव से रणाङ्गण में राक्षसराज अलम्बुप को देखकर हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच वेग से आगे बढ़ा और उसने तीक्ष्ण बाणों से अलम्बुप पर प्रहार करना आरम्भ किया ॥१॥

तयोः प्रतिभयं युद्धमासीद्राक्षससिंहयोः ।
कुर्वतोर्विविधा मायाः शक्रशम्बरयोरिव ॥२॥
अलम्बुषो भृशं क्रुद्धो घटोत्कचमताडयत् ।

अब इन दोनों राक्षस वीरों का भयङ्कर युद्ध छिड़ गया । ये इन्द्र और शम्बर के युद्ध में होने वाली अनेक मायाओं के सदृश माया दिखाने लगे । राक्षसराज अलम्बुप ने कुपित होकर घटोत्कच पर प्रहार किया ॥२॥

तयोर्युद्धं समभवद्रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ॥३॥
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोः प्रभो ।

राक्षसों में श्रेष्ठ अलम्बुप और घटोत्कच का यह युद्ध इतना भीषण हुआ, जितना पूर्वकाल में राम रावण का युद्ध हुआ था ।

घटोत्कचस्तु विंशत्या नाराचानां स्तनान्तरे ॥४॥
अलम्बुषमथो विध्वा सिंहवद्व्यनदन्मुहुः ।

राक्षसराज घटोत्कच ने बीस बाण अलम्बुष की छाती में मारे। इस प्रकार अलम्बुष को क्षत-विक्षत करके घटोत्कच ने सिंह के तुल्य बार २ गर्जना की ॥४॥

तथैवाऽलम्बुषो राजन्हैडिम्बिं युद्धदुर्मदम् ॥५॥
विध्वा विध्वाऽनदद्दृष्टः पूरयन्खं समन्ततः ।

हे राजन! इसी तरह अलम्बुष ने भी हिडिम्बा के पुत्र, युद्ध में दुर्मद घटोत्कच को बार २ बाणों से बींध कर बड़ी प्रसन्नता के साथ सिंहनाद किया। इसने अपने बाणों से सब ओर आकाश को भर दिया ॥५॥

तथा तौ भृशसंक्रुद्धौ राक्षसेन्द्रौ महाबलौ ॥६॥
निर्विशेषमयुध्येतां मायाभिरितरेतरम् ।

हे भारत! ये दोनों महाबली राक्षसेन्द्र बहुत ही कुपित हो रहे थे। इन्होंने एक दूसरे पर अपनी २ माया का प्रयोग किया। इनका युद्ध इतना भीषण था, कि इन दोनों की कोई न्यूनता या अधिकता की जाँच नहीं कर सकता था ॥६॥

मायाशतसृजौ नित्यं मोहयन्तौ परस्परम् ॥७॥
मायायुद्धेषु कुशलौ मायायुद्धमयुध्यताम् ।

ये दोनों ही सैंकड़ों प्रकार की माया रचना जानते थे और इसके द्वारा एक दूसरे को मोहित कर देना चाहते थे। ये दोनों माया युद्ध में कुशल थे और माया (छल)-पूर्ण युद्ध ही कर रहे थे।

यां यां घटोत्कचो युद्धे मायां दर्शयते नृपः ॥८॥
तां तामलम्बुषो राजन्माययैव निजघ्निवान् ।

हे राजन्! राक्षसेन्द्र घटोत्कच, जिस २ माया का प्रयोग करता था, उसी माया को अपनी माया से राक्षसराज अलम्बुप नष्ट कर देते थे ॥८॥

तं तथा युध्यमानं तु मायायुद्धविशारदम् ॥९॥
अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं दृष्ट्वाऽक्रुध्यन्त पाण्डवाः ।

'माया के युद्ध में कुशल राक्षसेन्द्र अलम्बुप को इस तरह युद्ध करता देखकर पाण्डव बहुत ही कुपित हो रहे थे ॥९॥;

त एनं भृशसंविग्नाः सर्वतः प्रवरा रथैः ॥१०॥
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनादयो नृप ।

हे नराधिप! ये पाण्डव वीर, अत्यन्त आवेश में भरे हुए थे। अब ये भीमसेन आदि पाण्डववीर क्रोध में भर कर अच्छे २ रथियों के साथ अलम्बुष पर टूट पड़े ॥१०॥

त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ॥११॥
सर्वतो व्यकिरन्बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ।

हे आर्य! ये पाण्डव वीर, सब ओर से रथ सेना द्वारा राक्षसराज अलम्बुष को घेर कर पलीतों से हाथी की तरह राक्षसराज अलम्बुष को पीड़ित करने लगे ॥११॥

स तेषामस्त्रवेगं तं प्रतिहत्याऽस्त्रमायया ॥१२॥
तस्माद्रथव्रजान्मुक्तो वनदाहादिव द्विपः ।

इसने अपने अस्त्रों की माया से इन सब वीरों के अस्त्र काट गिराए और यह उस रथ सेना से इस तरह निकल आया, जैसे वन के अग्निकाण्ड से हाथी निकल भागता है ॥१२॥

स विस्फार्य धनुर्घोरमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥१३॥
मारुतिं पञ्चविंशत्या भैमसेनिं च पञ्चभिः ।
युधिष्ठिरं त्रिभिर्विध्वा सहदेवं च सप्तभिः॥१४॥
नकुलं च त्रिसप्तत्या द्रौपदेयांश्च मारिष ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्विध्वा घोरं नादं ननाद ह ॥१५॥

हे आर्य ! इसने इन्द्र के वज्र के तुल्य घोर धनुष को चढ़ाया, जिससे पचीस बाण तो वायु-पुत्र भीमसेन, पांच बाण भीमसेन-पुत्र घटोत्कच, तीन राजा युधिष्ठिर, सात सहदेव, इकीस नकुल तथा पांच २ बाण पांचों द्रौपदी-पुत्रों पर छोड़े । इस प्रकार सबको क्षत-विक्षत करके घोर गर्जना करने लगा ॥१३-१५॥

तं भीमसेनो नवभिः सहदेवस्तु पञ्चभिः ।
युधिष्ठिरः शतेनैव राक्षसं प्रत्यविध्यत ॥१६॥

इस राक्षसराज पर भी भीमसेन ने नौ, सहदेव ने पांच, युधिष्ठिर ने सौ बाण छोड़कर उसे बींध डाला ॥१६॥

नकुलस्तु चतुःषष्ट्या द्रौपदेयाँस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
हैडिम्बो राक्षसं विध्वा युद्धे पञ्चाशता शरैः ॥१७॥

हे राजन्! नकुल ने चौसठ, द्रौपदी-पुत्रों ने तीन २ तथा हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कचने युद्ध में पांच सौ बाण छोड़कर राक्षसराज अलम्बुष को बींध लिया ॥१७॥

पुनर्विव्याध सप्तत्या ननाद च महाबलः ।
तस्य नादेन महता कम्पितेयं वसुन्धरा ॥१८॥
सपर्वतवना राजन्सपादपजलाशया ।

हे राजन्! इसी प्रकार घटोत्कच ने सत्तर बाण फिर छोड़े, जिनसे अलम्बुष बड़ा आहत हुआ। उसके महा सिंहनाद से पर्वत, वन, वृक्ष और जलाशयों के साथ पृथिवी काँपने लगी ॥१८॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासैः सर्वतस्तैर्महारथैः ॥१९॥
प्रतिविव्याध तान्सर्वान्पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।

इस प्रकार इन महाधनुर्धर महारथियों द्वारा बींधा जाकर अलम्बुष ने अपने पांच २ बाण छोड़कर उन सबको क्षत-विक्षत कर दिया ॥१९॥

तं क्रुद्धं राक्षसं युद्धे प्रतिक्रुद्धस्तु राक्षसः ॥२०॥
हैडिम्बो भरतश्रेष्ठ शरैर्विव्याध सप्तभिः ।

हे भरतवंशश्रेष्ठ! इस तरह क्रोध में भरे हुये राक्षसराज अलम्बुष पर हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच ने सात बाण मार कर उसे आहत कर दिया ॥२०॥

सोऽतिविद्धो बलवता राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥२१॥
व्यसृजत्सायकांस्तूर्णं रुक्मपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।

हे आर्य ! इस प्रकार महाबली राक्षसराज अलम्बुष के बलवान् घटोत्कच द्वारा आहत हो जाने पर वह महाबली राक्षसराज भी सुवर्ण के मूल से समन्वित, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए बाणों को शीघ्रता से छोड़ने लगा ॥२१॥

ते शरा नतपर्वाणो विविशू राक्षसं तदा ॥२२॥
रुषिताः पन्नगा यद्वद्गिरिशृङ्गं महाबलाः ।

ये नतपर्व वाले बाण, इस तरह उस राक्षसराज के हृदय में घुस गए जैसे रोष में भरे हुए महाबली सर्प; गिरिशृङ्ग पर चढ़ जाते हैं ॥२२॥

ततस्ते पाण्डवा राजन्समन्तान्निशिताञ्शरान् ॥२३॥
प्रेषयामासुरुद्विग्ना हैडिम्बश्च घटोत्कचः ।

हे राजन् ! अब सारे पाण्डव, सब ओर से तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगे और इसी भांति हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच भी अपने बाण फैंक रहा था ॥२३॥

स विध्यमानः समरे पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥२४॥
मर्त्यधर्ममनुप्राप्तः कर्तव्यं नाऽन्वपद्यत ।

विजय की आशा में उत्साहित, पाण्डवों द्वारा रण में बिंधा हुआ अलम्बुष, मनुष्य की भांति बलहीन हो गया और इस समय उसको कुछ भी नहीं सूझ पड़ा ॥२४॥

ततः समरशौण्डो वै भैमसेनिर्महाबलः ॥२५॥
समीक्ष्य तदवस्थं तं वधायाऽस्य मनो दधे ।

इस छिद्र को देखकर महाबली रण-पण्डित, भीमसेन-पुत्र घटोत्कच ने उसकी यह दशा देखकर उसके मारने की चेष्टा की।

वेगं चक्रे महान्तं च राक्षसेन्द्ररथं प्रति ॥२६॥
दग्धाद्रिकूटशृङ्गाभं भिन्नाञ्जनचयोपमम्।

इसने राक्षसराज अलम्बुष के रथ पर महान् वेग से आक्रमण किया। यह रथ, दग्ध हुए उदयगिरि की चोटी और भिन्न काजल की ढेरी के सदृश प्रतीत होने लगा ॥२६॥

रथाद्रथमभिद्रुत्य क्रुद्धो हैडिम्बिराक्षिपत् ॥२७॥
उद्बवर्ह रथाच्चाऽपि पन्नगं गरुडो यथा।

हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच बड़े क्रोध में भर रहा था। यह अपने रथ से दूसरे रथ पर कूद कर उसके रथ से उसे इस तरह गिरा दिया-जैसे गरुड़ सर्प को गिरा लेता है ॥२७॥

समुत्क्षिप्य च बाहुभ्यामाविद्ध्य च पुनः पुन ॥२८॥
निष्पिपेष क्षितौ क्षिप्रं पूर्णकुम्भमिवाऽश्मनि।

घटोत्कच ने अलम्बुष को बाहुओं पर उठा लिया और बार २ घुमाया तथा पृथिवी पर इस तरह दे मारा-जैसे जल पूर्ण घड़े को पृथिवी पर दे मारा हो ॥२८॥

बललाघवसम्पन्नः सम्पन्नो विक्रमेण च ॥२९॥
भैमसेनी रणे क्रुद्धः सर्वसैन्यान्यभीषयत्।

भीमसेन-पुत्र घटोत्कच बल और वेग से सम्पन्न तथा पराक्रम समन्वित था। यह रण में क्रोध में भरा हुआ सारी सेनाओं को भयभीत करने लगा ॥२९॥

स विस्फारितसर्वाङ्गश्चूर्णितास्थिर्विभीषणः ॥३०॥
घटोत्कचेन वीरेण हतः शालकटङ्कटः ।

राक्षसराज अलम्बुष के सारे अङ्ग भङ्ग हो गए । इसकी हड्डियां चकनाचूर हो गई, जिससे बड़ा ही भयङ्कर दिखाई देने लगा । इस प्रकार कण्टकाकीर्ण शालवृक्ष की भांति अलम्बुष घटोत्कच द्वारा मारा गया ॥३०॥

ततः सुमनसः पार्था हते तस्मिन्निशाचरे ॥३१॥
चुक्रुशुः सिंहनादांश्च वासांस्यादुधुवुश्च ह ।

इस राक्षसराज के मारे जाने पर कुन्ती-पुत्र पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए । ये सिंहनाद करने और हर्ष सूचक वस्त्र उछालने लगे ॥३१॥

तावकाश्च हतं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं महाबलम् ॥३२॥
अलम्बुषं तथा शूरा विशीर्णमिव पर्वतम् ।
हाहाकारमकार्षुश्च सैन्यानि भरतर्षभ ॥३३॥
जनाश्च तद्ददृशिरे रक्षः कौतूहलान्विताः ।
यदृच्छया निपतितं भूमावङ्गारकं यथा ॥३४॥

हे राजन् ! तुम्हारे पक्ष के वीरों ने जब महाबली राक्षसराज अलम्बुष को मरा हुआ देखा-जो बिखरे हुए पर्वत की भांति पड़ा था, तो वे सारे सैनिक वीर हाहाकार करने लगे । हे भरतर्षभ ! कौतुक देखनेके अभिलाषी लोग उस राक्षस को आंख गडा २ कर देखने लगे । यह पृथिवी पर अचानक गिरे हुए मङ्गल ग्रह सा प्रतीत होता था ॥३२-३४॥

घटोत्कचस्तु तद्धत्वा रक्षो बलवतां वरम् ।
मुमोच बलवन्नादं बलं हत्वेव वासवः ॥३५॥

हे राजन् ! बलवानों में श्रेष्ठ, राक्षसराज अलम्बुप को मार कर इन्द्र की तरह घटोत्कच बड़े वेग से सिंहनाद करने लगा ॥३५॥

स पूज्यमानः पितृभिः सबान्धवैर्घटोत्कचः कर्मणि दुष्करे कृते
रिपुं निहत्याऽभिननन्द वै तदा ह्यलम्बुपं पक्वमलम्बुपं यथा

हे भरतर्षभ ! इस समय घटोत्कच की बान्धवों सहित धर्मराज आदि पितरों ने बड़ी प्रशंसा की। घटोत्कच ने यह बड़ा ही दुष्कर कार्य कर दिखाया । राक्षसराज घटोत्कच भी पके हुए अलम्बुष के फल के समान अलम्बुप राक्षस को मार कर बड़ा ही प्रसन्न हुआ ॥३६॥

ततो निनादः सुमहान्समुत्थितः सशङ्खनानाविधबाणघोषवान्
निशम्यतंप्रत्यनदंस्तुपाण्डवास्ततो ध्वनिर्भुवनपथाऽस्पृशद्भृशम्

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुपवधे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

हे राजन् ! इस समय शङ्ख आदि अनेक बाजों के घोर शब्दों के साथ सिंहनाद होने लगा। इस ध्वनि को सुनकर पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। यह घोर ध्वनि बड़े वेग से आकाश में छा गई ॥३१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में अलम्बुष वध का एक सौ नौवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

# एक सौ दशवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

भारद्वाजं कथं युद्धे युयुधानो न्यवारयत् ।
सञ्जयाऽऽचक्ष्व तात्त्वेन परं कौतूहलं हि मे ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! अब तुम यह बताओ, कि भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य को रण में वीरश्रेष्ठ सात्यकि ने किस तरह रोका-इसके सुनने की मुझे बड़ी ही आकांक्षा है ॥१॥

शृणु राजन्महाप्राज्ञ संग्रामं लोमहर्षणम् ।
द्रोणस्य पाण्डवैः सार्धं युयुधानपुरोगमैः ॥२॥

सञ्जय बोले—हे महाप्राज्ञ ! राजन् ! अब आप सात्यकि को आगे करके होने वाले पाण्डवों के साथ द्रोणाचार्य के युद्ध का वर्णन सुनो । यह संग्राम बड़ा ही लोमहर्षण हुआ है ॥२॥

वध्यमानं बलं दृष्ट्वा युयुधानेन मारिष ।
अभ्यद्रवत्स्वयं द्रोणः सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥३॥

हे श्रेष्ठगुणसम्पन्न ! महाराज ! जब द्रोणाचार्य ने देखा, कि सात्यकि ने सारी सेना मार भगाई-तो यह सत्यपराक्रमी सात्यकि पर स्वयं बड़े वेग से झपटा ॥३॥

तमापतन्तं सहसा भारद्वाजं महारथम् ।
सात्यकिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥४॥

महाशक्तिशाली द्रोणाचार्य को एकदम झपटते देखकर महारथी सात्यकि ने उन पर पचीस पैने बाण छोड़े ॥४॥

द्रोणोऽपि युधि विक्रान्तो युयुधानं समाहितः ।
अविध्यत्पञ्चभिस्तूर्णं हेमपुङ्खैः शरैः शितैः ॥५॥

आचार्य द्रोण भी युद्ध में पराक्रमी थे। उन्होंने बड़ी सावधानी से सुवर्ण के मूल वाले तीक्ष्ण बाण. छोड़कर बड़ी शीघ्रता से सात्यकि को क्षत-विक्षत (घायल) कर दिया ॥५॥

ते वर्म भित्त्वा सुदृढं द्विषत्पिशितभोजनाः ।
अभ्ययुर्धरणीं राजञ्श्वसन्त इव पन्नगाः ॥६॥

हे राजन्! शत्रु के मांस के चाट जाने वाले द्रोणाचार्य के बाण, सात्यकि के कवच को बड़ी दृढ़ता से बींध कर श्वास मारते हुए सर्पों की तरह भूमि में घुस गए ॥६॥

दीर्घबाहुरभिक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
द्रोणं पञ्चाशताऽविध्य नाराचैरग्निसन्निभैः ॥७॥

हे नराधिप! तोत्र नामक शस्त्र से पीड़ित गजेन्द्र की भांति दीर्घ भुजाधारी सात्यकि भी क्रोध से जल उठा। इसने भी अग्नि के सदृश.पचास बाण मार कर द्रोण को आहत कर दिया ॥७॥

भारद्वाजो रणे विद्धो युयुधानेन सत्वरम् ।
सात्यकिं बहुभिर्बाणैर्यतमानमविध्यत ॥८॥

महावीर युयुधान (सात्यकि) द्वारा बिंधे हुए द्रोणाचार्य ने भी बहुत से बाण छोड़कर सावधानी से युद्ध करने वाले सात्यकि को बाणों से आच्छादित कर दिया ॥८॥

ततः क्रुद्धो महेष्वासो भूय एव महाबलः ।
सात्वतं पीडयामास शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥६॥

अब महा धनुर्धर, महाबली द्रोण फिर झल्ला उठा और नतपर्व वाले बाणों से उसने यदुवंशश्रेष्ठ सात्यकि को अत्यन्त आहत कर दिया ॥६॥

स वध्यमानः समरे भारद्वाजेन सात्यकिः ।
नाऽन्वपद्यत कर्तव्यं किञ्चिदेव विशाम्पते ॥१०॥

हे विशाम्पते ! भरद्वाजपुत्र द्रोण द्वारा रण में सात्यकि के बींधे जाने पर उसे इस समय कोई भी कर्तव्य दृष्टि में नहीं आता था ॥१०॥

विषण्णवदनश्चापि युयुधानोऽभवन्नृप ।
भारद्वाजं रणे दृष्ट्वा विसृजन्तं शिताञ्शरान् ॥११॥

हे नृप ! इस प्रकार द्रोणाचार्य को रण में तीक्ष्ण बाण छोड़ते देखकर सात्यकि बहुत ही उदास हो रहे थे ॥११॥

तं तु सम्प्रेक्ष्य ते पुत्राः सैनिकाश्च विशाम्पते ।
प्रहृष्टमनसो भूत्वा सिंहवद्व्यनदन्मुहुः ॥१२॥

हे विशाम्पते ! सात्यकि की इस उदासी को देखकर तेरे पुत्र और सैनिक प्रसन्न मन होकर सिंह की भांति बार २ गर्जना करने लगे ॥१२॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं पीड्यमानं च माधवम् ।
युधिष्ठिरोऽब्रवीद्राजा सर्वसैन्यानि भारत ॥१३॥

एष वृष्णिवरो वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
ग्रस्यते युधि वीरेण भानुमानिव राहुणा ॥१४॥
अभिद्रवत गच्छध्वं सात्यकिर्यत्र युध्यते ।

हे भारत ! कौरवों की इस घोर गर्जना और सात्यकि को पीड़ित देखकर राजा युधिष्ठिर सारी सेना से यह वचन बोले, कि वृष्णिवंशश्रेष्ठ, सत्यपराक्रमी वीर सात्यकि को युद्ध में वीर द्रोणाचार्य, सूर्य को राहु की भांति दबाये जा रहा है-अब तुम लोग शीघ्र दौड़ो और वहीं पहुँचो, जहां यह सात्यकि युद्ध कर रहा है ॥१३-१४॥

धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यमिदमाह जनाधिपः ॥१४॥
अभिद्रव द्रुतं द्रोणं किमु तिष्ठसि पार्षत ।
न पश्यसि भयं द्रोणाद्घोरं नः समुपस्थितम् ॥१६॥

हे राजन् ! राजा युधिष्ठिर, पञ्चालराजकुमार पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न से भी बोले-हे पार्षत ! तुम शीघ्र द्रोण पर झपटो, यहां कैसे ठहर रहे हो ? क्या तुमको द्रोणाचार्य से उपस्थित हुए घोर भय का कुछ ज्ञान नहीं है ? ॥१५-१६॥

असौ द्रोणो महेष्वासो युयुधानेन संयुगे ।
क्रीडते सूत्रबद्धेन पक्षिणा बालको यथा ॥१७॥

देखो ! ये महाधनुर्धर द्रोण, युद्ध में सात्यकि से इस तरह जुट रहे हैं, जैसे-सूत में बांध कर बालक, पक्षी के साथ क्रीड़ा करते हैं ॥१७॥

तत्रैव सर्वे गच्छन्तु भीमसेनपुरोगमाः ।
त्वयैव सहिताः सर्वे युयुधानरथं प्रति ॥१८॥

अब तुम सारे भीमसेन आदि वीर वहीं पर पहुंचो, जहाँ पर सात्यकि युद्ध कर रहा है ॥१८॥

पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि त्वामहं सहसैनिकः ।
सात्यकिं मोचयस्वाऽद्य यमदंष्ट्रान्तरं गतम् ॥१९॥

मैं भी तुम सब लोगों की सारी सेना लेकर वहीं आता हूं । अब तो प्रथम यमकी दंष्ट्रा में पहुंचे हुए-सात्यकि को बचाओ ॥१९॥

एवमुक्त्वा ततो राजा सर्वसैन्येन भारत ।
अभ्यद्रवद्रणे द्रोणं युयुधानस्य कारणात् ॥२०॥

हे भारत ! इतना कहकर धर्मराज युधिष्ठिर सारी सेना लेकर सात्यकि के छुड़ाने के निमित्त रण में द्रोणाचार्य पर झपटे ॥२०॥

तत्राऽऽरावो महानासीद् द्रोणमेकं युयुत्सताम् ।
पाण्डवानां च भद्रं ते सृञ्जयानां च सर्वशः ॥२१॥

हे राजन् ! इस प्रकार अकेले द्रोण से युद्ध करने वाले पाण्डव और सृञ्जयों का सब ओर बड़ा ही कोलाहल मच गया ॥२१॥

ते समेत्य नरव्याघ्रा भारद्वाजं महारथम् ।
अभ्यवर्षञ्शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥२२॥

ये सारे नरवीर इकट्ठे होकर कङ्क और मयूर पक्ष से सुशोभित तीक्ष्ण बाणों को महारथी द्रोणाचार्य पर छोड़ने लगे

स्मयन्नेव तु तान्वीरान्द्रोणः प्रत्यग्रहीत्स्वयम् ।
अतिथीनागतान्यद्वत्सलिलेनाऽऽसनेन च ॥२३॥

द्रोणाचार्य ने भी इन सारे महारथियों का हंसते २ इस तरह स्वागत किया, जैसे घर पर आये हुए अतिथियों का जल और आसन प्रदान से किया जाता है ॥२३॥

तर्पितास्ते शरैस्तस्य भारद्वाजस्य धन्विनः ।
आतिथेयगृहं प्राप्य नृपतेऽतिथयो यथा ॥२४॥

हे नृपते ! धनुर्धर भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य के बाणों से ये महारथी उसी तरह सन्तुष्ट हुए जैसे-अतिथि गृहस्थी द्वारा सत्कार पाकर प्रसन्न होते हैं ॥२४॥

भारद्वाजं च ते सर्वे न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ।
मध्यन्दिनमनुप्राप्तं सहस्रांशुमिव प्रभो ॥२५॥

हे प्रभो ! ये सब भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य के तेज की ओर देख भी नहीं सकते थे, जैसे मध्याह्नकाल में लोग सूर्य की ओर नहीं देख सकते हैं ॥२५॥

तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
अतापयच्छरव्रातैर्गभस्तिभिरिवांऽशुमान् ॥२६॥

इन सारे महाधनुर्धर भीमसेन-आदि को शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, द्रोण ने अपने बाण-जाल से इस तरह आच्छादित कर दिया-जैसे सूर्य अपने किरणजाल से जगत् को ढक लेता है ॥२६॥

वध्यमाना महाराज पाण्डवाः सृञ्जयास्तथा ।
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ॥२७॥

हे महाराज! द्रोण द्वारा आहत किये, पाण्डव और सृञ्जय कीचड़ में फंसे हुए हाथियों की तरह अपना कोई रक्षक नहीं देख रहे थे ॥२७॥

द्रोणस्य च व्यदृश्यन्त विसर्पन्तो महाशराः ।
गभस्तय इवाऽर्कस्य प्रतपन्तः समन्ततः ॥२८॥

इस समय द्रोणाचार्य के बाण इस तरह आकाश में लपलपा रहे थे, जैसे सब ओर से सूर्य की किरणें गिर रही हो ॥२८॥

तस्मिन्द्रोणेन निहताः पञ्चालाः पञ्चविंशतिः ।
महारथाः समाख्याता धृष्टद्युम्नस्य सम्मताः ॥२९॥

इस युद्ध में द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न के माने हुए पचीस पञ्चाल महारथी मार गिराये ॥२९॥

पाण्डूनां सर्वसैन्येषु पञ्चालानां तथैव च ।
द्रोणं स्म ददृशुः शूरं विनिघ्नन्तं वरान्वरान् ॥३०॥

हे राजन्! पाण्डव और पञ्चालों की सेनाओं में जिस महारथी को द्रोणाचार्य अच्छा लड़ता देखता, उसे ही छांट कर मार गिराता था। इस प्रकार वीरों को छांट २ कर मारने लगा ॥३०॥

केकयानां शतं हत्वा विद्राव्य च समन्ततः ।
द्रोणस्तस्थौ महाराज व्यादितास्य इवाऽन्तकः ॥३१॥

हे महाराज ! महारथी कैकयवीर भी सैंकड़ों की संख्या में द्रोणाचार्य ने मार गिराये। इस समय द्रोणाचार्य मुँह खोले हुए काल से प्रतीत होते थे ॥३१॥

पञ्चालान्सृञ्जयान्मत्स्यान्केकयांश्च नराधिप ।
द्रोणोऽजयन्महाबाहुः शतशोऽथ सहस्रशः ॥३२॥

हे नराधिप ! पञ्चाल, सृञ्जय, मत्स्य और केकयवीरों को सैंकड़ों और सहस्रों की संख्या में महाबाहु आचार्य द्रोण ने मार २ कर पृथिवी में बिछा दिया ॥३२॥

तेषां समभवच्छब्दो विद्धानां द्रोणसायकैः ।
वनौकसामिवाऽऽरण्ये व्याप्तानां धूमकेतुना ॥३३॥

हे भारत ! द्रोणाचार्य के बाणों से बिंधे हुए पाञ्चालों का आर्तनाद इस तरह होने लगा-जैसे वन में आग लगने पर वनवासी चीत्कार करने लगते हैं ॥३३॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः पितरश्चाऽब्रुवन्नृप ।
एते द्रवन्ति पञ्चालाः पाण्डवाश्च ससैनिकाः ॥३४॥

हे नृप ! देव, गन्धर्व और पितर-जहां देखो-वहीं यह कह रहे थे, कि ये सेना सहित पञ्चाल और पाण्डव भागे जा रहे हैं ॥३४॥

तं तथा समरे द्रोणं निघ्नन्तं सोमकान्रणे ।
न चाऽप्यभिययुः केचिदपरे नैव विव्यधुः ॥३५॥

इस प्रकार रणाङ्गण में सोमकों को मार २ कर चिल्लाते देख कर भी कोई वीर द्रोण के सन्मुख नहीं आ सका और न कोई दूर से ही उसे बींध सका ॥३५॥

वर्तमाने तथा रौद्रे तस्मिन्वीरवरक्षये ।
अशृणोत्सहसा पार्थः पाञ्चजन्यस्य निःस्वनम् ॥२६॥

इस प्रकार भयङ्कर पाण्डववीरों का विनाश हो रहा था, कि कुन्ती-पुत्र धर्मराज ने अचानक श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि सुनी ॥२६॥

पूरितो वासुदेवेन शङ्खराट् स्वनते भृशम् ।
युध्यमानेषु वीरेषु सैन्धवस्याऽभिरक्षिषु ॥२७॥
नदत्सु धार्त्तराष्ट्रेषु विजयस्य रथं प्रति ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषे विप्रणष्टे समन्ततः ॥२८॥
कश्मलाभिहतो राजा चिन्तयामास पाण्डवः ।
न नूनं स्वस्ति पार्थाय यथा नदति शङ्खराट् ॥२९॥
कौरवाश्च यथा हृष्टा विनदन्ति मुहुर्मुहुः ।

श्रीकृष्ण द्वारा बजाया हुआ यह उत्तम शंख अत्यन्त ध्वनि के साथ बजता । अर्जुन इस समय सिन्धुराज जयद्रथ के रक्षक महारथियों से लड़ रहे थे। अर्जुन के रथ पर सिंहनाद कर २ के कौरववीर आक्रमण कर रहे थे । इस समय गाण्डीव धनुष की ध्वनि सुनाई नहीं देती थी। पाण्डु-पुत्र धर्मराज इस परिस्थिति को देखकर बड़े चिन्तातुर हुए। उन्होंने सोचा; कि यह शंखध्वनि तो इस ढंग से हो रही है, जैसे अर्जुन युद्ध में उलझ गया हो। कौरववीर आनन्द में भर कर बार बार सिंहनाद कर रहे हैं ॥२९॥

एवं स चिन्तयित्वा तु व्याकुलेनाऽन्तरात्मना ॥४०॥
अजातशत्रुः कौन्तेयः सात्वतं प्रत्यभाषत ।
बाष्पगद्गदया वाचा मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ।
कृत्यस्याऽनन्तरापेक्षी शैनेयं शिनिपुङ्गवम् ॥४१॥

हे राजन्! अजातशत्रु, कुन्ती-पुत्र धर्मराज इस प्रकार सोच २ कर बड़ी चिन्ता कर रहे थे, कि अब उन्होंने शिनिवंशश्रेष्ठ शिनि-पौत्र सात्यकि से बार २ बाष्प पूरित होकर गद्गद वाणी से कहा। ये इस समय बड़े ही मोहित हो रहे थे और अपने कर्तव्य को शीघ्र कार्य में परिणत करना चाहते थे ॥४०-४१॥

युधिष्ठिर उवाच—

यः स धर्मः पुरा दृष्टः सद्भिः शैनेय शाश्वतः ।
साम्पराये सुहृत्कृत्ये तस्य कालोऽयमागतः ॥४२॥

धर्मराज बोले—हे सात्यकि! जिस धर्म का पूर्वकाल के ऋषियों ने वर्णन किया है, उस मित्र की सहायता के धर्म का इस युद्ध में समय आ गया है ॥४२॥

सर्वेष्वपि च योधेषु चिन्तयञ्शिनिपुङ्गव ।
त्वत्तः सुहृत्तमं कञ्चिन्नाऽभिजानामि सात्यके ॥४३॥

हे शिनिवंशश्रेष्ठ! सात्यकि! मैं सारे योधाओं पर दृष्टि लगाता हूं, परन्तु मुझे कोई भी तुम्हारे समान सुहृद् और शक्तिशाली दिखाई नहीं देता है ॥४३॥

योहि प्रीतमना नित्यं यश्च नित्यमनुव्रतः।
स कार्ये साम्पराये तु नियोज्य इति मे मतिः ॥४४॥

जो सदा हमसे प्रेम रखता है और हमारे अनुकूल रहता है, उसी को युद्ध जैसे कठिन समय में सहायक बनाना चाहिए-ऐसी मेरी धारणा है ॥४४॥

यथा च केशवो नित्यं पाण्डवानां परायणम्।
तथा त्वमपि वार्ष्णेय कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥४५॥

हे वार्ष्णेय! जैसे श्रीकृष्ण, सदा पाण्डवों की सहायता करते हैं, वैसे ही तुम भी श्रीकृष्ण के तुल्य ही पराक्रमी और हमारे सुहृद् हो ॥४५॥

सोऽहं भारं समाधास्ये त्वयि तं वोढुमर्हसि।
अभिप्रायं च मे नित्यं न वृथा कर्त्तुमर्हसि ॥४६॥

अब मैं तुम्हारे ऊपर इस भार को रखना चाहता हूं-तुम इस भार को उठाने में समर्थ हो। तुमको मेरे इस अभिप्राय को निष्फल नहीं बनाना चाहिए ॥४६॥

स त्वं भ्रातुर्वयस्यस्य गुरोरपि च संयुगे।
कुरु कृच्छ्रे सहायार्थमर्जुनस्य नरर्षभ ॥४७॥

हे नरर्षभ! तुम अपने भ्राता, मित्र तथा गुरु जिसको मानते हो-उस अर्जुन की रण में यह सहायता का समय है; क्योंकि इस समय बड़ी ही कठिनाई उपस्थित है ॥४७॥

त्वं हि सत्यव्रतः शूरो मित्राणामभयङ्करः ।
लोके विख्यायसे वीर कर्मभिः सत्यवागिति ॥४८॥

हे वीर ! तुम सच्चे वीर और मित्रों को अभयदान देने वाले तथा संसार में प्रसिद्ध कीर्तिशाली योद्धा हो एवं अपने सत्य वचन को कार्य में परिणत करके दिखाते हो ॥४८॥

यो हि शैनेय मित्रार्थे युध्यमानस्त्यजेत्तनुम् ।
पृथिवीं च द्विजातिभ्यो यो दद्यात्स समो भवेत् ॥४९॥

हे शैनेय ! जो मित्र के लिए युद्ध करता हुआ अपने शरीर को छोड़ता है और जो ब्राह्मणों को भूमि दान करता है-इन दोनों को समान उत्तम गति प्राप्त होती है ॥४९॥

श्रुताश्च बहवोऽस्माभी राजानो ये दिवं गताः ।
दत्त्वेमां पृथिवीं कृत्स्नां ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि ॥५०॥

ब्राह्मणों को विधि-पूर्वक पृथिवी दान करके बहुत से राजा स्वर्ग पहुंच गए-यह हमने अच्छी तरह सुना है ॥५०॥

एवं त्वामपि धर्मात्मन्प्रयाचेऽहं कृताञ्जलिः ।
पृथिवीदानतुल्यं स्यादधिकं वा फलं विभो ॥५१॥

हे धर्मात्मन् ! अब मैं हाथ जोड़ कर तुमसे याचना करता हूँ, कि तुम रण में अर्जुन की सहायता करो । तुमको पृथिवी के दान से भी अधिक फल प्राप्त होगा ॥५१॥

एक एव सदा कृष्णो मित्राणामभयङ्करः ।
रणे सन्त्यजति प्राणान्द्वितीयस्त्वं च सात्यके ॥५२॥

श्रीकृष्ण, एक ऐसे हमारे मित्र हैं, जो हमारी सदा सहायता करते हैं। हे सात्यके ! इसी तरह रण में हमारे लिए प्राण छोड़ने-वाले दूसरे सहायक आप हैं ॥५२॥

विक्रान्तस्य च वीरस्य युद्धे प्रार्थयतो यशः ।
शूर एव सहायः स्यान्नेतरः प्राकृतो जनः ॥५३॥

जो पराक्रमी, वीर के साथ युद्ध करने के यश का अभिलाषी है, वही शूरवीर ऐसे समय में सहायक होता है, साधारण प्रकृति पुरुष इस समय कैसे सहायता कर सकता है ॥५३॥

ईदृशे तु परामर्दे वर्त्तमानस्य माधव ।
त्वदन्यो हि रणे गोप्ता विजयस्य न विद्यते ॥५४॥

हे माधव ! इस समय घोर युद्ध चल रहा है-तुम्हारे सिवा अर्जुन का इस कठिन काल में कोई रक्षक दिखाई नहीं देता है।

श्लाघन्नेव हि कर्माणि शतशस्तव पाण्डवः ।
मम सञ्जनयन्हर्षं पुनः पुनरकीर्तयत् ॥५५॥

पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने तुम्हारे वीरकर्मों की बार २ मुझसे प्रशंसा की है, जिसको सुनकर मुझे बार २ बड़ा हर्ष उत्पन्न होता था ॥५५॥

लघुहस्तश्चित्रयोधी तथाऽलघुपराक्रमः ।
प्राज्ञः सर्वास्त्रविच्छूरो मुह्यते न च संयुगे ॥५६॥

अर्जुन ने तुम्हारी प्रशंसा में मुझे कहा था, कि सात्यकि बड़ी शीघ्रता से युद्ध में हाथ दिखाने वाला, विचित्र ढङ्ग से युद्धकर्ता,

अत्यन्त पराक्रमी, बुद्धिमान, सब शस्त्र विद्या में कुशल और शूरवीर है। वह युद्ध में कभी मोहित नहीं होता है ॥५६॥

महास्कन्धो महोरस्को महाबाहुर्महाहनुः।
महाबलो महावीर्यः स महात्मा महारथः ॥५७॥

यह बड़े स्कन्ध और बड़े विशाल वक्षस्थल से समन्वित, महाबाहु तथा महा धनुर्धर है। यह महा बलसम्पन्न, महावीर्य, महात्मा और विशाल चिबुक (ठोडी) धारी महारथी है ॥५७॥

शिष्यो मम सखा चैव प्रियोऽस्याऽहं प्रियश्च मे।
युयुधानः सहायो मे प्रमथिष्यति कौरवान् ॥५८॥

यह मेरा सखा, शिष्य और प्रिय है। मैं भी इसको बड़ा प्रिय हूं। यह युयुधान (सात्यकि) मेरी सहायता के निमित्त कौरवों को मार २ कर बिछा देगा ॥५८॥

अस्मदर्थं च राजेन्द्र संनह्येद्यदि केशवः।
रामो वाऽप्यनिरुद्धो वा प्रद्युम्नो वा महारथः ॥५६॥
गदो वा सारणो वाऽपि साम्बो वा सह वृष्णिभिः।
सहायार्थं महाराज संग्रामोत्तममूर्धनि ॥६०॥
तथाऽप्यहं नरव्याघ्रं शैनेयं सत्यविक्रमम्।
साहाय्ये विनियोक्ष्यामि नाऽस्ति मेऽन्यो हि तत्समः ॥

हे राजेन्द्र! यदि मेरी सहायता के लिए कोई यह कहे-कि तुम श्रीकृष्ण, बलराम, अनिरुद्ध, महारथी प्रद्युम्न, गद, सारण तथा वृष्णिवीरों सहित साम्ब में से किसी एक की सहायता लेलो-तो-

में भयङ्कर युद्ध में सत्यपराक्रमी शिनि-पौत्र सात्यकि की सहायता ग्रहण करूंगा, क्योंकि उसके समान मेरा अन्तरङ्ग मित्र अन्य कोई नहीं है ॥५६-६१॥

इति द्वैतवने तात मामुवाच धनञ्जयः ।
परोक्षे त्वद्गुणांस्तथ्यान्कथयन्नार्यसंसदि ॥६२॥
तस्य त्वमेवं सङ्कल्पं न वृथा कर्तुमर्हसि ।
धनञ्जयस्य वार्ष्णेय मम भीमस्य चोभयोः ॥६३॥

हे तात ! द्वैत वन में यह सारी बातें मुझे अर्जुन ने सुनाई थीं । उसने हम सब श्रेष्ठ पुरुषों की सभा में तुम्हारे पीछे से तुम्हारे गुणोंकी प्रशंसा की है । हे सात्यकि ! तुमको अर्जुन, भीम और मेरे संकल्प को निष्फल नहीं करना चाहिए ॥६२-६३॥

यच्चापि तीर्थानि चरन्नगच्छं द्वारकां प्रति ।
तत्राऽहमपि ते भक्तिमर्जुनं प्रति दृष्टवान् ॥६४॥

हे वार्ष्णेय ! जब मैं तीर्थों में घूमता हुआ द्वारका पहुंचा-तो वहां पर मैंने प्रत्यक्ष अर्जुन के प्रति तुम्हारी भक्ति देखी थी ॥६४॥

न तत्सौहृदमन्येषु मया शैनेय लक्षितम् ।
यथा त्वमस्मान्भजसे वर्त्तमानानुपप्लवे ॥६५॥

हे शैनेय ! मैंने ऐसा प्रेम अन्य किसी में नहीं देखा, जैसा उपप्लव्य नगर में रहते समय तुमने हमारी सेवा करके प्रदर्शित किया है ॥६५॥

सोऽभिजात्या च भक्त्या च सख्यस्याऽऽचार्यकस्य च

सौहृदस्य च वीर्यस्य कुलीनत्वस्य माधव ॥६६॥

सत्यस्य च महाबाहो: अनुकम्पार्थमेव च ।

अनुरूपं महेष्वास कर्म त्वं कर्तुमर्हसि ॥६७॥

हे महाबाहो ! महाधनुर्धर ! माधव ! तुम अब अपनी जन्म की श्रेष्ठता, भक्ति, मित्रता, अर्जुन में गुरुभाव, प्रेम, शक्ति, कुलीनता, सत्य और कृपा के अनुकूल कर्म करके दिखाओ।

सुयोधनो हि सहसा गतो द्रोणेन दंशितः ।

पूर्वमेवाऽनुयातास्ते कौरवाणां महारथाः ॥६८॥

द्रोणाचार्य ने कवच पहिना कर दुर्योधन को सुसज्जित कर दिया है। अब वह उसी के आधार पर एकदम अर्जुन के सन्मुख बढ़ा चला गया और कौरवों के अन्य महारथी तो वहां पहले से ही पहुंचे हुए हैं॥६८॥

सुमहान्निनदश्चैव श्रूयते विजयं प्रति ।

स शैनेय जवेनाऽऽशु गन्तुमर्हसि मानद ॥६९॥

हे शैनेय ! अर्जुन के साथ इन सबका युद्ध हो रहा है-उसका ही यह महान् कोलाहल सुना जा रहा है। हे मानद ! अब तुम्हें वहां शीघ्र वेग के साथ पहुंच जाना चाहिए॥६९॥

भीमसेनो वयं चैव संयताः सहसैनिकाः ।

द्रोणमावारयिष्यामो यदि त्वां प्रतियास्यति ॥७०॥

हे सात्यकि ! यदि तुम्हारे अर्जुन की सहायता में जाने पर द्रोणाचार्य पीछा करेंगे-तो भीमसेन और सारी सेना के सहित हम लोग द्रोण को आगे नहीं बढ़ने देंगे ॥७०॥

पश्य शैनेय सैन्यानि द्रवमाणानि संयुगे ।
महान्तं च रणे शब्दं दीर्यमाणां च भारतीम् ॥७१॥

हे शिनि-पौत्र ! देखो ? रण में सब ओर सेना भाग रही है तथा संग्राम में महान् कोलाहल उठ रहा है और भारती सेना इधर उधर बिखरी जा रही है ॥७१॥

महामारुतवेगेन समुद्रमिव पर्वसु ।
धार्त्तराष्ट्रबलं तात विक्षिप्तं सव्यसाचिना ॥७२॥

हे तात ! पर्वकाल में महावायु (आंधी) के वेग से उछाले हुए समुद्र की भांति सव्यसाची अर्जुन द्वारा कौरवसेना इधर उधर भगा दी गई है ॥७२॥

रथैर्विपरिधावद्भिर्मनुष्यैश्च हयैश्च ह ।
सैन्यं रजः समुद्भूतमेतत्सम्परिवर्त्तते ॥७३॥

रथ, योद्धा और अश्वों के दौड़ने से सेना में बड़ी भारी धूलि, उठी हुई है, जो उमड़ी चली आती है ॥७३॥

संवृतः सिन्धुसौवीरैर्नखरप्रासयोधिभिः ।
अत्यन्तोपचितैः शूरैः फाल्गुनः परवीरहा ॥७४॥

सिन्धु और सौवीर देश के तीक्ष्ण प्रासधारी अत्यन्त पुष्ट योद्धाओं ने शत्रुविजयी अर्जुन को घेर लिया है ॥७४॥

नैतद्बलमसंवार्य शक्यो जेतुं जयद्रथः ।
एते हि सैन्धवस्यार्थे सर्वे सन्त्यक्तजीविताः ॥७५॥

यह कौरव सेना रोकी नहीं जा सकती है, इसके विना रोके जयद्रथ जीता नहीं जा सकता। ये सारे योद्धा सिन्धुराज जयद्रथ की रक्षा में अपने प्राणों की भी अपेक्षा (परवा) नहीं कर रहे हैं।

शरशक्तिध्वजवरं हयनागसमाकुलम् ।
पश्यैतद्धार्त्तराष्ट्राणामनीकं सुदुरासदम् ॥७६॥

बाण, शक्ति, ध्वजा धारी, अश्व और हाथियों से व्याप्त, अत्यन्त दुरासद कौरवों की सेना पर जरा दृष्टि तो डालो ॥७६॥

शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खशब्दांश्च पुष्कलान् ।
सिंहनादरवांश्चैव रथनेमिस्वनांस्तथा ॥७७॥
नागानां शृणु शब्दं च पत्तीनां च सहस्रशः ।
सादिनां द्रवतां चैव शृणु कम्पयतां महीम् ॥७८॥

हे सात्यकि ! दुन्दुभि, (नगाड़े) घोप, शङ्खों के पुष्कल शब्द, सिंहनाद, रथ नेमियों की ध्वनि, हाथियों की चिंघाड़, सहस्रों पैदल सैनिकों का कोलाहल, अश्वारोहियों की दौड़ और कांपती हुई पृथ्वी को तुम देखो ॥७७-७८॥

पुरस्तात्सैन्धवानीकं द्रोणानीकं च पृष्ठतः ।
बहुत्वाद्धि नरव्याघ्र देवेन्द्रमपि पीडयेत ॥७९॥

हे नरव्याघ्र ! आगे तो सिन्धुराज की सेना है-उसके पीछे द्रोणाचार्य की सेना चल रही है । यह इतनी अधिक है, जो देवराज इन्द्र को भी पीड़ित कर सकती है ॥७९॥

अपर्यन्ते बले मग्नो जह्यादपि च जीवितम् ।
तस्मिंश्च निहते युद्धे कथं जीवेत मादृशः ॥८०॥

इस अपार सेना में फंसे हुए अर्जुन के प्राणों पर संकट उपस्थित हो रहा है। यदि वह युद्ध में मारा गया, तो हम लोग कैसे जीवित रह सकेंगे ॥८०॥

सर्वथाऽहमनुप्राप्तः सुकृच्छ्रं त्वयि जीवति ।
श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयश्च पाण्डवः ॥८१॥
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रविष्टस्तात भारतीम् ।
सूर्योदये महाबाहुर्दिवसश्चाऽतिवर्तते ॥८२॥
तन्न जानामि वार्ष्णेय यदि जीवति वा न वा ।

हे वीर ! यह बड़े आश्चर्य की बात है, कि तुम्हारे जीवित रहने पर भी हम लोग इस चिन्ता में फंसे हुए हैं। हे तात ! मेघ समान वर्ण धारी, सुन्दर पाण्डु-पुत्र अर्जुन बड़ी शीघ्रता और विचित्रता के साथ युद्ध करने वाला है। वह आज कौरवों की सेना में फंस गया है। वह सूर्योदय से वहां गया है और अब दिन छुपने को है। हे वार्ष्णेय ! मुझे कुछ भी विदित नहीं है, कि वह जीवित है या नहीं है ॥८१-८२॥

कुरूणां चापितत्सैन्यं सागरप्रतिमं महत् ॥८३॥
एक एव च बीभत्सुः प्रविष्टस्तात भारतीम् ।
अविषह्यां महाबाहुः सुरैरपि महाहवे ॥८४॥
न हि मे वर्त्तते बुद्धिरद्य युद्धे कथञ्चन ।

हे तात ! कौरवों की विशाल सेना समुद्र की तरह लहर मार रही है और उसी भीषण सेना में अकेला महाबाहु अर्जुन घुस गया है। यह कौरवसेना रण में देवों से भी अजेय है। आज के युद्ध में मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं रह रही है ।।८३-८४।।

द्रोणोऽपि रभसो युद्धे मम पीडयते बलम् ।।८५।।
प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथाऽसौ चरति द्विजः ।

हे महाबाहो ! इधर द्रोणाचार्य भी बड़े वेग से मेरी सेना को पीड़ित कर रहा है, जो यह वीर ब्राह्मणकर रहा है, वह तुम प्रत्यक्ष ही देख रहे हो ।।८५।।

युगपच्च समेतानां कार्याणां त्वं विचक्षणः ।।८६।।
महार्थं लघुसंयुक्तं कर्तुमर्हसि मानद ।

हे मानद ! तुम इकट्ठे कार्यों के आ पड़ने पर उनका सुलझाना जानते हो और बड़े २ कार्यों को बड़ी सीधी तरह निबटा सकते हो।

तस्य मे सर्वकार्येषु कार्यमेतन्मतं महत् ।।८७।।
अर्जुनस्य परित्राणं कर्त्तव्यमिति संयुगे ।

इन सब कार्यों में अर्जुन की सहायता को पहुंचना मुझे आवश्यक कार्य प्रतीत होता है, क्योंकि इस रण में सब तरह अर्जुन की रक्षा करना ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है ।।८७।।

नाऽहं शोचामि दाशार्ह गोप्तारं जगतः पतिम् ।।८८।।
स हि शक्तो रणे तात त्रील्लोँकानपि सङ्गतान् ।

विजेतुं पुरुषव्याघ्रः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥८९॥
किं पुनर्धार्त्तराष्ट्रस्य बलमेतत्सुदुर्बलम् ।

हे तात ! जगत् के पति, सबके रक्षक, दशार्हदेशोत्पन्न श्रीकृष्ण के विषय में मुझे कुछ चिन्ता नहीं है, क्योंकि यदि तीनों लोक भी इकट्ठे होकर उनसे लड़ने आवे, तो भी वे पुरुषश्रेष्ठ, उन सबके जीतने में समर्थ हैं-यह मैं सत्य कहता हूं । उनके सन्मुख इस दुर्योधन की साधारण सी सेना की क्या गणना है ॥८८-८९॥

अर्जुनस्त्वेष वार्ष्णेय पीडितो बहुभिर्युधि ॥९०॥
प्रजह्यात्समरे प्राणांस्तस्माद्विन्दामि कश्मलम् ।

हे वार्ष्णेय ! इस घोर युद्ध में बहुत से योद्धाओं ने अर्जुन को घेर लिया है; कहीं उसके प्राणों पर न बन आवे-इससे मैं चिन्ता को प्राप्त हो रहा हूं ॥९०॥

तस्य त्वं पदवीं गच्छ गच्छेयुस्त्वादृशा यथा ॥९१॥
तादृशस्येदृशे काले मादृशेनाऽभिनोदितः ।

अब तुम उस दुर्लभ पद को प्राप्त करो-जिसको तुम जैसे वीर प्राप्त करते आये हैं। तुम भी गिने हुए वीरों में माने जाते हो । मुझ जैसा मनुष्य तुमको प्रेरणा कर रहा है ॥९१॥

रणे वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवाऽतिरथौ स्मृतौ ॥९२॥
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं च सात्वत विश्रुतः ।

हे सात्वतवंशश्रेष्ठ ! वृष्णिवीरों में रण में दो ही महारथी सर्वश्रेष्ठ गिने जाते हैं, एक तो महाबाहु प्रद्युम्न और दूसरे तुम प्रसिद्ध ही हो ॥९२॥

अस्त्रे नारायणसमः सङ्कर्षणसमो बले ॥६३॥
वीरतायां नरव्याघ्र धनञ्जयसमो ह्यसि ।

तुम अस्त्रविद्या में श्रीकृष्ण के तुल्य और बल में बलराम के समान महाबली हो। हे नरव्याघ्र! वीर कर्मों में तुम धनञ्जय (अर्जुन) के सदृश हो ॥६३॥

भीष्मद्रोणावतिक्रम्य सर्वयुद्धविशारदम् ॥६४॥
त्वामेव पुरुषव्याघ्रं लोके सन्तः प्रचक्षते ।

विद्वान् लोग, भीष्म और द्रोण को छोड़कर संसारमें तुमको ही सब युद्ध विद्या में विशारद और पुरुषप्रवीर मानते हैं ॥६४॥

नाऽशक्यं विद्यते लोके सात्यकेरिति माधव ॥६५॥
तत्त्वां यदभिवक्ष्यामि तत्कुरुष्व महाबल ।

हे माधव! मुझे यह निश्चय है, कि सात्यकि को लोक में कुछ भी अशक्य नहीं है। हे महाबली! अब मैं आप से जो कहता हूं, उसे पूरा करके दिखाओ ॥६५॥

सम्भावना हि लोकस्य मम पार्थस्य चोभयोः ॥६६॥
नाऽन्यथा तां महाबाहो सम्प्रकर्तुमिहाऽर्हसि ।

हे महाबाहो! मेरी और अर्जुन-हम दोनों की ही क्या? सारे संसार की धारणा है, कि जिस काम पर तुम लगा दिए गए; उसको तुम कभी विपरीत नहीं कर सकते हो ॥६६॥

परित्यज्य प्रियान्प्राणान्रणे चर विभीतवत् ॥६७॥
नहि शैनेय दाशार्हा रणे रक्षन्ति जीवितम् ।

हे शैनेय! अब तुम प्राणों का प्रेम छोड़कर, रण में निर्भय घूमो। दशार्ह वीर कभी अपने प्राणों के बचाने की चिन्ता नहीं करते ॥९७॥

अयुद्धमनवस्थानं संग्रामे च पलायनम् ॥९८॥
भीरूणामसतां मार्गो नैष दाशार्हसेवितः।

युद्ध नहीं करना, रण में नहीं डटना और भाग जाना, नीच और कायरों का कार्य है, वृष्णिवीरों का यह मार्ग नहीं है ॥९८॥

तवाऽर्जुनो गुरुस्तात धर्मात्मा शिनिपुङ्गव ॥९९॥
वासुदेवो गुरुश्चापि तव पार्थस्य धीमतः।

हे शिनिपुङ्गव! तात! धर्मात्मा अर्जुन तो तुम्हारे आचार्य हैं और भगवान् कृष्ण भी तुम्हारे और बुद्धिमान् अर्जुन के गुरु (पूज्य) हैं ॥९९॥

कारणद्वयमेतद्धि जानंस्त्वामहमब्रुवम् ॥१००॥
माऽवमंस्था वचो मह्यं गुरुस्तव गुरोर्ह्यहम्।

मैंने इन बातों को ध्यान में करके यह तुम से कहा है। अब तुम मेरे वचनों को निष्फल न बनाओ। मैं भी तुम्हारे गुरु (पूज्य) अर्जुन का पूज्य हूं ॥१००॥

वासुदेवमतं चैव मम चैवाऽर्जुनस्य च। ॥१०१॥
सत्यमेतन्मयोक्तं ते याहि यत्र धनञ्जयः।

हे वीर! मैंने जो तुमसे कहा है, उसे श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ही उत्तम समझेंगे; यह सत्य है। अब तुम वहीं पहुंचो-जहां पर धनञ्जय अर्जुन है ॥१०१॥

एतद्वचनमाज्ञाय मम सत्यपराक्रम ॥१०२॥
प्रविशैतद्बलं तात धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः।

हे सत्यपराक्रमी! तात! अब तुम मेरे इन वचनों का तत्वार्थ जान कर इस दुर्मति दुर्योधन की सेना में घुस जाओ ॥१०५॥

प्रविश्य च यथान्यायं सङ्गम्य च महारथैः।
यथार्हमात्मनः कर्म रणे सात्वत दर्शय ॥१०३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये
दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥

हे वार्ष्णेय! अब तुम रण की विधि के अनुसार रण में घुसो और महारथियों से युद्ध करते जाओ। हे सात्वत! जो कुछ तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप है, तुम अब वही रण में कर दिखाओ ॥१०३॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सात्यकिको रण में घुसने को प्रेरित करने का राजा युधिष्ठिर के वाक्य का
एक सौ दशवां अध्याय पूरा हुआ

# एक सौ ग्यारहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

प्रीतियुक्तं च हृद्यं च मधुराक्षरमेव च ।
कालयुक्तं च चित्रं च न्याय्यं यच्चापि भाषितुम् ॥१॥
धर्मराजस्य तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
सात्यकिर्भरतश्रेष्ठ प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥२॥

सञ्जय बोले—हे भरतश्रेष्ठ ! शिनिवंशश्रेष्ठ सात्यकि, प्रीतिसहित हृदय को उत्तम प्रतीत होने वाले, मधुर अक्षरों से व्याप्त, समयोचित, विचित्र, न्यायानुकूल, धर्मराज राजा युधिष्ठिर के वचन सुनकर उनसे बोले ॥१-२॥

श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेतन्मयाऽच्युत ।
न्याययुक्तं च चित्रं च फाल्गुनार्थे यशस्करम् ॥३॥
एवंविधे तथा काले मादृशं प्रेक्ष्य सम्मतम् ।
वक्तुमर्हसि राजेन्द्र यथा पार्थं तथैव माम् ॥४॥

हे अच्युत ! मैंने आपके न्यायानुकूल, विचित्र, अर्जुन के यश के करने वाले वचन सुने । हे राजेन्द्र ! इस तरह की परिस्थिति उत्पन्न होने पर मुझे योग्य समझ कर आपने जो आज्ञा दी, वह ठीक ही है । मैं भी आपके लिए वैसा ही आज्ञा देने योग्य हूं-जैसे अर्जुन हैं ॥३-४॥

न मे धनञ्जयस्याऽर्थे प्राणा रक्ष्याः कथञ्चन ।
त्वत्प्रयुक्तः पुनरहं किन्न कुर्यां महाहवे ॥५॥

हे राजन् ! मैं अर्जुन के निमित्त कभी प्राणों का मोह नहीं करूंगा। इस पर तो आपने आज्ञा दी है-आपकी आज्ञा से इस घोर रण में मैं क्या नहीं कर सकता हूं ॥५॥

लोकत्रये योधयेयं सदेवासुरमानुषम् ।
त्वत्प्रयुक्तो नरेन्द्रेह किमुतैतत्सुदुर्बलम् ॥६॥

हे नरेन्द्र ! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं तीनों लोकों के देव, असुर और मनुष्यों से युद्ध कर सकता हूं, फिर राजा दुर्योधन की दुर्बल सेना की तो मैं गणना ही क्या कर सकता हूं ॥६॥

सुयोधनबलं त्वद्य योधयिष्ये समन्ततः ।
विजेष्ये च रणे राजन्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥७॥

हे राजन् ! अब मैं सब ओर से राजा दुर्योधन की सेना से युद्ध करूंगा और उसे जीत कर आऊंगा-यह सत्य कह रहा हूं ॥७॥

कुशल्यहं कुशलिनं समासाद्य धनञ्जयम् ।
हते जयद्रथे राजन्पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम् ॥८॥

हे नृपते ! मैं बड़ी कुशलता के साथ कुशलता से युद्ध करते हुए अर्जुन के समीप पहुंच कर और वहां राजा जयद्रथ के मार लेने पर शीघ्र ही तुम्हारे निकट आऊंगा ॥८॥

अवश्यं तु मया सर्वं विज्ञाप्यस्त्वं नराधिप ।
वासुदेवस्य यद्वाक्यं फाल्गुनस्य च धीमतः ॥९॥

हे नराधिप ! यह सब कुछ है, परन्तु श्रीकृष्ण और बुद्धिमान् अर्जुन ने जो वाक्य मुझे कहे हैं-वह मैं तुमको सुना देना चाहता हूं ॥९॥

इदं त्वाभिपरीतोऽहमर्जुनेन पुनः पुनः ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य वासुदेवस्य शृण्वतः ॥१०॥
अद्य माधव राजानमप्रमत्तोऽनुपालय ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा यावद्धन्मि जयद्रथम् ॥११॥

हे भारत ! अर्जुन ने मुझे बड़े आग्रह के साथ श्रीकृष्ण और सारी सेना के सन्मुख बड़ी दृढ़ता-पूर्वक बार २ यह कहा है, कि हे सात्यकि ! तुम बड़ी सावधानी से तब तक धर्मराज की रक्षा करते रहना-जब तक मैं दृढ़ बुद्धि के साथ युद्ध करके राजा जयद्रथ का वध न कर दूं ॥१०-११॥

त्वयि चाऽहं महाबाहो प्रद्युम्ने वा महारथे ।
नृपं निक्षिप्य गच्छेयं निरपेक्षो जयद्रथम् ॥१२॥

हे महाबाहो ! तुम और महारथी प्रद्युम्न के भरोसे मैं राजा युधिष्ठिर को छोड़ सकता हूं । आज उन्हीं धर्मराज का तुम पर भार छोड़कर मैं निश्चित होकर राजा जयद्रथ के वध के निमित्त जाता हूं ॥१२॥

जानीषे हि रणे द्रोणं कुरुषु श्रेष्ठसम्मतम् ।
प्रतिज्ञातं हि तेनेदं पश्यमानेन वै प्रभो ॥१३॥

ग्रहणे धर्मराजस्य भारद्वाजोऽपि गृध्यति ।
शक्तश्चापि रणे द्रोणो निग्रहीतुं युधिष्ठिरम् ॥१४॥

हे शक्तिशाली ! तुम कौरवों की सेना में सर्वश्रेष्ठ आचार्य द्रोण के पराक्रम को जानते ही हो। सबके देखते २ उसने धर्मराज के पकड़ने की प्रतिज्ञा की है । वही भरद्वाजवंशश्रेष्ठ, द्रोण राजा युधिष्ठिर के पकड़ने की बड़ी इच्छा कर रहा है और वह धर्मराज को पकड़ भी सकता है ॥१३-१४॥

एवं त्वयि समाधाय धर्मराजं नरोत्तमम् ।
अहमद्य गमिष्यामि सैन्धवस्य वधाय हि ॥१५॥

इस परिस्थित में नरश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर का भार सौंप कर मैं सिन्धुराज का वध करने के निमित्त जाता हूं ॥१५॥

जयद्रथं च हत्वाऽहं द्रुतमेष्यामि माधव ।
धर्मराजं न चेद् द्रोणो निगृह्णीयाद्रणे बलात् ॥१६॥

हे माधव ! मैं राजा जयद्रथ का वध करके शीघ्र आता हूं । अब तुमको वही करना चाहिए, जिससे रण में द्रोणाचार्य धर्मराज को बल-पूर्वक न पकड़ ले ॥१६॥

निगृहीते नरश्रेष्ठे भारद्वाजेन माधव ।
सैन्धवस्य वधो न स्यान्ममाऽप्रीतिस्तथा भवेत् ॥१७॥

हे नरश्रेष्ठ ! माधव ! यदि आचार्य द्रोण ने किसी प्रकार धर्मराज को पकड़ लिया-तो मैं उदास हो जाऊंगा और इस तरह सिन्धुराज जयद्रथ का वध नहीं हो सकेगा ॥१७॥

एवं गते नरश्रेष्ठे पाण्डवे सत्यवादिनि।
अस्माकं गमनं व्यक्तं वनं प्रति भवेत्पुनः ॥१८॥

इस प्रकार यदि सत्यवादी पाण्डु-पुत्र धर्मराज पकड़े गए-तो हम सब कुछ छोड़कर वन को चल देंगे ॥१८॥

सोऽयं मम जयो व्यक्तं व्यर्थ एव भविष्यति।
यदि द्रोणो रणे क्रुद्धो निगृह्णीयाद्युधिष्ठिरम् ॥१६।

यदि द्रोण ने क्रोध करके इधर राजा युधिष्ठिर को पकड़ लिया-तो उधर सिन्धुराज पर मेरा विजय पा लेना भी बिल्कुल व्यर्थ हो जावेगा ॥१६॥

स त्वमद्य महाबाहो प्रियार्थं मम माधव।
जयार्थं च यशोर्थं च रक्ष राजानमाहवे ॥२०॥

हे महाबाहो ! माधव ! यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो और मेरी विजय या मेरे यश को बढ़ाने की तुम्हारी इच्छा है, तो तुम रण में राजा युधिष्ठिर की रक्षा करते रहना ॥२०॥

स भवान्मयि निक्षेपो निक्षिप्तः सव्यसाचिना।
भारद्वाजाद्भयं नित्यं मन्यमानेन वै प्रभो ॥२१॥

हे प्रभो ! द्रोणाचार्य के बल से शङ्कित होकर अर्जुन ने तुम्हारा भार मुझे सौंप रखा है-यह आप जानते ही है ॥२१॥

तस्याऽपि च महाबाहो नित्यं पश्यामि संयुगे।
नाऽन्यं हि प्रतियोद्धारं रौक्मिणेयादृते प्रभो ॥२२॥
मां चापि मन्यते युद्धे भारद्वाजस्य धीमतः।

हे महाबाहो! शक्तिशालिन्! मैं द्रोणाचार्य से युद्ध करने वाला इस समय कोई नहीं देख रहा हूं। रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न को छोड़कर मेरी दृष्टि में द्रोण से युद्ध करने वाला कोई अच्छा वीर नहीं है। अर्जुन, बुद्धिमान् द्रोण से युद्ध करने के योग्य मुझे भी मानते हैं ॥२२॥

सोऽहं सम्भावनां चैतामाचार्यवचनं च तत् ॥२३॥
पृष्ठतो नोत्सहे कर्तुं त्वां वा त्यक्तुं महीपते।

हे महीपते! मैं अर्जुन की इस सम्भावना और आचार्यभूत अर्जुन के वचन को विपरीत नहीं करना चाहता हूं और इसीलिए मैं तुम्हें छोड़ने को तय्यार नहीं हूं ॥२३॥

आचार्यो लघुहस्तत्वादभेद्यकवचावृतः ॥२४॥
उपलभ्य रणे क्रीडेद्यथा शकुनिना शिशुः।

द्रोणाचार्य ने दृढ़ कवच धारण कर रखा है। वे बड़े ही वेग से बाणपरम्परा को छोड़ते हैं। ये रण में विरोधी वीर के साथ इस तरह क्रीड़ा करते हैं, जैसे बालक, पक्षी को बांध कर खेलता है ॥२४॥

यदि कार्ष्णिर्धनुष्पाणिरिह स्यान्मकरध्वजः ॥२५॥
तस्मै त्वां विसृजेयं वै स त्वां रक्षेद्यथाऽर्जुनः।

यदि मकरध्वजधारी श्रीकृष्ण-पुत्र महाधनुर्धर प्रद्युम्न यहां होते-तो मैं तुम्हे, उनको सौंप जाता और वे अर्जुन की भांति तुम्हारी रक्षा करते रहते ॥२५॥

कुरु त्वमात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ॥२६॥
यः प्रतीयाद्रणे द्रोणं यावद्गच्छामि पाण्डवम् ।

तुम प्रथम मुझे अपनी रक्षा का उपाय बताओ, कि मेरे जाने पर तुम्हारी कौन रक्षा करता रहेगा, एवं जो समय पर संग्राम में द्रोणाचार्य से युद्ध कर सकेगा, इसके बाद मैं पाण्डु-पुत्र अर्जुन की सहायता के लिए अभी पहुंचता हूं ॥२६॥

मा च ते भयमद्याऽस्तु राजन्नर्जुनसम्भवम् ॥२७॥
न स जातु महाबाहुर्भारमुद्यम्य सीदति ।

हे राजन् ! तुमको अर्जुन की ओर का भय नहीं करना चाहिए । वह महाबाहु अपनी भुजाओं पर बड़े भारी भार को धारण करके भी पीड़ित नहीं होता है ॥२७॥

ये च सौवीरका योधास्तथा सैन्धवपौरवाः ॥२८॥
उदीच्या दाक्षिणात्याश्च ये चान्येऽपि महारथाः ।
ये च कर्णमुखा राजन्रथोदाराः प्रकीर्तिताः ॥२९॥
एतेऽर्जुनस्य क्रुद्धस्य कलां नाऽर्हन्ति षोडशीम् ।

हे राजन् ! राजा दुर्योधन की सेना के सौवीर, सैन्धव, पौरव, उदीच्य, दाक्षिणात्य (उत्तर दक्षिण दिशाओं के योद्धा) आदि महारथी तथा सर्वश्रेष्ठ योद्धा कर्ण आदि भी क्रोध में भरे हुए अर्जुन की सोलहवीं कला को भी नहीं पा सकते हैं ॥२८-२९॥

उद्युक्ता पृथिवी सर्वा ससुरासुरमानुषा ॥२०॥
सराक्षसगणा राजन्सकिन्नरमहोरगा ।
जङ्गमाः स्थावराः सर्वे नाऽलं पार्थस्य संयुगे ॥२१॥

हे राजन् ! यदि सुर, असुर, मनुष्य, राक्षस, किन्नर, महोरग, जङ्गम स्थावर सारी सृष्टि भी उठ खड़ी हो-तो भी वह रणमें अर्जुन के जीतने में समर्थ नहीं हो सकती है। हे महाराज ! यह जानकर तुम अर्जुन की ओर का भय न करो ॥२०-२१॥

एवं ज्ञात्वा महाराज व्येतु ते भीर्धनञ्जये ।
यत्र वीरौ महेष्वासौ कृष्णौ सत्यपराक्रमौ ॥२२॥
न तत्र कर्मणो व्यापत्कथश्चिदपि विद्यते ।

हे राजन् ! जिस ओर महाधनुर्धर सत्यपराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, वहां पर किसी प्रकार भी काम की हानि नहीं हो सकती है ॥२२॥

दैवं कृतास्त्रतां योगममर्षमपि चाऽऽहवे ॥२३॥
कृतज्ञतां दयां चैव भ्रातुस्त्वमनुचिन्तय ।

हे भरतश्रेष्ठ ! तुम अपने भाई अर्जुन की दिव्यशक्ति, अस्त्र-कुशलता, युद्ध-प्रकार, आवेश, कृतज्ञता, दया आदि गुणों का तो तनिक विचार करो ॥२३॥

मयि चाप्यपयाते वै गच्छमानेऽर्जुनं प्रति ॥२४॥
द्रोणे चित्रास्त्रतां संख्ये राजंस्त्वमनुचिन्तय ।

हे राजन्! जब मैं यहां से अर्जुन की सहायता में चल दूंगा-तो रण में द्रोण किस प्रकार हाथ दिखावेगा; जरा इस बात पर भी विचार कर लो ॥३४॥

आचार्यो हि भृशं राजन्निग्रहे तव गृध्यति ॥३५॥
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्सत्यां कर्तुं च भारत।

हे राजन्! आचार्य तो सब तरह तुम्हारे पकड़ने की चिन्ता में हैं। हे भारत! उसे तो अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण है; वह उसे पूरा करना चाहता है ॥३५॥

कुरुष्वाऽद्याऽऽत्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ॥
यस्याऽहं प्रत्ययात्पार्थ गच्छेयं फाल्गुनं प्रति।

हे कुन्ती-पुत्र! अब तुम अपनी रक्षा का प्रकार करो, कि तुम्हारा रक्षक कौन होगा। जिसके विश्वास पर मैं तुमको छोड़कर अर्जुन के समीप पहुंचू ॥३६॥

नह्यहं त्वां महाराज अनिक्षिप्य महाहवे ॥३७॥
क्वचिद्यास्यामि कौरव्य सत्यमेतद्ब्रवीमि ते।

हे महाराज! मैं तुमको इस घोर संग्राम में अकेला छोड़कर नहीं जा सकता—यह मैं सच कह रहा हूं ॥३७॥

एतद्विचार्य बहुशो बुद्ध्या बुद्धिमतां वर ॥३८॥
दृष्ट्वा श्रेयः परं बुद्ध्या ततो राजन्प्रशाधि माम् ॥

हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! तुम अपनी बुद्धि से यह सब कुछ सोच लो। हे राजन् ! अपनी सूक्ष्मबुद्धि से जो बात आपको हितकारी प्रतीत हो-वही मुझे बताइये ॥३८-३९॥

युधिष्ठिर उवाच—

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव ।
न तु मे शुद्ध्यते भावः श्वेताश्वं प्रति मारिष ॥४०॥

राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे माधव ! आप जैसे कह रहे हैं, वही बात है। हे आर्य ! तो भी मेरे चित्त में श्वेत अश्वधारी अर्जुन के प्रति आशङ्का हो रही है ॥४०॥

करिष्ये परमं यत्नमात्मनो रक्षणे ह्यहम् ।
गच्छ त्वं समनुज्ञातो यत्र यातो धनञ्जयः ॥४१॥

मैं अपनी रक्षा के लिये स्वयं प्रयत्न करूंगा। तुमको तो मैं आज्ञा देता हूं, कि तुम वहीं जाओ-जहां पर अर्जुन है ॥४१॥

आत्मसंरक्षणं संख्ये गमनं चाऽर्जुनं प्रति ।
विचार्यैतत्स्वयं बुद्ध्या गमनं तत्र रोचये ॥४२॥

मैं इस युद्ध में अपनी रक्षा और अर्जुन की सहायता में तुम्हारे गमन पर विचार कर चुका हूं। मैंने अपनी बुद्धि से सोच लिया है-कि अब तुम को प्रथम अर्जुन की सहायता में ही पहुंचना चाहिए ॥४२॥

स त्वमातिष्ठ यानाय यत्र यातो धनञ्जयः ।
ममापि रक्षणं भीमः करिष्यति महाबलः ॥४३॥

अब तुम वहीं पर चढ़ाई करो-जहां पर धनञ्जय अर्जुन है। मेरी रक्षा तो महाबली भीमसेन करता रहेगा ॥४३॥

पार्षतश्च ससोदर्यः पार्थिवाश्च महाबलाः।
द्रौपदेयाश्च मां तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ॥४४॥

हे तात! अपने भाइयों के साथ पर्षत-कुमार धृष्टद्युम्न अन्य महाबली राजा तथा सारे द्रौपदी-पुत्र मेरी रक्षा में तत्पर हैं। ये मेरी रक्षा कर लेंगे-इसमें सन्देह नहीं है ॥४४॥

केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः।
विराटो द्रुपदश्चैव शिखण्डी च महारथः ॥४५॥

धृष्टकेतुश्च बलवान्कुन्तिभोजश्च मातुलः।
नकुलः सहदेवश्च पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ॥४६॥
एते समाहितास्तात रक्षिष्यन्ति न संशयः।

हे तात! पाचों भाई केकय राजकुमार, राक्षसराज घटोत्कच, विराट, द्रुपद, महारथी शिखण्डी, बलवान् धृष्टकेतु, मातुल कुन्तिभोज, नकुल, सहदेव, पञ्चाल और सृञ्जयवीर, बड़ी सावधानी से मेरी रक्षा करते रहेंगे-इस में संशय नहीं है ॥४५-४६॥

न द्रोणः सह सैन्येन कृतवर्मा च संयुगे ॥४७॥
समासादयितुं शक्तो न च मां धर्षयिष्यति।

द्रोण की तथा सारी सेना लेकर कृतवर्मा की रण में मेरे ऊपर आक्रमण करने की शक्ति नहीं है और न वे मुझे पकड़ ही सकते हैं ॥४७॥

धृष्टद्युम्नश्च समरे द्रोणं क्रुद्धं परन्तपः ॥४८॥
वारयिष्यति विक्रम्य वेलेव मकरालयम् ।

परन्तप धृष्टद्युम्न इतने वीर हैं, जो क्रोधपूर्ण द्रोणाचार्य आगे बढ़े भी, तो समुद्र को वेला की तरह पराक्रम दिखाकर द्रोण को वे वहीं रोक देंगे ॥४८॥

यत्र स्थास्यति संग्रामे पार्षतः परवीरहा ॥४९॥
द्रोणो न सैन्यं बलवत्क्रामेत्तत्र कथञ्चन ।

शत्रुवीरनाशक पर्षतवंशश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न जिस ओर रण में खड़े होंगे-उस ओर द्रोणाचार्य की बलवान् सेना भी दृष्टि उठा कर भी नहीं देख सकती है ॥४९॥

एष द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात् ॥५०॥
कवची सशरी खड्गी धन्वी च वरभूषणः ।

यह तो द्रोण के विनाश के लिए ही अग्नि से उत्पन्न हुआ है । उस समय इसके कवच, शर, खड्ग, धनुष और उत्तम २ आभूषण साथ ही उत्पन्न हुए थे ॥५०॥

विश्रब्धं गच्छ शैनेय मा कार्षीर्मयि सम्भ्रमम् ।
धृष्टद्युम्नो रणे क्रुद्धं द्रोणमावारयिष्यति ॥५५१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरसात्यकिवाक्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥

हे शैनेय ! तुम निःशङ्क होकर जाओ-कुछ शंका न करो। रण में कोप करके आक्रमण करते हुए द्रोणाचार्य को धृष्टद्युम्न अच्छी तरह रोक लेंगे ॥५१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में
राजा युधिष्ठिर और सात्यकि के वार्तालाप का
एक सौ ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ

---

# एक सौ बारहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

धर्मराजस्य तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
स पार्थाद्भयमाशंसन्परित्यागान्महीपतेः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! शिनिवंशश्रेष्ठ, सात्यकि ने धर्मराज के ये वचन सुने, परन्तु वह धर्मराज को छोड़ कर जाने में अर्जुन से भय मानते थे ॥१॥

अपवादं ह्यात्मनश्च लोकात्पश्यन्विशेषतः ।
ते मां भीतमिति ब्रूयुरायान्तं फाल्गुनं प्रति ॥२॥

दूसरी ओर ये लोगों में अपने अपवाद उठ जाने की आशङ्का कर रहे थे कि यदि अर्जुन की ओर गमन नहीं किया-तो लोग मुझे वहां जाने से डरा हुआ समझेंगे ॥२॥

निश्चित्य बहुधैवं स सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।

धर्मराजमिदं वाक्यमब्रवीत्पुरुषर्षभः ॥३॥

अनेक भांति से युद्धदुर्मद, पुरुषश्रेष्ठ सात्यकि ने विचार किया और फिर वे अन्त में धर्मराज से ये वचन बोले ॥३॥

कृतां चेन्मन्यसे रक्षां स्वस्ति तेऽस्तु विशाम्पते ।

अनुयास्यामि बीभत्सुं करिष्ये वचनं तव ॥४॥

हे विशाम्पते ! यदि तुम अपनी रक्षा पर विचार कर चुके और उसका प्रबन्ध कर लिया-तो तुम्हारा कल्याण हो-मैं तुम्हारी आज्ञानुसार अभी अर्जुन के समीप पहुंचता हूं ॥४॥

नहि मे पाण्डवात्कश्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।

यो मे प्रियतरो राजन्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥५॥

हे राजन् ! मेरा पाण्डु-पुत्र अर्जुन से अधिक कोई त्रिलोकी में प्रिय नहीं है-यह मैं सत्य कहता हूं ॥५॥

तस्याऽहं पदवीं यास्ये सन्देशात्तव मानद ।

त्वत्कृते न च मे किञ्चिदकर्त्तव्यं कथञ्चन ॥६॥

हे मानद ! मैं आपकी आज्ञा को मान कर उस स्थान पर अभी पहुंचता हूं-जहां पर अर्जुन युद्ध कर रहा है। आपकी आज्ञा के अतिरिक्त मुझे अन्य कोई कार्य कर्तव्य नहीं है ॥६॥

यथा हि मे गुरोर्वाक्यं विशिष्टं द्विपदां वर ।

तथा तवापि वचनं विशिष्टतरमेव मे ॥७॥

हे मनुजश्रेष्ठ ! जैसे मुझे अपने आचार्य के वचन मान्य हैं, उनसे भी अधिक मैं आप के वचनों के मानने को उद्यत हूं ॥७॥

प्रिये हि तव वर्तेते भ्रातरौ कृष्णपाण्डवौ ।
तयोः प्रिये स्थितं चैव विद्धि मां राजपुङ्गव ॥८॥

हे राजपुङ्गव ! तुमको अपने भ्राता श्रीकृष्ण और अर्जुन बड़े ही प्रिय हैं, उनके प्रिय कार्य में ही तुम मुझे तत्पर समझो ॥८॥

तवाऽऽज्ञां शिरसा गृह्य पाण्डवार्थमहं प्रभो ।
भित्त्वेदं दुर्भिदं सैन्यं प्रयास्ये नरपुङ्गव ॥९॥

हे शक्तिशाली ! नरपुङ्गव अर्जुन के निमित्त तुम्हारी आज्ञा को शिर पर रख के इस कौरवसेना को चीरता हुआ अभी अर्जुन के पास पहुंचता हूं ॥९॥

द्रोणानीकं विशाम्येष क्रुद्धो झष इवाऽर्णवम् ।
तत्र यास्यामि यत्राऽसौ राजन्राजा जयद्रथः ॥१०॥

हे राजन् ! क्रुद्ध जलजन्तु जैसे समुद्र में घुस जाता है, उसी तरह मैं भी द्रोणाचार्य की सेना में घुस जाऊँगा और क्षण भर में वहां पहुंच जाऊंगा-जहां पर राजा जयद्रथ स्थित है ॥१०॥

यत्र सेनां समाश्रित्य भीतस्तिष्ठति पाण्डवात् ।
गुप्तो रथवरश्रेष्ठैर्द्रौणिकर्णकृपादिभिः ॥११॥
इतस्त्रियोजनं मन्ये तमध्वानं विशाम्पते ।
यत्र तिष्ठति पार्थोऽसौ जयद्रथवधोद्यतः ॥१२॥

हे विशाम्पते ! अश्वत्थामा, कर्ण, और कृपाचार्य आदि महारथी वीरों से सुरक्षित सिन्धुराज, अर्जुन से डर कर जहां पर अपनी सेना के आश्रय में छुपा हुआ स्थित है, उस स्थान को मैं यहां से तीन योजन समझता हूँ। वहीं पर राजा जयद्रथ के वध के निमित्त अर्जुन पहुंच चुके हैं ॥१२॥

त्रियोजनगतस्याऽपि तस्य यास्याम्यहं पदम् ।
आसैन्धववधाद्राजन्सुदृढेनाऽन्तरात्मना ॥१३॥

हे राजन् ! मैं तीन योजन की दूरी पर भी अभी पहुँचता हूँ और जब तक सिन्धुराज का वध होगा-बड़ी दृढ़ता से युद्ध करता रहूँगा ॥१३॥

अनादिष्टस्तु गुरुणा को नु युध्येत मानवः ।
आदिष्टस्तु यथा राजन्को न युध्येत मादृशः ॥१४॥
अभिजानामि तं देशं यत्र यास्याम्यहं प्रभो ।

हे राजन् ! जब तक स्वामी की आज्ञा न हो-तब तक कैसे युद्ध किया जा सकता है और पूज्य की आज्ञा हो गई-तो फिर मुझ जैसा मनुष्य कैसे आना-कानी कर सकता है। हे प्रभो ! मुझे जहां पर पहुँचना है, उस प्रदेश को मैं अच्छी तरह जानता हूँ-वहां पहुंच जाऊंगा ॥१४॥

हलशक्तिगदाप्रासचर्मखड्गर्ष्टितोमरम् ॥१५॥
इष्वस्त्रवरसम्बाधं क्षोभयिष्ये बलार्णवम् ।

हल, शक्ति, गदा, प्रास, चर्म, खड्ग, ऋष्टि, तोमर, बाण तथा अन्य उत्तम २ अस्त्रों रूपी जलजन्तुओं से व्याप्त, इस कौरवों के सेनारूपी समुद्र को मैं अभी मथ डालता हूं ॥१५॥

यदेतत्कुञ्जरानीकं साहस्रमनुपश्यसि ॥१६॥
कुलमाञ्जनकं नाम यत्रैते वीर्यशालिनः ।
आस्थिता बहुभिर्म्लेच्छैर्युद्धशौण्डैः प्रहारिभिः ॥१७॥
नागा मेघनिभा राजन्क्षरन्त इव तोयदाः ।

हे राजन् ! जो तुमको यह सहस्र हाथियों की सेना दिखाई दे रही है, यह अञ्जन नामक दिग्गज के कुल की है । ये बड़े ही पराक्रमी हाथी हैं। इन पर बहुत से प्रहार करनेमें कुशल, युद्धदुर्मद, म्लेछ सवार हैं। हे राजन् ! ये जल धारा छोड़ने वाले मेघों के सदृश मद बरसा रहे हैं॥ १६-१७॥

नैते जातु निवर्त्तेरन्प्रेषिता हस्तिसादिभिः ॥१८॥
अन्यत्र हि वधादेषां नास्ति राजन्पराजयः ।

हे राजन् ! हाथियों के सवारों (हथवानों) से आगे बढ़ाये हुए ये हाथी, कभी पीछे नहीं लौटते। इनका पराजय इनके वध के विना सम्भव नहीं है ॥१८॥

अथ यान्रथिनो राजन्सहस्रमनुपश्यसि ॥१९॥
एते रुक्मरथा नाम राजपुत्रा महारथाः ।

हे राजन् ! जो तुम सामने ही सहस्रों रथी देखते हो-ये रुक्मरथ नामक महारथी राजपुत्र हैं ॥१९॥

रथेष्वस्त्रेषु निपुणा नागेषु च विशाम्पते ॥२०॥
धनुर्वेदे गताः पारं मुष्टियुद्धे च कोविदाः ।
गदायुद्धविशेषज्ञा नियुद्धकुशलास्तथा ॥२१॥
खड्गप्रहरणे युक्ताः सम्पाते चाऽसिचर्मणोः ।
शूराश्च कृतविद्याश्च स्पर्धन्ते च परस्परम् ॥२२॥

हे विशाम्पते ! ये राजपुत्र, रथके युद्ध में दुर्मद, अस्त्र चलानेमें कुशल, हाथियों के चलाने में निपुण, धनुर्वेद में पारगामी और मुष्टियुद्ध में कोविद, गदायुद्ध के विशेष ज्ञाता, मल्लयुद्ध के दाव पेच जाननेवाले, खड्ग चलाने में योग्य, ढाल तलवार के पैंतरों के दिखानेवाले, शूरवीर, युद्ध विद्या में कृतार्थ हैं। ये एक दूसरे से आगे बढ़ने की बड़ी चेष्टा करते हैं ॥२०-२२॥

नित्यं हि समरे राजन्विजिगीषन्ति मानवान् ।
कर्णेन विहिता राजन्दुःशासनमनुव्रताः ॥२३॥

हे राजन् ! इन्होंने बहुत से युद्ध कर रखे हैं, जिनमें विजय प्राप्त की है। राजा कर्ण ने इनको यहां लगाया है-ये दुःशासन के शासन में चल रहे हैं ॥२३॥

एतांस्तु वासुदेवोऽपि रथोदारान्प्रशंसति ।
सततं प्रियकामाश्च कर्णस्यैते वशे स्थिताः ॥२४॥

इन महारथियों की श्रीकृष्ण भी प्रशंसा करते रहते हैं । ये सदा कर्ण के प्रिय में रत और उसकी आज्ञा में चलने वाले हैं ।

तस्यैव वचनाद्राजन्निवृत्ताः श्वेतवाहनात् ।
तेन क्लान्ता न च श्रान्ता दृढावरणकार्मुकाः ॥२५॥

हे राजन्! कर्ण की आज्ञा से ही ये अब श्वेतवाहनधारी अर्जुन को छोड़कर इधर आये हैं। यद्यपि अर्जुन ने इन्हें बड़ा बेंधा, तो भी दृढ़ कवच और धनुषधारी होने से इनको कोई थकान नहीं होने पाई है ॥२५॥

मदर्थे धिष्ठिता नूनं धार्तराष्ट्रस्य शासनात्।
एतान्प्रमथ्य संग्रामे प्रियार्थं तव कौरव ॥२६॥
प्रयास्यामि ततः पश्चात्पदवीं सव्यसाचिनः।

राजा दुर्योधन ने आज्ञा दी है, कि यदि मैं आगे बढ़ने लगूं-तो ये मुझ से युद्ध करें। हे भारत! मैं तुम्हारे प्रिय करने के निमित्त संग्राम में इनका प्रमन्थन करूंगा और फिर उसके अनन्तर सव्यसाची अर्जुन के प्रदेश पर पहुंच जाऊंगा ॥२६॥

यांस्त्वेतानपरान्राजन्नागान्सप्तशतानिमान् ॥२७॥
प्रेक्षसे वर्मसञ्छन्नान्किरातैः समधिष्ठितान्।
किरातराजो यान्प्रादाद्द्विरदान्सव्यसाचिनः ॥२८॥
स्वलंकृतांस्तदा प्रेष्यानिच्छञ्जीवितमात्मनः।
आसन्नेते पुरा राजंस्तव कर्मकरा दृढम् ॥२९॥
त्वामेवाऽद्य युयुत्सन्ते पश्य कालस्य पर्ययम्।

हे राजन्! ये जो अन्य सात सौ हाथी हैं, और कवचों से आच्छादित हैं, इन पर किरात वीर सवार हैं। किरातराज ने इन हाथियों को अलंकृत करके अर्जुन के दासभूत बना दिया था। इसके बदले में किरातराज ने अर्जुन से प्राणरक्षा की भिक्षा

मांगी। हे राजन्! हाथी, प्रथम तुम्हारे पक्ष में रह कर बड़ा दृढ़ कार्य करते थे, आज ये ही तुम से ही युद्ध करने को उद्यत हैं-यह काल की विपरीत विचित्र गति देखो ॥२७-२९॥

एषामेते महामात्राः किराता युद्धदुर्मदाः ॥३०॥
हस्तिशिक्षाविदश्चैव सर्वे चैवाऽग्नियोनयः।
एते विनिर्जिताः संख्ये संग्रामे सव्यसाचिना ॥३१॥
मदर्थमद्य संयत्ता दुर्योधनवशानुगाः।

जो इन हाथियों के युद्धदुर्मद किरात महावत हैं, ये सारे गजों की शिक्षा में चतुर हैं और सारे ही अग्नि से उत्पन्न हैं। इन सबको भीषण रण में अर्जुन ने जीत रखा है-अब ये सारे सावधान होकर मुझ से युद्ध करने की प्रतीक्षा में खड़े हैं, जो राजा दुर्योधन की आज्ञा के संकेत पर एक दम उद्यत हो जाते हैं।

एतान्हत्वा शरै राजन्किरातान्युद्धदुर्मदान् ॥३२॥
सैन्धवस्य वधे यत्तमनुयास्यामि पाण्डवम्।

हे राजन्! इन युद्धदुर्मद किरातों को अपने बाणों से मार कर सिन्धुराज के वध में प्रयत्नशील हुआ मैं शीघ्र ही अर्जुन के पास पहुंच जाऊंगा ॥३२॥

ये त्वेते सुमहानागा अञ्जनस्य कुलोद्भवाः ॥३३॥
कर्कशाश्च विनीताश्च प्रभिन्नकरटामुखाः।

ये जो अञ्जन नामक दिग्गज के वंशज हाथी हैं, ये बड़े कर्कश, और शिक्षित हैं। इनके कपोलों से सदा मद टपकता रहता है ॥३३

जाम्बूनदमयैः सर्वैर्वर्मभिः सुविभूषिताः ॥३४॥
लब्धलक्षा रणे राजन्नैरावणसमा युधि ।

हे राजन ! ये सारे हाथी सुवर्ण के कवचों से विभूषित और इन्द्र के ऐरावत हाथी के तुल्य अपने लक्ष्य को युद्ध में प्राप्त कर लेने वाले हैं ॥३४॥

उत्तरात्पर्वतादेते तीक्ष्णैर्दस्युभिरास्थिताः ॥३५॥
कर्कशैः प्रवरैर्योधैः कार्ष्णायसतनुच्छदैः ।

इन हाथियों पर बहुत से उत्तर पर्वत के दस्यु ( म्लेछ ) सवार हैं। ये म्लेच्छ, बड़े कर्कश, महावीर और दृढ़ लोह का कवच पहने हुए हैं ॥३५॥

सन्ति गोयोनयश्चाऽत्र सन्ति वानरयोनयः ॥३६॥
अनेकयोनयश्चाऽन्ये तथा मानुषयोनयः ।

इनमें बहुत से बैल और वानरों के समान आकारधारी तथा बहुत से भिन्न २ मुनियों से उत्पन्न हैं। बहुतों के आकार मनुष्यों के सदृश हैं ॥३६॥

अनीकं समवेतानां धूम्रवर्णमुदीर्यते ॥३७॥
म्लेच्छानां पापकर्तृणां हिमदुर्गनिवासिनाम् ।

इन हिमालय की घाटियों में उत्पन्न पापी म्लेच्छों की इकट्ठी सेना धूम्रवर्ण के आकार में उठी चली आती है ॥३७॥

एतद्दुर्योधनो लब्ध्वा समग्रं राजमण्डलम् ॥३८॥
कृपं च सौमदत्तिं च द्रोणं च रथिनां वरम् ।

सिन्धुराजं तथा कर्णमवमन्यत पाण्डवान् ॥३९॥
कृतार्थमथ चाऽऽत्मानं मन्यते कालचोदितः ।

इस सारे राजसमूह तथा कृपाचार्य, सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा, रथिश्रेष्ठ द्रोण, सिन्धुराज और कर्ण को पाकर ही राजा दुर्योधन ने पाण्डवों का अपमान किया है और काल से प्रेरित होकर वह अपने को कृतार्थ समझ रहा है ॥३८-३९॥

ते तु सर्वेऽद्य सम्प्राप्ता मम नाराचगोचरम् ॥४०॥
न विमोक्ष्यन्ति कौन्तेय यद्यपि स्युर्मनोजवाः ।

हे कौन्तेय ! आज ये सारे मेरे बाण के सन्मुख आ गए हैं । यद्यपि ये मन के समान वेग वाले हैं-तो भी आज मेरे सामने से नहीं निकल सकेंगे ॥४०॥

तेन सम्भाविता नित्यं परवीर्योपजीविना ॥४१॥
विनाशमुपयास्यन्ति मच्छरौघनिपीडिताः ।

दूसरे के पराक्रम पर भरोसा करने वाला राजा दुर्योधन इनका बड़ा सत्कार करता है-परन्तु आज मेरे बाणों के समूह से पीड़ित होकर ये नष्ट हो जावेंगे ॥४१॥

ये त्वेते रथिनो राजन्दृश्यन्ते काञ्चनध्वजाः ॥४२॥
एते दुर्वारणा नाम काम्बोजा यदि ते श्रुताः ।

हे राजन् ! ये जो सुवर्ण की ध्वजा वाले, महारथी दिखाई देते हैं, ये दुर्वारण नामक कम्बोज (काबुल) देश के वीर हैं-जो तुमने सुन रखे हैं ॥४२॥

शूराश्च कृतविद्याश्च धनुर्वेदे च निष्ठिताः ४३॥
संहताश्च भृशं ह्येते अन्योन्यस्य हितैषिणः ।

ये शूरवीर, युद्ध विद्या में कुशल धनुर्वेद के पारगामी, इकट्ठे ही युद्ध करते हैं-और एक दूसरे की बड़ी सहायता में तत्पर रहते हैं ॥४३॥

अक्षौहिण्यश्च संरब्धा धार्त्तराष्ट्रस्य भारत ॥४४॥
यत्ता मदर्थे तिष्ठन्ति कुरुवीराभिरक्षिताः ।

हे भारत ! धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन की ग्यारह अक्षौहिणी सेना बड़े आवेश में भरी हुई है। वह कुरुवीरों के सेनापतित्व में सावधानी से स्थित है और मुझ से युद्ध करने को समुद्यत हैं ॥४४

अप्रमत्ता महाराज मामेव प्रत्युपस्थिताः ॥४५॥
तानहं प्रमथिष्यामि तृणानीव हुताशनः ।

हे महाराज ! यह बड़ी चौकन्नी हुई कुरुसेना मेरी ही ओर बढ़ी चली आती है-उसे मैं तृणों को अग्नि की भांति मथ डालूंगा।

तस्मात्सर्वानुपासङ्गान्सर्वोपकरणानि च ॥४६॥
रथे कुर्वन्तु मे राजन्यथावद्रथकल्पकाः ।

हे राजन् ! अब रथके सजाने वाले सारे वीर तूणीर आदि रण के साधन मेरे रथ में ठीक २ सजा दें ॥६॥

अस्मिंस्तु किल सम्मर्दे ग्राह्यं विविधमायुधम् ॥४७॥
यथोपदिष्टमाचार्यैः कार्यः पञ्चगुणो रथः ।

इस घोर संग्राम में उन सभी अनेक अस्त्रों का प्रयोग करना है, जिन २ अस्त्रों का आचार्यों ने प्रयोग सिखाया है। इस प्रकार पचगुने अस्त्रों से रथ को सम्पन्न करो ॥४७॥

काम्बोजैर्हि समेष्यामि तीक्ष्णैराशीविषोपमैः ॥४८॥
नानाशस्त्रसमावापैर्विविधायुधयोधिभिः।
किरातैश्च समेष्यामि विषकल्पैः प्रहारिभिः ॥४९॥

आशीविष सर्प के समान तीक्ष्ण बाणों वाले काम्बोजवीरों से मैं अभी भिड़ता हूं। अनेक शस्त्रों के समूह धारी, अनेक शस्त्रों से युद्ध करने में कुशल, विष के तुल्य तीक्ष्ण प्रहारक किरातों से भी मुझे अभी युद्ध करना है ॥४८-४९॥

लालितैः सततं राज्ञा दुर्योधनहितैषिभिः
शकैश्चापि समेष्यामि शक्रतुल्यपराक्रमैः ॥५०॥

राजा दुर्योधन से सम्मानित होने से उसके हित में अत्यन्त तत्पर, इन्द्र के तुल्य पराक्रमी शक वीरों से भी मुझे आज लड़ लेना है ॥५०॥

अग्निकल्पैर्दुराधर्षैः प्रदीप्तैरिव पावकैः।
तथाऽन्यैर्विविधैर्योधैः कालकल्पैर्दुरासदैः ॥५१॥
समेष्यामि रणे राजन्बहुभिर्युद्धदुर्मदैः।

हे राजन्! जो अग्नि के समान दुराधर्ष और अग्नि के तुल्य ही प्रदीप्त तथा इसी प्रकारके काल के समान दुरासद, अनेक अन्य युद्धदुर्मद योद्धाओं से आज मेरा युद्ध होगा ॥५१॥

तस्माद्वै वाजिनो मुख्या विश्रुताः शुभलक्षणाः ॥५२॥
उपावृत्ताश्च पीताश्च पुनर्युज्यन्तु मे रथे।

अब तुम मेरे रथ में उत्तम २ लक्षणों से सम्पन्न, प्रसिद्ध अश्वों को जल पिला और घुमा कर फिर रथ में जोड़ दो ॥५२॥

सञ्जय उवाच—

तस्य सर्वानुपासङ्गान्सर्वोपकरणानि च ॥५३॥
रथे चाऽस्थापयद्राजा शस्त्राणि विविधानि च।

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! सात्यकि के इतना कहने पर राजा युधिष्ठिर ने उसके रथ में तूणीर आदि रण की सारी सामग्री तथा अनेक शस्त्र रथ में लगवा दिए ॥५३॥

ततस्तान्सर्वतोयुक्तान्सदश्वांश्चतुरो जनाः ॥५४॥
रसवत्पाययामासुः पानं मदसमीरणम्।

इन सब तरह से योग्य, उत्तम २ अश्वों को चतुर अश्व सेवकों ने मदजनक रसीला पानी पिलाया ॥५४॥

पीतोपवृत्तान्स्नातांश्च जग्धान्नान्समलंकृतान् ॥५५॥
विनीतशल्यांस्तुरगांश्चतुरो हेममालिनः।
तान्युक्तान्रुक्मवर्णाभान्विनीताञ्शीघ्रगामिनः ॥५६॥
संहृष्टमनसो व्यग्रान्विधिवत्कल्पितान्रथे।

सात्यकि के अश्वों को रस युक्त पान कराके उनको टहलवाया। जब अश्वों को स्नान करा के अन्न (दाना) खिला दिया और भूषण पहना दिए तो उनको विधि-पूर्वक रथमें जोड़ दिया गया। ये

सुवर्ण की माला पहने हुए चारों अश्व, सुवर्ण की कान्ति से देदीप्यमान हो रहे थे। ये अश्व, बड़े शिक्षित और शीघ्रगामी थे, जिनके चित्त बड़े प्रफुल्लित थे ॥५५-५६॥

महाध्वजेन सिंहेन हेमकेसरमालिना ॥५७॥
संवृते केतकैर्हैमैर्मणिविद्रुमचित्रितैः ।
पाण्डुराभ्रप्रकाशाभिः पताकाभिरलंकृते ॥५८॥
हेमदण्डोच्छ्रितच्छत्रे बहुशस्त्रपरिच्छदे ।
योजयामास विधिवद्धेमभाण्डविभूषितान् ॥५९॥

सुवर्ण के समान चमकीली ग्रीवा के बालों की माला वाले, सिंह के चिन्ह से अङ्कित महाध्वजा से सुशोभित, मणि और विद्रुम (मूंगों) से चित्रित, सुवर्ण की शलाकाओं से समन्वित, श्वेत मेघ के तुल्य चमकीली पताकाओं से विभूषित, सुवर्ण के दण्ड से उज्ज्वल छत्रवाले, बहुत शस्त्रों से व्याप्त, रथ में सुवर्ण के आभूषणों से सुशोभित अश्वों को विधिपूर्वक रथ में जोड़ दिया।

दारुकस्याऽनुजो भ्राता सूतस्तस्य प्रियः सखा ।
न्यवेदयद्रथं युक्तं वासवस्येव मातलिः ॥६०॥

श्रीकृष्ण के सारथि दारुक का छोटा भाई इस रथ का सारथि था, जो इसका प्रिय सखा था। इन्द्र के मातलि सारथि के सदृश इस सारथि ने सात्यकि के सन्मुख रथ लाकर खड़ा कर दिया ॥६०॥

ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा कृतकौतुकमङ्गलः ।
स्नातकानां सहस्रस्य स्वर्णनिष्कानथो ददौ ॥६१॥

सात्यकि ने शीघ्र स्नान करके मङ्गल चिन्ह धारण किये और सहस्रों स्नातकों के लिए उसने सुवर्णमुद्रा दान में दी ॥६१॥

आशीर्वादैः परिष्वक्तः सात्यकिः श्रीमतां वरः ।
ततः स मधुपर्कार्हः पीत्वा कैलातकं मधु ॥६२॥
लोहिताक्षो बभौ तत्र मदविह्वललोचनः ।
आलभ्य वीरकांस्यं च हर्षेण महताऽन्वितः ॥६३॥
द्विगुणीकृततेजा हि प्रज्वलन्निव पावकः ।
उत्सङ्गे धनुरादाय सशरं रथिनां वरः ॥६४॥
कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः कवची समलंकृतः ।
लाजैर्गन्धैस्तथा माल्यैः कन्याभिश्चाऽभिनन्दितः ॥

अब तेजस्वी सात्यकि को सबने आशीर्वाद दिये। मधुपर्क ग्रहण करने के योग्य सात्यकि ने कैलातक (मदकारी) मधु (शहद) का पान किया, जिससे उसकी आंखें लाल हो गईं और उनमें मद (नशा) झलकने लगा। सात्यकि ने बड़े हर्ष से समन्वित होकर वीर कांस्यपात्र का स्पर्श किया। इस समय सात्यकि का तेज दूना चमक उठा और अग्नि के सदृ जाज्वल्यमान हो गया। इस रथिश्रेष्ठ ने अपनी गोदी में बाणसहित धनुष लगाया। ब्राह्मणों ने स्वस्तिवचान किए। इसने कवच और आभूषण धारण किए। कन्याओं ने धान की खील लाजा आदि से इसका अभिनन्दन किया ॥६२-६५॥

युधिष्ठिरस्य चरणावभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
तेन मूर्द्धन्युपाघ्रात आरुरोह महारथम् ॥६६॥

सात्यकि ने हाथ जोड़ कर राजा युधिष्ठिर के चरणों का अभिवादन किया। जब धर्मराज ने प्रेमपूर्वक उसका मस्तक सूंघ लिया-तो फिर सात्यकि, अपने विशाल रथ पर चढ़ गया ॥६६॥

ततस्ते वाजिनो हृष्टाः सुपुष्टा वातरंहसः ।
अजय्या जैत्रमूहुस्तं विकुर्वाणाः स्म सैन्धवाः ॥६७॥

इसके अनन्तर वायु के समान वेगशील, हृष्ट-पुष्ट जीते नहीं जाने वाले, सिन्धुदेशोत्पन्न, हिनहिनाते हुए अश्वों ने विजयशील सात्यकि को लेकर गमन किया ॥६७॥

तथैव भीमसेनोऽपि धर्मराजेन पूजितः ।
प्रायात्सात्यकिना सार्धमभिवाद्य युधिष्ठिरम् ॥६८॥

धर्मराज से पूजित होकर भीमसेन भी, धर्मराज को प्रणाम करके सात्यकि के साथ चल दिया ॥६८॥

तौ दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तौ तव सेनामरिन्दमौ ।
संयत्तास्तावकाः सर्वे तस्थुर्द्रोणपुरोगमाः ॥६९॥

हे राजन्! जब तुम्हारी सेना के वीरों ने इन दोनों महावीरों को अपनी सेना की ओर आते देखा-तो वे द्रोणाचार्य आदि सारे महारथी, बड़े सावधान होकर स्थित हो गए ॥६९॥

सन्नद्धमनुगच्छन्तं दृष्ट्वा भीमं स सात्यकिः ।
अभिनन्द्याऽब्रवीद्वीरस्तदा हर्षकरं वचः ॥७०॥

बड़े उत्साह के साथ भीम को साथ आते देखकर वीर सात्यकि ने भीमसेन का स्वागत करके बड़ा हर्षकारी यह वचन कहा ॥७०॥

त्वं भीम रक्ष राजानमेतत्कार्यतमं हि ते ।
अहं भित्त्वा प्रवेक्ष्यामि कालपक्वमिदं बलम् ॥७१॥

हे भीम ! तुम राजा युधिष्ठिर की रक्षा करो-यही तुम्हारा सब से आवश्यक कार्य है। मैं अकेला ही काल से परिपक्व इस कुरुसेना को चीर कर अभी घुसा जाता हूं ॥७१॥

आयत्यां च तदात्वे च श्रेयो राज्ञोऽभिरक्षणम् ।
जानीषे मम वीर्यं त्वं तव चाऽहमरिन्दम ॥७२॥

वर्तमान और भविष्य-इन दोनों ही काल के विचार से राजा की रक्षा करना ही उत्तम है। हे अरिन्दम ! तुम मेरी शक्ति जानते हो और मैं भी तुम्हारी राजा की रक्षा करने की योग्यता को समझता हूं ॥७२॥

तस्माद्भीम निवर्त्तस्व मम चेदिच्छसि प्रियम् ।
तथोक्तः सात्यकिं प्राह व्रज त्वं कार्यसिद्धये ॥७३॥
अहं राज्ञः करिष्यामि रक्षां पुरुषसत्तम ।

हे भीम ! इन सब बातों को विचार कर यदि तुम मेरा प्रिय चाहते हो-तो अभी लौट जाओ। सात्यकि के इतना कहने पर भीम ने कहा—हे पुरुषसत्तम ! तुम अपने कार्य सिद्धि के निमित्त जाओ-मैं यहां राजा की रक्षा करता रहूंगा ॥७३॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच भीमसेनं स माधवः ॥७६॥

गच्छ गच्छ ध्रुवं पार्थ ध्रुवो हि विजयो मम ।

भीमसेन के ये वचन सुनकर सात्यकि ने कहा—हे पार्थ ! तुम शीघ्रातिशीघ्र लौट जाओ-मेरा विजय तो तुम अवश्य समझो ॥७४॥

यन्मे गुणानुरक्तश्च त्वमद्य वशमास्थितः ॥७५॥

निमित्तानि च धन्यानि यथा भीम वदन्ति माम् ।

हे भीम ! जो तुम मेरे गुणों पर प्रेम करते हो और मेरी इच्छा के विरुद्ध चलने को तय्यार नहीं हो-यह मुझे बड़ा ही शुभ शकुन है-यही कारण है, जो तुम ऐसा कह रहे हो ॥७५॥

निहते सैन्धवे पापे पाण्डवेन महात्मना ॥७६॥

परिष्वजिष्ये राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥७७॥

जब महात्मा अर्जुन पापी सिन्धुराज को जीत लेंगे-तब मैं आकर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर से प्रेमालिङ्गन करूंगा ॥७६-७७॥

एतावदुक्त्वा भीमं तु विसृज्य च महायशाः ।

सम्प्रैक्षत्तावकं सैन्यं व्याघ्रो मृगगणानिव ॥७८॥

हे राजन् ! महायशस्वी, सात्यकि, इतना कह कर और भीमसेन को उलटा भेज कर मृगयूथ को सिंह की तरह तुम्हारी सेना की ओर देखने लगा ॥७८॥

तं दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तं सैन्यं तव जनाधिप ।

भूय एवाऽभवन्मूढं सुभृशं चाऽप्यकम्पत ॥७९॥

हे जनाधिप ! इस प्रकार सात्यकि को घुसते देखकर तुम्हारी सेना के वीर अत्यन्त विमूढ़ हो गए और कांपने से लगे ॥७९॥

ततः प्रयातः सहसा तव सैन्यं स सात्यकिः ।
दिदृक्षुरर्जुनं राजन्धर्मराजस्य शासनात् ॥८०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥

हे राजन् ! सात्यकि, धर्मराज की आज्ञानुसार अर्जुन की सहायता के निमित्त उसको खोजने के लिए तुम्हारी सेना की ओर चल दिया ॥८०॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सात्यकि के कुरुसेना में प्रवेश का एक सौ बारहवां अध्याय पूरा हुआ

---

# एक सौ तेरहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

प्रयाते तव सैन्यं तु युयुधाने युयुत्सया ।
धर्मराजो महाराज स्वेनाऽनीकेन संवृतः ॥१॥
प्रायाद् द्रोणरथं प्रेप्सुर्युयुधानस्य पृष्ठतः ।

सञ्जय कहने लगे—हे महाराज ! युद्ध की इच्छा से कुरुसेना की ओर सात्यकि के चल देने पर धर्मराज, अपनी सेना से घिर कर सात्यकि के पीछे २ द्रोणाचार्य के रथ पर झपटे ॥१॥

तत: पाञ्चालराजस्य पुत्रः समरदुर्मदः ॥२॥
आक्रोशत्पाण्डवानीके वसुदानश्च पार्थिवः ।
आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ॥३॥
यथा सुखेन गच्छेत सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
महारथा हि बहवो यतिष्यन्त्यस्य निर्जये ॥४॥
इति ब्रुवन्तो वेगेन निपेतुस्ते महारथाः ।
वयं प्रतिजिगीषन्तस्तत्र तान्समभिद्रुताः ॥५॥

अब पाञ्चालराज-पुत्र, समरदुर्मद धृष्टद्युम्न और राजा वसुदान ने पुकार कर पाण्डव सेना में कहा—रे वीरो। तुम शीघ्र आओ? दौड़ो और प्रहार करो? जिससे युद्ध में दुर्दमनीय, सात्यकि सुख-पूर्वक कौरव सेना में घुस जावे। बहुत से कौरववीर, इसको जीत लेने के लिए बड़ा प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार कहते हुए पाण्डव महारथी, बड़े वेग से झपटे और हम लोग (कौरव) भी पाण्डवों को जीतने की इच्छा से उन पर टूट पड़े ॥२-५॥

ततः शब्दो महानासीद्युयुधानरथं प्रति ।
आकीर्यमाणा धावन्ती तव पुत्रस्य वाहिनी ॥६॥ ।
सात्वतेन महाराज शतधाऽभिव्यशीर्यत ।

अब युयुधान (सात्यकि) के रथ के समीप बड़ा कोलाहल होने लगा। हे महाराज! सात्यकि के बाणों से बखेरी हुई तुम्हारे पुत्र की सेनाके सैंकड़ों टुकड़े हो गए और वह इधर उधर भागने लगी।

तस्यां विदार्यमाणायां शिनेः पुत्रो महारथः ॥७॥
सप्त वीरान्महेष्वासानग्रानीकेष्वपोथयत् ।

जब सेना बिखर गई-तो शिनि-पुत्र महारथी सात्यकि ने, सेना के अग्रभागी सात महाधनुर्धर कौरववीरों को व्याकुल कर दिया।

अथाऽन्यानपि राजेन्द्र नानाजनपदेश्वरान् ॥८॥
शरैरनलसङ्काशैर्निन्ये वीरान्यमक्षयम् ।

हे राजेन्द्र ! महारथी सात्यकि, अग्नि के तुल्य बाण छोड़कर अनेक देशों के पृथक् २ राजाओं को यमराजके घर पहुंचाने लगे।

शतमेकेन विव्याध शतेनैकं च पत्रिणाम् ॥९॥
द्विपारोहान्द्विपांश्चैव हयारोहान्हयांस्तथा ।
रथिनः साश्वसूतांश्च जघानेशः पशूनिव ॥१०॥

सात्यकि ने कहीं तो एक बाण से सैंकड़ों गज और गजारोही तथा हय और हयारोही एवं कहीं पर सैंकड़ों बाणों से एक ही गज और गजारोही या अश्व और अश्वारोहियों को बींध दिया-उसने सारथि और अश्वों के सहित रथियों को इस प्रकार मार दिया, जैसे पशुपति पशुओं का संहार कर देता है ॥९-१०॥

तं तथाऽद्भुतकर्माणं शरसम्पातवर्षिणम् ।
न केचनाऽभ्यद्रवन्वै सात्यकिं तव सैनिकाः ॥११॥

इस तरह अद्भुत कर्म कर दिखाने वाले बाणधारा के वर्षुक, सात्यकि पर तुम्हारी ओर के कोई सैनिकवीर, आक्रमण करने में समर्थ नहीं हो सके ॥११॥

ते भीता मृद्यमानाश्च प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ।
आयोधनं जहुर्वीरा दृष्ट्वा तमतिमानिनम् ॥१२॥
तमेकं बहुधाऽपश्यन्मोहितास्तस्य तेजसा ।
चक्रैर्विमथितैश्चैव भग्ननीडैश्च मारिष ॥१३॥

दीर्घबाहुधारी वृष्णिवीर द्वारा खींचे और मर्दित किये हुए कौरववीर, बड़े भयभीत हुए और बहुत से वीर तो इस अत्यन्त मानी सात्यकि को देखकर रणभूमि छोड़कर चल दिए। यद्यपि सात्यकि अकेला लड़ रहा था, तो भी बहुतों के तुल्य प्रतीत होता था। कौरववीर इसके तेज से मोहित हो गए। हे आर्य ! यह सब चक्रों के तोड़ देने और रथियों के रथों की छतरी नष्ट कर देने से प्रतीत हो रहा था ॥१२-१३॥

चक्रैर्विमथितैश्छत्रैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ।
अनुकर्षैः पताकाभिः शिरस्त्राणैः सकाञ्चनैः ॥१४॥
बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैश्च विशाम्पते ।
हस्तिहस्तोपमैश्चाऽपि भुजङ्गाभोगसन्निभैः ॥१५॥
ऊरुभिः पृथिवीच्छन्ना मनुजानां नराधिप ।

हे विशाम्पते ! चकना चूर होकर गिरे हुए चक्र, ध्वजा, रथ के नीचे के काष्ठ, पताका, सुवर्णजटित शिरस्त्राण, चन्दनलिप्त और अङ्गदोंसे भूषित भुजा, हाथी की सूंड और सर्पके आकार की चढ़ीउतार वीरों की जंघाओं से सारी रणभूमि भर गई ॥१४-१५॥

शशाङ्कसन्निभैश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥१६॥

पतितैर्ऋषभाक्षाणां सा बभावति मेदिनी ।

ऋषभ की सी पुष्ट आंखों वाले, सुन्दर कुण्डलधारी, चन्द्रोपम सुन्दर पृथिवी पर पड़े हुए मुखों से रणभूमि बड़ी ही सुशोभित हो रही थी ॥१६॥

गजैश्च बहुधा छिन्नैः शयानैः पर्वतोपमैः ॥१७॥

रराजाऽतिभृशं भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ।

हे राजन्! पर्वत के तुल्य आकारधारी, कट २ कर पड़े हुए बहुत से हाथियों से अनेक पर्वतों से व्याप्त सी रणभूमि प्रतीत होने लगी ॥१७॥

तपनीयमयैर्योक्त्रैर्मुक्ताजालविभूषितैः ॥१८॥

उरश्छदैर्विचित्रैश्च व्यशोभन्त तुरङ्गमाः ।

गतसत्वा महीं प्राप्य प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ॥१९॥

मोतियों से गुथे हुए सुवर्ण मय अश्वों के ग्रीवाबन्धन (जोते) तथा विचित्र कवचों से अश्व सुशोभित थे। दीर्घबाहु सात्यकि ने ऐसे बहुत से अश्व मार २ कर रणभूमि में बिछा दिए ॥१८-१९॥

नानाविधानि सैन्यानि तव हत्वा तु सात्वतः ।

प्रविष्टस्तावकं सैन्यं द्रावयित्वा चमूं भृशम् ॥२०॥

हे राजन्! इस प्रकार तुम्हारी अनेक सेनाओं को वृष्णिवीर सात्यकि, मार पीट और भगा कर उस सेना में घुस गया ॥२०॥

ततस्तेनेव मार्गेण येन यातो धनञ्जयः ।
इयेष सात्यकिर्गन्तुं ततो द्रोणेन वारितः ॥२१॥

इसके अनन्तर सात्यकि भी उसी मार्ग से जाना चाह रहा था, जिसमें होकर अर्जुन गया था, परन्तु इसको आगे बढ़ता देखकर द्रोणाचार्य ने रोका ॥२१॥

भारद्वाजं समासाद्य युयुधानश्च सात्यकिः ।
न न्यवर्त्तत संक्रुद्धो वेलामिव जलाशयः ॥२२॥

वृष्णिवंशोद्भव सात्यकि, भरद्वाजवंशोत्पन्न द्रोणाचार्य के समीप पहुंच कर क्रोधाविष्ट हुआ भी वेला को पार कर समुद्र की तरह बिलकुल आगे नहीं बढ़ सका ॥२ ॥

निवार्य तु रणे द्रोणो युयुधानं महारथम् ।
विव्याध निशितैर्बाणैः पञ्चभिर्मर्मभेदिभिः ॥२३॥

महारथी युयुधान (सात्यकि) को वहीं पर रोककर पांच मर्म भेदी तीक्ष्ण बाणों से द्रोण ने रण में सात्यकि को आहत कर दिया ।

सात्यकिस्तु रणे द्रोणं राजन्विव्याध सप्तभिः ।
हेमपुङ्खैः शिलाधौतैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥२४॥

हे राजन् ! सात्यकि ने भी सुवर्ण के मूलधारी, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए, कङ्क और मयूरपिच्छ से सुशोभित, सात बाण मार कर द्रोण को बींध दिया ॥२४॥

तं षड्भिः सायकैर्द्रोणः साश्वयन्तारमार्दयत् ।
स तं न ममृषे द्रोणं युयुधानो महारथः ॥२५॥

अब अश्व और सारथि के सहित, सात्यकि को द्रोणाचार्य ने छः बाण मार कर आहत किया, इस आघात से महारथी सात्यकि, झल्ला उठा ॥२५॥

सिंहनादं ततः कृत्वा द्रोणं विव्याध सात्यकिः ।
दशभिः सायकैश्चाऽन्यैः षड्भिरष्टाभिरेव च ॥२६॥

अब सात्यकि ने सिंहनाद किया और दश, छः तथा आठ पृथक् २ बाण छोड़ कर द्रोणाचार्य पर प्रहार किया ॥२६॥

युयुधानः पुनर्द्रोणं विव्याध दशभिः शरैः ।
एकेन सारथिं चाऽस्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥२७॥
ध्वजमेकेन बाणेन विव्याध युधि मारिष ।

हे आर्य ! सात्यकि ने फिर दश बाण द्रोण पर छोड़े और एक बाण सारथि तथा चार बाणों से चारों अश्वों को आहत कर दिया और एक बाण से रण में उसकी ध्वजा काट डाली ॥२७॥

तं द्रोणः साश्वयन्तारं सरथध्वजमाशुगैः ॥२८॥
त्वरन्प्राच्छादयद्बाणैः शलभानामिव व्रजैः ।

द्रोण ने भी अश्व, सारथि, रथ और ध्वजासहित सात्यकि को अपने बाणों से शीघ्रता के साथ इस तरह पाट दिया मानों शलभ पक्षियों के समूह छा गए हों ॥२८॥

तथैव युयुधानोऽपि द्रोणं बहुभिराशुगैः ॥२९॥
आच्छादयदसम्भ्रान्तस्ततो द्रोण उवाच ह ।

हे महाराज ! सात्यकि ने भी बिना किसी घबराहट के बहुत से बाण छोड़कर द्रोणाचार्य को पाट दिया। अब द्रोण ने सात्यकि से यह वचन कहा ॥२६॥

तवाऽऽचार्यो रणं हित्वा गतः कापुरुषो यथा ॥३०॥
युध्यमानं च मां हित्वा प्रदक्षिणमवर्त्तत ।

हे युयुधान ! तेरा आचार्य अर्जुन तो कायर पुरुष की भांति दायीं ओर से निकल गया, यद्यपि मैं उससे युद्ध के लिए तय्यार था ॥३०॥

त्वं हि मे युध्यतो नाऽद्य जीवन्यास्यसि माधव ॥३१॥
यदि मां त्वं रणे हित्वा न यास्याचार्यवद् द्रुतम् ।

हे माधव ! यदि तू भी अपने गुरु की तरह युद्धाभिलाषी मुझ से बच कर शीघ्र नहीं निकल गया-तो जीता नहीं बचेगा ।३१।

सात्यकिरुवाच—

धनञ्जयस्य पदवीं धर्मराजस्य शासनात् ।३२॥
गच्छामि स्वस्ति ते ब्रह्मन्न मे कालात्ययो भवेत् ।

सात्यकि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! धर्मराज की आज्ञा है, कि तुम अर्जुन के पास पहुंचो-अतएव मैं जाता हूं, तुम्हारा कल्याण हो-मैं समय व्यर्थ खोना नहीं चाहता॥३२॥

आचार्यानुगतो मार्गः शिष्यैरन्वास्यते सदा ॥३३॥
तस्मादेव व्रजाम्याशु यथा मे स गुरुर्गतः ।

आचार्यों के चले हुए मार्ग पर शिष्य सदा चलते हैं, अतएव मैं भी उसी मार्ग पर गमन करूंगा ॥३३॥

सञ्जय उवाच—

एतावदुक्त्वा शैनेय आचार्यं परिवर्जयन् ॥३४॥
प्रयातः सहसा राजन्सारथिं चेदमब्रवीत् ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! शिनि-पौत्र सात्यकि, इतना कहकर और आचार्य द्रोण को छोड़ कर एकदम चल दिया और अपने सारथि से बोला ॥३४॥

द्रोणः करिष्यते यत्नं सर्वथा मम वारणे ॥३५॥
यत्तो याहि रणे सूत शृणु चेदं वचः परम् ।

हे सूत! आचार्य द्रोण, मेरे रोकनेमें बड़ाभारी प्रयत्न करेंगा, अतएव तुम सावधानी से रथ को आगे बढ़ाना और मेरे इस कथन पर ध्यान रखना ॥३५॥

एतदालोक्यते सैन्यमावन्त्यानां महाप्रभम् ॥३६॥
अस्याऽनन्तरतस्त्वेतद्दाक्षिणात्यं महद्बलम् ।
तदनन्तरमेतच्च बाल्हिकानां महद्बलम् ॥३७॥
बाल्हिकाभ्याशतो युक्तं कर्णस्य च महद्बलम् ।

हे सूत! यह सामने ही अवन्तीवीरों की तेजस्विनी सेना है-इसके बीच से महाबली दाक्षिणात्यों का सेना दिखाई दे रही है। उसी के पास बाल्हिकों का महादल है। बाल्हिकों के मध्य से कर्ण की विशाल सेना दिखाई दे रही है ॥३६-३७॥

अन्योन्येन हि सैन्यानि भिन्नान्येतानि सारथे ॥३८॥
अन्योन्यं समुपाश्रित्य न त्यक्ष्यन्ति रणाजिरम् ।

हे सारथे ! ये सेनाएँ एक दूसरे से भिन्न २ हैं-तो भी एक दूसरे का आश्रय लेकर रणाङ्गण में डटी हुई है । ये कभी रणभूमि को नहीं छोड़ेंगी ॥३८॥

एतदन्तरमासाद्य चोदयाऽश्वान्प्रहृष्टवत् ॥३९॥
मध्यमं जवमास्थाय वह मामत्र सारथे ।

हे सूत ! तुम इनके मध्य से बड़ी प्रसन्नता से मध्यम वेग के साथ अश्वों को ले चलो और मुझे अपने अभीष्ट स्थान पर पहुंचा दो ॥३९॥

बाल्हिका यत्र दृश्यन्ते नानाप्रहरणोद्यताः ॥४०॥
दाक्षिणात्याश्च बहवः सूतपुत्रपुरोगमाः ।
हस्त्यश्वरथसम्बाधं यच्चाऽनीकं विलोक्यते ॥४१॥
नानादेशसमुत्थैश्च पदातिभिरधिष्ठितम् ।
एतावदुक्त्वा यन्तारं ब्राह्मणं परिवर्जयन् ॥४२॥
मध्यतो याहि यत्रोग्रं कर्णस्य च महद्बलम् ।

जहां पर अनेक शस्त्रधारी बाल्हिक, सूत-पुत्र कर्ण के अनुयायी बहुत से दाक्षिणात्य एवं हाथी, अश्व और रथों के समूह से युक्त तथा अनेक देशोत्पन्न पैदल सैनिकों से व्याप्त सेना दिखाई पड़ती है, तुम इनमें इसी कर्ण की महासेना के मध्य से निकल चलो । इतना कह कर सात्यकि, द्रोणाचार्य को छोड़कर आगे चल दिया ।

तं द्रोणोऽनुययौ क्रुद्धो विकिरन्विशिखान्बहून् ॥४३॥
युयुधानं महाभागं गच्छन्तमनिवर्तिनम् ।

अब द्रोणाचार्य, बहुत से बाण छोड़ता हुआ क्रोध-पूर्वक आगे बढ़ा। महावीर, पीछे नहीं हटने वाले सात्यकि को द्रोण पीछे हटाना चाहते थे ॥४३॥

कर्णस्य सैन्यं सुमहदभिहत्य शितैः शरैः ॥४४॥
प्राविशद्भारतीं सेनामपर्यन्तां स सात्यकिः ।

सात्यकि भी कर्ण की विशाल सेना को तीक्ष्ण बाणों से बींध कर विशाल कौरव सेना में घुस गया ॥४४॥

प्रविष्टे युयुधाने तु सैनिकेषु द्रुतेषु च ॥४५॥
अमर्षी कृतवर्मा तु सात्यकिं पर्यवारयत् ।

जब सात्यकि, सेना में घुस गया और कर्ण के सैनिक भाग गए तो क्रोधातुर कृतवर्मा ने आगे बढ़ कर सात्यकि को रोका ॥४५॥

तमापतन्तं विशिखैः षड्भिराहत्य सात्यकिः ॥४६॥
चतुर्भिश्चतुरोऽस्याऽश्वानाजघानाऽऽशु वीर्यवान् ।

कृतवर्मा को झपटते देखकर वीर्यवान् सात्यकि ने छः बाण छोड़कर उसे आहत किया और चार बाणों से उसके शीघ्रगामी चारों अश्वों को घायल कर दिया ॥४६॥

ततः पुनः षोडशभिर्नतपर्वभिराशुगैः ॥४६॥
सात्यकिः कृतवर्माणं प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।

सात्यकि ने फिर नतपर्ववाले शीघ्रगामी सोलह बाण छोड़े, जिन से कृतवर्मा की छाती में तीक्ष्ण क्षत हो गए ॥४७॥

स ताड्यमानो विशिखैर्बहुभिस्तिग्मतेजनैः ॥४८॥
सात्वतेन महाराज कृतवर्मा न चक्षमे ।

हे महाराज ! बड़े तीखे बहुत से बाणों से सात्यकि द्वारा आहत हुआ कृतवर्मा, उसके प्रहारों को सहन नहीं कर सका अर्थात् झल्ला उठा ॥४८॥

स वत्सदन्तं सन्धाय जिह्मगानिलसन्निभम् ॥४९॥
आकृष्य राजन्नाकर्णाद्विव्याधोरसि सात्यकिम् ।

हे राजन् ! कृतवर्मा ने तीखी चलनेवाली आग के सदृश वत्सदन्त नामक बाण को धनुष पर चढ़ा कर और कान तक खैंच कर सात्यकि के हृदय में मारा ॥४९॥

स तस्य देहावरणं भित्त्वा देहं च सायकः ॥५०॥
सपुङ्खपत्रः पृथिवीं विवेश रुधिरोक्षितः ।

कृतवर्मा के इस बाण ने सात्यकि के कवच को बींध कर उसकी देह को जा बींधा। वह वत्सदन्त नामक बाण, अपने मूल और पत्र सहित रक्त में भीगा हुआ ही पृथ्वी में घुस गया ॥५०॥

अथाऽस्य बहुभिर्बाणैरच्छिनत्परमास्त्रवित् ॥५१॥
समार्गणगणं राजन्कृतवर्मा शरासनम् ।

हे राजन् ! अस्त्रविद्या के परम विद्वान कृतवर्मा ने बहुत से बाणों से बाणोंसहित सात्यकि के धनुष को काट गिराया ॥५१॥

विव्याध च रणे राजन्सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥५२॥
दशभिर्विशिखैस्तीक्ष्णैरभिक्रुद्धः स्तनान्तरे ।

हे राजेन्द्र ! इस घोर संग्राम में क्रोधातुर कृतवर्मा ने सत्य पराक्रमी सात्यकिके वक्षस्थलमें दश तीक्ष्ण बाणों द्वारा प्रहार किया।

ततः प्रशीर्णे धनुषि शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥५३॥
जघान दक्षिणं बाहुं सात्यकिः कृतवर्मणः ।

अब सात्यकि का धनुष कट गया-तो शक्तिशालियों में श्रेष्ठ सात्यकि ने अपनी शक्ति उठा कर कृतवर्मा की दक्षिण बाहु पर प्रहार किया ॥५३॥

ततोऽन्यत्सुदृढं चापं पूर्णमायम्य सात्यकिः ॥५४॥
व्यसृजद्विशिखांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ।
सरथं कृतवर्माणं समन्तात्पर्यवारयत् ॥५५॥

अब सात्यकि ने दूसरा दृढ़ धनुष ग्रहण किया और वह उसको पूरी तरह से खैंच कर सैंकड़ों हजारों बाण शीघ्रता से छोड़ने लगा। इसने कृतवर्मा को रथसहित बाणों से पाट दिया ॥५४-५५॥

छादयित्वा रणे राजन्हार्दिक्यं स तु सात्यकिः ।
अथाऽस्य भल्लेन शिरः सारथेः समकृन्तत ॥५६॥

हे राजन् ! सात्यकि ने हृदिक-पुत्र कृतवर्मा को बाणों से आच्छादित करके एक बाण से उसके सारथि के मस्तक को काट गिराया ॥५६॥

स पपात हतः सूतो हार्दिक्यस्य महारथात् ।
ततस्ते यन्तृरहिताः प्राद्रवन्तुरगा भृशम् ॥५७॥

सात्यकि द्वारा मारा हुआ कृतवर्मा का सारथि, उसके विशाल रथ से नीचे गिर पड़ा। इस समय सारथि से रहित होने से कृतवर्मा के घोड़े भाग निकले ॥५७॥

अथ भोजस्तु सम्भ्रान्तो निगृह्य तुरगान्स्वयम् ।
तस्थौ वीरो धनुष्पाणिस्तत्सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥५८॥

अब भोजवंशश्रेष्ठ, कृतवर्मा ने बड़ी शीघ्रता से एक हाथ से तो रथ के अश्वों की रास पकड़ी और दूसरे हाथ में धनुष उठाया। इस प्रकार वह वीर डटा रहा-जिसे देखकर सारी सेना ने कृतवर्मा की बड़ी प्रशंसा की ॥५८॥

स मुहूर्तमिवाऽऽश्वस्य सदश्वान्समनोदयत् ।
व्यपेतभीरमित्राणामावहत्सुमहद्भयम् ॥५९॥

थोड़ी देर में ही शीघ्र इसने अपने अश्वों को रोक लिया और इस प्रकार निडर होकर उसने शत्रुओं के हृदय में बड़ा भय उत्पन्न कर दिया ॥५९॥

सात्यकिश्चाऽभ्यगात्तस्मात्स तु भीममुपाद्रवत् ।
युयुधानोऽपि राजेन्द्र भोजानीकाद्विनिःसृतः ॥६०॥

इसी अन्तर में सात्यकि आगे निकल गया-तो कृतवर्मा ने भीमसेन पर आक्रमण किया। हे राजेन्द्र ! इस प्रकार सात्यकि कृतवर्मा की भोजसेना से भी निकल गया ॥६०॥

प्रययौ त्वरितस्तूर्णं काम्बोजानां महाचमूम् ।
स तत्र बहुभिः शूरैः सन्निरुद्धो महारथैः ॥६१॥

अब शीघ्रगामी सात्यकि काम्बोजों की महासेना में पहुंचा । उसे वहां पर बहुत से महारथी शूरवीरों ने घेर लिया ॥६१॥

न चचाल तदा राजन्सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
सन्धाय च चमूं द्रोणो भोजे भारं निवेश्य च ॥६२॥
अभ्यधावद्रणे यत्तो युयुधानं युयुत्सया ।

हे राजन् ! सत्यपराक्रमी सात्यकि, इन महारथियों से बिल्कुल विचलित नहीं हुए । द्रोणाचार्य, अपनी बिखरीसेना को फिर जोड़कर और उसका भार कृतवर्मा पर छोड़कर बड़ी सावधानी से युद्ध करने को युयुधान (सात्यकि) पर झपटे ॥६२॥

तथा तमनुधावन्तं युयुधानस्य पृष्ठतः ॥६३॥
न्यवारयन्त संहृष्टाः पाण्डुसैन्ये बृहत्तमाः ।

सात्यकि का पीछा करते हुए द्रोणाचार्य को उत्साहसम्पन्न पाण्डुसेना के बड़े २ वीरों ने रोका ॥६३॥

समासाद्य तु हार्दिक्यं रथानां प्रवरं रथम् ॥
पञ्चाला विगतोत्साहा भीमसेनपुरोगमाः ।

रथियों में महाश्रेष्ठ रथी, कृतवर्मा के पास पहुंच कर पाण्डव महारथी भीमसेन आदि अकृतकार्य होकर उत्साहहीन हो गए ।६४।

विक्रम्य वारिता राजन्वीरेण कृतवर्मणा ॥६५॥
यतमानांश्च तान्सर्वानीषद्विगतचेतसः ।
अभितस्ताञ्शरौघेण क्लान्तवाहानकारयत् ॥६६॥

हे राजन्! बड़ा भारी पराक्रम दिखाकर वीर कृतवर्मा ने उन्हें रोका। ये सारे वीर बड़ा ही प्रयत्न कर रहे थे। ये इस समय बहुत कुछ मोहित से हो गए। कृतवर्मा ने बाण छोड़ २ कर अपने शरसमूह से इनके वाहनों को आहत करके इनको अपने वाहनों से भी रहितसा कर दिया ॥६५-६६॥

निगृहीतास्तु भोजेन भोजानीकेप्सवो रणे।
अतिष्ठन्नार्यवद्वीराः प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥६७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

भोजराज कृतवर्मा द्वारा रोके हुए पाण्डववीर,भोजराज की सेना को जीत लेना चाहते थे। वे वीर, अपने यश की अभिलाषा से आर्यपुरुषों की भांति रणभूमि में ही डटे रहे ॥६७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में कौरवसेना में सात्यकि के प्रवेश का एक सौ तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ



# एक सौ चौदहवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच

एवं बहुगुणं सैन्यमेवं प्रविचितं बलम् ।
व्यूढमेवं यथान्यायमेवं बहु च सञ्जय ॥१॥
नित्यं पूजितमस्माभिरभिकामं च नः सदा ।
प्रौढमत्यद्भुताकारं पुरस्ताद् दृष्टविक्रमम् ॥२॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! हमारी सेना अनेक गुणों से सम्पन्न और अधिक संख्या में संगृहीत है, इसीतरह उसका व्यूह भी युद्धशास्त्र की विधि के अनुसार बनाया गया है। हम लोग सदा अपनी सेना का सत्कार करते रहते हैं और वह भी हम से सदा प्रेम करती है। इस सेना का बड़ा दृढ़ और अद्भुत आकार है। पूर्वकाल में इसके बल की अनेक बार परीक्षा की जा चुकी है ॥१-२॥

नाऽतिवृद्धमबालं च न कृशं नाऽतिपीवरम् ।
लघुवृत्तायतप्रायं सारगात्रमनामयम् ॥३॥

हमारी सेना में बालक और वृद्धों की संख्या अधिक नहीं है और न दुर्बल अधिक हैं और न अत्यन्त मोटे सैनिक हैं। इनके शरीर हल्के, गोल और लम्बे हैं; सारे नीरोग तथा दृढ़ शरीर धारी हैं ॥३॥

आत्तसन्नाहसञ्छन्नं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ।
शस्त्रग्रहणविद्यासु बह्वीषु परिनिष्ठितम् ॥४॥

आरोहे पर्यवस्कन्दे सरणे सान्तरप्लुते ।
सम्यक्प्रहरणे याने व्यपयाने च कोविदम् ॥५॥

इन सैनिकों ने कवच धारण कर रखे हैं और बहुत से शस्त्रों से सुसज्जित हैं; जो शस्त्र चलाने की अनेक विद्याओं में अत्यन्त कुशल हैं। अश्व, हाथी आदि पर चढ़ने, उतरने, भागने, कूदने फांद जाने, उलट पलट देने, आगे बढ़ने और लौट आने में सारे ही अत्यन्त निपुण है ॥४-५॥

नागेष्वस्त्रेषु बहुशो रथेषु च परीक्षितम् ।
परीक्ष्य च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम् ॥६॥

हाथी की सवारी, शस्त्र चलाने और रथ के युद्ध में इनकी बार २ परीक्षा की जा चुकी है। जैसी जिसकी योग्यता थी-वैसा उनको व्ययानुसार वेतन भी नियत कर दिया गया है ॥६॥

न गोष्ठ्या नोपकारेण न सम्बन्धनिमित्ततः ।
नाऽनाहूतं नाऽप्यभृतं मम सैन्यं बभूव ह ॥७॥
कुलीनार्यजनोपेतं तुष्टपुष्टमनुद्धतम् ।
कृतमानोपचारं च यशस्वि च मनस्वि च ॥८

हमने कोरी गोष्ठी (पार्टी) या उपकार के बदले या सम्बन्ध मात्र से सेना इकट्ठी नहीं की है। बिना बुलायी या वेतन से परिपुष्ट नहीं की हुई भी हमारी सेना नहीं है। हमारी सेना तो कुलीन आर्यपुरुषों से युक्त, सन्तुष्ट, पुष्ट और अनुद्धत है। सब का यथोचित मान और सेवा की जा चुकी है। यह सेना अनेक युद्धों में यश पायी हुई आत्माभिमानिनी देखी गई है ॥७-८॥

सचिवैश्चाऽपरैर्मुख्यैर्बहुभिः पुण्यकर्मभिः ।
लोकपालोपमैस्तात पालितं नरसत्तमैः ॥९॥

बहुभिः पार्थिवैर्गुप्तमस्मत्प्रियचिकीर्षुभिः ।
अस्मानधिसृतैः कामात्सबलैः सपदानुगैः ॥१०॥

महोदधिमिवाऽऽपूर्णमापगाभिः समन्ततः ।
अपक्षैः पक्षिसङ्काशै रथैरश्वैश्च संवृतम् ॥११॥

प्रभिन्नकरटैश्चैव द्विरदैरावृतं महत् ।
यदहन्यत मे सैन्यं किमन्यद्भागधेयतः ॥१२॥

हे तात ! मुख्य २ बहुत से धर्मकार्य सम्पन्न करने वाले लोकपालों के तुल्य, उत्तम २ सचिव और राजाओं से परिपालित यह सेना है। इसी तरह हमारे प्रिय के अभिलाषी अनेक पृथिवीपति इनका सञ्चालन कर रहे हैं। ये राजालोग, अपनी सेना और पैदलों के साथ अपनी प्रसन्नता से हमारी ओर आकर मिले हैं। ये तो समुद्र में नदियों की तरह हमारी सेना में आकर मिले हैं। यह सेना विना पक्ष के ही पक्षियों की तरह उड़ने वाले रथ और अश्वों से सम्पन्न हैं। कपोलों से मद के स्रावी अनेक हाथियों से आवृत यह हमारी विशालसेना भी यदि मारी जा रही है-तो, इसे भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ॥९-१२॥

योधाक्षय्यजलं भीमं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ।
क्षेपण्यसिगदाशक्तिशरप्रासझषाकुलम् ॥१३॥

ध्वजभूषणसम्बाधरत्नोपलसुसञ्चितम् ।
वाहनैरभिधावद्भिर्वायुवेगविकम्पितम् ॥१४॥
द्रोणगम्भीरपातालं कृतवर्ममहाह्रदम् ।
जलसन्धमहाग्राहं कर्णचन्द्रोदयोद्धतम् ॥१५॥
गते सैन्यार्णवं भित्त्वा तरसा पाण्डवर्षभे ।
सञ्जयैकरथेनैव युयुधाने च मामकम् ॥१६॥
तत्र शेषं न पश्यामि प्रविष्टे सव्यसाचिनि ।
सात्वते च रथोदारे मम सैन्यस्य सञ्जय ॥१७॥

हे सञ्जय ! योद्धाओं के अक्षय जल से पूर्ण, वाहनरूपी तरङ्गों से व्याप्त, बाण फेंकने के यन्त्र, खड्ग (तलवार) गदा, शक्ति, बाण, प्रासरूपी जल जन्तुओं से परिपूर्ण, ध्वजा, भूषणों के समूहरूपी रत्नों से सुसञ्चित, वाहनों के वेगरूपी वायु वेग से समन्वित, द्रोणाचार्यरूपी गम्भीर पाताल से युक्त, कृतवर्मारूपी महाह्रद से सुशोभित, जलसन्धरूपी महाग्राहधारी, कर्णरूपी चन्द्रोदय से उद्धत, हमारी सेनारूपी समुद्र को चीर कर वेग से पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन के निकल जाने और अकेले सात्यकि के घुस जाने पर हमारी सेना शेष रह सकेगी-यह बिल्कुल असम्भव है। हे सञ्जय ! रथिश्रेष्ठ सात्यकि के प्रवेश कर जाने पर हमारी सेना के शेष रहने की क्या आशा है ॥१३-१७॥

तौ तत्र समतिक्रान्तौ दृष्ट्वाऽतीव तरस्विनौ ।
सिन्धुराजं तु सम्प्रेक्ष्य गाण्डीवस्येषुगोचरे ॥१८॥

किं नु वा कुरवः कृत्यं विदधुः कालचोदिताः ।
दारुणैकायनेऽकाले कथं वा प्रतिपेदिरे ॥१६॥

उन दोनों अर्जुन और सात्यकि के हमारी सेना में घुस जाने और गाण्डीवधनुपधारी अर्जुन के बाण के लक्ष्य में राजा जयद्रथ के पड़ जाने को देखकर कालप्रेरित कौरवों ने क्या कार्य कर दिखाया। इस महादारुण भीषण काल में उनकी समझ में क्या बात आई ॥१८-१६॥

ग्रस्तान्हि कौरवान्मन्ये मृत्युना तात सङ्गतान् ।
विक्रमोऽपि रणे तेषां न तथा दृश्यते हि वै ॥२०॥

हे तात ! मैं तो अब यही समझता हूं, कि कौरवगण मृत्यु के मुख में फंस गए हैं, जो आज रण में उनका विक्रम पूर्व के सदृश प्रकाशित नहीं हो रहा है ॥२०॥

अक्षतौ संयुगे तत्र प्रविष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।
न च वारयिता कश्चित्तयोरस्तीह सञ्जय ॥२१॥

हे सञ्जय ! इस रणमें श्रीकृष्ण और अर्जुन, बिना चोट खाये ही भीतर घुसते चले गए और उनके रोकने वाला कौरवों में कोई नहीं निकला ॥२१॥

भृताश्च बहवो योधाः परीक्ष्यैव महारथाः ।
वेतनेन यथायोगं प्रियवादेन चाऽपरे ॥२२॥
असत्कारभृतस्तात मम सैन्ये न विद्यते ।
कर्मणा ह्यनुरूपेण लभ्यते भक्तवेतनम् ॥२३॥

हे तात ! हमने तो बहुत से महारथी योद्धाओं की परीक्षा करके उनको यथायोग्य वेतन से सन्तुष्ट कर रखा है। सब के साथ प्रियभाषण का व्यवहार है। असत्कार के साथ वेतन पाने वाला तो हमारी सेना में कोई वीर है ही नहीं। जिसका जितना पराक्रम है उसी के अनुसार उसे भक्त (भत्ता) और वेतन मिलता है ॥२२-२३॥

न चाऽयोधोऽभवत्कश्चिन्मम सैन्ये तु सञ्जय ।
अल्पदानभृतस्तात तथा चाऽभृतको नरः ॥२४॥

हे तात ! सञ्जय ! हमारी सेना में कोई ऐसा मनुष्य विद्यमान नहीं है, जो योद्धा न हो और उसे थोड़ा वेतन या वृत्ति मिलती हो और न ऐसा ही कोई मनुष्य तुम देखोगे-जिसे वृत्ति न दी जा रही हो ॥२४॥

पूजितो हि यथाशक्त्या दानमानासनैर्मया ।
तथा पुत्रैश्च मे तात ज्ञातिभिश्च सबान्धवैः ॥२५॥
ते च प्राप्यैव संग्रामे निर्जिताः सव्यसाचिना ।
शैनेयेन परामृष्टाः किमन्यद्भागधेयतः ॥२६॥

हे तात ! मुझ, मेरे पुत्र, बन्धु बान्धव तथा परिवार वालों से दान, मान और आसनादि से यथायोग्य सत्कार पाये हुए वीर भी, संग्राम में अर्जुन के सन्मुख पड़ते ही अर्जुन द्वारा जीत लिए जाते हैं। अर्जुन ही क्या शिनि-पुत्र सात्यकि के सामने पहुंचते ही हमारे योद्धा पराजित हो जाते हैं, इसे भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहें ॥२५-२६॥

रक्ष्यते यश्च संग्रामे ये च सञ्जय रक्षिणः ।
एकः साधारणः पन्था रक्ष्यस्य सह रक्षिभिः ॥२७॥

हे सञ्जय ! जिस वीर की संग्राम में रक्षा की जाती है या जो रक्षक रूप से स्थित होते हैं, इन रक्षित और रक्षक दोनों ही प्रकार के योद्धाओं का एक ही साधारण मार्ग बना हुआ है अर्थात् अपने २ कर्म के अनुसार पराक्रम न करके बुद्धि की हीनता से एक सा ही कर्म करने लगते हैं ॥२७॥

अर्जुनं समरे दृष्ट्वा सैन्धवस्याऽग्रतः स्थितम् ।
पुत्रो मम भृशं मूढः किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥२८॥

हे तात ! अब यह बताओ, कि रण में अर्जुन को सिन्धुराज के सन्मुख उपस्थित देखकर मेरे अत्यन्त मूर्ख पुत्र दुर्योधन ने क्या उपाय स्वीकार किया ॥२८॥

सात्यकिं च रणे दृष्ट्वा प्रविशन्तमभीतवत् ।
किं नु दुर्योधनः कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥२९॥

इसी तरह निर्भीकता के साथ सात्यकि को रण में कौरवसेना में घुसते देखकर दुर्योधन ने इस समय अपना क्या कर्तव्य समझा ।

सर्वशस्त्रातिगौ सेनां प्रविष्टौ रथिसत्तमौ ।
दृष्ट्वा कां वै धृतिं युद्धे प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥३०॥

जब सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, रथिप्रवर अर्जुन और सात्यकि, कौरवसेना में प्रविष्ट हो गए-तो इस घटना को देखकर भी क्या हमारे वीरों को धैर्य बना रहा ॥३०॥

दृष्ट्वा कृष्णं तु दाशार्हमर्जुनार्थे व्यवस्थितम् ।
शिनीनामृषभं चैव मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥२१॥
दृष्ट्वा सेनां व्यतिक्रान्तां सात्वतेनाऽर्जुनेन च ।
पलायमानांश्च कुरून्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥२२॥

अर्जुन के कार्य की सिद्धि के लिए दशार्हवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और शिनिवंशश्रेष्ठ सात्यकि को देखकर मेरी समझ में मेरे पुत्रों के छक्के छुट गए होंगे ॥२२॥

विद्रुतान्रथिनो दृष्ट्वा निरुत्साहान्द्विषज्जये ।
पलायनकृतोत्साहान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥२३॥

शत्रुभूत अर्जुन की विजय देखकर तथा निरुत्साह के साथ अपने रथियों को भागते या भागने वाले देखकर मेरे पुत्रों को अवश्य चिन्ता हुई होगी ॥२३॥

शून्यान्कृतान्रथोपस्थान्सात्वतेनाऽर्जुनेन च ।
हतांश्च योधान्सन्दृश्य मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥२४॥

सात्यकि और अर्जुन द्वारा मार २ कर शून्य किये हुए रथ की बैठकों को तथा मरे हुए योद्धाओं को देखकर मेरे पुत्र अवश्य शोक में निमग्न हो गए होंगे ॥२४॥

व्यश्वनागरथान्दृष्ट्वा तत्र वीरान्सहस्रशः ।
धावमानान्रणे व्यग्रान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥२५॥

हे सञ्जय ! अश्व, हाथी रथों से रहित सहस्रों योद्धाओं को रणाङ्गण से व्याकुलता के साथ भागते देखकर मेरे पुत्र चिन्तातुर हुए विना न रह सके होंगे ॥२५॥

महानागान्विद्रवतो दृष्ट्वाऽर्जुनशराहतान् ।
पतितान्पततश्चाऽन्यान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥३६॥

अर्जुन के बाणों से आहत हुए बड़े २ हाथियों को भागते कुछ मरे पड़े हुए और कुछ को गिरते देखकर मेरे पुत्र अवश्य शोक करने लगे होंगे ॥३६॥

विहीनांश्च कृतानश्वान्विरथांश्च कृतान्नरान् ।
तत्र सात्यकिपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥३७॥

अर्जुन और सात्यकि द्वारा अपने किये हुए आरोहियों (सवारों) से रहित अश्व और रथों से हीन किये हुए रथियों को देखकर मेरे पुत्र, मेरी समझ में शोकातुर हो गए होंगे ॥३७॥

हयौघान्निहतान्दृष्ट्वा द्रवमाणांस्ततस्ततः ।
रणे माधवपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥३८॥

हे तात ! रणाजिर में सात्यकि और अर्जुन द्वारा मार २ कर बिछाये हुए तथा इधर उधर भागते हुए अश्वसमूह को देखकर मेरे पुत्रों को अवश्य शोक हुआ होगा ॥३८॥

पत्तिसङ्घान्रणे दृष्ट्वा धावमानांश्च सर्वशः ।
निराशा विजये सर्वे मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥३९॥

हे तात ! इस घोर युद्ध में पैदल सैनिकों को सब ओर भागते देखकर मेरे सारे पुत्रों को विजय में निराशा हो गई होगी और वे शोक में डूब चले होंगे—मैं ऐसा मानता हूं ॥३९॥

द्रोणस्य समतिक्रान्तावनीकमपराजितौ ।
क्षणेन दृष्ट्वा तौ वीरौ मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥४०

हे सञ्जय ! पराजित नहीं होने वाले इन दोनों वीर अर्जुन और सात्यकि को क्षण भर में द्रोणाचार्य की सेना को उलांघ कर निकल जाते देखकर मेरे पुत्र अवश्य शोक निमग्न हुए होंगे-ऐसा मेरी समझ आता है ॥४०॥

संमूढोऽस्मि भृशं तात श्रुत्वा कृष्णधनञ्जयौ ।
प्रविष्टौ मामकं सैन्यं सात्वतेन सहाऽच्युतौ ॥४१॥

हे तात ! रण से पीछे नहीं हटने वाले श्रीकृष्ण और अर्जुन को सात्यकि के सहित हमारी सेना में प्रविष्ट हुए सुनकर तो मैं मोहित हो गया हूं ॥४१॥

तस्मिन्प्रविष्टे पृतनां शिनीनां प्रवरे रथे ।
भोजानीकं व्यतिक्रान्ते किमकुर्वत कौरवाः ॥४२॥

हे सञ्जय ! भोजसेना के सहित कृतवर्मा को उलांघ कर शिनिवंशश्रेष्ठ महारथी सात्यकि के सेना में घुस आने पर कौरवों ने क्या पराक्रम कर दिखाया ॥४२॥

तथा द्रोणेन समरे निगृहीतेषु पाण्डुषु ।
कथं युद्धमभूत्तत्र तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥४३॥

हे सञ्जय ! जब रण में आगे बढ़ते हुए पाण्डवों को द्रोणाचार्य ने रोक दिया-तो उस समय कितना घोर युद्ध हुआ-तुम प्रथम मुझे इसेसुनाओ ॥४३॥

द्रोणो हि बलवाञ्श्रेष्ठः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
पञ्चालास्ते महेष्वासं प्रत्यविध्यन्कथं रणे ॥४४॥

द्रोणाचार्य बड़ा बलवान्; अस्त्रविद्या में कुशल, युद्ध में दुर्मद उत्तम वीर है, रण में पाञ्चाल वीरों ने इस महाधनुर्धर को किस प्रकार आहत किया-यह सुनाओ ॥४४॥

बद्धवैरास्ततो द्रोणे धनञ्जयजयैषिणः ।
भारद्वाजसुतस्तेषु दृढवैरो महारथः ॥४५॥

ये पाञ्चालवीर धृष्टद्युम्नादि, अर्जुन की विजय के अभिलाषी और द्रोणाचार्य से पूर्वकाल से वैर मानते चले आ रहे हैं । इसी प्रकार महारथी भरद्वाज-पुत्र द्रोण भी इनसे दृढ़ वैर मानता है ।४५।

अर्जुनश्चापि यच्चक्रे सिन्धुराजवधं प्रति ।
तन्मे सर्वं समाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥४६॥

हे सञ्जय ! अर्जुन ने सिन्धुराज जयद्रथ के वध के निमित्त जो प्रयत्न किया, उस सबका कथन करो । तुम समाचार कहने में बड़े चतुर हो ॥४६॥

आत्मापराधात्सम्भूतं व्यसनं भरतर्षभ ।
प्राप्य प्राकृतवद्वीर न त्वं शोचितुमर्हसि ॥४७॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! यह सारी विपत्ति तो तुम्हारे स्वयं किये हुए अपराधों से खड़ी हुई है । हे वीर ! अब इसको प्राप्त करके साधारण मनुष्य की तरह तुम्हें विलाप नहीं करना चाहिए ॥४७॥

पुरा यदुच्यसे प्राज्ञैः सुहृद्भिर्विदुरादिभिः ।
मा हार्षीः पाण्डवान्राजन्निति तन्न त्वया श्रुतम् ॥

हे राजन्! पूर्व काल में ही विदुर आदि तुम्हारे विद्वान् सुहृदों ने तुम्हें समझाया था, कि तुम पाण्डवों को वनमें न भेजो, परन्तु तुमने एक भी नहीं सुनी ॥४८॥

सुहृदां हितकामानां वाक्यं यो न शृणोति ह ।
स महद्व्यसनं प्राप्य शोचते वै यथा भवान् ॥४९॥

हे राजन्! जो हित चाहने वाले सुहृदों के वाक्य को नहीं सुनता है; वह तुम्हारी तरह बड़ी विपत्ति को पाकर शोक में निमग्न होता है ॥४९॥

याचितोऽसि पुरा राजन्दाशार्हेण शमं प्रति ।
न च तं लब्धवान्कामं त्वत्तः कृष्णो महायशाः ॥

हे राजन्! दशार्हवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने सन्धि के प्रस्ताव के समय तुम से कितनी याचना की, परन्तु महायशस्वी श्रीकृष्ण की कामना तुमसे सफल नहीं हो सकी ॥५०॥

तव निर्गुणतां ज्ञात्वा पक्षपातं सुतेषु च ।
द्वैधीभावं तथा धर्मे पाण्डवेषु च मत्सरम् ॥५१॥
तव जिह्ममभिप्रायं विदित्वा पाण्डवान्प्रति ।
आर्त्तप्रलापांश्च बहून्मनुजाधिपसत्तम ॥५२॥
सर्वलोकस्य तत्वज्ञः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
वासुदेवस्ततो युद्धं कुरूणामकरोन्महत् ॥५३॥

हे मनुजाधिपसत्तम ! तुम्हारा गुणों में अपक्षपात और अपने पुत्रों में पक्षपात, धर्म से विरोध, पाण्डवों से मत्सर तथा कुटिल भाव और तुम्हारे झूठे दुःखपूर्ण प्रलापों को समझकर ही सब संसार के तत्त्व के जानने वाले, सब लोकों में शक्तिशाली, भगवान् वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण ने यह कौरवों के साथ घोर युद्ध ठाना है ।

आत्मापराधात्सुमहान्प्राप्तस्ते विपुलः क्षयः ।
नैनं दुर्योधनं दोषं कर्त्तुमर्हसि मानद ॥५४॥

हे मानदेनेवाले ! यह तो तुम्हारे अपराध रूपी बीज का महान् क्षयरूपी वृक्ष प्राप्त हुआ है । इस युद्ध का दोष दुर्योधन के शिर पर डालना उचित नहीं है ॥५४॥

नहि ते सुकृतं किञ्चिदादौ मध्ये च भारत ।
दृश्यते पृष्ठतश्चैव त्वन्मूलो हि पराजयः ।५५॥

हे भारत ! मुझे तो आरम्भ, मध्य और अन्त में कहीं भी तुम्हारे सुकर्मों का उदय नहीं दिखाई देता है। यह पराजय तो तुम्हारे ही दुष्कर्मों का परिणाम दिखाई देता है ॥५५॥

तस्मादवस्थितो भूत्वा ज्ञात्वा लोकस्य निर्णयम् ।
शृणु युद्धं यथावृत्तं घोरं देवासुरोपमम् ॥५६॥

अब धैर्य धारण कर और लोक के व्यवहार को समझ करके जो देवासुर संग्राम की भांति घोर कौरव पाण्डवों में युद्ध हो रहा है-उसका वृत्तान्त ठीक २ सुनो ॥५६॥

प्रविष्टे तव सैन्यं तु शैनेये सत्यविक्रमे ।
भीमसेनमुखाः पार्थाः प्रतीयुर्वाहिनीं तव ॥५७॥

हे राजन्! सत्यपराक्रमी शिनि-पौत्र सात्यकि के तुम्हारी सेना में घुस-आने पर भीमसेन आदि पाण्डव भी तुम्हारी सेना की ओर दौड़े ॥५७॥

आगच्छतस्तान्सहसा क्रुद्धरूपान्सहानुगान् ।
दधारैको रणे पाण्डून्कृतवर्मा महारथः ॥५८॥

जब अपनी सेना के साथ क्रोध में भरे हुए सारे पाण्डववीर एक दम झपटे-तो रण में उन सब पाण्डववीरों को अकेले महारथी कृतवर्मा ने रोका ॥५८॥

यथोद्वृत्तं वारयते वेला वै सलिलार्णवम् ।
पाण्डुसैन्यं तथा संख्ये हार्दिक्यः समवारयत् ॥५९॥

उछले हुए समुद्र को जैसे-उसकी मर्यादा रोक देती है, उसी तरह उमलती हुई पाण्डवसेना को हृदिक-पुत्र कृतवर्मा ने इस युद्ध में रोक दिया ॥५९॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम हार्दिक्यस्य पराक्रमम् ।
यदेनं सहिताः पार्था नाऽतिचक्रमुराहवे ॥६०॥

इस युद्ध में कृतवर्मा का अद्भुत पराक्रम देखा गया-जो इकट्ठे ही पाण्डव भी, रण में इसका अतिक्रमण नहीं कर सके।

ततो भीमस्त्रिभिर्विद्ध्वा कृतवर्माणमाशुगैः ।
शङ्खं दध्मौ महाबाहुर्हर्षयन्सर्वपाण्डवान् ॥६१॥

महाबाहु भीमसेन ने तीन आशुगामी बाण छोड़कर कृतवर्मा को आहत किया और सारे पाण्डव वीरों को हर्षित करते हुए उसने अपना शङ्ख बजाया ॥६१॥

सहदेवस्तु विंशत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः ।
शतेन नकुलश्चापि हार्दिक्यं समविध्यत ॥६२॥

उसी समय सहदेव ने बीस, धर्मराज ने पांच और नकुल ने सौ बाणों द्वारा कृतवर्मा पर पर प्रहार किया ॥६२॥

द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या सप्तभिश्च घटोत्कचः ।
धृष्टद्युम्नस्त्रिभिश्चापि कृतवर्माणमार्दयत् ॥६३॥

द्रौपदी-पुत्रों ने तेहत्तर, घटोत्कच ने सात और धृष्टद्युम्न ने तीन बाण छोड़ कर कृतवर्मा को आहत किया ॥६३॥

विराटो द्रुपदश्चैव याज्ञसेनिश्च पञ्चभिः ।
शिखण्डी चैव हार्दिक्यं विध्वा पञ्चभिराशुगैः ॥६४॥
पुनर्विव्याध विंशत्या सायकानां हसन्निव ।

विराट, द्रुपद, यज्ञसेन-पुत्र धृष्टद्युम्न और शिखण्डी ने पांच २ बाण मार कर कृतवर्मा को बींध डाला और हंसते २ इन्होंने बीस बाण और कृतवर्मा पर छोड़े ॥६४॥

कृतवर्मा ततो राजन्सर्वतस्तान्महारथान् ॥६५॥
एकैकं पञ्चभिर्विध्वा भीमं विव्याध सप्तभिः ।
धनुर्ध्वजं चाऽस्य तदा रथाद्भूमावपातयन् ॥६६॥

हे राजन् ! कृतवर्मा ने भी इन सारे महारथियों को सब ओर से बाण छोड़कर पांच २ बाणों से आहत किया और भीमसेन पर सात बाण छोड़े और उसके धनुष तथा ध्वजा को रथ से नीचे भूमि में काट गिराया ॥६५-६६॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः ।

आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तत्या निशितैः शरैः ॥६७॥

जब भीमसेन का धनुष कट कर गिर गया-तो महारथी कृतवर्मा ने बड़ी शीघ्रता से क्रोधपूर्वक सत्तर तीक्ष्ण बाण, भीमसेन के हृदय में मारे ॥६७॥

स गाढविद्धो बलवान्हार्दिक्यस्य शरोत्तमैः ।

चचाल रथमध्यस्थः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ॥६८॥

हार्दिक-पुत्र कृतवर्मा के तीखे बाणों से अत्यन्त बिंधा हुआ बलवान् भीमसेन, रथ के भीतर ही इस तरह कांप गया-जैसे पृथ्वी के कांपने पर पर्वत कांप उठता है ॥६८॥

भीमसेनं तथा दृष्ट्वा धर्मराजपुरोगमाः ।

विसृजन्तः शरान्राजन्कृतवर्माणमार्दयन् ॥६९॥

हे राजन् ! धर्मराज आदि पाण्डववीर भीमसेन की यह दशा देखकर बाणधारा छोड़ते हुए कृतवर्मा पर टूट पड़े और उसे पीड़ित करने लगे ॥६९॥

तं तथा कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ।

विव्यधुः सायकैर्हृष्टा रक्षार्थं मारुतेर्मृधे ॥७०॥

हे आर्य ! धर्मराज आदि पाण्डववीरों ने अपने रथसमूह से कृतवर्माको घेर लिया और वे रणमें वायु-पुत्र भीमसेनकी रक्षा के निमित्त बड़े उत्साह से कृतवर्मा को अपने बाणों से बींधने लगे ।

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः ।
शक्तिं जग्राह समरे हेमदण्डामयस्मयीम् ॥७१॥
चिक्षेप च रथात्तूर्णं कृतवर्मरथं प्रति ।

महाबली भीमसेन, जब चेत में आया-तो उसने सुवर्ण के दण्ड से सुशोभित, लोहनिर्मित, भीषणशक्ति रण में उठाई और उसे बड़ी शीघ्रता से कृतवर्मा के रथ पर फैंक दिया ॥७१॥

सा भीमभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसन्निभा ॥७२॥
कृतवर्माणमभितः प्रजज्वाल सुदारुणा ।

भीमसेन की भुजाओं द्वारा छोड़ी हुई, कांचली से रहित सर्प के समान भीषण, वह दारुणशक्ति सब ओर से कृतकर्मा को दग्ध करने लगी ॥७२॥

तामापतन्तीं सहसा युगान्ताग्निसमप्रभाम् ॥७३॥
द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यो निजघान द्विधा तदा ।

प्रलयकालीन, अग्नि के तुल्य भीषण एकदम आती हुई शक्ति को देखकर हृदिक-पुत्र कृतवर्मा ने दो बाण छोड़ कर उस शक्ति के दो टुकड़े कर दिए ॥७३॥

सा छिन्ना पतिता भूमौ शक्तिः कनकभूषणा ॥७४॥
द्योतयन्ती दिशो राजन्महोल्केव नभश्च्युता ।
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा भीमश्चुक्रोध वै भृशम् ॥७५॥

हे राजन्! सुवर्णदण्ड से भूषित वह शक्ति, भिन्न भिन्न होकर भूमि में इस प्रकार से गिर गई, कि जैसे आकाश से च्युत

बड़े भारी उल्कापात से दिशाएँ चमक उठी हों। अपनी शक्ति को नष्ट-भ्रष्ट देखकर भीमसेन, अत्यन्त क्रोध में भर गया ॥७४-७५॥

ततोऽन्यद्धनुरादाय वेगवत्सुमहास्वनम्।
भीमसेनो रणे क्रुद्धो हार्दिक्यं समवारयत् ॥७६॥

इसके अनन्तर भीमसेन ने क्रोधाविष्ट होकर वेगशाली, बड़ा भारी शब्द करने वाला अन्य धनुष उठाया और उस धनुष से बाणवर्षा करते हुए भीम ने कृतवर्मा को बाणों से पाट दिया।

अथैनं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे।
भीमो भीमबलो राजंस्तव दुर्मन्त्रितेन च ॥७७॥

हे राजन्! अब भीषणबलधारी भीमसेन ने पांच बाण छोड़कर कृतवर्मा की छाती में प्रहार किया, जो तुम्हारी दुर्मन्त्रणा का परिणाम था ॥७७॥

भोजस्तु क्षतसर्वाङ्गो भीमसेनेन मारिष।
रक्ताशोक इवोत्फुल्लो व्यभ्राजत रणाजिरे ॥७८॥

हे आर्य! भीमसेन द्वारा भोजराज कृतवर्मा का सारा शरीर क्षतविक्षत होगया और वह खिले हुए रक्त अशोक के वृक्ष की भांति रणाङ्गण में प्रतीत होने लगा ॥७८॥

ततः क्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैर्भीमसेनं हसन्निव।
अभिहत्य दृढं युद्धे तान्सर्वान्प्रत्यविध्यत ॥७९॥

अब कृतवर्मा भी क्रोध से झल्ला उठा। उसने भी हँसते २ तीन बाण भीमसेन पर छोड़े, और बहुत से बाण छोड़कर

धर्मराज आदि अन्य पाण्डववीरों को भी दृढ़ता के साथ इस युद्ध में बींध डाला ॥७६॥

त्रिभिस्त्रिभिर्महेष्वासो यतमानान्महारथान् ।
तेऽपि तं प्रत्यविध्यन्त सप्तभिः सप्तभिः शरैः ॥८०॥

हे राजन् ! युद्ध में बड़ा उद्योग करते हुए पाण्डव महारथियों को महाधनुर्धर कृतवर्मा ने तीन २ बाण मारे और पाण्डव महारथियों ने सात २ बाण मार कर कृतवर्मा को आहत कर दिया ॥८०॥

शिखण्डिनस्ततः क्रुद्धः क्षुरप्रेण महारथः ।
धनुश्चिच्छेद समरे प्रहसन्निव सात्वतः ॥८१॥

इसके अनन्तर सात्वतवंशश्रेष्ठ महारथी कृतवर्मा ने क्रोध में भर कर क्षुर के सदृश एक ऐसा बाण हँसते २ मारा, जिससे उसने महारथी शिखण्डी का धनुष काट कर रणभूमि गिरा दिया।

शिखण्डी तु ततः क्रुद्धश्छिन्ने धनुषि सत्वरः ।
असिं जग्राह समरे शतचन्द्रं च भास्वरम् ॥८२॥

धनुष के कट जाने पर शिखण्डी क्रोध से बहुत शीघ्र झल्ला उठा और उसने अब रण में तलवार और चमकीली ढाल उठाई।

भ्रामयित्वा महच्चर्म चामीकरविभूषितम् ।
तमसिं प्रेषयामास कृतवर्मरथं प्रति ॥८३॥

शिखण्डी ने सुवर्ण से विभूषित, विशाल ढाल को घुमाकर कृतवर्मा पर अपनी तलवार का आघात किया ॥८३॥

स तस्य सशरं चापं छित्वा राजन्महानसिः ।

अभ्यगाद्धरणीं राजंश्च्युतं ज्योतिरिवाऽम्बरात् ॥८४॥

हे राजन् ! उस विशाल करवाल से शिखण्डी ने कृतवर्मा का बाणसहित धनुष को काट गिराया । वह धनुष इस तरह भूमि में गिरगया, जैसे-आकाश से कोई तारा टूट पड़ा हो ॥८४॥

एतस्मिन्नेव काले तु त्वरमाणं महारथाः ।

विव्यधुः सायकैर्गाढं कृतवर्माणमाहवे ॥८५॥

इसी समय के अन्तर में अन्य पाण्डव महारथियों ने बड़े वेग से रण में अपने २ बाणों द्वारा-कृतवर्मा को बींध डाला ॥८५॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय त्यक्त्वा तच्च महद्धनुः ।

विशीर्णं भरतश्रेष्ठ हार्दिक्यः परवीरहा ॥८६॥

विव्याध पाण्डवान्युद्धे त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।

शिखण्डिनं च विव्याध त्रिभिः पञ्चभिरेव च ॥८७॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अपने खण्डित धनुष को फैंक कर शत्रुवीर नाशक, हृदिकपुत्र कृतवर्मा ने दूसरा धनुष उठाया और उस धनुष से तीन २ सीधे जाने वाले बाण छोड़कर युद्धस्थल में पाण्डवों को बींध दिया तथा तीन और पांच बाण छोड़ कर शिखण्डी को आहत किया ॥८६-८७॥

धनुरन्यत्समादाय शिखण्डी तु महायशाः ।

अवारयत्कूर्मनखैराशुगैर्हार्दिकात्मजम् ॥८८॥

महायशस्वी शिखण्डी ने भी दूसरा धनुष उठाया और कछुवे के नख के समान तीखे बाणों से उसने हृदिकपुत्र कृतवर्मा को आहत कर दिया ॥८८॥

ततः क्रुद्धो रणे राजन्हृदिकस्याऽऽत्मसम्भवः ।
अभिदुद्राव वेगेन याज्ञसेनिं महारथम् ॥८९॥

हे राजन्! इसके अनन्तर हृदिकपुत्र कृतवर्मा, क्रोध में भर गया और वह रणाङ्गण में बड़े वेग के साथ यज्ञसेनपुत्र महारथी शिखण्डी पर झपटा ॥८९॥

भीष्मस्य समरे राजन्मृत्योर्हेतुं महात्मनः ।
विदर्शयन्बलं शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥९०॥

हे राजन्! जो महात्मा भीष्म की मृत्युका हेतु था, वह शूरवीर शिखण्डी रण में हाथी के ऊपर सिंह की भांति अपना बल कृतवर्मा को प्रदर्शित करने लगा ॥९०॥

तौ दिशां गजसङ्काशौ ज्वलिताविव पावकौ ।
समापेततुरन्योन्यं शरसङ्घैररिन्दमौ ॥९१॥

ये दोनों अरिमर्दन वीर, दिशाओं के हाथियों की तरह शक्तिशाली और जलते हुए अग्नि के तुल्य देदीप्यमान थे। अब ये अपने २ बाणसमूह द्वारा एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥९१॥

विधुन्वानौ धनुःश्रेष्ठे सन्दधानौ च सायकान् ।
विसृजन्तौ च शतशो गभस्तीनिव भास्करौ ॥९२॥

ये दोनों महारथी, अपने २ उत्तम धनुष कंपा रहे थे और, उनपर बाणपरम्परा चढ़ाते जाते थे। सूर्य जिस तरह अपने सैकड़ों किरणजाल को फैंकता है, उसी तरह ये भी अपने २ बाणसमूह को फैंक रहे थे ॥६२॥

तापयन्तौ शरैस्तीक्ष्णैरन्योन्यं तौ महारथौ ।
युगान्तप्रतिमौ वीरौ रेजतुर्भास्कराविव ॥६३॥

ये दोनों महारथी, अपने २ तीक्ष्ण बाणों से एक दूसरे को क्षत-विक्षित करते हुए प्रलयकालिक सूर्यों की तरह प्रज्वलित हो रहे थे ॥६३॥

कृतवर्मा च समरे याज्ञसेनिं महारथम् ।
विध्वेषुभिस्त्रिसप्तत्या पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥६४॥

कृतवर्मा ने महारथी यज्ञसेन (द्रुपद) पुत्र, महारथी शिखण्डी को पहिले तेहत्तर बाणों से बींध कर फिर सात बाणों से उसे आहत कर दिया ॥६४॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं मूर्च्छयाऽभिपरिप्लुतः ॥६५॥

कृतवर्मा द्वारा बड़ी दृढ़ता के साथ बिंधा हुआ शिखण्डी व्यथित होकर रथ के मध्य में चुपचाप बैठ गया। इसके धनुष बाण हाथ से छुट गए और यह मूर्च्छा से व्याप्त होगया ॥६५॥

तं विषण्णं रथे दृष्ट्वा तावकाः पुरुषर्षभ ।
हार्दिक्यं पूजयामासुर्वासांस्यादुधुवुश्च ह ॥६६॥

हे पुरुषर्षभ, रणाङ्गण में महारथी शिखण्डी को व्याकुल देखकर तुम्हारे पक्ष के वीर, हृदिकपुत्र कृतवर्मा की प्रशंसा करने लगे और हर्षसूचक अपने २ वस्त्र उछालने लगे ॥९६॥

शिखण्डिनं तथा ज्ञात्वा हार्दिक्यशरपीडितम् ।
अपोवाह रणाद्यन्ता त्वरमाणो महारथम् ॥९७॥

हृदिकपुत्र कृतवर्मा के बाण से पीड़ित महारथी शिखण्डी को देखकर उसका सारथि बड़ी शीघ्रता से उसे रणभूमि से दूर ले निकला ॥९७॥

सादितं तु रथोपस्थे दृष्ट्वा पार्थाः शिखण्डिनम् ।
परिवव्रू रथैस्तूर्णं कृतवर्माणमाहवे ॥९८॥

पाण्डवों ने जब रथ के मध्य में मूर्च्छित पड़े हुए शिखण्डी को देखा-तो वे अनेक रथियों को लेकर रणमें कृतवर्मा को घेरकर खड़े हो गए ॥९८॥

तत्राऽद्भुतं परं चक्रे कृतवर्मा महारथः ।
यदेकः समरे पार्थान्वारयामास सानुगान् ॥९९॥

महारथी कृतवर्मा ने इस समय भी अद्भुत युद्धकौशल दिखाया, जो अकेले कृतवर्मा ने सेनासहित सारे पाण्डवों को आगे बढ़ने से रोक दिया ॥९९॥

पार्थाञ्जित्वाऽजयच्चेदीन्पञ्चालान्सृञ्जयानपि ।
केकयांश्च महावीर्यान्कृतवर्मा महारथः ॥१००॥

महारथी कृतवर्मा ने पाण्डववीरों को जीत कर चेदि, पञ्चाल, सृञ्जय और महापराक्रमी केकयदेश के वीरों को भी जीत लिया।

ते वध्यमानाः समरे हार्दिक्येन स्म पाण्डवाः ।
इतश्चेतश्च धावन्तो नैव चक्रुर्धृ तिं रणे ॥१०१॥

कृतवर्मा द्वारा मारे पीटे हुए, पाण्डववीर, रणभूमि में इधर-उधर भागे २ फिरते थे और उनको किसी भी प्रकार से धैर्य नहीं होता था ॥१०१॥

जित्वा पाण्डुसुतान्युद्धे भीमसेनपुरोगमान् ।
हार्दिक्यः समरेऽतिष्ठद्विधूम इव पावकः ॥१०२॥

इस प्रकार भीमसेन आदि पाण्डु-पुत्रों को जीत कर रण में कृतवर्मा धूमरहित अग्नि की भांति प्रज्वलित हो रहा था ॥१०२॥

ते द्राव्यमाणा समरे हार्दिक्येन महारथाः ।
विमुखाः समपद्यन्त शरवृष्टिभिरार्दिताः ॥१०३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे कृतवर्मपराक्रमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११४॥

हृदिक-पुत्र कृतवर्मा द्वारा भगाये हुए महारथी, कृतवर्मा के बाणों से पीड़ित हुए सब रणभूमि से मुख मोड़ कर भाग निकले।

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सात्यकि के कौरवसेना में प्रवेश और कृतवर्मा के पराक्रम के वर्णन का एक सौ चौदहवां अध्याय समाप्त हुआ

# एक सौ पन्द्रहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

शृणुष्वैकमना राजन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
द्राव्यमाणे बले तस्मिन्हार्दिक्येन महात्मना ॥१॥
लज्जयाऽवनते चापि प्रहृष्टैश्चाऽपि तावकैः ।
द्वीपो य आसीत्पाण्डूनामगाधे गाधमिच्छताम् ॥२॥
श्रुत्वा स निनदं भीमं तावकानां महाहवे ।
शैनेयस्त्वरितो राजन्कृतवर्माणमभ्ययात् ॥३॥
उवाच सारथिं तत्र क्रोधामर्षसमन्वितः ।
हार्दिक्याभिमुखं सूत कुरु मे रथमुत्तमम् ॥४॥
कुरुते कदनं पश्य पाण्डुसैन्ये ह्यमर्षितः ।
एनं जित्वा पुनः सूत यास्यामि विजयं प्रति ॥५॥
एवमुक्ते तु वचने सूतस्तस्य महामते ।
निमेषान्तरमात्रेण कृतवर्माणमभ्ययात् ॥६॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन् ! आपने जो युद्ध के विषय में प्रश्न किया, उसका वृत्तान्त अब एकान्त चित्त होकर सुनते जाइए । जब महावीर हृदिक-पुत्र कृतवर्मा ने पाण्डवों की सेना को भगा दिया तो पाण्डवों के महारथी एक दम लज्जा से झुक गए और तुम्हारे वीरों के हृदय में आनन्द छा गया । इस समय अगाध

युद्धरूपी समुद्र में पाण्डव डूब रहे थे, परन्तु अगाध समुद्र के पार जाने की इच्छा वाले पाण्डवों का उद्धारक फिर शिनि-पौत्र सात्यकि बना। जब सात्यकि ने तुम्हारे वीरों की भीषण गर्जना सुनी-तो वह बड़े वेग से लौट कर भोजराज कृतवर्मा पर झपटा और क्रोध तथा आवेश में भर कर अपने सारथि से बोला—हे सारथि! तुम मेरे रथ को कृतवर्मा के सन्मुख लौटा कर ले चलो। यह क्रोध में भरा हुआ, कृतवर्मा, पाण्डुसेना का विध्वंस उड़ा रहा है। प्रथम मैं इसको जीत लूं, फिर अर्जुनकी सहायता को गमन करूंगा। हे महामते! जब सात्यकि ने इतना कहा-तो उसके सारथि ने क्षण मात्र में उसे कृतवर्मा के पास पहुंचा दिया ॥१-६॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यः शैनेयं निशितैः शरैः।
अवाकिरत्सुसंक्रुद्धस्ततोऽक्रुद्धयत्स सात्यकिः ॥७॥

हृदिकपुत्र कृतवर्मा ने अब तीखे बाणों से सात्यकि को छेदना आरम्भ किया। इसने क्रोध में भर कर सात्यकि को बाणों से पाट दिया। इस आक्रमण से सात्यकि झल्ला उठा ॥७॥

अथाऽशु निशितं भल्लं शैनेयः कृतवर्मणः।
प्रेषयामास समरे शरांश्च चतुरोऽपरान् ॥८॥

अब शिनि-पौत्र सात्यकि ने सबसे प्रथम कृतवर्मा पर एक बाण छोड़ा और इसके अनन्तर फिर रण में उसने चार बाण और चलाए ॥८॥

ते तस्य जघ्निरे वाहान्भल्लेनाऽस्याऽच्छिनद्धनुः।
पृष्ठरक्षं तथा सूतमविध्यन्निशितैः शरैः ॥९॥

इन चारों बाणों ने कृतवर्मा के चारों अश्व मार दिए और उस तीखे एक बाण से कृतवर्मा का धनुष कट गया। इसी तरह सात्यकि ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उसके पृष्ठरक्षक और सारथि को भी बींध दिया ॥९॥

ततस्तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
सेनामस्याऽर्दयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१०॥

सत्यपराक्रमी सात्यकि ने कृतवर्मा को रथविहीन करके फिर अपने सन्नतपर्ववाले बाणों से उसकी सेना को पीड़ित करना आरम्भ किया ॥१०॥

अभज्यताऽथ पृतना शैनेयशरपीडिता ।
ततः प्रायात्स त्वरितः सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥११॥

शिनि-पौत्र सात्यकि के बाणों से पीड़ित हुई कृतवर्मा की सेना भाग निकली। इसके अनन्तर बड़ी शीघ्रता से सत्यविक्रमी सात्यकि फिर आगे बढ़ा ॥११॥

शृणु राजन्यदकरोत्तव सैन्येषु वीर्यवान् ।
अतीत्य स महाराज द्रोणानीकमहार्णवम् ॥१२॥
पराजित्य तु संहृष्टः कृतवर्माणमाहवे ।
यन्तारमब्रवीच्छूरः शनैर्याहीत्यसम्भ्रमम् ॥१३॥

हे राजन्! इसके अनन्तर वीर्यवान् सात्यकि ने जो तुम्हारी सेना में किया, वह सुनो। हे महाराज! द्रोणाचार्य के समुद्र को पार करके और घोर युद्ध में कृतवर्मा को हरा कर वह शूरवीर

सात्यकि, अपने सारथि से कहने लगा-हे सूत! तुम धीरे २ चलो घबराने का काम नहीं है ॥१२-१३॥

दृष्ट्वा तु तव तत्सैन्यं रथाश्वद्विपसंकुलम् ।
पदातिजनसम्पूर्णमब्रवीत्सारथिं पुन ॥१४॥

सात्यकि ने रथ, अश्व और गजों से संकीर्ण तथा पैदल सैनिकों से भरी हुई तुम्हारी सेना को देखकर फिर सारथि से कहा।

यदेतन्मेघसङ्काशं द्रोणानीकस्य सव्यतः ।
सुमहत्कुञ्जरानीकं यस्य रुक्मरथो मुखम् ॥१५॥
एते हि बहवः सूत दुर्निवाराश्च संयुगे ।
दुर्योधनसमादिष्टा मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥१६॥

हे सूत! यह जो द्रोणाचार्य की सेना के बाईं ओर मेघघटा के तुल्य, विशाल गजसेना खड़ी है और जिसके मुख पर रुक्मरथ नामक राजकुमार स्थित है, वह बड़ी भीषण है। ये गजारोही, बड़े दुर्निवार और राजा दुर्योधन की आज्ञा से प्राणों का लोभ छोड़कर मुझ से युद्ध के निमित्त डटे हुए हैं ॥१५-१६॥

राजपुत्रा महेष्वासाः सर्वे विक्रान्तयोधिनः ।
त्रिगर्त्तानां रथोदाराः सुवर्णविकृतध्वजाः ॥१७॥

ये सारे राजपुत्र महाधनुर्धर और पराक्रम के साथ युद्ध करने वाले हैं, जिनकी तपाये हुए सुवर्ण की ध्वजा देदीप्यमान हो रही हैं। ये सब महारथी त्रिगर्त कहलाते हैं ॥१७॥

मामेवाऽभिमुखा वीरा योत्स्यमाना व्यवस्थिताः ।

अत्र मां प्रापय क्षिप्रमश्वांश्चोदय सारथे ॥१८॥

त्रिगर्तैः सह योत्स्यामि भारद्वाजस्य पश्यतः ।

ये सारे वीर, मेरी ओर मुख किये हुए मुझ से युद्ध की अभिलाषा में स्थित हैं। हे सारथे ! अब तुम शीघ्र अश्वों को चलाओ और मुझे उनके पास पहुंचा दो । मैं भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य के देखते २ इन त्रिगर्तों के साथ युद्ध करूंगा ॥१८॥

ततः प्रायाच्छनैः सूतः सात्वतस्य मते स्थितः ॥

रथेनाऽऽदित्यवर्णेन भास्वरेण पताकिना ।

सात्वतवंशोत्पन्न सात्यकि की आज्ञानुसार सारथि, धीरे २ पताका से विभूषित, सूर्य सदृश चमकीले रथ से चल दिया ॥१९॥

तमूहुः सारथेर्वश्या वल्गमाना हयोत्तमाः ॥२०॥

वायुवेगसमाः संख्ये कुन्देन्दुरजतप्रभाः ।

सारथि के संकेत में चलने वाले, सात्यकि के उत्तम अश्व, वल्गा (लगाम) को चबा सी रहे थे । इन अश्वों का चमेली, चन्द्रमा और चाँदी का सा श्वेत चमकीला वर्ण था, जो रण में वायु के तुल्य वेगशाली थे ॥२०॥

आपतन्तं रणे तं तु शङ्खवर्णैर्हयोत्तमैः ॥२१॥

परिवव्रुस्ततः शूरा गजानीकेन सर्वतः ।

किरन्तो विविधांस्तीक्ष्णान्सायकाँल्लघुवेधिनः ॥२२॥

जब त्रिगर्तवीरों ने शङ्खवर्ण के सदृश श्वेत अश्व वाले सात्यकि को अपनी ओर आते देखा-तो वे हाथियों की सेना लेकर आगे बढ़े और उन्होंने सब ओर से सात्यकि को घेर लिया। शीघ्र लक्ष्य को बेध देने वाले, अनेक तीक्ष्ण बाणों को ये वीर, लगातार छोड़ रहे थे ॥२१-२२॥

सात्वतो निशितैर्बाणैर्गजानीकमयोधयत् ।
पर्वतानिव वर्षेण तपान्ते जलदो महान् ॥२३॥

सात्वतवंशश्रेष्ठ, सात्यकि भी त्रिगर्तों की गजसेना पर इस तरह बाणवर्षा कर रहे थे जैसे-वर्षाकाल में महामेघ, पर्वतों पर झड़ी लगा देते हैं ॥२३॥

वज्राशनिसमस्पर्शैर्वध्यमानाः शरैर्गजाः ।
प्राद्रवन्रणमुत्सृज्य शिनिवीरसमीरितैः ॥२४॥

शिनिवीर सात्यकि द्वारा छोड़े हुए वज्र और बिजली के सदृश भीषण बाणों से आहत हुए त्रिगर्तों के हाथी, रण छोड़ २ कर भागने लगे ॥२४॥

शीर्णदन्ता विरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डकाः ।
विशीर्णकर्णास्यकरा विनियन्तृपताकिनः ॥२५॥

सम्भिन्नवर्मघण्टाश्च विनिकृत्तमहाध्वजाः ।
हतारोहा दिशो राजन्भेजिरे भ्रष्टकम्बलाः ॥२६॥

इस समय अनेक हाथियों के दाँत टूट गए और मस्तक की गांठ फट गई थी तथा उनके शरीर से रुधिर की धारा बह रही थी ।

इनके कान, सूंड और पूंछ क्षत-विक्षत हो रहे थे। बहुत से हाथियों के आरोही (सवार) और पताका कटकर नीचे गिर चुकी थीं। बहुतों की घण्टा और बहुतों के कवच छिन्न-भिन्न हो गए। हाथी पर लगे हुए विशाल झंडे भी बहुतों के कट कर गिर गए। हे राजन! जब इनके नियन्ता (सवार) मारे गए-तो ये अपनी शालों को फेंक फाड़ कर अपनी इच्छानुसार दिशाओं को भाग निकले ॥२४-२६॥

क्वणन्तो विविधान्नादाञ्जलदोपमनिःस्वनाः ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भल्लैरञ्जलिकैस्तथा ॥२७॥
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च सात्वतेन विदारिताः ।
क्षरन्तोऽसृक्तथा मूत्रं पुरीषं च प्रदुद्रुवुः ॥२८॥
बभ्रमुश्चस्खलुश्चाऽन्ये पेतुर्मम्लुस्तथाऽपरे ।

ये हाथी, इस प्रकार की चिंघाड़ मारते थे, जैसे-कोई मेघ गर्जना कर रहे हों। नाराच, वत्सदन्त, भल्ल, अञ्जलिक, क्षुरप्र, अर्धचन्द्र आदि भिन्न २ प्रकार के बाणों से सात्यकि द्वारा क्षत-विक्षत किये हुए हाथियों के शरीर से रुधिर धारा बह रही थी और वे पीड़ा के कारण मूत्र और पुरीष (लीद) छोड़ते हुए भाग रहे थे। कोई चक्कर लगा रहे थे, कुछ डगमगा रहे थे, कुछ गिर रहे थे और कुछ मलिन मुख हो रहे थे ॥२७-२८॥

एवं तत्कुञ्जरानीकं युयुधानेन पीडितम् ॥२९॥
शरैरग्न्यर्कसङ्काशैः प्रदुद्राव समन्ततः ।

हे राजन् ! इस प्रकार सात्यकि ने अग्नि और सूर्य के सदृश जाज्वल्यमान बाणों द्वारा तुम्हारी गजसेना को बड़ा ही पीड़ित कर दिया। यह सारी सेना बड़ी व्यथित होकर सब ओर को भाग निकली ॥२६॥

तस्मिन्हते गजानीके जलसन्धो महाबलः ॥२०॥
यतः सम्प्रापयन्नागं रजताश्वरथं प्रति ।

जब इस प्रकार गजसेना नष्ट हो गई-तो महाबली जलसन्ध ने अपना हाथी, सात्यकि के चांदी के सदृश उज्ज्वल अश्वों वाले रथ की ओर बढ़ाया ॥३०॥

रुक्मवर्मधरः शूरस्तपनीयाङ्गदः शुचिः ॥२१॥
कुण्डली मुकुटी खड्गी रक्तचन्दनरूषितः ।

इस शूरवीर राजा जलसन्ध ने सुवर्ण का कवच और सुवर्ण के चमकीले अङ्गद भुजा में धारण कर रखे थे, जिनसे इसकी कान्ति अत्यन्त देदीप्यमान हो रही थी ॥३१॥

शिरसा धारयन्दीप्तां तपनीयमयीं स्रजम् ॥३२॥
उरसा धारयन्निष्कं कण्ठसूत्रं च भास्वरम् ।

इसने कुण्डल, मुकुट, खड्ग धारण कर रखे थे और लाल चन्दन से इसका शरीर लिप्त था। इसने अपने मस्तक में प्रदीप्त सुवर्ण की माला पहन रखी थी ॥३२॥

चापं च रुक्मविकृतं विधुन्वन्गजमूर्धनि ॥३३॥
अशोभत महाराज सविद्युदिव तोयदः ।

इसकी छाती पर हार पड़ा था और कण्ठ में चमकीला कण्ठ सूत्र था। यह अपने हाथी के मस्तक पर बैठा हुआ सुवर्णनिर्मित अपने धनुष को कँपा रहा था। हे महाराज! इस धनुष से इसकी शोभा बिजली से चमकीले मेघ की सी प्रतीत होती थी ॥२३॥

तमापतन्तं सहसा मागधस्य गजोत्तमम् ॥२४॥
सात्यकिर्वारयामास वेलेव मकरालयम् ।

मगधराज जलसन्ध के इस उत्तम हाथी को एकदम झपटते देखकर समुद्र को वेला की तरह सात्यकि ने उसे आगे बढ़ने से रोक दिया ॥२४॥

नागं निवारितं दृष्ट्वा शैनेयस्य शरोत्तमैः ॥२५॥
अक्रुध्यत रणे राजञ्जलसन्धो महाबलः ।

हे राजन्! शिनि-पौत्र सात्यकि के तीखे बाणों से अपने हाथी को विमुख होता देखकर महाबली जलसन्ध रण में कुपित हो उठा ॥२५॥

ततः क्रुद्धो महाराज मार्गणैर्भारसाधनैः ॥२६॥
अविध्यत शिनेः पौत्रं जलसन्धो महोरसि ।

हे महाराज! अब क्रोध में भरे हुए राजा जलसन्ध ने युद्ध के भार के साधन में समर्थ बाणों द्वारा शिनि-पौत्र सात्यकि के वक्षस्थल में प्रहार किया ॥२६॥

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥२७॥
अस्यतो वृष्णिवीरस्य निचकर्त शरासनम् ।

इसके अनन्तर जलसन्ध ने एक त्रिपदग्ध तीक्ष्ण बाण छोड़ा, जिससे उसने बाण फैंकते हुए वृष्णिवीर सात्यकि के धनुष को काट गिराया ॥३७॥

सात्यकिं छिन्नधन्वानं प्रहसन्निव भारत ॥३८॥
अविध्यन्मागधो वीरः पञ्चभिर्निशितैः शरैः ।

हे भारत ! जब सात्यकि का धनुष कट गया-तो मागधवीर जलसन्ध उस पर मुस्कुराने लगा और उसने पांच तीक्ष्ण बाण छोड़कर सात्यकि को क्षत-विक्षत कर दिया ॥३८॥

स विद्धो बहुभिर्बाणैर्जलसन्धेन वीर्यवान् ॥३९॥
नाऽकम्पत महाबाहुस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।

महापराक्रमी महाबाहु सात्यकि को यद्यपि मगधराज जलसन्ध ने बहुत क्षत विक्षत कर दिया, परन्तु वह तो भी कम्पित नहीं हुआ-यह उसका बहुत ही अद्भुत पराक्रम माना गया ॥३९॥

अचिन्तयन्वै स शरान्नाऽत्यर्थं सम्भ्रमाद्बली ॥४०॥
धनुरन्यत्समादाय तिष्ठतिष्ठेत्युवाच ह ।

महाबली सात्यकि ने जलसन्ध के इन बाणों की अधिक अपेक्षा (परवा) नहीं की और न वह कुछ सटपटाया । उसने दूसरा धनुष उठा कर जलसन्ध को ललकारा-जरा ठहरे रहो ॥४०॥

एतावदुक्त्वा शैनेयो जलसन्धं महोरसि ॥४१॥
विव्याध षष्ट्या सुभृशं शराणां प्रहसन्निव ।

शिनिपौत्र सात्यकि ने इतना कह कर हंसते २ जलसन्ध की विशाल छाती में साठ बाण बड़ी गाढ़ी तरह से मारे ॥४१॥

क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन मुष्टिदेशे महद्धनुः ॥४२॥
जलसन्धस्य चिच्छेद विव्याध च त्रिभिः शरैः ।

महारथी सात्यकि ने क्षुर के सदृश बड़े तीक्ष्ण बाण से मुष्टि के पास से राजा जलसन्ध का विशाल धनुष काट गिराया और फिर तीन बाण मार कर उसको भी आहत कर दिया ॥४२॥

जलसन्धस्तु तत्त्यक्त्वा सशरं वै शरासनम् ॥४३॥
तोमरं व्यसृजत्तूर्णं सात्यकिं प्रति मारिष ।

हे आर्य ! बलवान् जलसन्ध ने भी अपना कटा हुआ धनुष बाणसहित दूर फैंक दिया और बड़ी शीघ्रता से उसने तोमर नामक शस्त्र सात्यकि पर छोड़ा ॥४३॥

स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महारणे ॥४४॥
अभ्यगाद्धरणीं घोरः श्वसन्निव महोरगः ।

हे राजन् ! इस घोर संग्राम में इस तोमर ने वृष्णिवीर सात्यकि की बांयी भुजा चीर डाली और यह घोर तोमर शस्त्र महा-सर्प की भांति फूत्कार मारता हुआ पृथ्वी में घुस गया ॥४४॥

निर्भिन्ने तु भुजे सव्ये सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥४५॥
त्रिंशद्भिर्विशिखैस्तीक्ष्णैर्जलसन्धमताडयत् ।

जब सात्यकि की बांयी भुजा में तीक्ष्ण क्षत (घाव) हो गया तो सत्यपराक्रमी सात्यकि ने तीखे तीस बाण उठाकर जलसन्ध पर प्रहार किया ॥४५॥

प्रगृह्य तु ततः खड्गं जलसन्धो महाबलः ॥४६॥
आर्षभं चर्म च महच्छतचन्द्रकसंकुलम् ।
आविध्य च ततः खड्गं सात्वतायोत्ससर्ज ह ॥४७॥

महाबली जलसन्ध ने सैंकड़ों तारों से व्याप्त, वृषभ चर्म की विशाल ढ़ाल और तलवार निकाली तथा उस तलवार को खैंचकर वृष्णिवीर सात्यकि पर बड़े वेग से चलाई ॥४६-४७॥

शैनेयस्य धनुश्छित्वा स खड्गो न्यपतन्महीम् ।
अलातचक्रवच्चैव व्यरोचत महीं गतः ॥४८॥

शिनि-पौत्र सात्यकि के धनुष को काट कर वह खड्ग पृथ्वी में गिर गया। पृथिवी पर पड़ा हुआ वह खड्ग; अलातचक्र (पलीते) की तरह प्रदीप्त दिखाई देता था ॥४८॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय सर्वकायावदारणम् ।
शालस्कन्धप्रतीकाशमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥४९॥
विस्फार्य विव्यधे क्रुद्धो जलसन्धं शरेण ह ।

सात्यकि ने फिर सबकी काया के भेद देने वाले, शालवृक्ष के स्कन्ध के सदृश विशाल, इन्द्र के वज्र के तुल्य ध्वनि करने वाले दूसरे धनुष को उठाया। इसने इस धनुषको खैंचकर क्रोध के साथ राजा जलसन्ध पर बाण द्वारा प्रहार किया ॥४९॥

ततः साभरणौ बाहू क्षुराभ्यां माधवोत्तमः ॥५०॥
सात्यकिर्जलसन्धस्य चिच्छेद प्रहसन्निव ।

इस प्रकार वृष्णिवीर सात्यकि ने हँसते २ राजा जलसन्ध की आभूषणों से विभूषित भुजाओं को क्षुर के सदृश दो बाण मार कर काट डाला ॥५०॥

तौ बाहू परिघप्रख्यौ पेततुर्गजसत्तमात् ॥५१॥
वसुन्धराधराद्भ्रष्टौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ ।

परिघ नामक शस्त्र के तुल्य वे दोनों जलसन्ध की भुजाएँ उस गजश्रेष्ठ से इस तरह गिरी जैसे-पर्वत के शिखर से पांच शिर वाले दो सर्प गिरे हों ॥५१॥

ततः सुदंष्ट्रं सुमहच्चारुकुण्डलमण्डितम् ॥५२॥
क्षुरेणाऽस्य तृतीयेन शिरश्चिच्छेद सात्यकिः ।

इसके अनन्तर शोभनदंष्ट्राधारी, श्रेष्ठ कुण्डलों से विभूषित, राजा जलसन्ध के विशाल मस्तक को क्षुरोपम तीखे तीसरे बाण से सात्यकि ने काट गिराया ॥५२॥

तत्पातितशिरोबाहुकबन्धं भीमदर्शनम् ॥५३॥
द्विरदं जलसन्धस्य रुधिरेणाऽभ्यषिञ्चत ।

जब राजा जलसन्ध के बाहु और मस्तक कट कर गिर गए-तो उस समय जलसन्ध का कबन्ध बड़ा ही भयङ्कर दिखाई देने लगा। जलसन्ध के कबन्ध से इतनी रुधिरधारा निकली, कि जिससे उसका हाथी बिल्कुल भीग गया ॥५३॥

जलसन्धं निहत्याऽऽजौ त्वरमाणस्तु सात्वतः ॥५४॥
विमानं पातयामास गजस्कन्धाद्विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! बड़ी शीघ्रता से जलसन्ध को मार कर सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि ने उसके हाथी के स्कन्धों पर रक्खे हुए विमान (हौदे) को भी नीचे गिरा दिया ॥५४॥

रुधिरेणाऽवसिक्ताङ्गो जलसन्धस्य कुञ्जरः ॥५५॥
विलम्बमानमवहत्संश्लिष्टं परमासनम् ।

राजा जलसन्ध का हाथी, रक्त में अच्छीतरह भीगा हुआ था और उसकी पीठ पर वह विशाल आसन (हौदा) लटक रहा था ॥५५॥

शरार्दितः सात्वतेन मर्दमानः स्ववाहिनीम् ॥५६॥
घोरमार्त्तस्वरं कृत्वा विदुद्राव महागजः ।

सात्वतवीर सात्यकि के बाण से पीड़ित हुआ यह महागज, बड़ी भारी चिंघाड़ मार कर अपनी ही सेना को कुचलता हुआ रणाजिर से भाग निकला ॥५६॥

हाहाकारो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ॥५७॥
जलसन्धं हतं दृष्ट्वा वृष्णीनामृषभेण तु ।

हे आर्यवीर ! जब वृष्णिवंशश्रेष्ठ सात्यकि द्वारा राजा जलसन्ध का मारा जाना तुम्हारी सेना ने सुना-तो, उस समय उसमें बड़ा भारी हाहाकार मच गया ॥५७॥

विमुखाश्चाऽभ्यधावन्त तव योधाः समन्ततः ॥५८॥
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विपज्जये ।

हे राजन ! इस समय तुम्हारे सारे योद्धा रण से पराङ्मुख होकर दौड़ जा रहे थे। उनको केवल भागने की सूझ पड़ती थी, किसी को शत्रु के जीतने का उत्साह नहीं था ॥५८॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन्द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥५९॥
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्युयुधानं महारथम् ।

हे राजन ! इसी अन्तर में समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य, अपने वेगशाली अश्वों के द्वारा महारथी युयुधान (सात्यकि) पर वेग से दौड़े ॥५९॥

तमुदीर्णं तथा दृष्ट्वा शैनेयं नरपुङ्गवाः ॥६०॥
द्रोणेनैव सह क्रुद्धाः सात्यकिं समुपाद्रवन् ।

कौरववीरों ने इस प्रकार सात्यकि को जब आगे बढ़ता देखा तो उन्होंने क्रोध में भर कर द्रोण के साथ सात्यकि पर शीघ्रता से आक्रमण किया ॥६०॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां सात्वतस्य च ॥
द्रोणस्य च रणे राजन्घोरं देवासुरोपमम् ॥६१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे जलसन्धवधो नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

हे राजन् ! अब कौरव महारथी तथा द्रोणाचार्य और सात्वत वीर सात्यकि का परस्पर देवासुर संग्राम के सदृश भीषण युद्ध होने लगा ॥६१॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सात्यकि के प्रवेश और राजा जलसन्ध की मृत्यु का एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

---

# एक सौ सोलहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ते किरन्तः शरव्रातान्सर्वे यत्ताः प्रहारिणः।
त्वरमाणा महाराज युयुधानमयोधयन् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज! इस समय आपके पक्ष के सारे प्रहार करने में कुशल सावधान वीर, शरसमूह को फैंकते हुए बड़ी शीघ्रता से सात्यकि पर टूट पड़े ॥१॥

तं द्रोणः सप्तसप्तत्या जघान निशितैः शरैः।
दुर्मर्षणो द्वादशभिर्दुःसहो दशभिः शरैः ॥२॥
विकर्णश्चापि निशितैस्त्रिंशद्भिः कङ्कपत्रिभिः।
विव्याध सव्ये पार्श्वे तु स्तनाभ्यामन्तरे तथा ॥३॥

वृष्णिवीर सात्यकिको सतहत्तर तीखे बाण छोड़कर द्रोणाचार्य, बारह बाण से दुर्मर्षण और दश बाण से दुःसह तथा कङ्क पक्षी के पंखों से सुशोभित, तीस तीक्ष्ण बाणों से विकर्ण ने आहत किया। इन्होंने सात्यकि के दांये पार्श्व और वक्षस्थल को लक्ष्य कर २ के बाण मारे ॥२-३॥

दुर्मुखो दशभिर्बाणैस्तथा दुःशासनोऽष्टभिः ।
चित्रसेनश्च शैनेयं द्वाभ्यां विव्याध मारिष ॥४॥

हे आर्य ! इसी तरह धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्मुख ने दश और दुःशासन ने आठ तथा चित्रसेन ने दो बाण मार कर शिनि-पौत्र सात्यकि को बींध डाला ॥४॥

दुर्योधनश्च महता शरवर्षेण माधवम् ।
अपीडयद्रणे राजञ्शूराश्चाऽन्ये महारथाः ॥५॥

हे राजन् ! राजा दुर्योधन ने बड़ी भारी बाणवर्षा करके वृष्णिवंशश्रेष्ठ, सात्यकि को रण में बहुत ही व्यथित कर डाला और इसी तरह अन्य शूरवीर कौरव महारथियों ने भी सात्यकि को बड़ा ही पीड़ित किया ॥५॥

सर्वतः प्रतिविद्धस्तु तव पुत्रैर्महारथैः ।
तान्प्रत्यविध्यद्वार्ष्णेयः पृथक्पृथगजिह्मगैः ॥६॥

हे भरतर्षभ ! इस प्रकार तुम्हारे वीर पुत्रों द्वारा सब ओर से बींधे हुए सात्यकि ने भी तुम्हारे महारथी पुत्रों को सीधे जाने वाले बाणों से पृथक् २ आहत (घायल) कर डाला ॥६॥

भारद्वाजं त्रिभिर्बाणैर्दुःसहं नवभिः शरैः ।
विकर्णं पञ्चविंशत्या चित्रसेनं च सप्तभिः ॥७॥
दुर्मर्षणं द्वादशभिरष्टाभिश्च विविंशतिम् ।
सत्यव्रतं च नवभिर्विजयं दशभिः शरैः ॥८॥

हे भारत ! सात्यकि ने; भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य के तीन, तुम्हारे पुत्र दुःसह के नौ, विकर्ण के पच्चीस, चित्रसेन के सात, दुर्मर्षण के बारह, विविंशति के आठ, सत्यव्रत के नौ और विजय के दश बाण मारे ॥७-८॥

ततो रुक्माङ्गदं चापं विधुन्वानो महारथः ।
अभ्ययात्सात्यकिस्तूर्णं पुत्रं तव महारथम् ॥९॥
राजानं सर्वलोकस्य सर्वलोकमहारथम् ।
शरैरभ्याहनद्गाढं ततो युद्धमभूत्तयोः ॥१०॥

हे भरतर्षभ ! इसके अनन्तर महारथी सात्यकि, अपने सुवर्णमय धनुष को कँपाता हुआ, तुम्हारे महारथी पुत्र, सब लोक में प्रसिद्ध योद्धा, सारे संसार के सम्राट्, राजा दुर्योधन पर बड़े वेग से झपट कर उन्हें बाणों से अच्छीतरह आहत करने लगा। इस प्रकार इन दोनों का महाघोर युद्ध छिड़ गया ॥९-१०॥

विमुञ्चन्तौ शरांस्तीक्ष्णान्सन्दधानौ च सायकान् ।
अदृश्यं समरेऽन्योन्यं चक्रतुस्तौ महारवौ ॥११॥

गर्जते हुए ये दोनों वीर राजा दुर्योधन और सात्यकि, तीक्ष्ण बाणों को छोड़ते और फिर शीघ्र धनुष पर चढ़ा लेते थे। इस प्रकार बाणवर्षा करके एक ने दूसरे महारथी को अत्यन्त अदृश्य कर दिया ॥११॥

सात्यकिः कुरुराजेन निर्विद्धो व्यशोभत ।
अस्रवद्रुधिरं भूरि स्वरसं चन्दनो यथा ॥१२॥

कुरुराज दुर्योधन द्वारा बींधा हुआ सात्यकि, बड़ा ही सुशोभित हुआ। उसके शरीर से रुधिर की धारा इस तरह निकल रही थी, जैसे चन्दन के वृक्ष से रस धारा बह रही हो ॥१२॥

सात्वतेन च बाणौघैर्निर्विद्धस्तनयस्तव ।
शातकुम्भमयापीडो बभौ यूप इवोच्छ्रितः ॥१३॥

हे राजन! इसी प्रकार सात्यकि ने अपने बाणसमूह से तुम्हारे पुत्र दुर्योधन को पाट दिया, जिससे वह ऐसा शोभित हो रहा था, जैसे सुवर्ण की माला से यज्ञस्तूप सुशोभित हो रहा हो।

माधवस्तु रणे राजन्कुरुराजस्य धन्विनः ।
धनुश्चिच्छेद समरे क्षुरप्रेण हसन्निव ॥१४॥

हे राजन! सात्यकि ने रण में धनुषधारी कुरुराज के धनुष को अपने क्षुर के सदृश तीक्ष्ण बाण से हँसते २ काट गिराया।१४।

अथैनं छिन्नधन्वानं शरैर्बहुभिराचिनोत् ।
निर्भिन्नश्च शरैस्तेन द्विषता क्षिप्रकारिणा ॥१५॥
नाऽमृष्यत रणे राजा शत्रोर्विजयलक्षणम् ।
अथाऽन्यद्धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥१६॥
विव्याध सात्यकिं तूर्णं सायकानां शतेन ह ।

जब कुरुराज का धनुप कट गया तो सात्यकि ने उसे बहुत से बाणों से आच्छादित कर दिया। जब शीघ्रताकारी शत्रु द्वारा बाणों से राजा दुर्योधन क्षतविक्षत हो गया तो वह अपने शत्रु के इस

विजय कार्य का सहन नहीं कर सका-अब उसने सुवर्ण की पीठ वाला, दुरासद धनुष उठाया और उससे सैंकड़ों बाण छोड़कर सात्यकि को बींध डाला ॥१५-१६॥

सोऽतिविद्धोः बलवता तव पुत्रेण धन्विना ॥१७॥
अमर्षवशमापन्नस्तव पुत्रमपीडयत् ।

हे राजन् ! तुम्हारे धनुषधारी बलवान् पुत्र द्वारा आहत हुआ, सात्यकि, क्रोध से भर गया और वह भी तुम्हारे पुत्र को पीड़ा पहुंचाने लगा ॥१७॥

पीडितं नृपतिं दृष्ट्वा तव पुत्रा महारथाः ॥१८।
सात्यकिं शरवर्षेणच्छादयामासुरोजसा ।

जब तुम्हारे अन्य पुत्रों ने राजा दुर्योधन को पीड़ित देखा तो वे सब अपनी २ शक्ति लगा कर सात्यकि को बाणवर्षा से पाटने लगे ॥१८॥

स च्छाद्यमानो बहुभिस्तव पुत्रैर्महारथैः ॥१९॥
एकैकं पञ्चभिर्विध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ।

हे भरतर्षभ ! तुम्हारे महारथी अनेक पुत्रों द्वारा बाणों से आच्छादित हुए, सात्यकि ने प्रत्येक महारथी को पांच २ बाणों से और फिर सात बाणों से आहत किया ॥१९॥

दुर्योधनं च त्वरितो विव्याधाऽष्टभिराशुगैः ॥२०॥
प्रहसंश्चाऽस्य चिच्छेद कार्मुकं रिपुभीषणम् ।
नागं मणिमयं चैव शरैर्ध्वजमपातयत् ॥२१॥

इसके अनन्तर सात्यकि ने आशुगामी आठ बाण छोड़कर राजा दुर्योधन को बींध लिया और हंसते २ उनके शत्रु के भय दायी धनुष को क्षण भर में काट डाला तथा बाण मार कर उसके मणिजटित हाथी के चिन्ह से सुशोभित ध्वजा को काट गिराया।

हत्वा तु चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः।
सारथिं पातयामास क्षुरप्रेण महायशाः ॥२२॥

चार तीक्ष्ण बाणों से महायशस्वी सात्यकि ने चारों कुरुराज के अश्वों को मार कर एक क्षुर के सदृश तीक्ष्ण बाण से सारथि को गिरा दिया ॥२२॥

एतस्मिन्नन्तरे चैव कुरुराजं महारथम्।
अवाकिरच्छरैर्हृष्टो बहुभिर्मर्मभेदिभिः ॥२३॥

इस प्रकार बड़े उत्साह से सात्यकि ने मर्मभेदी बाण मार कर राजा दुर्योधन को व्याप्त कर दिया ॥२३॥

स वध्यमानः समरे शैनेयस्य शरोत्तमैः।
प्राद्रवत्सहसा राजन्पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥२४॥

हे राजन्! शिनि-पौत्र के तीक्ष्ण बाणों से रण में आहत हुआ तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन, एक दम रण से दूसरी ओर खसक गया ॥२४॥

आप्लुतश्च ततो यानं चित्रसेनस्य धन्विनः।
हाहाभूतं जगच्चाऽऽसीद् दृष्ट्वा राजनमाहवे ॥२५॥
ग्रस्यमानं सात्यकिना खे सोममिव राहुणा।

अब राजा दुर्योधन, कूद कर धनुषधारी चित्रसेन के रथ पर जा बैठे। आकाश में राहु द्वारा चन्द्रमा के ग्रसन के सदृश, सात्यकि द्वारा राजा दुर्योधन का पराभव देखकर रणभूमि में, हाहाकार मच गया ॥२५॥

तं तु शब्दमथ श्रुत्वा कृतवर्मा महारथः ॥२६॥
अभ्ययात्सहसा तत्र यत्राऽऽस्ते माधवः प्रभुः।

इस महान् कोलाहल को सुनकर महारथी कृतवर्मा, एकदम आगे बढ़ा और वहां पहुंचा-जहां सात्यकि, डटा हुआ था ॥२६॥

विधुन्वानो धनुःश्रेष्ठं चोदयंश्चैव वाजिनः ॥२७॥
भर्त्सयन्सारथिं चाऽग्रैः याहि याहीति सत्वरम्।

कृतवर्मा अपना धनुष कंपा रहे थे और अश्वों को वेग से बढ़ने की प्रेरणा कर रहे थे। यह अपने सारथि को आगे चल, शीघ्र आगे बढ़-इस तरह फटकार से रहे थे ॥२७॥

तमापतन्तं सम्प्रेच्य व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ॥२८॥
युयुधानो महाराज यन्तारमिदमब्रवीत्।

हे महाराज! मुख खोले हुए काल के सदृश, झपटते हुए कृतवर्मा को देखकर सात्यकि भी अपने सारथि से बोला ॥२८॥

कृतवर्मा रथेनैष द्रुतमापतते शरी ॥२६॥
प्रत्युद्याहि रथेनैनं प्रवरं सर्वधन्विनाम्।

हे सूत! यह देखो? धनुष बाण धारी, कृतवर्मा, रथ के द्वारा कितनी तीव्रता से आगे बढ़ा चला आ रहा है। तुम भी धनुर्धरों में श्रेष्ठ, इस महारथी की ओर अपना रथ बढ़ाओ ॥२६॥

ततः अजविताश्वेन विधिवत्कल्पितेन च ॥३०॥
आससाद रणे भोजं प्रतिमानं धनुष्मताम् ।

अब सात्यकि के सारथि ने विधि-पूर्वक चलाए हुए वेगशाली अश्वों द्वारा, सब धनुषधारियों में श्रेष्ठ, भोजराज कृतवर्मा को रण में जा पकड़ा ॥३०॥

ततः परमसंक्रुद्धौ ज्वलिताविव पावकौ ॥३१॥
समेयातां नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ।

प्रज्वलित अग्नि के सदृश ये दोनों महारथी क्रोध में जल उठे। ये नरप्रवीर इस तरह भिड़ गए-जैसे शक्तिशाली दो सिंह वन में युद्ध करने लगे हो ॥३१॥

कृतवर्मा तु शैनेयं षड्विंशत्या समार्पयत् ॥३२॥
निशितैः सायकैस्तीक्ष्णैर्यन्तारं चाऽस्य पञ्चभिः ।

कृतवर्मा ने सात्यकि पर छब्बीस बाण छोड़े और पांच तीक्ष्ण चमकीले बाण छोड़कर इसके सारथि को बींध लिया ॥३२॥

चतुरश्चतुरो वाहांश्चतुर्भिः परमेषुभिः ॥३३॥
अविध्यत्साधुदान्तान्वै सैन्धवान्सात्वतस्य हि ।

इसी तरह चार अन्य उत्तम बाण छोड़कर कृतवर्मा ने सात्यकि के सिन्धुदेशोत्पन्न उत्तम अश्वों को बींध डाला ॥३३॥

रुक्मध्वजो रुक्मपृष्ठं महद्विस्फार्य कार्मुकम् ॥३४॥
रुक्माङ्गदी रुक्मवर्मा रुक्मपुङ्खैरवारयत् ।

सुवर्ण की ध्वजा से विभूषित, सुवर्ण के अङ्गद और कवचधारी कृतवर्मा ने अपने सुवर्ण की पीठ वाले विशाल धनुष को चढ़ा कर सात्यकि को वहीं रोक दिया ॥३४॥

ततोऽशीतिं शिनेः पौत्रः सायकान्कृतवर्मणे ॥३५॥

प्राहिणोत्त्वरया युक्तो द्रष्टुकामो धनञ्जयम् ।

सात्यकि, बड़ी शीघ्रता से धनञ्जय अर्जुन के पास पहुंच जाना चाहते थे, अतएव शिनि-पौत्र सात्यकि ने कृतवर्मा पर अस्सी बाण छोड़े ॥३५॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ॥३६॥

समकम्पत दुर्धर्षः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ।

बलवान् शत्रु सात्यकि द्वारा शत्रुतापी कृतवर्मा, बड़ा ही आहत कर दिया गया। इस समय वह दुर्धर्ष पृथ्वी के कांपने के समय पर्वत के डगमगाने की तरह विचलित हो उठा ॥३६॥

त्रिषष्ट्या चतुरोऽस्याऽश्वान्सप्तभिः सारथिं तथा ॥

विव्याध निशितैस्तूर्णं सात्यकिः सत्यविक्रमः ।

सत्यपराक्रमी सात्यकि ने तरेसठ तीक्ष्ण बाण छोड़कर कृतवर्मा के अश्वों को और सात बाणों द्वारा सारथि को आहत किया ॥३७॥

सुवर्णपुङ्खविशिखं समाधाय च सात्यकिः ॥३८॥

व्यसृजत्तं महाज्वालं संक्रुद्धमिव पन्नगम् ।

सोऽविध्यत्कृतवर्माणं यमदण्डोपमः शरः ॥३९॥

अब सात्यकि ने, सुवर्णमूलवाले बाण को धनुष पर चढ़ाया और क्रोधाविष्ट सर्प की तरह जाज्वल्यमान इस बाण को कृतवर्मा पर छोड़ दिया। यम दण्ड के तुल्य भीषण इस बाणने कृतवर्मा को बींध डाला ॥३८-३९॥

जाम्बूनदविचित्रं च वर्म निर्भिद्य भानुमत्।
अभ्यगाद्धरणीमुग्रो रुधिरेण समुक्षितः ॥४०॥

रुधिर से भीगा हुआ वह उग्र बाण, इसके चमकीले सुवर्ण निर्मित कवच को बींध कर धरणी में घुस गया ॥४०॥

सञ्जातरुधिरश्चाऽऽजौ सात्वतेषुभिरर्दितः।
संशरं धनुरुत्सृज्य न्यपतत्स्यन्दनोत्तमात् ॥४१॥

इस घोर संग्राम में सात्यकि के बाण से आहत हुआ कृतवर्मा रुधिर में भीग गया और वह बाण सहित धनुष छोड़कर रथ में गिर पड़ा ॥४१॥

स सिंहदंष्ट्रो जानुभ्यां पतितोऽमितविक्रमः।
शरार्दितः सात्यकिना रथोपस्थे नरर्षभः ॥४२॥

यह अत्यन्त पराक्रमी, सिंह के सदृश दांतों वाला, नरवीर कृतवर्मा, सात्यकि के बाण से व्यथित होकर रथ के मध्य में गोडों के बल गिर पड़ा ॥४२॥

सहस्रबाहुसदृशमक्षोभ्यमिव सागरम्।
निवार्य कृतवर्माणं सात्यकिः प्रययौ ततः ॥४३॥

विचलित नहीं होने वाले समुद्र की तरह अक्षुभित, सहस्रबाहु तुल्य पराक्रमी कृतवर्मा को अपने मार्ग से हटा कर सात्यकि आगे बढ़ा ॥४३॥

खड्गशक्तिधनुःकीर्णां गजाश्वरथसंकुलाम् ।
प्रवर्त्तितोग्ररुधिरां शतशः क्षत्रियर्षभैः ॥४४॥
प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां मध्येन शिनिपुङ्गवः ।
अभ्यगाद्वाहिनीं हित्वा वृत्रहेवाऽऽसुरीं चमूम् ॥४५॥

खड्ग, शक्ति, धनुष से व्याप्त, गज-अश्व और रथों से भरी हुई, रुधिरधारा से परिपूर्ण नदी को छोड़कर असुरसेना के मध्य से इन्द्र की भांति, सैंकड़ों कौरव क्षत्रियवीरों के देखते २ उस सेना से सात्यकि निकल गया ॥४४-४५॥

समाश्वस्य च हार्दिक्यो गृह्य चाऽन्यन्महद्धनुः ।
तस्थौ स तत्र बलवान्वारयन्युधि पाण्डवान् ॥४६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुर्योधनकृतवर्मपराजये षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

अब थोड़ी देर में हृदिक-पुत्र कृतवर्मा को आश्वासन मिला तो उसने फिर विशाल धनुष उठाया और वह बलवान्, युद्ध में पाण्डवों को रोकता हुआ उनके सन्मुख डट गया ॥४६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सात्यकि प्रवेश और राजा दुर्योधन और कृतवर्मा के पराजय का एक सौ सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ

# एक सौ सत्रहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

काल्यमानेषु सैन्येषु शैनेयेन ततस्ततः।
भारद्वाजः शरव्रातैर्महद्भिः समवाकिरत् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! शिनि-पौत्र सात्यकि, रणाङ्गण में इधर उधर कौरवसेना को ललकार रहा था, कि इतने में आगे बढ़कर भरद्वाज-वंशज, द्रोणाचार्य ने बड़ी भारी बाणवर्षा करके सात्यकि को आच्छादित कर दिया ॥१॥

स सम्प्रहारस्तुमुलो द्रोणसात्वतयोरभूत्।
पश्यतां सर्वसैन्यानां बलिवासवयोरिव ॥२॥

इस समय द्रोणाचार्य और सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि में बड़ा घमसान युद्ध हुआ। सारी सेना खड़ी २ देखती रही। यह युद्ध बलिदैत्य और इन्द्र के तुल्य भीषण था ॥२॥

ततो द्रोणः शिनेः पौत्रं चित्रैः सर्वायसैः शरैः।
त्रिभिराशीविषाकारैर्ललाटे समविध्यत ॥३॥

इसके अनन्तर शिनि-पौत्र के ललाट में द्रोणाचार्य ने लोह निर्मित, अद्भुत आशीविष सर्प के सदृश भीषण तीन बाण मारे।

तैर्ललाटार्पितैर्बाणैर्युयुधानस्त्वजिह्मगैः।
व्यरोचत महाराज त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥४॥

हे महाराज ! ललाट में गड़े हुए उन सीधे जाने वाले बाणों से सात्यकि, तीन शिखरों से सुशोभित पर्वत की भांति सुशोभित होने लगा ॥४॥

ततोऽस्य बाणानपरानिन्द्राशनिसमस्वनान् ।
भारद्वाजोऽन्तरप्रेक्षी प्रेषयामास संयुगे ॥५॥

थोड़ी ही देर में अन्तर (मौका) देखकर द्रोणाचार्य ने रण में इन्द्र वज्र के सदृश शब्द करने वाले अन्य बाण सात्यकि पर फेंके।

तान्द्रोणचापनिर्मुक्तान्दाशार्हः पततः शरान् ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां सुपुङ्खाभ्यां चिच्छेद परमास्त्रवित् ॥

दशार्हदेशोत्पन्न, युद्धविद्या में कुशल, सात्यकि ने द्रोणाचार्य के धनुष से निकलते ही, उन बाणों को मार्ग में ही अपने सुन्दर मूलधारी बाणों से काट गिराया ॥३॥

तामस्य लघुतां द्रोणः समवेक्ष्य विशाम्पते ।
प्रहस्य सहसाऽविध्यत्त्रिंशता शिनिपुङ्गवम् ॥७॥

हे विशाम्पते ! द्रोणाचार्य, सात्यकि की इस शीघ्रता (फ़ुर्ती) को देखकर कुछ मुस्कुरा दिया और फिर उसने सात्यकि पर एकदम तीस बाण छोड़े ॥७॥

पुनः पञ्चाशतेषूणां शितेन च समार्पयत् ।
लघुतां युयुधानस्य लाघवेन विशेषयन् ॥८॥

हे राजन् ! फिर आचार्य द्रोण ने सात्यकि की लघुता (फ़ुर्ती) को अपनी लघुता द्वारा जीतने के अभिप्राय से एकदम पचास तीक्ष्ण बाणों का प्रयोग किया ॥८॥

समुत्पतन्ति वल्मीकाद्यथा क्रुद्धाः महोरगाः ।
तथा द्रोणरथाद्राजन्नापतन्ति तनुच्छिदः ॥९॥

हे राजन् ! जैसे-वल्मीक से क्रुद्ध होकर बड़े २ सर्पों का समूह निकल रहा हो-इसी तरह द्रोण के रथ से शरीर के भेद देने वाले बाण निकल रहे थे ॥९॥

तथैव युयुधानेन सृष्टाः शतसहस्रशः ।
अवाकिरन्द्रोणरथं शरा रुधिरभोजनाः ॥१०॥

इसी तरह सैंकड़ों सहस्रों की सङ्ख्या में रुधिर के चाट जाने वाले बाण सात्यकि ने छोड़े, जिनसे द्रोणाचार्य का रथ आच्छादित हो गया ॥१०॥

लाघवाद् द्विजमुख्यस्य सात्वतस्य च मारिष ।
विशेषं नाऽभ्यगच्छाम समावास्तां नरर्षभौ ॥११॥

हे आर्य ! द्विजश्रेष्ठ, द्रोणाचार्य और सात्वतश्रेष्ठ सात्यकि, इन दोनों में इतनी लघुता थी, कि उनमें किसी प्रकार की विशेषता (फर्क) नहीं की जा सकती थी। ये दोनों नरप्रवीर युद्ध कुशलता में बिल्कुल समान थे ॥११॥

सात्यकिस्तु ततो द्रोणं नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो ध्वजं च निशितैः शरैः ॥१२॥
सारथिं च शतेनैव भारद्वाजस्य पश्यतः ।

अब सात्यकि ने अत्यन्त क्रोध में भर कर नौ नतपर्ववाले बाणों से द्रोणाचार्य और अन्य तीखे बाणों से उसकी ध्वजा पर

प्रहार किया । इसी प्रकार सौ बाण, द्रोणाचार्य के देखते देखते उसके सारथि पर छोड़ दिए ॥१२॥

लाघवं युयुधानस्य दृष्ट्वा द्रोणो महारथः ॥१३॥
सप्तत्या सारथिं विध्वा तुरङ्गांश्च त्रिभिस्त्रिभिः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद माधवस्य रथे स्थितम् ॥१४॥

महारथी द्रोणाचार्य ने इस प्रकार युयुधान (सात्यकि) का हस्तलाघव देखकर सारथि पर सत्तर बाण छोड़ और तीन २ बाण मार कर उसके अश्वों को आहत कर दिया । इसी प्रकार सात्यकि के रथ पर स्थित ध्वजा को भी एक तीक्ष्ण बाण मार कर काट डाला ॥१३-१४॥

अथाऽपरेण भल्लेन हेमपुङ्खेन पत्रिणा ।
धनुश्चिच्छेद समरे माधवस्य महात्मनः ॥१५॥

इसी के साथ आचार्य द्रोण ने, सुवर्णमूलधारी, एक अन्य उड़ने वाला बाण मार कर क्रोध-पूर्वक महावीर सात्यकि का धनुष काट डाला ॥१५॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धनुस्त्यक्त्वा महारथः ।
गदां जग्राह महतीं भारद्वाजाय चाऽक्षिपत् ॥१६॥

महारथी, सात्यकि अब क्रोध से व्याकुल हो गया । उसने अपना खण्डित धनुष फैंक कर एक विशाल गदा उठाई और उसे द्रोणाचार्य पर बड़े वेग से चलाई ॥१६॥

तामापतन्तीं सहसा पट्टबद्धामयस्मयीम् ।
न्यवारयच्छरैर्द्रोणो बहुभिर्बहुरूपिभिः ॥१७॥

रेशमी सूत्र से वेष्टित, लोहनिर्मित, उस गदा को अपने ऊपर पड़ती हुई देखकर द्रोणाचार्य ने अनेक रूप के अनेक बाण छोड़कर उसे बीच में ही काट गिराया ॥१७॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
विव्याध बहुभिर्वीरं भारद्वाजं शिलाशितैः ॥१८॥

सत्यपराक्रमशाली, सात्यकि ने अब दूसरा धनुष ग्रहण किया और बहुत से बाणों से उसने द्रोणाचार्य को बींध डाला ॥१८॥

स विद्ध्वा समरे द्रोणं सिंहनादममुञ्चत ।
तं वै न ममृषे द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥१९॥

इस प्रकार सात्यकि, द्रोणाचार्य को रण में आहत करके सिंहनाद करने लगा । समस्त शस्त्रधारियोंमें उत्तम द्रोण, इसके इस प्रहार को क्षमा नहीं कर सका ॥१९॥

ततः शक्तिं गृहीत्वा तु रुक्मदण्डामयस्मयीम् ।
तरसा प्रेषयामास माधवस्य रथं प्रति ॥२०॥

उसने अब सुवर्णदण्डयुक्त लोह की शक्ति को उठाकर बड़े वेग से सात्यकि के रथ पर छोड़ा ॥२०॥

अनासाद्य तु शैनेयं सा शक्तिः कालसन्निभा ।
भित्त्वा रथं जगामोग्रा धरणीं दारुणस्वना ॥२१॥

हे राजन ! काल के सदृश भीषण वह शक्ति, शिनिवंशज सात्यकि तक नहीं पहुंच पाई और वह रथ के टूक टूक करके बड़ा भारी शब्द करती हुई पृथिवी में धस गई ॥२१॥

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो राजन्विव्याध पत्रिणा ।
दक्षिणं भुजमासाद्य पीडयन्भरतर्षभः ॥२२॥

हे भरतर्षभ ! इसके अनन्तर सात्यकि ने एक बाण छोड़ा, जिससे द्रोणाचार्य की दांयी भुजा को बड़ी चोट पहुंची ॥२२॥

द्रोणोऽपि समरे राजन्माधवस्य महद्धनुः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद रथशक्त्या च सारथिम् ॥२३॥

हे राजन ! इस घोर युद्ध में द्रोणाचार्य ने भी माधव (सात्यकि) के विशाल धनुष को फिर अर्धचन्द्र नामक बाण से काट दिया और रथशक्ति के प्रहार से सारथि को आहत कर दिया ॥२३॥

मुमोह सारथिस्तस्य रथशक्त्या समाहतः ।
स रथोपस्थमासाद्य मुहूर्तं संन्यषीदत ॥२४॥

उस रथशक्ति से आहत हुए सारथि को मूर्च्छा प्राप्त हो गई । वह अपने रथ के आसन पर थोड़ी देर मोहित हुआ बैठा रहा ।

चकार सात्यकी राजन्सूतकर्माऽतिमानुषम् ।
अयोधयच्च यद् द्रोणं रश्मीञ्जग्राह च स्वयम् ॥२५॥

हे राजन् ! अब अन्य सारथियों से भी असम्भव, कुशलता-पूर्वक सारथिकर्म को करता हुआ सात्यकि, रथ हांकने

लगा-यह उसका बड़ा ही अद्‌भुत काम था, जो एक ओर तो द्रोणाचार्य से युद्ध करता जाता था और दूसरी ओर रथ की रश्मियां (रास) पकड़े हुए था ॥२५॥

ततः शरशतेनैव युयुधानो महारथः ।
अविध्यद्‌ब्राह्मणं संख्ये हृष्टरूपो विशाम्पते ॥२६॥

हे विशाम्पते ! अब महारथी युयुधान (सात्यकि) ने, सौ बाण मार कर रण में बड़े उत्साह पूर्वक ब्राह्मणश्रेष्ठ, द्रोणाचार्य को आहत कर दिया ॥२६॥

तस्य द्रोणः शरान्पञ्च प्रेषयामास भारतः ।
ते घोराः कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥२७॥

हे भारत ! इस घोर संग्राम में द्रोणाचार्य ने पांच घोर बाण छोड़े, जो सात्यकि के कवच को बींध कर उसके रक्त को चाट गए ॥२७॥

निर्विद्धस्तु शरैर्घोरैरक्रुद्ध्यत्सात्यकिर्भृशम् ।
सायकान्व्यसृजच्चाऽपि वीरो रुक्मरथं प्रति ॥२८॥

इन घोर बाणों से क्षत-विक्षत हुए सात्यकि के हृदय में क्रोध उबल उठा। वह वीर, सुवर्णरथवाले द्रोणाचार्य पर बाणों की वर्षा करने लगा ॥२८॥

ततो द्रोणस्य यन्तारं निपात्यैकेषुणा भुवि ।
अश्वान्व्यद्रावयद्बाणैर्हतसूतांस्ततस्ततः ॥२९॥

सात्यकि ने अपने एक बाण को मार कर रणभूमि में द्रोणाचार्य के सारथि को गिरा दिया और फिर बहुत से बाण मार मार कर उसके अश्वों को भी इधर उधर भगा दिया ॥२६॥

स रथः प्रद्रुतः संख्ये मण्डलानि सहस्रशः ।
चकार राजतो राजन्भ्राजमान इवांऽशुमान् ॥३०॥

हे राजन् ! द्रोणाचार्य का रथ, सूर्य की तरह चमक रहा था । वह रण में सहस्रों मण्डल बनाता हुआ, सुशोभित होने लगा ॥३०॥

अभिद्रवत गृह्णीत हयान्द्रोणस्य धावत ।
इति स्म चुक्रुशुः सर्वे राजपुत्राः सराजकाः ॥३१॥

हे राजन् ! इस समय सारे राजा और राज-पुत्र एकदम पुकारने लगे-दौड़ो, पकड़ो, लपको और द्रोणाचार्य के अश्वों को रोको ॥३१॥

ते सात्यकिमपास्याऽऽशु राजन्युधि महारथाः ।
यतो द्रोणस्ततः सर्वे सहसा समुपाद्रवन् ॥३२॥

हे राजन् ! ये महारथी वीर, इस प्रकार पुकारते हुए, सात्यकि को छोड़ कर शीघ्र उसी ओर दौड़े, जिधर द्रोणाचार्य का रथ, जा रहा था ॥३२॥

तान्दृष्ट्वा प्रद्रुतान्संख्ये सात्वतेन शरार्दितान् ।
प्रभग्नं पुनरेवाऽऽसीत्तव सैन्यं समाकुलम् ॥३३॥

हे भारत ! सात्वतश्रेष्ठ सात्यकि के बाणों से अर्दित द्रोण के अश्वों को भागते देखकर तुम्हारी सारी सेना में खलबली मच गई ॥३३॥

व्यूहस्यैव पुनर्द्वारं गत्वा द्रोणो व्यवस्थितः ।
वातायमानैस्तैरश्वैर्नीतो वृष्णिशरार्दितैः ॥३४॥

वृष्णिवीर सात्यकि के बाणों से अर्दित आचार्य द्रोण के अश्व वायु की तरह भाग निकले। अब चुप होकर द्रोणाचार्य फिर व्यूह द्वार की ही रक्षा करने को स्थित हो गए ॥३४॥

पाण्डुपाञ्चालसम्भिन्नं व्यूहमालोक्य वीर्यवान् ।
शैनेयेनाऽकरोद्यत्नं व्यूहमेवाऽभ्यरक्षत ॥३५॥

महाशक्तिशाली द्रोणाचार्य, पाण्डव, और पाञ्चालवीरों तथा सात्यकि द्वारा भग्न किये हुए अपने व्यूह को अरक्षित देखकर उसकी रक्षा में बड़ा प्रयत्न करने लगा ॥३५॥

निवार्य पाण्डुपञ्चालान्द्रोणाग्निः प्रदहन्निव ।
तस्थौ क्रोधेध्मसन्दीप्तः कालसूर्य इवोद्यतः ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे सात्यकिपराक्रमे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

द्रोणाचार्य रूपी अग्नि, क्रोधरूपी ईंधन से प्रज्वलित होकर उदय को प्राप्त होते हुए, प्रलयकालीन, सूर्य की भांति सन्तापित करता हुआ एवं पाण्डव और पाञ्चाल वीरों को रोकता हुआ वहीं स्थित हो गया ॥३६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सात्यकि के पराक्रमपूर्वक प्रवेश कर जाने का एक सौ सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

# एक सौ अठारहवां अध्याय

सञ्जयउवाच—

द्रोणं स जित्वा पुरुषप्रवीरस्तथैव हार्दिक्यमुखांस्त्वदीयान्।
प्रहस्य सूतं वचनं बभाषे शिनिप्रवीरः कुरुपुङ्गवाग्र्य ॥१॥

सञ्जय बोले—हे कुरुवंशश्रेष्ठ! इस प्रकार द्रोणाचार्य और कृतवर्मा आदि वीरों को जीत कर पुरुषप्रवीर सात्यकि, कुछ मुसकुरा कर अपने सारथी से कहने लगा ॥१॥

निमित्तमात्रं वयमद्य सूत दग्धारयः केशवफाल्गुनाभ्याम्।
हतान्निहन्मेह नरर्षभेण वयं सुरेशात्मसमुद्भवेन ॥२॥

हे सूत! हम तो इस विजय के केवल निमित्त मात्र हैं, इन शत्रुओं को तो श्रीकृष्ण और अर्जुन ने प्रथम ही ढीला कर रखा है। हम लोग तो इन्द्रपुत्र वीरश्रेष्ठ अर्जुन द्वारा मारे हुए वीरों को फिर मार रहे हैं ॥२॥

तमेवमुक्त्वा शिनिपुङ्गवस्तदा,
महामृधे सोऽग्र्यधनुर्धरोऽरिहा ।
किरन्समन्तात्सहसा शरान्बली,
समापतच्छ्येन इवाऽऽमिषं यथा ॥३॥

हे भरतर्षभ ! शिनिवीर, धनुर्धरों में सर्वोत्तम, शत्रुनाशक, महाबली, सात्यकि इस भीषण रण में अपने सारथी से इस प्रकार कहकर फिर बाणवर्षा करता हुआ, इस तरह आगे झपटा, जैसे मांस पर श्येन (बाज) पक्षी झपटता है ॥३॥

तं यान्तमश्वैः शशिशङ्खवर्णैर्विगाह्य सैन्यं पुरुषप्रवीरम् ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं समन्तादादित्यरश्मिप्रतिमं रथाग्र्यम्
असह्यविक्रान्तमदीनसत्वं सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः ।
सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावं दिवीव सूर्यं जलदव्यपाये ॥५॥

हे भारत ! चन्द्रमा और शङ्ख के तुल्य, श्वेतवर्णधारी अश्वों के द्वारा सेना को आलोडित करके आगे बढ़ते हुए, पुरुषश्रेष्ठ, महारथियों में उत्तम, सूर्य की किरणों के समान जाज्वल्यमान, असह्य पराक्रम से युक्त, आत्मबल सम्पन्न, इन्द्र के तुल्य प्रतापशाली, शरद ऋतु में जलते हुए सूर्य के तुल्य प्रचण्ड, सात्यकि को तुम्हारी ओर के कोई भी महारथी, रोकने में समर्थ नहीं हो सके ॥४-५॥

अमर्षपूर्णस्त्वतिचित्रयोधी शरासनी काञ्चनवर्मधारी ।
सुदर्शनः सात्यकिमापतन्तं न्यवारयद्राजवरः प्रसह्य ॥६॥

इस परिस्थित को देखकर अत्यन्त आवेश में भरा हुआ, विचित्रता के साथ युद्ध करने में कुशल, धनुर्धर, सुवर्ण के कवच से विभूषित, राजश्रेष्ठ सुदर्शन ने बल-पूर्वक सात्यकि को आगे बढ़ने से रोका ॥६॥

तयोरभूद्भारतऽसम्प्रहारः सुदारुणस्तं समतिप्रशंसन् ।
योधास्त्वदीयाश्च हि सोमकाश्च वृत्रेन्द्रयोर्युद्धमिवाऽमरौघाः ॥

हे भारत ! अब इन दोनों वीरों में भीषण युद्ध होने लगा, जिसकी सारे वीर प्रशंसा कर रहे थे । वृत्रासुर और इन्द्र के युद्ध को जैसे-देवों के गण ने सराहा-उसी तरह तुम्हारे पक्ष के योद्धा और पांण्डव पक्ष के सोमक आदि वीर, इनके युद्ध की सराहना कर रहे थे ॥७॥

शरैः सुतीक्ष्णैः शतशोऽभ्यविध्यत्सुदर्शनः सात्वतमुख्यमाजौ
अनागतानेव तु तान्पृषत्कांश्चिच्छेद राजञ्शिनिपुङ्गवोऽपि ॥

हे राजन् ! इस भीषण संग्राम में राजा सुदर्शन ने तीक्ष्ण बाणों द्वारा सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि के शरीर में सैंकड़ों बाण लगा दिए । सात्यकि भी राजा सुदर्शन के बहुत से बाणों को अपने पास पहुंचने से पूर्व ही बीच में ही काट गिराता था ॥८॥

तथैव शक्रप्रतिमोऽपि सात्यकिः
सुदर्शने यान्क्षिपति स्म सायकान् ।
द्विधा त्रिधा तानकरोत्सुदर्शनः
शरोत्तमैः स्यन्दनवर्यमास्थितः ॥६॥

इन्द्र के समान शक्तिशाली सात्यकि भी राजा सुदर्शन पर जिन बाणों को फैंकता था, अपने उत्तम रथ पर स्थित हुआ, राजा सुदर्शन भी अपने तीखे बाणों से उनके दो तीन टुकड़े कर डालता था ॥९॥

तान्वीक्ष्य बाणान्निहतांस्तदानीं सुदर्शनः सात्यकि सायवेगैः
क्रोधाद्दिधक्षन्निव तिग्मतेजाः शरानमुञ्चत्तपनीयचित्रान् ॥

इस प्रकार सात्यकि के बाणों के वेग से अपने बाणों को खण्डित देखकर क्रोध से प्रज्वलित, अत्यन्त-तेजस्वी राजा सुदर्शन, सुवर्ण के तुल्य जाज्वल्यमान अपने तीक्ष्ण बाणों को छोड़ने लगा ॥१०॥

पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पैराकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः ।
विव्याध देहावरणं विभिद्य ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥

अब इसने फिर अग्नि के सदृश भीषण उत्तममूलधारी, तीन तीखे बाण कान तक खैंचकर छोड़े-वे बाण, सात्यकि के कवच को बींध कर उसके शरीर में घुस गए ॥११॥

तथैव तस्याऽवनिपालपुत्रः सन्धाय बाणैरपरैर्ज्वलद्भिः ।
आजघ्निवांस्तान्रजतप्रकाशांश्चतुर्भिरश्वांश्चतुरः प्रसह्य ॥१२॥

इसी प्रकार राजा सुदर्शन के पुत्र ने भी जलते हुए चांदी के समान चमकीले, चार बाण बलपूर्वक छोड़े, जिनसे सात्यकि के चारों अश्व आहत हो गए ॥१२॥

तथा तु तेनाऽभिहतस्तरस्वी नप्ता शिनेरिन्द्रसमानवीर्यः ।
सुदर्शनस्येषुगणैः सुतीक्ष्णैर्हयान्निहत्याऽऽशु ननाद नादम् ॥

अब राजा सुदर्शन के बाणों से आहत हुए, तेजस्वी, इन्द्र के समान शक्तिशाली, शिनि-पौत्र सात्यकि ने अपने बाणजाल में राजा सुदर्शन के अश्वों को मार कर घोर गर्जना की ॥१३॥

अथाऽस्य सूतस्य शिरो निकृत्य भल्लेन शक्राशनिसन्निभेन ।
सुदर्शनस्याऽपि शिनिप्रवीरः क्षुरेण कालानलसंनिभेन ॥
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं भ्राजिष्णु वक्त्रं विचकर्त देहात् ।
यथा पुरा वज्रधरः प्रसह्य बलस्य संख्येऽतिबलस्य राजन् ॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर इन्द्र के वज्र के समान भीषण, कालाग्नि के तुल्य देदीप्यमान, क्षुर के समान चमकीले बाण से शिनिप्रवीर सात्यकि ने राजा सुदर्शन के सारथि के शिर को काट कर पूर्वकाल में रण में अत्यन्त बलवान्, बलासुर के मस्तक को वज्रधारी इन्द्र के तुल्य कुण्डलों से सुशोभित, पूर्ण शशि तुल्य सुन्दर, तेजस्वी, राजा सुदर्शन के मस्तक को भी काट गिराया ।

निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं रणे यदूनामृषभस्तरस्वी ।
मुदा समेतः परया महात्मा रराज राजन्सुरराजकल्पः ॥

हे राजन् ! यदुवंश के वेगशाली वीर, इन्द्र के तुल्य पराक्रमी, महावीर सात्यकि ने रण में राज-पुत्र सुदर्शन और राज-पौत्र (उसके पुत्र) को भी मार कर बड़ा आनंद प्राप्त किया ॥१६॥

ततो ययावर्जुन एव येन निवार्य सैन्यं तव मार्गणौघैः ।
सदश्वयुक्तेन रथेन राजँल्लोकं विसिस्मापयिषुर्नृवीरः ॥१७॥

हे राजन् ! जिस प्रकार तुम्हारी सेना के वीरों को अपने बाण समूह से मारता हुआ अर्जुन आगे बढ़ गया था, उसी तरह उत्तम अश्वों से युक्त रथ से संसार को चकित करता हुआ नरप्रवीर सात्यकि भी आगे बढ़ गया ॥१७॥

तत्तस्य विस्मापयनीयमग्र्यमपूजयन्योधवराः समेताः ।
प्रवर्त्तमानानिषुगोचरेऽरीन्ददाह बाणैर्हुतभुग्यथैव ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सुदर्शनवधेऽष्टादशाधिक-शततमोऽध्यायः ॥११८॥

हे महाराज ! सात्यकि के इस अचम्भे में डालने वाले वीर कार्य को देखकर सारे योद्धा एक मुख से प्रशंसा करने लगे। यह सात्यकि भी बढ़ती हुई आग की तरह अपने बाणों के गोचर होने वाले शत्रुओं को दग्ध करता हुआ आगे चल दिया ॥१८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में राजा सुदर्शन के वध का एक सौ अट्ठारहवां अध्याय समाप्त हो गया

# एक सौ उन्नीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः स सात्यकिर्धीमान्महात्मा वृष्णिपुङ्गवः।
सुदर्शनं निहत्याऽऽजौ यन्तारं पुनरब्रवीत् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ! इसके अनन्तर वृष्णिवंशश्रेष्ठ, बुद्धिमान् महारथी सात्यकि, रण में राजा सुदर्शन को मार कर अपने सारथि से कहने लगा ॥१॥

रथाश्वनागकलिलं शरशक्त्यूर्मिमालिनम्।
खड्गमत्स्यं गदाग्राहं शूरायुधमहास्वनम् ॥२॥
प्राणापहारिणं रौद्रं वादित्रोत्क्रुष्टनादितम्।
योधानामसुखस्पर्शं दुर्धर्षमजयैषिणाम् ॥३॥
तीर्णाः स्म दुस्तरं तात द्रोणानीकमहार्णवम्।
जलसन्धबलेनाऽऽजौ पुरुषादैरिवाऽऽवृतम् ॥४॥
अतोऽन्यत्पृतनाशेषं मन्ये कुनदिकामिव।
तर्तव्यामल्पसलिलां चोदयाऽश्वानसम्भ्रमम् ॥५॥
हस्तप्राप्तमहं मन्ये साम्प्रतं सव्यसाचिनम्।

हे तात! रथ, अश्व और हाथियों रूपी जल-जन्तुओंसे व्याप्त, बाण और शक्तिरूपी तरङ्गों से समन्वित, खड्गरूपी मत्स्यों के सहित, गदारूपी ग्राहों से भरे हुए, शूरवीरों के शस्त्रों की झनकार

से शब्दायमान, प्राणों के अपहारक, भयङ्कर बाजों के शब्दों से ध्वनि संयुक्त, योद्धाओं के सुख स्पर्श से हीन, कायरों को दुर्धर्ष, द्रोणाचार्य की सेना रूपी दुस्तर महासमुद्र से हम पार हो गए हैं। राजा जलसन्ध की सेना से तो यह समुद्र राक्षसों से व्याप्त सा हो रहा था। शेष सेनाओं को तो मैं छोटी २ नदी के तुल्य समझता हूं, जिन में थोड़ा सा पानी होता है और सुख से पार की जा सकती हैं। अब तुम विना झंझट के अपने अश्वों को आगे बढ़ाओ। अब तो सव्यसाची अर्जुन हाथ आया हुआ सा ही प्रतीत होता है ॥२-५॥

निर्जित्य दुर्धरं द्रोणं सपदानुगमाहवे ॥६॥
हार्दिक्यं योधवर्यं च मन्ये प्राप्तं धनञ्जयम् ।

जब सेना के सहित दुर्धर्ष द्रोणाचार्य और योद्धाओं में श्रेष्ठ कृतवर्मा को मैंने जीत लिया-तो अब अर्जुन के पास पहुंच जाने में क्या विघ्न हैं। अब तो मुझे अर्जुन के समीप पहुंचा हुआ ही समझो ॥६॥

न हि मे जायते त्रासो दृष्ट्वा सैन्यान्यनेकशः ॥७॥
वह्नेरिव प्रदीप्तस्य वने शुष्कतृणोलपे ।

हे सूत ! इन अनेक कौरव सेनाओं को देखकर मुझे कुछ भी त्रास नहीं होता है, जैसे-सूखे तृण और झाड़ियों में प्रदीप्त अग्नि को वन में कुछ भी चिन्ता नहीं होती है ॥७॥

पश्य पाण्डवमुख्येन यातां भूमिं किरीटिना ॥८॥
पत्त्यश्वरथनागौघैः पतितैर्विषमीकृताम् ।

हे सारथि! तुम देखो तो सही? कि पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन द्वारा मार मार कर बिछाये हुए पैदल सैनिक, अश्व, रथ और हाथियों के गिरे हुए समूह से रणभूमि कैसी संकीर्ण हो रही है।

द्रवते तद्यथा सैन्यं तेन भग्नं महात्मना ॥९॥
रथैर्विपरिधावद्भिर्गजैरश्वैश्च सारथे।
कौशेयारुणसङ्काशमेतदुद्धूयते रजः ॥१०॥
अभ्याशस्थमहं मन्ये श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
स एष श्रूयते शब्दो गाण्डीवस्याऽमितौजसः ॥११॥

हे सूत! इस महावीर अर्जुन द्वारा बखेरी हुई सेना किस तरह भाग रही है। इन भागते हुए रथ, हाथी और अश्वों से भूरी लाल सी धूलि उठ खड़ी हुई है, जिससे प्रतीत होता है, कि हम लोग भी कृष्णसारथि, श्वेतवाहन वाले अर्जुन के समीप ही पहुंच गए हैं। वह देखो ? अत्यन्त ओजधारी गाण्डीव धनुष का शब्द सुनाई दे रहा है ॥९-११॥

यादृशानि निमित्तानि मम प्रादुर्भवन्ति वै।
अनस्तङ्गत आदित्ये हन्ता सैन्धवमर्जुनः ॥१२॥

अब तो ऐसे २ निमित्त (ढंग) उत्पन्न हो रहे हैं, जिससे मुझे प्रतीत होता है, कि सूर्य के अस्त होने से पूर्व ही अर्जुन सिन्धुराज को मार लेंगे ॥१२॥

शनैर्विश्रम्भयन्नश्वान्याहि यत्राऽरिवाहिनी।
यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः ॥१३॥

दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः ।
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः ॥१४॥
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः ।
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः ॥१५॥

अब तुम अश्वों को आश्वासन देते हुए धीरे २ उधर को चलो जिधर यह शत्रु सेना खड़ी है । जिस ओर कवच और करतलत्राण धारी, राजा दुर्योधन के साथ सब तरह तय्यार, क्रूर कर्मकर्ता, कम्बोजदेशोद्भव, युद्धदुर्मद वीर खड़े हैं । इसी ओर धनुषबाण धारी, प्रहार करने में कुशल यवन, (यूनानी) शक, किरात, दरद, बर्बर, ताम्रलिप्तक तथा अनेक शस्त्रधारी बहुत से म्लेच्छ उपस्थित हैं ॥१३-१५॥

यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः ।
मामेवाऽभिमुखाः सर्वे तिष्ठन्ति समरार्थिनः ॥१६॥

ये दुर्योधन को प्रधान बना कर कवचादि रक्षा के साधन पहिने हुए, युद्ध की अभिलाषा से मेरे सन्मुख उपस्थित हैं ॥१६॥

एतान्सरथनागाश्वान्निहत्याऽऽजौ सपत्तिनः ।
इदं दुर्गं महाघोरं तीर्णमेवोपधारय ॥१७॥

इन सब रथ, हाथी, अश्व और पैदल सैनिकों को रणभूमि में मार कर मैं इस महाघोर सेनादुर्ग को अभी पार किये लेता हूं ।

सूत उवाच—

न सम्भ्रमो मे वार्ष्णेय विद्यते सत्यविक्रम ।

यद्यपि स्याच्च क्रुद्धो जामदग्न्योऽग्रतः स्थितः ॥

सूत ने कहा—हे सत्यपराक्रमी ! वार्ष्णेय ! यदि आपके सन्मुख क्रोधाविष्ट, जमदग्नि-पुत्र परशुराम भी आ जावें-तो भी मुझे कोई घबराहट नहीं हो सकेगी ॥१८॥

द्रोणो वा रथिनां श्रेष्ठः कृपो मद्रेश्वरोऽपि वा ।

तथापि संभ्रमो न स्यात्त्वामाश्रित्य महाभुज ॥१९॥

हे महाभुज ! इसी तरह आचार्य द्रोण, कृपाचार्य और मद्रराज शल्य भी रण में तुम्हारे सामने डटे हों-उस समय भी तुम्हारे बाहुबल पर भरोसा करके मुझे कोई सम्भ्रम नहीं होगा ।

त्वया सुबहवो युद्धे निर्जिताः शत्रुसूदन ।
दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः । २०॥
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः ।
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः ॥२१॥
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः ।
न च मे संभ्रमः कश्चिद्भूतपूर्वः कथञ्चन ॥२२॥
किमुतैतत्समासाद्य धीर संयुगगोष्पदम् ।

हे शत्रुसूदन ! तुमने रणाङ्गण में बहुत से शत्रु जीत रखे हैं । बड़ी तय्यारी के साथ सन्मुख आने वाले युद्ध में भयङ्कर क्रूरकर्मा

कम्बोज देशके वीर, धनुषबाणधारी; प्रहारकुशल, यवन (यूनानी) शक, किरात, दरद, बर्बर, ताम्रलिप्तक तथा अनेक शस्त्रधारी अन्य म्लेच्छ-जाति के लोग भी तुमने पराजित कर रखे हैं। मुझे तो आपके साथ रण में पूर्वकाल में भी घबराहट नहीं हुई। हे धीर! अब मैं इस गोखुर के समान छोटे से युद्ध को प्राप्त करके क्या घबराऊंगा ॥२०-२२॥

आयुष्मन्कतरेण त्वां प्रापयामि धनञ्जयम् ॥२३॥
केषां क्रुद्धोऽसि वार्ष्णेय केषां मृत्युरुपस्थितः।
केषां संयमनीमद्य गन्तुमुत्सहते मनः ॥२४॥
के त्वां युधि पराक्रान्तं कालान्तकयमोपमम्।
दृष्ट्वा विक्रमसम्पन्नं विद्रविष्यन्ति संयुगे ॥२५॥
केषां वैवस्वतो राजा स्मरतेऽद्य महाभुज।

हे आयुष्मन्! अब तुम यह बताओ? अर्जुन के समीप किस मार्ग से चलना चाहते हो। हे वार्ष्णेय! तुम किन पर कुपित हो और अब किनकी मृत्यु उपस्थित है। तुम्हारा मन किस की सेना में घुसने को कर रहा है। हे महाभुजधारी! युद्ध में कालान्तक और यम के तुल्य पराक्रम कर दिखाने वाले, अत्यन्त विक्रम शाली तुम्हें देखकर किनके भाग्य में रण से भागना लिखा है। आज किन वीरों को विवस्वान-पुत्र यम बुलाना चाह रहा है।

सात्यकिरुवाच—

मुण्डानेतान्हनिष्यामि दानवानिव वासवः ॥२६॥
प्रतिज्ञां पारयिष्यामि काम्बोजानेव मां वह।

सात्यकि ने कहा—हे सूत ! मैं दानवों को इन्द्र के तुल्य, इन कम्बोजदेशवासी मुण्डों को मार लेना चाहता हूं, तुम इसके मध्य से ही मेरे रथ को ले चलो ॥२६॥

अद्यैषां कदनं कृत्वा प्रियं यास्यामि पाण्डवम् ॥२७॥
अद्य द्रक्ष्यन्ति मे वीर्यं कौरवाः ससुयोधनाः ।
मुण्डानीके हते सूत सर्वसैन्येषु चाऽसकृत् ॥२८॥

हे सूत ! आज मैं इन मुण्डों का विध्वंस उड़ा कर पाण्डु-पुत्र अर्जुन के पास अभी पहुंचता हूं । मेरे पराक्रम को राजा दुर्योधन के सहित सारे कौरववीर खड़े २ देखते रहेंगे । मैं अभी सारी सेनाओं के मध्य में मुण्डसेना का नाश करता हुआ आगे बढ़ता हूं ॥२७-२८॥

अद्य कौरवसैन्यस्य दीर्यमाणस्य संयुगे ।
श्रुत्वा विरावं बहुधा सन्तप्स्यति सुयोधनः ॥२९॥

आज रणाङ्गण में कौरवसेना के विनाश के समय उसके चीत्कार को सुन कर राजा दुर्योधन अपने कर्मों पर सन्ताप करेगा

अद्य पाण्डवमुख्यस्य श्वेताश्वस्य महात्मनः ।
आचार्यस्य कृतं मार्गं दर्शयिष्यामि संयुगे ॥३०॥

मैं अपने आचार्य, पाण्डवश्रेष्ठ, श्वेत अश्वों के वाहनवाले, महारथी अर्जुन के मार्ग के अनुसार चलकर दिखाऊंगा ॥३०॥

अद्य मद्बाणनिहतान्योधमुख्यान्सहस्रशः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा पश्चात्तापं गमिष्यति ॥३१॥

आज मेरे बाणों से मारे हुए सहस्रों मुख्य २ योद्धाओं को देखकर राजा दुर्योधन अवश्य पश्चात्ताप करेगा ॥३१॥

अद्य मे क्षिप्रहस्तस्य क्षिपतः सायकोत्तमान् ।
अलातचक्रप्रतिमं धनुर्द्रक्ष्यन्ति कौरवाः ॥३२॥

आज मैं बड़ी शीघ्रता से हाथ चला कर बाण फैंकूंगा । उस समय मेरे धनुष को कौरववीर, अलातचक्र (पलीते) के मण्डल की तरह अचम्भे के साथ देखेंगे ॥३२॥

मत्सायकचिताङ्गानां रुधिरं स्रवतां मुहुः ।
सैनिकानां वधं दृष्ट्वा सन्तप्स्यति सुयोधनः ॥३३॥

हे सूत ! मेरे बाणों से आच्छादित अङ्ग वाले वीरों के शरीर से रुधिरधारा बहती तथा अनेक सैनिकों का वध देखकर राजा दुर्योधन बड़ा सन्तप्त हो जावेगा ॥३३॥

अद्य मे क्रुद्धरूपस्य निघ्नतश्च वरान्वरान् ।
द्विरर्जुनमिमं लोकं मंस्यतेऽद्य सुयोधनः ॥३४॥

जब मैं क्रुद्ध होकर छांट २ कर कौरववीरों का वध करूंगा तो उस समय राजा सुयोधन, इस संसार को दो अर्जुनों से समन्वित समझने लगेगा ॥३४॥

अद्य राजसहस्राणि निहतानि मया रणे ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा सन्तप्स्यति महामृधे ॥३५॥

आज जब मैं सहस्रों राजाओं को मार २ कर रणभूमि में बिछा दूंगा-तो इस घोर रण का परिणाम देखकर राजा दुर्योधन बड़ा दुःखी होगा ॥३५॥

अद्य स्नेहं च भक्तिं च पाण्डवेषु महात्मसु ।
हत्वा राजसहस्राणि दर्शयिष्यामि राजसु ॥३६॥
बलं वीर्यं कृतज्ञत्वं मम ज्ञास्यन्ति कौरवाः ।

महात्मा पाण्डवों के विषय में जो मेरी अत्यन्त भक्ति और स्नेह है, आज मैं इन सारे राजाओं को उसका परिचय सहस्रों राजाओं को मार कर दूंगा । आज मेरे बल, वीर्य और कृतज्ञता को ये सारे कौरव जान सकेंगे ॥३६॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्तस्तदा सूतः शिक्षितान्साधुवाहिनः ॥३७॥
शशाङ्कसन्निकाशान्वै वाजिनो व्यनुदद्भृशम् ।

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! जब सात्यकि ने इतना कहा—तो सारथि ने बड़े शिक्षित, अच्छी तरह वाहन के ले चलने वाले, चन्द्रमा के तुल्य श्वेत अश्वों को बड़े वेग से चलाया ॥३७॥

तेऽपिबन्त इवाऽऽकाशं युयुधानं हयोत्तमाः ॥३८॥
प्रापयन्यवनान्शीघ्रं मनःपवनरंहसः ।

ये उत्तम अश्व भी मानो आकाश को पीते हुए सात्यकि को ले उड़े । मन और पवन के सदृश वेग वाले ये अश्व, शीघ्र ही वृष्णिवीर सात्यकि को यवनों के मध्य में ले पहुंचे ॥३८॥

सात्यकिं ते समासाद्य पृतनास्वनिवर्तिनम् ॥३६॥
बहवो लघुहस्ताश्च शरवर्षैरवाकिरन् ।

सेना में पहुंचने पर पीछे नहीं हटने वाले सात्यकि को देखकर बहुत से शीघ्र हाथ चलाने वाले, यवनवीर, बाणवर्षा करके उसको आच्छादित करने लगे ॥३६॥

तेषामिषूनथाऽस्त्राणि वेगवान्नतपर्वभिः ॥४०॥
अच्छिनत्सात्यकी राजन्नैनं ते प्राप्नुवञ्शराः ।

हे राजन् ! उन यवनवीरों के बाण और अस्त्रों को वेगशाली सात्यकि ने अपने नतपर्व वाले बाणों से बीच में ही काट गिराया। यवनों के ये बाण, सात्यकि के समीप तक पहुंच भी नहीं पाते थे ॥४०॥

रुक्मपुङ्खैः सुनिशितैर्गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ॥४१॥
उच्चकर्त्त शिरांस्युग्रो यवनानां भुजानपि ।

सुवर्ण के मूल वाले, अत्यन्त तीक्ष्ण, गृद्ध-पक्षी के पंखों से युक्त, सीधे जाने वाले बाणों से, अत्यन्त उग्र सात्यकि ने, यवनों के शिर और भुजा काटना आरम्भ किया ॥४१॥

शैक्यायसानि वर्माणि कांस्यानि च समन्ततः ॥४२॥
भित्वा देहांस्तथा तेषां शरा जग्मुर्महीतलम् ।

लाल दृढ़ लोह और कांसी के बने हुए कवचों को अच्छी तरह छेद कर सात्यकि के बाण यवनवीरों के शरीरों में घुस कर पृथ्वी में घुस जाते थे ॥४२॥

ते हन्यमाना वीरेण म्लेच्छाः सात्यकिना रणे ॥४३॥
शतशोऽभ्यपतंस्तत्र व्यसवो वसुधातले ।

महावीर सात्यकि द्वारा रण में आहत हुए म्लेच्छवीर, प्राण विहीन होकर सैकड़ों की संख्या में रणभूमि में लोटने लगे ॥४३॥

सुपूर्णायतमुक्तैस्तानव्यवच्छिन्नपिण्डितैः ॥४४॥
पञ्च षट् सप्त चाऽष्टौ च बिभेद यवनाञ्शरैः ।

जिनका पिण्डाकार छिन्न-भिन्न नहीं हुआ-ऐसे कर्णपर्यन्त खैंचे हुए बाणों से इकट्ठे ही पांच, छः, सात या आठ यवनों को सात्यकि बींधने लगा ॥४४॥

काम्बोजानां सहस्रैश्च शकानां च विशाम्पते ॥४५॥
शबराणां किरातानां बर्बराणां तथैव च ।

हे विशाम्पते ! सहस्रों कम्बोज देश के वीर तथा शक, शबर, किरात और बर्बरों के भी सहस्रों वीरों की सात्यकि ने यही दशा की ॥४५॥

अगम्यरूपां पृथिवीं मांसशोणितकर्दमाम् ॥४६॥
कृतवांस्तत्र शैनेयः क्षपयंस्तावकं बलम् ।

हे राजन् ! शिनिवंशोद्भव, सात्यकि ने तुम्हारी सेना को मार २ कर रण में मांस और शोणित (खून) की कीचड़ कर दी, जिससे रणभूमि बड़ी ही अगम्य हो रही थी ॥४६॥

दस्यूनां सशिरस्त्राणैः शिरोभिर्लूनमूर्धजैः ॥४७॥
दीर्घकूर्चैर्मही कीर्णा विबर्हैरण्डजैरिव ।

हे राजन् ! शिरस्त्राणों से युक्त, बाल मुँडे हुए तथा लम्बी २ दाढ़ी मूछों वाले म्लेच्छों के मस्तकों से इस तरह पृथ्वी व्याप्त हो गई, जैसे पांखों से हीन हुए पक्षियों से भरी हुई हो ॥४७॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गैस्तैस्तदायोधनं बभौ ॥४८॥
कबन्धैः संवृतं सर्वं ताम्राभ्रैः खमिवाऽऽवृतम् ।

रुधिर से भीगे शरीरधारी, इन म्लेछों के कबन्धों से व्याप्त वह रणाङ्गण इस भांति शोभा दे रहा था, जैसे-लाल कान्तिधारी मेघों से आकाश सुशोभित होता है ॥४८॥

वज्राशनिसमस्पर्शैः सुपर्वभिरजिह्मगैः ॥४९॥
ते सात्वतेन निहताः समावव्रुर्वसुन्धराम् ।

इन्द्र के वज्राशनि के सदृश स्पर्श वाले, सुन्दर पर्वधारी, सीधे चले जाने वाले, बाणों से सात्यकि द्वारा मार २ कर बिछाये हुए म्लेच्छों से रणभूमि व्याप्त हो गई ॥४९॥

अल्पावशिष्टाः संभग्नाः कृच्छ्रप्राणा विचेतसः ॥५०॥
जिताः संख्ये महाराज युयुधानेन दंशिताः ।

हे महाराज ! यद्यपि म्लेच्छ वीर बड़े ही तय्यार थे-तो भी सात्यकि ने इतने मार डाले, कि वे बहुत ही थोड़े बच सके । जो बचे वे कठिनाई से प्राण लेकर भागे। इस समय इन सब की चेतना नष्ट सी हो रही थी ॥५०॥

पार्ष्णिभिश्च कशाभिश्च ताडयन्तस्तुरङ्गमान् ॥५१॥
जवमुत्तममास्थाय सर्वतः प्राद्रवन्भयात् ।

अपने चरण की एड़ी और चाबुक से अश्वों को मार २ कर म्लेच्छ वीर, बड़े वेग का आश्रय लेकर भय से सब ओर भाग निकले ॥५१॥

काम्बोजसैन्यं विद्राव्य दुर्जयं युधि भारत ॥५२॥
यवनानां च तत्सैन्यं शकानां च महद्बलम् ।
ततः स पुरुषव्याघ्रः सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥५३॥
प्रविष्टस्तावकाञ्जित्वा सूतं याहीत्यचोदयत् ।

हे भारत! अब कम्बोजदेशोद्भव वीर तथा यवन और शकों की विशालसेना को सत्यपराक्रमी, पुरुषप्रवीर, सात्यकि, पराजित करके तुम्हारी सेना में घुसा। उसने तुम्हारे अनेक वीर जीत लिए। यह अपने सारथि को शीघ्रगमन के लिए प्रेरणा कर रहा था ॥५२-५३॥

तत्तस्य समरे कर्म दृष्ट्वाऽन्यैरकृतं पुरा ॥५४॥
चारणाः सहगन्धर्वाः पूजयाञ्चक्रिरे भृशम् ।

रणाङ्गण में सात्यकि के अन्य द्वारा दुष्कर इस अद्भुत कर्म को देखकर गन्धर्वों के साथ चारण लोग, सात्यकि की बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥५४॥

तं यान्तं पृष्ठगोप्तारमर्जुनस्य विशाम्पते ।
चारणाः प्रेक्ष्य संहृष्टास्त्वदीयाश्चाऽभ्यपूजयन् ॥५५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे यवनपराजये एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥

हे विशाम्पते ! अर्जुन के पृष्ठरक्षक के रूप में घुसते हुए सात्यकि को देखकर चारण गण बड़े प्रसन्न हुए और तुम्हारे पक्ष के वीर भी इनकी प्रशंसा करने लगे ॥५५॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सात्यकि का कौरवसेना में प्रवेश का एक सौ उन्नीसवां अध्याय समाप्त हुआ



# एक सौ बीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

जित्वा यवनकाम्बोजान्युयुधानस्ततोऽर्जुनम् ।
जगाम तव सैन्यस्य मध्येन रथिनां वरः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! इस प्रकार यवन और काम्बोजों को जीत कर रथियों में श्रेष्ठ, सात्यकि तुम्हारी सेना के मध्य में होकर अर्जुन के पास जाने की चेष्टा करने लगा ॥१॥

चारुदंष्ट्रो नरव्याघ्रो विचित्रकवचध्वजः ।
मृगं व्याघ्र इवाऽऽजिघ्रंस्तव सैन्यमभीषयत् ॥२॥

उज्ज्वल दन्तधारी, विचित्र कवच और ध्वजा में सुशोभित नरव्याघ्र सात्यकि ने तुम्हारी सेना को इस तरह भयभीत कर दिया, जैसे-सिंह मृग को सूंघ गया हो ॥२॥

स रथेन चरन्मार्गान्धनुरभ्रामयद्भृशम् ।
रुक्मपृष्ठं महावेगं रुक्मचन्द्रकसंकुलम् ॥३॥

सात्यकि अपने रथ के द्वारा अनेक युद्ध के मार्गों (पैंतरों) का आश्रय ले रहा था और सुवर्ण के पृष्ठ वाले महावेगशाली, सुवर्ण के चन्द्रमाओं से सुशोभित अपने धनुष को बार २ कंपा रहा था ॥३॥

रुक्माङ्गदशिरस्त्राणो रुक्मवर्मसमावृतः ।
रुक्मध्वजधनुः शूरो मेरुशृङ्गमिवाऽऽबभौ ॥४॥

सात्यकि के मस्तक पर सुवर्ण का शिरस्त्राण, (टोप) शरीर पर सुवर्ण का कवच, भुजाओं में सुवर्ण के अङ्गद, सुवर्ण की ही ध्वजा और धनुष थे, जिनसे यह शूरवीर मेरु के शिखर के सदृश सुन्दर प्रतीत होता था ॥४॥

सधनुर्मण्डलः संख्ये तेजोभास्वररश्मिवान् ।
शरदीवोदितः सूर्यो नृसूर्यो विरराज ह ॥५॥

इसके धनुष का चक्राकार ऐसा मण्डल बना था, कि जिससे तेज की चमकीली किरणें निकल रही थी, जिनसे यह नरसूर्य, शरद् ऋतु में निकले हुए सूर्य के सदृश सुशोभित प्रतीत होता था ।

वृषभस्कन्धविक्रान्तो वृषभाक्षो नरर्षभः।
तावकानां बभौ मध्ये गवां मध्ये यथा वृषः ॥६॥

इस नरश्रेष्ठ सात्यकि के वृषभ के तुल्य विक्रमशाली स्कन्ध और वृषभ के सदृश ही आंखें थीं। यह तुम्हारी सेना के मध्य में ऐसा प्रतीत होता था, जैसे बैलों में सांड खड़ा हो ॥६॥

मत्तद्विरदसङ्काशं मत्तद्विरदगामिनम्।
प्रभिन्नमिव मातङ्गं यूथमध्ये व्यवस्थितम् ॥७॥

यह मदोन्मत्त हाथी के सदृश पराक्रमी और मदोन्मत्त हाथीके सदृश ही गमन करने वाला था। यह गजयूथ के मध्य में मदस्रावी हाथी की भांति ही स्थित था ॥७॥

व्याघ्रा इव जिघांसन्तस्त्वदीयाः समुपाद्रवन्।
द्रोणानीकमतिक्रान्तं भोजानीकं च दुस्तरम् ॥८॥

द्रोणाचार्य और भोजराज कृतवर्मा की दुस्तर सेना को लांघ कर आगे बढ़े हुए सात्यकि पर तुम्हारी सेना के वीर, सिंह की भांति चोट करते हुए बड़े वेग से झपटे ॥८॥

जलसन्धार्णवं तीर्त्वा काम्बोजानां च वाहिनीम्।
हार्दिक्यमकरान्मुक्तं तीर्णं वै सैन्यसागरम् ॥९॥
परिवव्रुः सुसंक्रुद्धास्त्वदीयाः सात्यकिं रथाः।

हे राजन्! तुम्हारे महारथी क्रोध में भरे हुए, जलसन्ध रूपी समुद्र, काम्बोज रूपी नदी को तैर कर तथा कृतवर्मा रूपी मकर से समन्वित उसकी सेनारूपी समुद्र को पार करके स्थित सात्यकि को घेर कर खड़े हो गए ॥९॥

दुर्योधनश्चित्रसेनो दुःशासनविविंशती ॥१०॥
शकुनिर्दुःसहश्चैव युवा दुर्धर्षणः क्रथः ।
अन्ये च बहवः शूराः शस्त्रवन्तो दुरासदाः ॥११॥
पृष्ठतः सात्यकिं यान्तमन्वधावन्नमर्षिणः ।

राजा दुर्योधन, चित्रसेन, दुःशासन, विविंशति, शकुनि, दुःसह युवा दुर्धर्षण और क्रथ-ये तथा अन्य बहुत से शस्त्रधारी दुरासद वीर क्रोध में भर कर आगे बढ़ते हुए सात्यकि पर पीछे से झपटे ॥१०-११॥

अथ शब्दो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ॥१२॥
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ।

हे मारिष ! इस समय वायु से उछाले हुए, वेगयुक्त समुद्र के तुल्य, तुम्हारी सेना में महान् कोलाहल होने लगा ॥१२॥

तानभिद्रवतः सर्वान्समीक्ष्य शिनिपुङ्गवः ॥१३॥
शनैर्याहीति यन्तारमब्रवीत्प्रहसन्निव ।
इदमेतत्समुद्धूतं धार्तराष्ट्रस्य यद्बलम् ॥१४॥
मामेवाऽभिमुखं तूर्णं गजाश्वरथपत्तिमत् ।

शिनिवंशश्रेष्ठ सात्यकि ने जब तुम्हारी सेना के वीरों को पीछे से भागते देखा-तो वह मुस्कुराकर अपने सारथि से कहने लगा—हे सूत ! अब तुम धीरे २ चलो । यह देखो ! यह कौरवों की विशाल सेना पीछे से बढ़ी आ रही है । इसमें बहुत से गज, अश्व, रथ और पैदल सैनिक इकट्ठे हुए मेरी ही ओर भागे चले आते हैं ॥१३-१४॥

नादयन्वै दिशः सर्वा रथघोषेण सारथे ॥१५॥
पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च कम्पयन्सागरानपि ।

हे सारथि ! अब मैं अपने रथघोष से सारी दिशाओं को शब्दायमान करता हुआ, पृथिवी, आकाश और समुद्रों को भी क्षुभित कर दूंगा ॥१५॥

एतद्बलार्णवं सूत वारयिष्ये महारणे ॥१६॥
पौर्णमास्यामिवोद्धूतं वेलेव मकरालयम् ।

हे सूत ! मैं इस घोर संग्राम में इस कौरवसेना के समुद्र को अभी रोकता हूं, जैसे-पूर्णमासी में उछलते हुए समुद्र को वेला रोक देती है ॥१६॥

पश्य मे सूत विक्रान्तमिन्द्रस्येव महामृधे ॥१७॥
एष सैन्यानि शत्रूणां विधमामि शितैः शरैः ।

हे सारथि ! इस भीषण रण में तू मेरा इन्द्र के सदृश पराक्रम देखना । मैं अभी अपने तीक्ष्ण बाणों से इस शत्रुसेना को छिन्न-भिन्न किये देता हूं ॥१७॥

निहतानाहवे पश्य पदात्यश्वरथद्विपान् ॥१८॥
मच्छरैरग्निसङ्काशैर्विद्धदेहान्सहस्रशः ।

हे सूत ! मैं अग्नि के सदृश बाणों को छोड़कर इस रण में सहस्रों पैदल, अश्व, रथी और हाथियोंके शरीरों को अभी बींध २ कर मारे डालता हूं-तुम मेरे इस पराक्रम को देखना ॥१८॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सात्यकेरमितौजसः ॥१६॥
समीपे सैनिकास्ते तु शीघ्रमीयुर्युयुत्सवः ।

हे राजन्! अत्यन्त ओजस्वी, सात्यकि इस प्रकार कह रहे थे; कि ये कौरव-वीर युद्धकी अभिलाषासे व्याप्त हुए शीघ्र सात्यकि के समीप आ पहुंचे ॥१६॥

जह्याद्रवस्व तिष्ठेति पश्य पश्येति वादिनः ॥२०॥
तानेवं ब्रुवतो वीरान्सात्यकिर्निशितैः शरैः ।
जघान त्रिशतानश्वान्कुञ्जरांश्च चतुःशतान् ॥२१।

मारो ? दौड़ो ! ठहरो ! देखो ? देखो ? इस प्रकार कहते हुए कौरववीरों को सात्यकि मार २ कर चिल्लाने लगा । इसने तीन सौ अश्वारोही और चार सौ गजारोही वाहनों के सहित मार डाले ॥२०-२१॥

स सम्प्रहारस्तुमुलस्तस्य तेषां च धन्विनाम् ।
देवासुररणप्रख्यः प्रावर्त्तत जनक्षयः ॥२२॥

इस प्रकार कौरव धनुर्धर वीर और सात्यकि में यह घोर युद्ध चल रहा था, जिसमें देवासुर संग्राम के सदृश जन संहार होने लगा ॥२२॥

मेघजालनिभं सैन्यं तव पुत्रस्य मारिष ।
प्रत्यगृह्णाच्छिनेः पौत्रः शरैराशीविषोपमैः ॥२३॥

हे आर्य ! तुम्हारे पुत्र की सेना तो मेघसमूह के तुल्य थी, शिनि-पौत्र सात्यकि ने आशीविष सर्प के तुल्य बाणों से उसका मारना आरम्भ किया ॥२३॥

प्रच्छाद्यमानः समरे शरजालैः स वीर्यवान् ।
असम्भ्रमन्महाराज तावकानवधीद्बहून् ॥२४॥

हे महाराज ! वीर्यवान् सात्यकि ने रणभूमि को बाणों से पाट दिया । यह बिना किसी घबराहट के तुम्हारे बहुत से योद्धाओं को मार २ कर सुलाने लगा ॥२४॥

आश्चर्यं तत्र राजेन्द्र सुमहद् दृष्टवानहम् ।
न मोघः सायकः कश्चित्सात्यकेरभवत्प्रभो ॥२५॥

हे राजेन्द्र ! मैंने तो उस समय वहां एक बड़ा ही आश्चर्य यह देखा, कि सात्यकि का एक भी बाण निरर्थक नहीं जाता था ॥२५॥

रथनागाश्वकलिलः पदात्यूर्मिसमाकुलः ।
शैनेयवेलामासाद्य स्थितः सैन्यमहार्णवः ॥२६॥

रथी, हाथी, अश्वरूपी जलजन्तुओं से व्याप्त, पैदल सैनिक रूपी तरङ्गों से समन्वित, सात्यकिरूपी वेला को पाकर कौरवसेना रूपी समुद्र वहीं रुक गया ॥२६॥

सम्भ्रान्तनरनागाश्वमावर्त्तत मुहुर्मुहुः ।
तत्सैन्यमिषुभिस्तेन वध्यमानं समन्ततः ॥२७॥
बभ्राम तत्रतत्रैव गावः शीतार्दिता इव ।

सात्यकि के बाणों से आहत कौरवसेना के नरवीर, हाथी और अश्व सब ओर चक्कर खाते दिखाई दे रहे थे । जैसे-शीत पीड़ित गायें, इधर उधर घूमती हैं ॥२७॥

पदातिनं रथं नागं सादिनं तुरगं तथा ॥२८॥
अविद्धं तत्र नाऽद्राक्षं युयुधानस्य सायकैः ।

पैदल सैनिक, रथी, हाथी, अश्वारोही और अश्व, कोई भी कौरवसेना में ऐसा दिखाई नहीं देता था, जो सात्यकि के बाण से बींधा हुआ नहीं हो ॥२८॥

न तादृक्कदनं राजन्कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ॥२९॥
यादृक्क्षयमनीकानामकरोत्सात्यकिर्नृप ।

हे राजन् ! अर्जुन, कौरवसेना में घुसते हुए इतना सेना का विध्वंस नहीं उड़ा सका, जितना सात्यकि ने कौरवसेना का नाश कर दिया ॥२९॥

अत्यर्जुनं शिनेः पौत्रो युध्यते पुरुषर्षभः ॥३०॥
वीतभीर्लाघवोपेतः कृतित्वं सम्प्रदर्शयन् ।

हे नृप ! पुरुषप्रवीर, शिनि-पौत्र, सात्यकि, अर्जुनसे भी अधिक युद्ध कर रहा था। वह युद्ध में नितान्त निर्भय, हस्तलाघव (फुर्ती)से युक्त हुआ युद्ध कौशल दिखा रहा था ॥३०॥

ततो दुर्योधनो राजा सात्वतस्य त्रिभिः शरैः ॥३१॥
विव्याध सूतं निशितैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
सात्यकिं च त्रिभिर्विद्ध्वा पुनरष्टाभिरेव च ॥३२॥

अब राजा दुर्योधन ने तीन बाणों से सात्यकि के सारथि और चार तीक्ष्ण बाणों से चारों अश्वों को बींध डाला और सात्यकि के भी तीन बाण मार कर फिर उसी पर आठ बाण मारे।

दुःशासनः षोडशभिर्विव्याध शिनिपुङ्गवम् ।
शकुनिः पञ्चविंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः ॥३३॥
दुःसहः पञ्चदशभिर्विव्याधोरसि सात्यकिम् ।

इसके अनन्तर दुःशासन ने सोलह, शकुनि ने पच्चीस, चित्रसेन ने पांच, दुःसह ने पन्द्रह बाण सात्यकिके हृदय में मारे ।

उत्स्मयन्वृष्णिशार्दूलस्तथा बाणैः समाहतः ॥३४॥
तानविध्यन्महाराज सर्वानेव त्रिभिस्त्रिभिः ।

हे महाराज ! अब बाणों से बिंधे हुए वृष्णिवंश के सिंह सात्यकि ने कुछ मुस्कुरा कर उन सब कौरव महारथियों को तीन २ बाण मार कर क्षत-विक्षत कर दिया ॥३४॥

गाढविद्धानरीन्कृत्वा मार्गणैः सोऽतितेजनैः ॥३५॥
शैनेयः श्येनवत्संख्ये व्यचरल्लघुविक्रमः ।

शिनिवंशोद्भव, शीघ्रता के साथ पराक्रम कर दिखाने वाले, सात्यकि ने रण में श्येन की तरह वेग दिखाकर अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं को बहुत ही तीव्र आहत कर दिया ॥३५॥

सौबलस्य धनुश्छित्वा हस्तावापं निकृत्य च ॥३६॥
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
चित्रसेनं शतेनैव दशभिर्दुःसहं तथा ॥३७॥
दुःशासनं तु विंशत्या विव्याध शिनिपुङ्गवः ।

सात्यकि ने सुबल-पुत्र शकुनि का धनुष काट कर हाथ का कवच काट डाला। इसके अनन्तर उसने राजा दुर्योधन के हृदय में तीन बाण मारे। इसी तरह चित्रसेनके ऊपर सौ, दुःशासन पर बीस बाणों का प्रहार करके उनको क्षत-विक्षत कर दिया ॥३६-३७॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय श्यालस्तव विशाम्पते ॥३८॥
अष्टाभिः सात्यकिं विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः।

हे विशाम्पते! अब तुम्हारे श्यालक (साले) शकुनि ने दूसरा धनुष उठाया। इसने आठ बाण से प्रथम और पांच बाणों से दुबारा सात्यकि को आहत किया ॥३८॥

दुःशासनश्च दशभिर्दुःसहश्च त्रिभिः शरैः ॥३९॥
दुर्मुखश्च द्वादशभी राजन्विव्याध सात्यकिम्।

हे राजन्! इसी प्रकार दुःशासन ने दश, दुःसह ने तीन, दुर्मुख ने बारह बाण मार कर सात्यकि को घायल किया ॥३९॥

दुर्योधनस्त्रिसप्तत्या विध्वा भारत माधवम् ॥४०॥
ततोऽस्य निशितैर्बाणैस्त्रिभिर्विव्याध सारथिम्।

हे भारत! राजा दुर्योधन ने तेहत्तर बाण मार मार कर वृष्णिवीर सात्यकि को आहत किया और तीन तीखे बाण मार कर सात्यकि के सारथि को भी क्षतविक्षत कर दिया ॥४०॥

तान्सर्वान्सहिताञ्शूरान्यतमानान्महारथान् ॥४१॥
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैः पुनर्विव्याध सात्यकिः।

हे नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार तुम्हारे कौरववीर इकट्ठे ही प्रयत्न कर रहे थे, कि सात्यकि ने पांच २ बाण मार कर उन सारे महारथियों को बींध डाला ॥४१॥

ततः स रथिनां श्रेष्ठस्तव पुत्रस्य सारथिम् ॥४२॥
आजघानाऽऽशु भल्लेन स हतो न्यपतद्भुवि ।

अब इस रथिश्रेष्ठ सात्यकि ने एक ऐसा शीघ्रगामी बाण मारा, जिससे उसने कुरुराज दुर्योधन के सारथि को मार कर रणभूमि में गिरा दिया ॥४२॥

पतिते सारथौ तस्मिंस्तव पुत्ररथः प्रभो ॥४३॥
वातायमानैस्तैरश्वैरपानीयत सङ्गरात् ।

हे प्रभो ! जब सारथि रथ से नीचे गिर गया-तो तुम्हारे पुत्र के रथ को रण से अश्व, वायु के समान वेग से ले उड़े ॥४३॥

ततस्तव सुतो राजन्सैनिकाश्च विशाम्पते ॥४४॥
राज्ञो रथमभिप्रेक्ष्य विद्रुतः शतशोऽभवन् ।
विद्रुतं तत्र तत्सैन्यं दृष्ट्वा भारत सात्यकिः ॥४५॥
अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णै रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।

हे विशाम्पते ! इस प्रकार तुम्हारे पुत्र के रण से चले जाने पर राजा के रथ को वहां न देखकर कौरव सैनिक सैंकड़ों की संख्या में भाग निकले। हे भारत ! अब कौरव सेना को भागते देखकर सात्यकि शिला पर तीक्ष्ण किये हुए सुवर्णजटित तीखे बाणों से उनको बींधने लगा ॥४५॥

विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि सहस्रशः ॥४६॥
प्रययौ सात्यकी राजञ्श्वेताश्वस्य रथं प्रति।

हे राजन् ! अब तुम्हारी सेना के सहस्रों वीरों को इस तरह भगा कर सात्यकि, श्वेत अश्व के वाहन धारी अर्जुन की ओर शीघ्रता से बढ़ा ॥४६॥

तं शरानाददानं च रक्षमाणं च सारथिम् ॥
आत्मानं पालयानं च तावकाः समपूजयन् ॥४७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुर्योधनपलायने विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

सात्यकि के इस प्रकार बाण लेने और छोड़ने तथा सारथि की रक्षा करते रहने और अपनी रक्षा भी करते हुए देखकर तुम्हारे पक्ष के वीरों ने ही सात्यकि की बहुत प्रशंसा की ॥४७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सात्यकि के रण-प्रवेश और राजा दुर्योधन के रण से हट जाने का एक सौ बीसवां अध्याय समाप्त हुआ

# एक सौ इक्कीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

सम्प्रमृद्य महत्सैन्यं यान्तं शैनेयमर्जुनम् ।
निर्ह्रीका मम ते पुत्राः किमकुर्वत सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! कौरवों की महासेना का मर्दन करके सात्यकि के अर्जुन के समीप पहुंचने की चेष्टा को देखकर मेरे लज्जाहीन पुत्रों ने क्या किया ॥१॥

कथं चैषां तदा युद्धे धृतिरासीन्मुमूर्षताम् ।
शैनेयचरितं दृष्ट्वा यादृशं सव्यसाचिनः ॥२॥

सव्यसाची अर्जुन के सदृश शिनि-पौत्र सात्यकि के चरित्र को देखकर मृत्यु की ओर गमन करने वाले मेरे पुत्रों के धैर्य की इस युद्ध में क्या दशा रही ॥२॥

किं नु वक्ष्यन्ति ते क्षात्रं सैन्यमध्ये पराजिताः ।
कथं नु सात्यकिर्युद्धे व्यतिक्रान्तो महायशाः ॥३॥

हे सञ्जय ! सेना के मध्य में स्वयं पराजित हुए मेरे पुत्र अन्य क्षत्रियवीरों से क्या कह सके होंगे, कि युद्ध में महायशस्वी सात्यकि आगे कैसे निकल गया ॥३॥

कथं च मम पुत्राणां जीवतां तत्र सञ्जयः ।
शैनेयोऽभिययौ युद्धे तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥४॥

हे सञ्जय ! मेरे पुत्रों के जीते हुए शिनि-पौत्र सात्यकि कैसे युद्ध में आगे निकल गया-यह तुम मुझे बताओ ॥४॥

अत्यद्भुतमिदं तात त्वत्सकाशाच्छृणोम्यहम् ।
एकस्य बहुभिः सार्धं शत्रुभिस्तैर्महारथैः ॥५॥
विपरीतमहं मन्ये मन्दभाग्यं सुतं प्रति ।
यत्राऽवध्यन्त समरे सात्वतेन महारथाः ॥६॥

हे तात ! मैं तो तुम से यह एक अद्भुत बात सुन रहा हूं, कि अकेले सात्यकि का बहुत से शत्रुओं के साथ युद्ध हुआ और वे शत्रु भी क्षुद्र नहीं, महारथी थे। इस पर भी उस वीर सात्यकि ने बहुत से महारथी मार गिराए। इसको मैं केवल अपने पुत्र के मन्दभाग्य की विपरीतता ही समझता हूं ॥५-६॥

एकस्य हि न पर्याप्तं यत्सैन्यं तस्य सञ्जय ।
क्रुद्धस्य युयुधानस्य सर्वे तिष्ठन्तु पाण्डवाः ॥७॥

हे सञ्जय ! यह देखने की बात है, कि मेरी सारी सेना क्रोध में भरे हुए अकेले सात्यकि के लिये पर्याप्त नहीं हुई, फिर अन्य पाण्डवों की तो चर्चा ही क्या है ॥७॥

निर्जित्य समरे द्रोणं कृतिनं चित्रयोधिनम् ।
यथा पशुगणान्सिंहस्तद्वद्धन्ता सुतान्मम ॥८॥

युद्ध विद्या में कृतकार्य, विचित्र योद्धा आचार्य द्रोण को रण में जीत कर पशुओं को सिंह की तरह उसने मेरे पुत्रों को भी मार पीट दिया ॥८॥

कृतवर्मादिभिः शूरैर्यत्तैर्बहुभिराहवे।
युयुधानो न शकितो हन्तुं यत्पुरुषर्षभः ॥९॥

यह बड़े अचम्भे की बात है, कि इस रण में बड़े सावधान कृतवर्मा आदि शूरवीर भी पुरुषप्रवीर अकेले सात्यकि को मारने में समर्थ नहीं हो सके ॥९॥

नैतदीदृशकं युद्धं कृतवांस्तत्र फाल्गुनः।
यादृशं कृतवान्युद्धं शिनेर्नप्ता महायशाः ॥१०॥

हे तात ! ऐसा युद्ध तो अर्जुन भी नहीं कर पाया-जैसा युद्ध महायशस्वी शिनि-पौत्र सात्यकि ने कर दिखाया ॥१०॥

सञ्जय उवाच—

तव दुर्मन्त्रिते राजन्दुर्योधनकृतेन च।
शृणुष्वावहितो भूत्वा यत्ते वक्ष्यामि भारत ॥११॥

सञ्जय ने कहा—हे भारत ! यह सब कुछ तुम्हारी दुर्मन्त्रणा और राजा दुर्योधन के कुकृत्य का परिणाम है। अब तुम सावधान होकर सुनो-मैं तुमको सारे समाचार सुनाता हूं ॥११॥

ते पुनः संन्यवर्तन्त कृत्वा संशप्तका मिथः।
परां युद्धे मतिं क्रूरां तव पुत्रस्य शासनात् ॥१२॥

अब तुम्हारे पुत्र की आज्ञा से युद्ध के लिए दृढ़ बुद्धि करके संशप्तक सात्यकि से युद्ध करने के लिए लौट पड़े ॥१२॥

त्रीणि सादिसहस्राणि दुर्योधनपुरोगमाः।
शककाम्बोजबाल्हीका यवनाः पारदास्तथा ॥१३॥

कुलिन्दास्तङ्गणाम्बष्ठाः पैशाचाश्च सबर्बराः ।
पार्वतीयाश्च राजेन्द्र क्रुद्धाः पाषाणपाणयः ॥१४॥
अभ्यद्रवन्त शैनेयं शलभाः पावकं यथा ।

हे राजेन्द्र ! तीन सहस्र अश्वारोही तथा राजा दुर्योधन के सहित शक, काम्बोज, बाल्हीक, यवन, पारद, कुलिन्द, तङ्गण, अम्बष्ठ, पैशाच, बर्बर और पार्वत्य, क्रोध में भर कर बड़े २ पत्थर हाथ में लेकर अग्नि में पतङ्ग की भांति शिनिवंशोद्भव सात्यकि पर दौड़े ॥१३-१४॥

युक्ताश्च पार्वतीयानां रथाः पाषाणयोधिनम् ॥१५॥
शूराः पञ्चशतं राजञ्शैनेयं समुपाद्रवन् ।

हे राजन् ! पत्थरों से युद्ध करने वाले, पर्वत प्रदेश के पांच सौ शूरवीर रथ लेकर सात्यकि पर झपटे ॥१५॥

ततो रथसहस्रेण महारथशतेन च ॥१६॥
द्विरदानां सहस्रेण द्विसाहस्रैश्च वाजिभिः ।
शरवर्षाणि मुञ्चन्तो विविधानि महारथाः ॥१७॥
अभ्यद्रवन्त शैनेयमसंख्येयाश्च पत्तयः ।

इसी के साथ अन्य एक सहस्र रथ, एक सौ बड़े २ रथ, एक सहस्र हाथी और दो सहस्र अश्वों द्वारा अनेक महारथी अनेक तरह से बाण-वर्षा करते हुए सात्यकि पर टूट पड़े । इनके साथ असंख्य पैदल सैनिक थे ॥१६-१७॥

तांश्च सञ्चोदयन्सर्वान्घ्नतैनमिति भारत ॥१८॥
दुःशासनो महाराज सात्यकिं पर्यवारयत् ।

हे भारत ! इन सबको प्रेरणा करता हुआ दुःशासन कह रहा था, मारो ? मारो ? इस तरह कहते हुए दुःशासन ने सात्यकि को जा घेरा ॥१८॥

तत्राऽद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं महत् ॥१९॥
यदेको बहुभिः सार्धमसम्भ्रान्तमयुध्यत ।

इस युद्धमें भी सात्यकि का ही पराक्रम अद्भुत देखा गया-जो अकेले ने बिना किसी घबराहट के इन बहुत से वीरों के साथ युद्ध किया ॥१९॥

अवधीच्च रथानीकं द्विरदानां च तद्बलम् ॥२०॥
सादिनश्चैव तान्सर्वान्दस्यूनपि च सर्वशः ।

इस महारथी सात्यकि ने रथ और गजसेना का विध्वंस कर दिया । इनके अनेक सवार मार डाले और बहुत म्लेच्छों को यमपुर भेज दिया ॥२०॥

तत्र चक्रैर्विमथितैर्भग्नैश्च परमायुधैः ॥२१॥
अक्षैश्च बहुधा भग्नैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
कुञ्जरैर्मथितैश्चापि ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥२२॥

वहां टूटे हुए चक्र, खण्डित हुए अस्त्र, शस्त्र, अक्ष; छिन्न-भिन्न ईषा, दण्डक, ऊंचे नीचे काष्ठ, कुचले हुए ,हाथी कट कर पड़ी हुई ध्वजा, कवच तथा सैनिकों से रणभूमि व्याप्त हो गई ।

चर्मभिश्च तथाऽनीकैर्व्यवकीर्णा वसुन्धरा ।
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैरनुकर्षैश्च मारिष ॥२३॥
संछन्ना वसुधा तत्र द्यौर्ग्रहैरिव भारत ।
गिरिरूपधराश्चापि पतिताः कुञ्जरोत्तमाः ॥२४॥

हे आर्य ! इसी तरह माला,आभूषण, वस्त्र, रथ के नीचे के काष्ठों से भूमि इस प्रकार भर गई, कि जैसे ग्रहों से आकाश भरा हुआ होता है। हे भारत ! वहीं पर पर्वत के समान आकार धारी बहुत से उत्तम २ हाथी पड़े थे ॥२३-२४॥

अञ्जनस्य कुले जाता वामनस्य च भारत।
सुप्रतीककुले जाता महापद्मकुले तथा ॥२५॥
ऐरावतकुले चैव तथाऽन्येषु कुलेषु च ।
जाता दन्तिवरा राजञ्शेरते बहवो हताः ॥२६॥

हे राजन् ! अञ्जन, वामन, सुप्रतीक महापद्म, ऐरावत आदि दिग्गज तथा अन्य उत्तम २ हाथियों के वंश में उत्पन्न उत्तम २ हाथी, मरे हुए रणभूमि में लोट रहे थे ॥२५-२६॥

वनायुजान्पार्वतीयान्काम्बोजान्बाल्हिकानपि ।
तथा हयवरान्राजन्निजघ्ने तत्र सात्यकिः ॥२७॥

हे राजन् ! सात्यकि ने वनायुज, पार्वत्य, काम्बोज और बाल्हिकदेशोत्पन्न, बहुत से उत्तम अश्व भी मार २ कर बिछा दिये थे ॥२७॥

नानादेशसमुत्थांश्च नानाजातींश्च दन्तिनः ।
निजघ्ने तत्र शैनेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२८॥

हे भारत ! शिनि-पौत्र सात्यकि ने नाना देशों में उत्पन्न अनेक जाति के हाथियों को सैंकड़ों और सहस्रों की संख्या में मार गिराया ॥२८॥

तेषु प्रकाल्यमानेषु दस्यून्दुःशासनोऽब्रवीत् ।
निवर्त्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं स्रुतेन वः ॥२९॥

जब सात्यकि ने अनेक वीरों को ललकारा-तो उन म्लेच्छ वीरों से दुःशासन ने कहा—हे वीरो ! तुम क्यों भाग रहे हो; लौटो और युद्ध करो ॥२९॥

तांश्चाऽतिभग्नान्सम्प्रेक्ष्य पुत्रो दुःशासनस्तव ।
पाषाणयोधिनः शूरान्पार्वतीयानचोदयत् ॥३०॥

जब उनको वेग के साथ भागते देखा-तो तुम्हारा पुत्र दुःशासन पाषाणों से युद्ध करने वाले, पर्वत प्रदेशोत्पन्न शूरवीरों से बोले ।

अश्मयुद्धेषु कुशला नैतज्जानाति सात्यकिः ।
अश्मयुद्धमजानन्तं हतैनं युद्धकामुकम् ॥३१॥

हे महावीरो ! यह सात्यकि पत्थरों के युद्ध को नहीं जानता है। तुम लोग पत्थरों द्वारा युद्ध करने में कुशल हो । युद्ध के अभिलाषी, पाषाणयुद्ध के नहीं जानने वाले सात्यकि को तुम लोग मार गिराओ ॥३१॥

तथैव कुरवः सर्वे नाऽश्मयुद्धविशारदाः ।
अभिद्रवत मा भैष्ट न वः प्राप्स्यति सात्यकिः ॥

ये कौरववीर भी पाषाण युद्ध में अकुशल हैं । तुम लोग, दौड़ो ? डरो नहीं । तुम्हारे ऊपर सात्यकि आक्रमण नहीं कर सकता है ॥३२॥

ते पार्वतीया राजानः सर्वे पाषाणयोधिनः ।
अभ्यद्रवन्त शैनेयं राजानमिव मन्त्रिणः ॥३३॥

ये पर्वत के अनेक राजा, सारे पाषाण युद्ध करने में कुशल थे । ये सात्यकि पर इस तरह दौड़े-जैसे राजा के पास मन्त्री लोग शीघ्रता से भाग कर जाते हैं ॥३३॥

ततो गजशिरःप्रख्यैरुपलैः शैलवासिनः ।
उद्यतैर्युयुधानस्य पुरतस्तस्थुराहवे ॥३४॥

अब ये पर्वत प्रदेश के महीपाल, हाथी के मस्तक के बराबर पत्थर लेकर बड़ी तय्यारी के साथ सात्यकि पर आक्रमण करने को उसके सन्मुख खड़े हुए ॥३४॥

क्षेपणीयैस्तथाऽप्यन्ये सात्वतस्य वधैषिणः ।
चोदितास्तव पुत्रेण सर्वतो रुरुधुर्दिशः ॥३५॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र दुःशासन से प्रेरित हुए. सात्यकि के वध के अभिलाषी, अनेक पर्वत प्रदेश के वीरों ने पाषाण फैंकने के यन्त्र लेकर सब ओर से सात्यकि को घेर लिया ॥३५॥

तेषामापततामेव शिलायुद्धं चिकीर्षताम् ।

सात्यकिः प्रतिसन्धाय निशितान्प्राहिणोच्छरान् ॥

पाषाणयुद्ध के करने वाले पार्वत्य राजाओं के आक्रमण को देखकर सात्यकि ने भी धनुष पर तीखे बाण चढ़ा कर प्रहार करना आरम्भ किया ॥३६॥

तामश्मवृष्टिं तुमुलां पार्वतीयैः समीरिताम् ।

चिच्छेदोरगसङ्काशैर्नाराचैः शिनिपुङ्गवः ॥३७॥

पर्वत प्रदेश के नृपो द्वारा की गई इस घोर पाषाणवर्षा को सात्यकि ने अपने सर्प के समान भीषण बाणों से काट कर रणभूमि में गिरा दिया ॥३७॥

तैरश्मचूर्णैर्दीप्यद्भिः खद्योतानामिव व्रजैः ।

प्रायः सैन्यान्यहन्यन्त हाहाभूतानि मारिष ॥३८॥

हे आर्य ! खद्योतों के समूह की भांति चमकते हुए पत्थरों के टुकड़ों से कौरवसेना आहत होने लगी। इस समय उसमें स्वयं हाहाकार मच गया ॥३८॥

ततः पञ्चशतं शूराः समुद्यतमहाशिलाः ।

निकृत्तबाहवो राजन्निपेतुर्धरणीतले ॥३९॥

हे राजन् ! सात्यकि ने बड़ी २ शिला हाथ में लेकर युद्ध को आये हुए पार्वत्य पांच सौ वीरों की बाहु काट डाली। अब वे राजा भी आहत होकर रणभूमि में गिरने लगे ॥३९॥

पुनर्दशशताश्चाऽन्ये शतसाहस्रिणस्तथा ।
सोपलैर्बाहुभिश्छिन्नैः पेतुरप्राप्य सात्यकिम् ॥४०॥

इसीतरह पाषाणशिला हाथ में लिये हुए दश सहस्र या लाख संख्या के पार्वत्यवीर, पाषाण-सहित भुजाओं के कटने से अङ्ग-भङ्ग होकर रणाङ्गण में गिर गए। वे सात्यकि तक पहुंच भी नहीं पाये ॥४०॥

पाषाणयोधिनः शूरान्यतमानानवस्थितान् ।
न्यवधीद्बहुसाहस्रांस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥४१॥

हे राजन्! पाषाणों से युद्ध करने को बड़े प्रयत्न से स्थित हुए कई सहस्र पर्वतदेशोद्भव वीरों को सात्यकि ने मार २ कर बिछा दिया—यह बड़ा ही अद्भुत दृश्य था ॥४१॥

ततः पुनर्व्यात्तमुखास्तेऽश्मवृष्टीः समन्ततः ।
अयोहस्ताः शूलहस्ता दरदास्तङ्गणाः खसाः ॥४२॥
लम्पाकाश्च कुलिन्दाश्च चिक्षिपुस्तांश्च सात्यकिः ।
नाराचैः प्रतिचिच्छेद प्रतिपत्तिविशारदः ॥४३॥

इसके अनन्तर मुख फाड़कर सब ओर से पत्थर बरसाते हुए तथा लोहदण्ड और शूल हाथ में लिये दरद, तङ्गण, खस, लम्पक और कुलिन्द, सात्यकि पर प्रहार करने लगे। सात्कयि भी इन पर बाण बरसाने लगा। युद्ध के समय शीघ्र उपाय करने में बुद्धिमान्, सात्यकि ने बाणों से ये पत्थर भी काट २ कर गिरा दिए ॥४२-४३॥

अद्रीणां भिद्यमानानामन्तरिक्षे शितैः शरैः ।
शब्देन प्राद्रवन्संख्ये रथाश्वगजपत्तयः ॥४४॥

आकाश में तीक्ष्ण बाणों से इन बड़ी २ शिलाओं के टुकड़े २ कर देने पर रण में रथ, अश्व, गज और पैदल सैनिक, बड़े कोलाहल के साथ भाग निकले ॥४४॥

अश्मचूर्णैरवाकीर्णा मनुष्यगजवाजिनः ।
नाऽशक्नुवन्नवस्थातुं भ्रमरैरिव दंशिताः ॥४५॥

मनुष्य, हाथी और अश्व, इन पत्थरों के खण्डों से व्याप्त होगए। ये इस स्थान पर ठहरने को इस तरह से समर्थ नहीं हो सके, जैसे—मधु मक्खियों ने काट लिया हो ॥४५॥

हतशिष्टाः सरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डकाः ।
कुञ्जरा वर्जयामासुर्युयुधानरथं तदा ॥४६॥

रक्त में भीगे हुए, चूर्ण हुई मस्तकग्रन्थि के धारण करने वाले बचे हुए हाथी, सात्यकि के रथ को छोड़कर भाग गए ॥४६॥

ततः शब्दः समभवत्तव सैन्यस्य मारिष ।
माधवेनाऽर्द्यमानस्य सागरस्येव पर्वणि ॥४७॥

हे आर्य ! सात्यकि के आघातों से व्याकुल तुम्हारी सेना में इस प्रकार कोलाहल खड़ा होगया, जैसे पर्वत के ऊपर उछलते हुए समुद्र में कलकलाहट खड़ी हो जाती है ॥४७।

तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा द्रोणो यन्तारमब्रवीत् ।
एष सूत रणे क्रुद्धः सात्वतानां महारथः ॥४८॥

इस घोर हाहाकार को सुनकर आचार्य द्रोण अपने सारथि से बोले—हे सूत ! इस रणमें महारथी सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि कुपित हुआ दिखाई पड़ता है ॥४८॥

दारयन्बहुधा सैन्यं रणे चरति कालवत् ।
यत्रैव शब्दस्तुमुलस्तत्र सूत रथं नय ॥४६॥

यह हमारी सेना को चीरता फाड़ता हुआ काल की तरह घूम रहा है। हे सूत ! जहां यह घोर कोलाहल हो रहा है-वहां तुम मेरे रथ को ले चलो ॥४६॥

पाषाणयोधिभिर्नूनं युयुधानः समागतः ।
तथा हि रथिनः सर्वे ह्रियन्ते विद्रुतैर्हयैः ॥५०॥

पाषाणों से युद्ध करने वाले वीरों से निश्चय सात्यकि का सामना पड़ गया है, जिससे ये सारे रथी और अश्वारोही शीघ्रता से भाग रहे हैं ॥५०॥

विशस्त्रकवचा रुग्णास्तत्र तत्र पतन्ति च ।
न शक्नुवन्ति यन्तारः संयन्तुं तुमुले हयान् ॥५१॥

कौरववीरों के कवच और शस्त्र छिन्न-भिन्न हो रहे हैं । ये क्षत-विक्षत हुए इधर उधर गिर जाते हैं, सारथिगण भी, इस घमसान युद्ध में अपने अश्वों के नियमन करने में समर्थ नहीं दिखाई देते ॥५१॥

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा भारद्वाजस्य सारथिः ।
प्रत्युवाच ततो द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥५२॥

आचार्य द्रोण के ये वचन सुनकर समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोण से उनका सारथि यह वचन बोला ॥५२॥

सैन्यं द्रवति चाऽऽयुष्मन्कौरवेयं समन्ततः ।
पश्य योधान्रणे भग्नान्धावतो वै ततस्ततः ॥५३॥

हे आयुष्मान ! कौरवसेना सब ओर बुरी तरह भाग रही है। तुम तनिक रण में इधर उधर भागते हुए योद्धाओं को तो देखो।

इमे च संहताः शूराः पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
त्वामेव हि जिघांसन्त आद्रवन्ति समन्ततः ॥५४॥

ये इकट्ठे हुए शूरवीर, पञ्चाल, पाण्डवों के साथ तुम्हारे मारने की अभिलाषा से सब ओर झपट रहे हैं ॥५४॥

अत्र कार्यं समाधत्स्व प्राप्तकालमरिन्दम ।
स्थाने वा गमने वापि दूरं यातश्च सात्यकिः ॥५५॥

हे अरिमर्दन ! अब तुम शीघ्र इस समय के योग्य प्रतीकार क्रिया का प्रारम्भ करो। तुमको यहीं ठहरे रहना है या सात्यकि के पीछे गमन करना है, इसका निश्चय करो। सात्यकि बहुत दूर निकल गया है ॥५५॥

तथैवं वदतस्तस्य भारद्वाजस्य सारथेः ।
प्रत्यदृश्यत शैनेयो निघ्नन्बहुविधान्रथान् ॥५६॥

भरद्वाजवंशोद्भव द्रोण के सारथि के इतना कहने पर अनेक रथियों को मारता हुआ सात्यकि, द्रोणाचार्य के दृष्टिगोचर हुआ।

ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ।

युयुधानरथं त्यक्त्वा द्रोणानीकाय दुद्रुवुः ॥५७॥

सात्यकि द्वारा रण में आहत किये हुए तुम्हारे महारथी, सात्यकि के रथ का पीछा छोड़कर द्रोणाचार्य के व्यूह की ओर दौड़े ॥५६॥

यैस्तु दुःशासनः सार्धं रथैः पूर्वं न्यवर्त्तत ।

ते भीतास्त्वभ्यधावन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥५८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

जिन रथियों को लेकर दुःशासन ने प्रथम सात्यकि पर आक्रमण किया, वे अब भयभीत होकर द्रोणाचार्य के रथ के प्रति दौड़ने लगे ॥५८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सात्यकि के प्रवेश का एक सौ इक्कीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



# एक सौ बाईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

दुःशासनरथं दृष्ट्वा समीपे पर्यवस्थितम् ।
भारद्वाजस्ततो वाक्यं दुःशासनमथाऽब्रवीत् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! द्रोणाचार्य ने अपने समीप में ही स्थित, दुःशासन के रथ को देखकर दुःशासन से यह वाक्य कहा।

दुःशासन रथाः सर्वे कस्माच्चैते प्रविद्रुताः ।
कच्चित्क्षेमं तु नृपतेः कच्चिज्जीवति सैन्धवः ॥२॥

हे दुःशासन ! ये सारे रथी, कैसे भाग रहे हैं ? राजा दुर्योधन तो कल्याणसहित है ? अभी तक सिन्धुराज जयद्रथ बचा हुआ तो है ॥२॥

राजपुत्रो भवानत्र राजभ्राता महारथः ।
किमर्थं द्रवते युद्धे यौवराज्यमवाप्य हि ॥३॥

तुम तो राजपुत्र और राजा के भ्राता महारथी हो। जब तुम युवराजपद पर आरूढ़ हो-तब इस तरह कैसे भाग रहे हो ॥३॥

दासी जिताऽसि द्यूते त्वं यथा कामचरी भव ।
वाससां वाहिका राज्ञो भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मे भव ॥४॥

हे दुःशासन ! तुमने तो पूर्व में द्रौपदी से कहा था, कि तुम द्यूत में जीत ली गई। तुम हमारे बड़े भ्राता राजा दुर्योधन

की दासी हो चुकी हो। अब तुम चक्रवाहिका वन जाओ या जैसी तुम्हारी अभिलाषा हो-वहां चली जाओ ॥४॥

न सन्ति पतयः सर्वे तेऽद्य पण्ढतिलैः समाः ।
दुःशासनैवं कस्मात्त्वं पूर्वमुक्त्वा पलायसे ॥५॥

अब तेरे पति कुछ भी नहीं रहे हैं। वे तो नपुंसकों के तुल्य हो गए हैं। हे दुःशासन ! तुम इस प्रकार की प्रथम डींग मार कर भी आज कैसे भाग रहे हो ॥५॥

स्वयं वैरं महत्कृत्वा पञ्चालैः पाण्डवैः सह ।
एकं सात्यकिमासाद्य कथं भीतोऽसि संयुगे ॥६॥

तुमने प्रथम तो पाण्डव और पाञ्चालों के साथ स्वयं वैर किया और अब एक सात्यकि से टक्कर खाकर तुम भय से रण में भागे फिरते हो ॥६॥

न जानीषे पुरा त्वं तु गृह्णन्नक्षान्दुरोदरे ।
शरा ह्येते भविष्यन्ति दारुणाशीविषोपमाः ॥७॥

हे वीर ! क्या तू नहीं जानता था, कि ये द्यूत के पासे अन्त में दारुण सर्प के सदृश बाण बन जावेंगे ॥७॥

अप्रियाणां हि वचसां पाण्डवस्य विशेषतः ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशस्त्वन्मूलो ह्यभवत्पुरा ॥८॥

पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर के अप्रिय वचनों का वक्ता विशेष कर तू ही था और द्रौपदी के क्लेश का प्रधान कारण भी तू ही है।

क्व ते मानश्च दर्पश्च क्व ते वीर्यं क्व गर्जितम् ।
आशीविषसमान्पार्थान्कोपयित्वा क्व यास्यसि ॥९॥

अब तेरा अभिमान, घमण्ड, पराक्रम और गर्जना (डींगे) कहां चली गई। अब आशीविष सर्प के सदृश भयङ्कर पाण्डवों को कुपित करके कहां बचकर निकलेगा ॥९॥

शोच्येयं भारती सेना राज्यं चैव सुयोधनः ।
यस्य त्वं कर्कशो भ्राता पलायनपरायणः ॥१०॥

अब इस कौरवसेना का दुर्भाग्य समझना चाहिए या इस कौरवराज्य और राजा सुयोधन का दुर्भाग्य है-जो तुझ जैसा भागने वाला कर्कश भ्राता उनको मिला है ॥१०॥

ननु नाम त्वया वीर दीर्यमाणा भयार्दिता ।
स्वबाहुबलमास्थाय रक्षितव्या ह्यनीकिनी ॥११॥

हे महावीर ! अब भयातुर होकर भागती हुई इस कौरव सेना की अपने बाहुबल के आश्रय से तुम रक्षा करो ॥११॥

स त्वमद्य रणं हित्वा भीतो हर्षयसे परान् ।
विद्रुते त्वयि सैन्यस्य नायके शत्रुसूदन ॥१२॥
कोऽन्यः स्थास्यति संग्रामे भीतो भीते व्यपाश्रये ।

हे शत्रुसूदन ! आज तुम रण से भयभीत होकर भाग रहे हो। इस तरह सेनानायक होकर भी भागने से तुम शत्रुओं के हर्ष का कारण बन रहे हो। जब तुम ही भयभीत होकर भाग रहे हो-तो आश्रयहीन हुआ कौन वीर रणक्षेत्र में ठहरेगा ॥१२॥

एकेन सात्वतेनाऽद्य युध्यमानस्य तेन वै ॥१३॥

पलायने तव मतिः संग्रामाद्धि प्रवर्त्तते ।

अभी तो सात्वतवंशोद्भव युद्धकुशल सात्यकि से ही तुम्हारा सामना पड़ा है, इसी से तुम्हारी बुद्धि रण से भागने में आज प्रवृत्त हो गई ॥१३॥

यदा गाण्डीवधन्वानं भीमसेनं च कौरव ॥१४॥

यमौ वा युधि द्रष्टासि तदा त्वं किं करिष्यसि ।

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! जब तुम गाण्डीव धनुषधारी, अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेव को देखोगे, तब तो न जाने तुम क्या करोगे ॥१४॥

युधि फाल्गुनबाणानां सूर्याग्निसमवर्चसाम् ॥१५॥

न तुल्याः सात्यकिशरा येषां भीतः पलायसे ।

सूर्य अग्नि के तुल्य जाज्वल्यमान, अर्जुन के बाणों के तुल्य रण में सात्यकि के बाण नहीं है। तुम इनसे ही भयभीत होकर भागने लगे ॥१५॥

त्वरितो वीर गच्छ त्वं गान्धार्युदरमाविश ॥१६॥

पृथिव्यां धावमानस्य नाऽन्यत्पश्यामि जीवनम् ।

हे वीर ! अब तुम शीघ्र जाओ और गान्धारी के उदर में घुस जाओ। पृथ्वी पर भागने से तो मैं अन्य किसी स्थान में तुम्हारे प्राण बचते नहीं देखता हूं ॥१६॥

यदि तावत्कृता बुद्धिः पलायनपरायणा ॥१७॥
पृथिवी धर्मराजाय शमेनैव प्रदीयताम् ।

यदि तुम ने अपनी बुद्धि को पलायन में लगा ली है-तो धर्मराज को शान्ति के साथ ही पृथ्वी क्यों नहीं सौंप देते हो ।१७।

यावत्फाल्गुननाराचा निर्मुक्तोरगसन्निभाः ॥१८॥
नाऽऽविशन्ति शरीरं ते तावत्संशाम्य पाण्डवैः ।

कांचुली से रहित सर्प के तुल्य भीषण अर्जुन के बाण, जब तक तुम्हारे शरीर में प्रवेश नहीं करते हैं-उससे पूव ही तुम पाण्डवों से सन्धि कर लो ॥१८॥

यावत्ते पृथिवीं पार्था हत्वा भ्रातृशतं रणे ॥१९॥
नाऽऽक्षिपन्ति महात्मानस्तावत्संशाम्य पाण्डवैः ।
यावन्न क्रुद्ध्यते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥२०॥
कृष्णश्च समरश्लाघी तावत्संशाम्य पाण्डवैः ।

हे वीर ! जब तक वे महावीर पाण्डव, रण में तुम्हारे सौओं भ्राताओं को मार कर पृथ्वी पर अधिकार नहीं कर लेते हैं-उससे पूर्व ही तुम पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो। तुम तो धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर और रण में प्रशंसाप्राप्त श्रीकृष्ण, जब तक कुपित नहीं होते हैं, उससे पूर्व ही पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो ॥२०॥

यावद्भीमो महाबाहुर्विगाह्य महतीं चमूम् ॥२१॥
सोदरांस्ते न गृह्णाति तावत्संशाम्य पाण्डवैः ।

हे दुःशासन! जब तक महाबाहु भीमसेन, तुम्हारी इस विशाल कौरव सेना का आलोडन करके तुम्हारे भाइयों को नहीं पकड़ लेता है, तुम उससे प्रथम ही सन्धि कर लो ॥२१॥

पूर्वमुक्तश्च ते भ्राता भीष्मेणाऽसौ सुयोधनः ॥२२॥
अजेयाः पाण्डवाः संख्ये सौम्य संशाम्य तैः सह ।
न च तत्कृतवान्मन्दस्तत्र भ्राता सुयोधनः ॥२३॥
स युद्धे धृतिमास्थाय यत्तो युध्यस्व पाण्डवैः ।

हे सौम्य! महारथी भीष्म ने प्रथम ही तुम्हारे भ्राता दुर्योधन से कहा था, कि ये पाण्डव रण में अजेय हैं-तुम इनके साथ सन्धि कर लो। उनकी इस बात को तुम्हारे मूर्ख भ्राता दुर्योधन ने नहीं मानी। अब तुम सब तरह तय्यार रह कर धैर्य के साथ पाण्डवों से युद्ध करो ॥२२-२३॥

तवापि शोणितं भीमः पास्यतीति मया श्रुतम् ॥
तच्चाऽप्यवितथं तस्य तत्तथैव भविष्यति ।

मैंने सुन रखा है, कि भीमसेन ने तुम्हारे रक्तपान करने की प्रतिज्ञा की है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि वह अपनी इस प्रतिज्ञा को शीघ्र ही पूरी करके दिखावेगा ॥२४॥

किं भीमस्य न जानासि विक्रमं त्वं सुबालिश ॥२६॥
यत्त्वया वैरमारब्धं संयुगे अपलायिना ।

हे मतिहीन! क्या तू भीमसेन के पराक्रम को नहीं जानता है? फिर समझ में नहीं आता, कि भागने वाला होकर भी तूने उनके साथ क्यों वैर छेड़ा है ॥२५॥

गच्छ तूर्णं रथेनैव यत्र तिष्ठति सात्यकिः ॥२६॥
त्वया हीनं बलं ह्येतद्विद्रविष्यति भारत ।
आत्मार्थं योधय रणे सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥२७॥

अब तुम रथ के द्वारा शीघ्र वहीं पर जाओ, जहां पर सात्यकि युद्ध कर रहा है। हे भारत! तुम्हें न देखकर यह सारी कौरव-सेना भाग खड़ी होगी। अब तुम अपने हित के लिए सत्य-पराक्रमी सात्यकि से युद्ध करो ॥२६-२७॥

एवमुक्तस्तव सुतो नाऽब्रवीत्किञ्चिदप्यसौ ।
श्रुतं चाऽश्रुतवत्कृत्वा प्रायाद्येन स सात्यकिः ॥२८॥

हे भारत! आचार्य द्रोण के इतना कहने पर भी तुम्हारा पुत्र दुःशासन कुछ नहीं बोला। वह सुनी अनसुनी करके उसी ओर चल दिया-जिधर सात्यकि युद्ध कर रहा था ॥२८॥

सैन्येन महता युक्तो म्लेच्छानामनिवर्तिनाम् ।
आसाद्य च रणे यत्तो युयुधानमयोधयत् ॥२६॥

अब इसने युद्ध से पीछे नहीं हटने वाली म्लेच्छों की सेना साथ ले ली और उसको साथ लेकर बड़ी सावधानी से सात्यकि से युद्ध करने लगा ॥२६॥

द्रोणोऽपि रथिनां श्रेष्ठः पञ्चालान्पाण्डवांस्तथा ।
अभ्यद्रवत संक्रुद्धो जवमास्थाय मध्यमम् ॥३०॥

हे राजन्! दूसरी ओर रथियों में श्रेष्ठ आचार्य द्रोण ने भी क्रोध के साथ मध्यम वेग का आश्रय लेकर पञ्चाल और पाण्डवों के ऊपर आक्रमण किया ॥३०॥

प्रविश्य च रणे द्रोणः पाण्डवानां वरूथिनीम् ।
द्रावयामास योधान्वै शतशोऽथ सहस्रशः ॥३१॥

द्रोणाचार्य, रण में पाण्डवों की सेना में घुस कर उनके सैंकड़ों-सहस्रों योद्धाओं को भगाने लगा ॥३१॥

ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे ।
पाण्डुपाञ्चालमत्स्यानां प्रचक्रे कदनं महत् ॥३२॥

हे महाराज ! इसके अनन्तर द्रोणाचार्य अपना नाम सुना २ कर पाण्डव, पाञ्चाल और मत्स्यसेना का अत्यन्त विध्वंस करने लगा ॥३२॥

तं जयन्तमनीकानि भारद्वाजं ततस्ततः ।
पाञ्चालपुत्रो द्युतिमान्वीरकेतुः समभ्ययात् ॥३३॥

इस प्रकार सेनाओं को इधर उधर भगाते हुए भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य को देखकर पाञ्चालराज का पुत्र, महाकान्तिमान्, वीरकेतु उनके सन्मुख आया ॥३३॥

स द्रोणं पञ्चभिर्विध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चाऽस्य सप्तभिः ॥३४॥

उसने झुके पर्व वाले, पांच बाण मार कर द्रोणाचार्य को आहत कर दिया तथा एक अन्य बाण से ध्वजा और सात बाणों से इसके सारथि को बींध लिया ॥३४॥

तत्राऽद्भुतं महाराज दृष्टवानस्मि संयुगे ।
यद् द्रोणो रभसं युद्धे पाञ्चाल्यं नाऽभ्यवर्त्तत ॥३५॥

हे महाराज ! इस युद्ध में भी यह बड़ा ही अद्भुत कार्य देखा गया, कि द्रोणाचार्य जैसा वीर भी एकदम पाञ्चालराज के पुत्र वीरकेतु पर आक्रमण नहीं कर सका ॥३५॥

सन्निरुद्धं रणे द्रोणं पाञ्चाला वीक्ष्य मारिष ।
आवव्रुः सर्वतो राजन्धर्मपुत्रजयैषिणः ॥३६॥

हे आर्यगुणसम्पन्न ! राजन ! इस प्रकार रण में रुके हुए द्रोणाचार्य को देखकर धर्मराज की विजय के अभिलाषी पाञ्चाल-वीरों ने द्रोणाचार्य को घेर लिया ॥३६॥

ते शरैरग्निसङ्काशैस्तोमरैश्च महाधनैः ।
शस्त्रैश्च विविधै राजन्द्रोणमेकमवाकिरन् ॥३७॥

हे राजन् ! ये पाञ्चालवीर, अग्नि के सदृश जाज्वल्यमान बाण और अत्यन्त मूल्य वाले तोमरों तथा अनेक शस्त्रों से प्रहार करते हुए द्रोणाचार्य पर टूट पड़े ॥३७॥

निहत्य तान्बाणगणैर्द्रोणो राजन्समन्ततः ।
महाजलधरान्व्योम्नि मातरिश्वेव चाऽऽबभौ ॥३८॥

हे राजन् ! आचार्य द्रोण भी अपने बाणजाल से सब ओर उनके शस्त्रों को काट कर इस तरह सुशोभित होने लगा, जैसे आकाश में वायु बड़े २ मेघों को उड़ाकर सुशोभित होता है।

ततः शरं महाघोरं सूर्यपावकसन्निभम् ।
सन्दधे परवीरघ्नो वीरकेतो रथं प्रति ॥३९॥

इसके अनन्तर शत्रु वीर नाशक, द्रोणाचार्य ने पाञ्चालपुत्र वीरकेतु के रथ के ऊपर छोड़नेके अभिप्राय से सूर्य और अग्निके तुल्य तीक्ष्ण बाण को धनुष पर चढ़ाया ॥३६॥

स भित्त्वा तु शरो राजन्पाञ्चालकुलनन्दनम् ।
अभ्यगाद्धरणीं तूर्णं लोहितार्द्रो ज्वलन्निव ॥४०॥

हे राजन् ! द्रोणाचार्य का अग्नि की ज्वाला सा छोड़ता हुआ बाण, राजपुत्र वीरकेतु के शरीर में घुस कर रक्त में भीगा हुआ ही धरणी में घुस गया ॥४०॥

ततोऽपतद्रथात्तूर्णं पाञ्चालकुलनन्दनः ।
पर्वताग्रादिव महांश्चम्पको वायुपीडितः ॥४१॥

इस बाण के लगते ही पाञ्चालकुल को आनन्दित करने वाला वीरकेतु, वायु से उखाड़ कर पर्वत के शिखर से गिराये हुए चम्पक वृक्ष की भांति शीघ्र रथ से नीचे गिर गया ॥१४॥

तस्मिन्हते महेष्वासे राजपुत्रे महाबले ।
पञ्चालास्त्वरिता द्रोणं समन्तात्पर्यवारयन् ॥४२॥

इस महाबली, महाधनुर्धर, राजपुत्र वीरकेतु के मारे जाने पर पाञ्चालवीरों ने बड़े वेग से द्रोणाचार्य को चारों ओर से घेर लिया ॥४२॥

चित्रकेतुः सुधन्वा च चित्रवर्मा च भारत ।
तथा चित्ररथश्चैव भ्रातुर्व्यसनकर्शितः ॥४३॥

हे भारत ! अब अपने भ्राता वीरकेतु की मृत्यु के कारण राजकुमार चित्रकेतु, सुधन्वा, चित्रवर्मा और चित्ररथ बड़े ही शोकातुर हुए ॥४३॥

अभ्यद्रवन्त सहिता भारद्वाजं युयुत्सवः ।
मुञ्चन्तः शरवर्षाणि तपान्ते जलदा इव ॥४४॥

ये सारे एकदम द्रोणाचार्य से युद्ध करने की अभिलाषा से उन पर टूट पड़े । ये इस तरह बाण वर्षा कर रहे थे, जैसे-वर्षा काल में मेघ, जल की धारा लगा देता है ॥४४॥

स बध्यमानो बहुधा राजपुत्रैर्महारथैः ।
क्रोधमाहारयत्तेषामभावाय द्विजर्षभः ॥४५॥
ततः शरमयं जालं द्रोणस्तेषामवासृजत् ।

जब इन इकट्ठे ही महारथी राजपुत्रों ने अनेक प्रकार से आचार्य द्रोण को क्षत-विक्षत कर दिया-तो ब्राह्मणवीर द्रोण, उनके विनाश के लिए उन पर कुपित हो उठा । अब उसने भी बाणों का जाल उन राजकुमारों पर छोड़ना आरम्भ किया ॥४५॥

ते हन्यमाना द्रोणस्य शरैराकर्णचोदितैः ॥४६॥
कर्त्तव्यं नाऽभ्यजानन्वै कुमारा राजसत्तम ।

हे राजसत्तम ! कर्ण तक खैंचकर छोड़े हुए द्रोणाचार्य के बाणों से आहत हुए, राजकुमार "किंकर्तव्यविमूढ़" हो गए । उनको इससमय कुछ भी अपना कर्तव्य नहीं सूझ पड़ा ॥४६॥

तान्विमूढान्रणे द्रोणः प्रहसन्निव भारत ॥४७॥
व्यश्वसूतरथांश्चक्रे कुमारान्कुपितो रणे ।

हे भारत ! आचार्य द्रोण बड़े कुपित हो रहे थे । उन्होंने हंसते २ इन "किंकर्तव्यविमूढ" राजकुमारों को रण में बाण वर्षा करके अश्व, सूत और रथों से रहित कर दिया ॥४७॥

अथाऽपरैः सुनिशितैर्भल्लैस्तेषां महायशाः ॥४८॥
पुष्पाणीव विचिन्वन्हि सोत्तमाङ्गान्यपातयत् ।

इसके अनन्तर महायशस्वी, द्रोण ने अन्य तीक्ष्ण बाण छोड़कर पुष्प चुनने की तरह उनके मस्तकों को काट कर रणभूमि में गिरा दिया ॥४८॥

ते रथेभ्यो हताः पेतुः क्षितौ राजन्सुवर्चसः ॥४९॥
देवासुरे पुरा युद्धे यथा दैतेयदानवाः ।

हे राजन् ! जब उन तेजस्वी राजकुमारों के प्राण निकल गए-तो वे रथों से नीचे इस तरह भूमि पर गिर गए जैसे-देवासुर संग्राम में दैत्य और दानव गिर गए थे ॥४९॥

तान्निहत्य रणे राजन्भारद्वाजः प्रतापवान् ॥५०॥
कार्मुकं भ्रामयामास हेमपृष्ठं दुरासदम् ।

हे राजन् ! महाप्रतापी, भरद्वाजवंशोत्पन्न, द्रोणाचार्य रण में उनको मार कर अपने दुरासद सुवर्णपृष्ठ के धनुष को कंपाने लगा ॥५०॥

पञ्चालान्निहतान्दृष्ट्वा देवकल्पान्महारथान् ॥५१॥
धृष्टद्युम्नो भृशोद्विग्नो नेत्राभ्यां पातयञ्जलम् ।
अभ्यवर्त्तत संग्रामे क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥५२॥

जब पाण्डव सेनापति पाञ्चाल राजकुमार ने अपने देवों के सदृश महारथी भ्राताओं को मरे हुए देखा-तो वह अत्यन्त दुःखी होकर अपनी आंखोंसे आंसू छोड़ने लगा और अत्यन्त क्रुद्ध होकर द्रोण के रथ पर बुरी तरह झपटा ॥५१-५२॥

ततो हाहेति सहसा नादः समभवन्नृप ।
पाञ्चाल्येन रणे दृष्ट्वा द्रोणमावारितं शरैः ॥५३॥

हे नृप ! जब कोप में भरे हुए धृष्टद्युम्न ने अपने बाणों से द्रोणाचार्य को आच्छादित कर दिया-तो यह देखकर सारी सेना में हाहाकार मच गया ॥५३॥

स च्छाद्यमानो बहुधा पार्षतेन महात्मना ।
न विव्यथे ततो द्रोणः स्मयन्नेवाऽन्वयुध्यत ॥५४॥

महावीर, पर्षतवंशोद्भव, धृष्टद्युम्न द्वारा अनेक भांति से बाणों से आच्छादित होकर भी द्रोणाचार्य कुछ व्यथित नहीं हुए। वे मुस्कुराते हुए युद्ध करते रहे ॥५४॥

ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः क्रोधमूर्छितः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो नवत्या नतपर्वणाम् ॥५५॥

हे महाराज ! इसके अनन्तर पाञ्चालवीर धृष्टद्युम्न क्रोध से जल उठा। उसने क्रोधातुर होकर नतपर्वधारी नब्बे बाण द्रोणाचार्य की छाती में मारे ॥५५॥

स गाढविद्धो बलिना भारद्वाजो महायशाः ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥५६॥

महाबली धृष्टद्युम्न द्वारा अत्यन्त बींधा हुआ, महायशस्वी, द्रोणाचार्य मूर्च्छित सा होकर रथ के मध्य में बैठ गया ॥५६॥

तं वै तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः पराक्रमी ।
चापमुत्सृज्य शीघ्रं तु असिं जग्राह वीर्यवान् ॥५७॥

महापराक्रमी, वीर्यवान् धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को इस दशा में देखकर शीघ्र धनुष फैंक दिया और तलवार उठा ली ॥५७॥

अवप्लुत्य रथाच्चापि त्वरितः स महारथः ।
आरुरोह रथं तूर्णं भारद्वाजस्य मारिष ॥५८॥

हे आर्य ! वह महारथी शीघ्र रथ से कूद कर बड़े वेग से भरद्वाजवंशोत्पन्न द्रोणाचार्य के रथ पर चढ़ गया ॥५८॥

हर्तुमिच्छञ्छिरः कायात्क्रोधसंरक्तलोचनः ।
प्रत्याश्वस्तस्ततो द्रोणो धनुर्गृह्य महारथम् ॥५९॥

धृष्टद्युम्न की आंखें क्रोधमें लाल हो रही थीं। वह उसके शिर को शरीर से पृथक् कर ही देना चाहता था, कि द्रोण को कुछ चेतनता आ गई। उसने महान् शब्द करने वाले धनुष को उठाया।

आसन्नमागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं जिघांसया ।
शरैर्वैतस्तिकैः राजन्विव्याधाऽऽसन्नवेधिभिः ॥६०॥
योधयामास समरे धृष्टद्युम्नं महारथम् ।

हे राजन्! मारने की इच्छा से अपने समीप आये हुए धृष्टद्युम्न को देखकर पास में बेंध देने वाले, एक २ बितस्त (विलस्त) के बाणों से धृष्टद्युम्न को बेंध दिया। इस प्रकार महारथी धृष्टद्युम्न से द्रोणाचार्य का संग्राम होने लगा ॥६०॥

ते हि वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः ॥६१॥
द्रोणस्य विहिता राजन्यैर्धृष्टद्युम्नमाक्षिणोत् ।

ये जो एक २ वितस्त के बाण थे, वे पास में प्रहार करने के योग्य थे। इनका द्रोणाचार्य ने प्रयोग किया, जिनसे उसने धृष्टद्युम्न को क्षतविक्षित कर दिया ॥६१॥

स वध्यमानो बहुभिः सायकैस्तैर्महाबलः ॥६२॥
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं भग्नवेगः पराक्रमी ।

महापराक्रमी, महाबली धृष्टद्युम्न, द्रोणाचार्य के बहुत से बाणों से आहत होकर उसके रथ से वेग के साथ कूद पड़ा और धीरे २ शान्ति के साथ अपने रथ पर जा चढ़ा ॥६२॥

आरुह्य स्वरथं वीरः प्रगृह्य च महद्धनुः ॥६३॥
विव्याध समरे द्रोणं धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रोणश्चापि महाराज शरैर्निर्व्याध पार्षतम् ॥६४॥

महारथी पाञ्चालवीर धृष्टद्युम्न ने अपने रथ पर चढ़कर विशाल धनुष उठाया और रण में द्रोणाचार्य को बींध दिया। हे महाराज! द्रोणाचार्य भी अपने बाणों से पर्षतवीर धृष्टद्युम्न को छेदने लगा ॥६३-६४॥

तदद्भुतमभूद्युद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तदा ।
त्रैलोक्यकांक्षिणोरासीच्छक्रप्रह्लादयोरिव ॥६५॥

हे राजन् ! इस प्रकार द्रोणाचार्य और पाञ्चालवीर धृष्टद्युम्न का त्रिलोकी के राज्य के अभिलाषी इन्द्र और प्रह्लाद की भांति अद्भुत युद्ध होने लगा ॥६५॥

मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च ।
चरन्तौ युद्धमार्गज्ञौ ततक्षतुरथेषुभिः ॥६६॥

ये दोनों युद्ध मार्ग के जानने वाले थे, इससे विचित्र २ यमक तथा अन्य मण्डल ( पैंतरे ) बांधकर बाणों से परस्पर बींधने लगे ॥६६॥

मोहयन्तौ मनांस्याजौ योधानां द्रोणपार्षतौ ।
सृजन्तौ शरवर्षाणि वर्षास्विव बलाहकौ ॥६७॥

द्रोणाचार्य और पर्षतवीर धृष्टद्युम्न, वर्षा में मेघों की तरह बाणों की झड़ी लगाते हुए योद्धाओं के मनों को रण में मोहित करने लगे ॥६७॥

छादयन्तौ महात्मानौ शरैर्व्योम दिशो महीम् ।
तदद्भुतं तयोर्युद्धं भूतसङ्घा ह्यपूजयन् ॥६८॥

इन दोनों महावीरों ने बाणों से सारी पृथ्वी, दिशा और आकाश को भर दिया । इनका यह इतना अद्भुत युद्ध था, कि जिसकी सारे प्राणी प्रशंसा करने लगे ॥६८॥

क्षत्रियाश्च महाराज ये चाऽन्ये तत्र सैनिकाः ।
अवश्यं समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नेन सङ्गतः ॥६९॥
वशमेष्यति नो राजन्पञ्चाला इति चुक्रुशुः ।
द्रोणस्तु त्वरितो युद्धे धृष्टद्युम्नस्य सारथेः ॥७०॥
शिरः प्रच्यावयामास फलं पक्कं तरोरिव ।
ततस्तु प्रद्रुता वाहा राजंस्तस्य महात्मनः ॥७१॥

हे महाराज ! जितने पाञ्चाल क्षत्रियवीर तथा अन्य सैनिक थे, वे सब यही कह रहे थे, कि धृष्टद्युम्न से भिड़े हुए द्रोण युद्ध में अवश्य धृष्टद्युम्न से पराजित हो जावेंगे, परन्तु द्रोणाचार्य ने बड़ी शीघ्रता से झपट कर धृष्टद्युम्न के सारथि के शिर को धड़ से इस प्रकार दूर कर दिया जैसे-वृक्ष से पका हुआ फल दूर कर दिया जाता है। हे राजन् ! इस समय महावीर धृष्टद्युम्न के अश्व रण से भाग निकले ॥६९-७१॥

तेषु प्रद्रवमाणेषु पञ्चालान्सृञ्जयांस्तथा ।
अयोधयद्रणे द्रोणस्तत्र तव पराक्रमी ॥७२॥

जब धृष्टद्युम्न रण से निकल गया-तो पराक्रमी द्रोणाचार्य रणभूमि में जहां तहां पाञ्चाल और सृञ्जयों को मारने लगा।

विजित्य पाण्डुपाञ्चालान्भारद्वाजः प्रतापवान् ।
स्वं व्यूहं पुनरास्थाय स्थितोऽभवदरिन्दमः ।
न चैनं पाण्डवा युद्धे जेतुमुत्सेहिरे प्रभो ॥७३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे द्रोणपराक्रमे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥

प्रतापी, अरिमर्दन, भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य, पाण्डवसेना और पाञ्चालवीरों को पराजित करके अपने शकटव्यूह में स्थित हो गया। हे प्रभो! कोई भी पाण्डव द्रोणाचार्य से युद्धमें विजय पाने का साहस नहीं कर सका ॥७३॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सात्यकि के प्रवेश और द्रोण के पराक्रम का एक सौ बाईसवां अध्याय समाप्त हुआ।

# एक सौ तेईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततो दुःशासनो राजञ्शैनेयं समुपाद्रवत् ।
किरञ्शरसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! इधर वर्षा करने वाले महामेघ के सदृश सहस्रों बाणवर्षा करते हुए दुःशासन ने शिनि-पौत्र सात्यकि पर वेग से आक्रमण किया ॥१॥

स विध्वा सात्यकिं षष्ट्या तथा षोडशभिः शरैः ।
नाऽकम्पयत्स्थितं युद्धे मैनाकमिव पर्वतम् ॥२॥

दुःशासन ने प्रथम तो साठ और फिर सोलह बाण मार कर सात्यकि को बुरी तरह घायल कर दिया, तो भी वह मैनाक पर्वत के तुल्य युद्ध में अचल स्थित सात्यकि को विचलित नहीं कर सका ॥२॥

तं तु दुःशासनः शूरः सायकैरावृणोद्भृशम् ।
रथव्रातेन महता नानादेशोद्भवेन च ॥३॥
सर्वतो भरतश्रेष्ठ विसृजन्सायकान्बहून् ।
पर्जन्य इव घोषेण नादयन्वै दिशो दश ॥४॥

हे भरत-श्रेष्ठ ! शूरवीर दुःशासन ने अपने बाणों से सात्यकि को अत्यन्त आच्छादित कर दिया और अनेक देशों के बहुत से रथियों के समूह को साथ लेकर उसे घेर रखा। इस दुःशासन ने मेघ के तुल्य गर्जना करके दशों दिशाएँ गुंजादी और सब ओर से लगातार बाणों की झड़ी बांध दी ॥३-४॥

तमापतन्तमालोक्य सात्यकिः कौरवं रणे ।
अभिद्रुत्य महाबाहुश्छादयामास सायकैः ॥५॥

महाबाहु सात्यकि भी रण में दुःशासन को वेग से बढ़ते देखकर अपने बाणजाल से उसे आच्छादित करने लगा ॥५॥

ते छाद्यमाना बाणौघैर्दुःशासनपुरोगमाः ।
प्राद्रवन्समरे भीतास्तव सैन्यस्य पश्यतः ॥६॥

हे नृपते! सात्यकि के बाणों से आच्छादित हुए दुःशासन आदि कौरववीर रण में भयभीत होकर तुम्हारी सारी सेना के देखते २ भागने लगे ॥६॥

तेषु द्रवत्सु राजेन्द्र पुत्रो दुःशासनस्तव ।
तस्थौ व्यपेतभी राजन्सात्यकिं चाऽर्दयच्छरैः ॥७॥

हे राजेन्द्र! यदि अनेक कौरववीर, रणस्थली छोड़कर भाग गए थे, तो भी तुम्हारा पुत्र दुःशासन वहीं रणाङ्गण में निर्भय डटा रहा और बाणसमूह छोड़कर सात्यकि को आहत करने लगा ॥७॥

चतुर्भिर्वाजिनस्तस्य सारथिं च त्रिभिः शरैः ।
सात्यकिं च शतेनाऽऽजौ विध्वा नादं मुमोच सः ॥

इसने रण में चार बाणों से चार अश्व तथा तीन बाणों से सारथि और सौ बाणों से सात्यकि को विदीर्ण करके घोर गर्जना की ॥८॥

ततः क्रुद्धो महाराज माधवस्तस्य संयुगे ।
रथं सूतं ध्वजं तं च चक्रेऽदृश्यमजिह्मगैः ॥९॥

हे महाराज! अब वृष्णिवीर सात्यकि झल्ला उठा, उसने भी रण में बाणसमूह छोड़कर दुःशासन के रथ, सारथि और ध्वजा को अदृश्य कर दिया ॥९॥

स तु दुःशासनं शूरं सायकैरावृणोद्भृशम् ।
मशकं समनुप्राप्तमूर्णनाभिरिवोर्णया ॥१०॥

उसने महारथी दुःशासन को अपने बाणों के ताने बाने से ऐसे ढक दिया-जैसे मकड़ी अपने जाले से मच्छर को फांस लेती है ॥

त्वरन्समावृणोद्बाणैर्दुःशासनममित्रजित् ।
दृष्ट्वा दुःशासनं राजा तथा शरशताचितम् ॥११॥
त्रिगर्तांश्चोदयामास युयुधानरथं प्रति ।

इस शत्रुविजयी, सात्यकि ने दुःशासन को वेगपूर्वक बाणों द्वारा ढक दिया। राजा दुर्योधन ने जब उसे बाणों से व्याप्त देखा, तो उसने त्रिगर्तों को सात्यकि के रथ पर आक्रमण करने की आज्ञा दी।

तेऽगच्छन्युयुधानस्य समीपं क्रूरकर्मणः ॥१२॥
त्रिगर्तानां त्रिसाहस्रा रथा युद्धविशारदाः ।

अब वीरतापूर्ण भयङ्कर कर्म कर दिखाने वाले, सात्यकि पर युद्धकुशल तीन सहस्र रथी वेग से झपटे ॥१२॥

ते तु तं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ॥१३॥
स्थिरां कृत्वा मतिं युद्धे भूत्वा संशप्तका मिथः ।

अब ये सारे संशप्तक, इकट्ठे होकर और युद्ध करने की दृढ़ बुद्धि ठानकर बड़ी भारी रथसेना लेकर सात्यकि पर टूट पड़े।

तेषां प्रपततां युद्धे शरवर्षाणि मुञ्चताम् ॥१४॥
योधान्पञ्चशतान्मुख्यानग्र्यानीके व्यपोथयत् ।

ज्योंही ये झपटे और बाणवर्षा करने लगे, त्योंही सात्यकि ने सेना के आगे चलने वाले मुख्य पांच सौ वीर मार गिराए॥१४

तेऽपतन्निहतास्तूर्णं शिनिप्रवरसायकैः ॥१५॥
महामारुतवेगेन भग्ना इव नगाद् द्रुमाः ।

हे विशाम्पते ! शिनिवंश के वीर, सात्यकि के बाणों से निहत होकर शीघ्रता से इस प्रकार भूमि में गिर गए जैसे-आंधी के वेग से पर्वत से टूट २ कर वृक्ष गिरते हैं ॥१५॥

नागैश्च बहुधा च्छिन्नैर्ध्वजैश्चैव विशाम्पते ॥१६॥
हयैश्च कनकापीडैः पतितैस्तत्र मेदिनी ।
शैनेयशरसंकृत्तैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥१७॥
अशोभत महाराज किंशुकैरिव पुष्पितैः ।

हे प्रजापालक ! इस युद्ध में अनेक हाथी, छिन्न-भिन्न हो गए। ध्वजाएँ कट कर गिर गई। हे महाराज ! सुवर्णमाला से विभूषित सात्यकि के बाणों से विदीर्ण, रक्त धारा में भीगे हुए, अश्वों से पृथ्वी, ढाक के पुष्पों से व्याप्त सी दिखाई देने लगी ॥१६-१७॥

ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ॥१८॥
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ।

हे राजन् ! युयुधान (सात्यकि) द्वारा रण में आहत किये गए-तुम्हारे वीर, कीचड़ में फंसे हुए हाथी की तरह कहीं भी किसी रक्षक को नहीं देख रहे थे ॥१८॥

ततस्ते पर्यवर्त्तन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥१९॥
भयात्पतगराजस्य गर्तानीव महोरगाः ।

अब ये सारे द्रोणाचार्य की सेना की ओर इस तरह दौड़े, जैसे बड़े २ सर्प, पक्षीराज गरुड़ के भय से अपने बिल को भागते हैं ॥ १९॥

हत्वा पञ्चशतान्योधाञ्छरैराशीविषोपमैः ॥२०॥
प्रायात्स शनकैर्वीरो धनञ्जयरथं प्रति ।

इस प्रकार मुख्य २ पांच सौ त्रिगर्तवीरों को आशीविष सर्प के तुल्य बाणों से आहत करके सात्यकि, फिर अर्जुन के रथ की ओर बढ़ा ॥२०॥

तं प्रयान्तं नरश्रेष्ठं पुत्रो दुःशासनस्तव ॥२१॥
विव्याध नवभिस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः ।

जब तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने सात्यकि को आगे बढ़ता देखा-तो नतपर्व वाले नौ बाणों से उसे फिर आहत किया ॥२१॥

स तु तं प्रतिविव्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥२२॥
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासो गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ।

अब महाधनुर्धर सात्यकि ने भी गृध्रपक्षी के पंखों से सुशोभित, सुवर्ण मूल वाले, सीधे गमनकारी, पांच तीक्ष्ण बाण मार कर दुःशासन को आहत किया ॥२२॥

सात्यकिं तु महाराज प्रहसन्निव भारत ॥२३॥
दुःशासनस्त्रिभिर्विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।

हे महाराज ! इसके अनन्तर युद्ध वीर दुःशासनने मुस्कुरा कर तीन बाण मारे और फिर पांच बाण मार कर सात्यकि को क्षत-विक्षत कर दिया ॥२३॥

शैनेयस्तव पुत्रं तु हत्वा पञ्चभिराशुगैः ॥२४॥
धनुश्चाऽस्य रणे छित्वा विस्मयन्नर्जुनं ययौ ।

हे राजन् ! सात्यकि भी पांच बाणों से तुम्हारे पुत्र का मार कर और उसके धनुष को काट कर सारी सेना को अचम्भित करता हुआ अर्जुन की ओर बढ़ा ॥२४॥

ततो दुःशासनः क्रुद्धो वृष्णिवीराय गच्छते ॥२५॥
सर्वपारसवीं शक्तिं विससर्ज जिघांसया ।

इस प्रकार आगे बढ़ते देखकर वृष्णिवीर सात्यकि पर दृढ़ लोह निर्मित शक्ति को उसके वध की इच्छा से दुःशासन ने बड़े वेग से चलाया ॥२५॥

तां तु शक्तिं तदा घोरां तव पुत्रस्य सात्यकिः ॥२६॥
चिच्छेद शतधा राजन्निशितैः कङ्कपत्रिभिः ।

हे राजन् ! सात्यकि ने तुम्हारे पुत्र दुःशासन की उस घोर शक्ति को अपने कङ्कपक्षधारी तीक्ष्ण बाणों से सौ टुकड़े कर डाले ॥२६॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय पुत्रस्तव जनेश्वर ॥२७॥
सात्यकिं च शरैर्विध्वा सिंहनादं ननर्द ह ।

हे जनेश्वर ! अब तुम्हारे पुत्र ने दूसरा धनुष उठाया और सात्यकि को बाणों से विदीर्ण करके सिंहनाद करने लगा ॥२७॥

सात्यकिस्तु रणे क्रुद्धो मोहयित्वा सुतं तव ॥२८॥
शरैरग्निशिखाकारैराजघान स्तनान्तरे ।

सात्यकि रण में बड़ा कुपित हो रहा था, उसने तुम्हारे पुत्र को चौकड़ी चुकाकर अपने अग्नि के तुल्य भीषण बाणों से उसकी छाती में प्रहार किया ॥२८॥

त्रिभिरेव महाभागः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२९॥
सर्वायसैस्तीक्ष्णवक्त्रैः पुनर्विव्याध चाऽष्टभिः ।

अब इस महावीर ने नतपर्वधारी तीन बाणों से आघात किया और इसके पीछे आठ दृढ़ लोह के पैनी धार वाले बाणों से प्रहार किया ॥२९॥

दुःशासनस्तु विंशत्या सात्यकिं प्रत्यविध्यत ॥३०॥
सात्वतोऽपि महाराज तं विव्याध स्तनान्तरे ।
त्रिभिरेव महाभागः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥३१॥

हे महाराज ! अब दुःशासन ने बीस बाण मार कर सात्यकि को क्षत-विक्षत किया और महारथी सात्यकि ने भी इसके वक्षस्थल को झुके पर्व वाले तीन बाणों से जर्जरित कर दिया ॥३०-३१॥

ततोऽस्य वाहान्निशितैः शरैर्जघ्ने महारथः ।
सारथिं च सुसंक्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥३२॥

इसके अनन्तर क्रोध में भरे हुए महारथी सात्यकि ने तीक्ष्ण बाणों से अश्व और नतपर्वधारी बाणों से सारथि को छेद डाला।

धनुरेकेन भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ।
ध्वजं च रथशक्तिं च भल्लाभ्यां परमास्त्रवित् ॥३३॥
चिच्छेद विशिखैस्तीक्ष्णैस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।

एक बाण से धनुष, पांच बाणों से करतलत्राण दो बाणों से ध्वजा और रथशक्ति को अस्त्रविद्या में कुशल, सात्यकि ने काट डाला तथा इसी तरह के तीक्ष्ण बाणों से उसके पृष्ठरक्षकों को मार डाला ॥३३॥

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ॥३४॥
त्रिगर्तसेनापतिना स्वरथेनाऽपवाहितः ।

जब इसका धनुष कट गया और यह रथ, अश्व तथा सारथि हीन हो गया तो त्रिगर्त सेनापति इसे अपने रथ में बैठाकर रण से बाहर ले गया ॥३४॥

तमभिद्रुत्य शैनेयो मुहूर्तमिव भारत ॥३५॥
न जघान महाबाहुर्भीमसेनवचः स्मरन् ।

हे भारत ! यद्यपि थोड़ी दूर तक महाबाहु सात्यकि ने उसका पीछा किया, परन्तु भीमसेन की प्रतिज्ञा का स्मरण करके उसने उसका वध नहीं किया ॥३५॥

भीमसेनेन तु वधः सुतानां तव भारत ॥३६॥
प्रतिज्ञातः सभामध्ये सर्वेषामेव संयुगे ।

हे भरतर्षभ ! तुमने देखा था, कि सारी सभा के मध्य में भीमसेन ने रण में तुम्हारे पुत्रों के वध की प्रतिज्ञा सबके सन्मुख की है ॥३६॥

ततो दुःशासनं जित्वा सात्यकिः संयुगे प्रभो ।
जगाम त्वरितो राजन्येन यातो धनञ्जयः ॥३७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुःशासनपराजये त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

हे राजन् ! इस प्रकार रणाङ्गण में सात्यकि, दुःशासन को जीत कर बड़े वेग से उधर चल दिया, जिधर अर्जुन लड़ रहा था ॥३७॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में दुःशासन के पराजय का एक सौ तेईसवां अध्याय समाप्त हुआ ।



# एक सौ चौबीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

किं तस्याः मम सेनायां नाऽऽसन्कंचिन्महारथाः ।
ये तथा सात्यकिं यान्तं नैवाऽघ्नन्नाऽप्यवारयन् ॥१॥

धृतराष्ट्र पूछने लगे—हे सञ्जय ! क्या हमारी सेना में कोई ऐसे महारथी ही नहीं थे, जो सात्यकि को मार लेते या इस प्रकार आगे बढ़ने से रोक देते ॥१॥

एको हि समरे कर्म कृतवान्सत्यविक्रमः ।
शक्रतुल्यबलो युद्धे महेन्द्रो दानवेष्विव ॥२॥

इस अकेले सत्यपराक्रमी सात्यकि ने रण में वह कर्म कर दिखाया-जो इन्द्र ने दानवों के मध्य में किया है । यह सचमुच इन्द्र के तुल्य पराक्रमी निकला ॥२॥

अथवा शून्यमासीत्तद्येन यातःस सात्यकिः ।
हतभूयिष्ठमथवा येन यातः स सात्यकिः ॥३॥

यह तो ऐसी बात हुई-जैसे सात्यकि शून्य मार्ग से निकल रहा हो । जिस मार्ग से सात्यकि निकला, उधर के प्रायः योद्धा मार तो नहीं लिये गए थे ॥३॥

यत्कृतं वृष्णिवीरेण कर्म शंससि मे रणे ।
नैतदुत्सहते कर्तुं कर्म शक्रोऽपि सञ्जय ॥४॥

हे सञ्जय ! जो रण में काम तुम वृष्णिवीर सात्यकि के बतला रहे हो-इन कामों को तो इन्द्र भी करने में समर्थ नहीं है ॥४॥

अश्रद्धेयमचिन्त्यं च कर्म तस्य महात्मनः।
वृष्ण्यन्धकप्रवीरस्य श्रुत्वा मे व्यथितं मनः ॥५॥

इस महात्मा वृष्णि और अन्धक वंश के श्रेष्ठ वीर सात्यकि के अद्भुत कर्मों पर तो श्रद्धा भी नहीं होती है। इसके इस वीर कर्म को सुन कर तो मेरा मन अत्यन्त ही व्यथित हो रहा है ॥५॥

न सन्ति तस्मात्पुत्रा मे यथा सञ्जय भाषसे।
एको वै बहुलाः सेनाः प्रामृद्नात्सत्यविक्रमः ॥६॥

हे सञ्जय ! सत्यपराक्रमी अकेले सात्यकि ने जो इस प्रकार कौरवसेना को कुचल डाला-तो अब तेरे इस कथन से मुझे निश्चय हो गया, कि मेरे पुत्र इस युद्ध में नहीं बच सकेंगे ॥६॥

कथं च युध्यमानानामपक्रान्तो महात्मनाम्।
एको बहूनां शैनेयस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥७॥

हे सञ्जय ! तुम यह तो बताओ ? अकेला सात्यकि, इन बहुत से महावीरों से युद्ध करता हुआ कैसे आगे निकल गया ॥७।

सञ्जय उवाच—

राजन्सेनासमुद्योगो रथनागाश्वपत्तिमान्।
तुमुलस्तव सैन्यानां युगान्तसदृशोऽभवत् ॥८॥

सञ्जय ने कहा—इस समय रथ, हाथी, अश्व और पैदलों से समन्वित तुम्हारी सेना में बड़ा ही घोर युद्ध हुआ, जो प्रलयकाल के विनाश के तुल्य था ॥८॥

आहूतेषु समूहेषु तव सैन्यस्य मानद ।

नाऽभूल्लोके समः कश्चित्समूह इति मे मतिः ॥९॥

हे मान देने वाले राजन् ! इस युद्ध में जो तुम्हारी सेना का संगठन हुआ-वैसा लोक में पूर्व में कभी नहीं देखा गया-मेरा ऐसा मत है ॥९॥

तत्र देवास्त्वभाषन्त चारणाश्च समागताः ।

एतदन्ताः समूहा वै भविष्यन्ति महीतले ॥१०॥

इस समय देव और ऐतिहासिक चारण लोग, यही कह रहे थे, कि ऐसा सेना संगठन पूर्वकाल में पृथिवी पर कभी नहीं देखा गया और न आगे हो सकेगा ॥१०॥

न च वै तादृशो व्यूह आसीत्कश्चिद्विशाम्पते ।

यादृग्जयद्रथवधे द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥११॥

हे विशाम्पते ! जैसा व्यूह, जयद्रथ के मारने की अर्जुन की प्रतिज्ञा करने पर द्रोणाचार्य ने बनाया-ऐसा व्यूह भी पूर्वकाल में नहीं सुना गया ॥११॥

चण्डवातविभिन्नानां समुद्राणामिव स्वनः ।

रणेऽभवद्बलौघानामन्योन्यमभिधावताम् ॥१२॥

प्रचण्ड वायु से उछले हुए, समुद्र की ध्वनि के तुल्य एक दूसरे पर आक्रमण करती हुई तुम्हारी सेना का रण में महान् कोलाहल उठ खड़ा हुआ ॥१२॥

पार्थिवानां समेतानां बहून्यासन्नरोत्तम ।
त्वद्बले पाण्डवानां च सहस्राणि शतानि च ॥१३॥

हे नरोत्तम ! तुम्हारी सेना और पाण्डवों की सेना में सैंकड़ों और सहस्रों राजाओं के बहुत से झुंड थे ॥१३॥

संरब्धानां प्रवीराणां समरे दृढकर्मणाम् ।
तत्राऽऽसीत्सुमहाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥१४॥

युद्ध में दृढ़ कर्म कर दिखाने वाले, आवेश में भरे हुए, उत्तम वीरों का रोमाञ्च खड़े कर देने वाला, महाघोर शब्द खड़ा हो रहा था ॥१४॥

अथाऽक्रन्दद्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च मारिष ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च पाण्डवः ॥१५॥

हे आर्य ! अब राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, नकुल और सहदेव भी सिंहनाद कर रहे थे ॥१५॥

आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ।
प्रविष्टावरिसेनां हि वीरो माधवपाण्डवौ ॥१६॥

आओ ? प्रहार करो ? शीघ्र दौड़ो, क्योंकि शत्रुसेना में वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन घुस चुके हैं ॥१६॥

यथा सुखेन गच्छेतां जयद्रथवधं प्रति ।
तथा प्रकुरुत क्षिप्रमिति सैन्यान्यचोदयन् ॥१७॥
तयोरभावे कुरवः कृतार्थाः स्युर्वयं जिताः ।

ये दोनों सुखपूर्वक जिस तरह राजा जयद्रथ के समीप पहुंच जावे; तुम लोग वैसा ही प्रयत्न करो। इस प्रकार पाण्डव महारथियों ने अपनी सेना को प्रेरित किया, कि यदि श्रीकृष्ण और अर्जुन मारे गए-तो कौरव विजयी होकर कृतार्थ हो जावेंगे और हम पराजित होंगे ॥१७॥

ते यूयं सहिता भूत्वा तूर्णमेव बलार्णवम् ॥१८॥

क्षोभयध्वं महावेगाः पवनः सागरं यथा।

अब तुम लोग इकट्ठे होकर एकदम शीघ्र ही कौरवसेना समुद्र को बड़े वेग के साथ समुद्र को पवन की भांति व्याकुल कर दो ॥१८॥

भीमसेनेन ते राजन्पाञ्चाल्येन च नोदिताः ॥१९॥

आजघ्नुः कौरवान्संख्ये त्यक्त्वाऽसूनात्मनः प्रियान्।

हे राजन् ! इस प्रकार भीमसेन और धृष्टद्युम्न द्वारा प्रेरित हुई पाण्डव सेना रण में अपने प्रिय प्राणों का मोह छोड़कर कौरवों को मार २ कर बिछाने लगे ॥१९॥

इच्छन्तो निधनं युद्धे शस्त्रैरुत्तमतेजसः ॥२०॥

स्वर्गेप्सवो मित्रकार्ये नाऽभ्यनन्दन्त जीवितम्।

ये अत्यन्त तेजस्वी वीर, युद्ध में शस्त्रों द्वारा अपनी मृत्यु चाहते थे। ये मित्र के कार्य को प्राणदान द्वारा पूरा करके स्वर्गप्राप्ति के अभिलाषी थे। इस समय इनको अपने प्राणों का कुछ भी प्रेम नहीं था ॥२०॥

तथैव तावका राजन्प्रार्थयन्तो महायशः ॥२१॥
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा युद्धायैवाऽवतस्थिरे ।

हे राजन् ! इसी तरह तुम्हारे वीर भी अपने २ यश की आकांक्षा कर रहे थे। वे भी युद्ध में अपनी उत्तम बुद्धि को लगा कर युद्ध के लिए डट गए ॥२१॥

तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे ॥२२॥
जित्वा सर्वाणि सैन्यानि प्रायात्सात्यकिरर्जुनम् ।

इस घोर भयङ्कर युद्ध के प्रचलित होने पर अन्त में सारी सेना को जीत कर सात्यकि, अर्जुन के समीप को चल ही तो गया।

कवचानां प्रभास्तत्र सूर्यरश्मिविराजिताः ॥२३॥
दृष्टीः संख्ये सैनिकानां प्रतिजघ्नुः समन्ततः ।

इस समय वीरों के कवचों की कान्ति, सूर्य की किरणों के प्रतिफलन से सब ओर सैनिकों की दृष्टियों को चकाचौंध कर रही थी ॥२३॥

तथा प्रयतमानानां पाण्डवानां महात्मनाम् ॥२४॥
दुर्योधनो महाराज व्यगाहत महद्बलम् ।

हे महाराज ! इस प्रकार महावीर पाण्डव तो प्रयत्न कर ही रहे थे-कि इसी समय राजा दुर्योधन इस विशाल सेना में बड़े वेग से घुस आया ॥२४॥

स सन्निपातस्तुमुलस्तेषां तस्य च भारत ॥२५॥
अभवत्सर्वभूतानामभावकरणो महान् ।

हे भारत ! अब इन दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध होने लगा, जिसमें सब ओर सैनिक प्राणियों का विध्वंस मच गया ॥२५॥

धृतराष्ट्र उवाच—

तथा यातेषु सैन्येषु तथा कृच्छ्रगतः स्वयम् ॥२६॥
कच्चिद्दुर्योधनः सूत नाऽकार्षीत्पृष्ठतो रणम् ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सूत जब इस प्रकार सेनाओं ने एक दूसरे पर आक्रमण कर दिया-तो इस संकट में फंसकर भी राजा दुर्योधन ने कहीं युद्ध से पीठ तो नहीं दिखाई ॥२६॥

एकस्य च बहूनां च सन्निपातो महाहवे ॥२७॥
विशेषतो नरपतेर्विषमः प्रतिभाति मे ।

इस घोर संग्राम में एक वीर पर दूसरे वीर का आक्रमण बहुत ही भीषण था। इस दशा में राजा दुर्योधन की तो बहुत ही विषम परिस्थिति हो गई होगी ॥२७॥

सोऽत्यन्तसुखसंवृद्धो लक्ष्म्या लोकस्य चेश्वरः ॥२८॥
एको बहून्समासाद्य कच्चिन्नाऽऽसीत्पराङ्मुखः ।

राजा दुर्योधन अत्यन्त सुख में पाला गया है। वह विशाल राजलक्ष्मी और लोक का स्वामी है। यह अकेला ही बहुतों से भिड़ कर युद्ध से विमुख तो नहीं हो गया ॥२८॥

सञ्जय उवाच—

राजन्संग्राममाश्चर्यं तव पुत्रस्य भारत ॥२९॥
एकस्य बहुभिः सार्धं शृणुष्व गदतो मम ।

सञ्जय बोले—हे भारत ! तुम्हारे पुत्र अकेले राजा दुर्योधन ने बहुत से वीरों के साथ बड़ा ही घोर आश्चर्यजनक युद्ध किया। तुम उसका वृत्तान्त मुझसे सुनो ॥२९॥

दुर्योधनेन समरे पृतना पाण्डवी रणे ॥३०॥
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात्प्रतिलोडिता ।

राजा दुर्योधन ने युद्ध में पाण्डव सेना को इस तरह कुचल डाला, जैसे हाथी सब तरह कमलिनियों को कुचल देता है ॥३०॥

ततस्तां प्रहितां सेनां दृष्ट्वा पुत्रेण ते नृप ॥३१॥
भीमसेनपुरोगास्तं पञ्चालाः समुपाद्रवन् ।

हे नृप ! तुम्हारे पुत्र द्वारा सेना को आगे बढ़ाई हुई देखकर भीमसेन को आगे करके सारे पाञ्चाल वीर वेग से कौरवसेना पर झपटे ॥३१॥

स भीमसेनं दशभिः शरैर्विव्याध पाण्डवम् ॥३२॥
त्रिभिस्त्रिभिर्यमौ वीरौ धर्मराजं च सप्तभिः ।

अब राजा दुर्योधन ने पाण्डु-पुत्र भीमसेन को दश, नकुल सहदेव को तीन २ तथा धर्मराज युधिष्ठिर को सात बाण मार कर आहत किया ॥३२॥

विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥३३॥
धृष्टद्युम्नं च विंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
शतशश्चाऽपरान्योधान्सद्विपांश्च रथान्रणे ॥३४॥
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।

इसी तरह कुरुराज ने राजा विराट और द्रुपद के ऊपर छः बाण, शिखण्डी पर सौ, धृष्टद्युम्न पर बीस और द्रौपदी-पुत्रों पर तीन २ बाण छोड़े। हे राजन्! राजा दुर्योधन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से इस रण में गजों सहित गजारोही और अन्य सहस्रों महारथियों को काट २ कर गिरा दिया। यह इस समय प्रजा पर यमराज की भांति पाण्डवसेना पर कुपित हो रहा था ॥३३-३४॥

न सन्दधन्विमुञ्चन्वा मण्डलीकृतकार्मुकः ॥३५॥
अदृश्यत रिपून्निघ्नञ्छिक्षयाऽस्त्रबलेन च।

यह झटपट बाण धनुष पर चढ़ाता और उसे छोड़ देता था, जिससे धनुष का मण्डल सा बन गया। यह अपनी युद्ध विद्या की शिक्षा और अस्त्र के बल से शत्रुओं को मार २ कर बिछाता हुआ दिखाई देने लगे ॥३५॥

तस्य तान्निघ्नतः शत्रून्हेमपृष्ठं महद्धनुः ॥३६॥
अजस्रं मण्डलीभूतं ददृशुः समरे जनाः।

इस प्रकार शत्रुओं को विध्वंस करते हुए कुरुराज के सुवर्ण पृष्ठ वाले धनुष का लगातार मण्डल रणभूमिमें योद्धा लोग देखने लगे ॥३६॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भल्लाभ्यामच्छिनद्धनुः ॥३७॥
तव पुत्रस्य कौरव्य यतमानस्य संयुगे।

हे कुरुराज! अब राजा युधिष्ठिर ने दो बाण मार कर युद्ध में बड़ा पराक्रम दिखाने वाले, राजा दुर्योधन के धनुष को काट गिराया ॥३७॥

विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शरोत्तमैः ॥३८॥
मर्म चाऽऽशु समासाद्य ते भित्त्वा क्षितिमाविशन् ।

कुरुराज ने दश बड़े तीक्ष्ण बाण फैंके, जो धर्मराज के कवच को बींध कर शीघ्र ही धरती में घुस गए ॥३८॥

ततः प्रमुदिताः पार्थाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥३९॥
यथा वृत्रवधे देवाः पुरा शक्रं महर्षयः ।

अब पाण्डवों ने राजा युधिष्ठिर की रक्षा के निमित्त उन्हें इस तरह घेर लिया जैसे वृत्रासुर के वधके संग्राम में महर्षि और देवों ने इन्द्र को घेर रखा था ॥३९॥

ततोऽन्यद्धनुरादाय तव पुत्रः प्रतापवान् ॥४०॥
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन्पाण्डवमभ्ययात् ।

हे राजन् ! अब तुम्हारे प्रतापी पुत्र, राजा दुर्योधन ने दूसरा धनुष उठाया और ठहर ? ठहर ? इस प्रकार कहता हुआ धर्मराज पर वेग के साथ झपटा ॥४०॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य तव पुत्रं महामृधे ॥४१॥
प्रत्युद्ययुः समुदिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः ।

इस महायुद्ध में तुम्हारे पुत्र को आक्रमण करते देखकर विजयाभिलाषी पाञ्चाल इकट्ठे ही राजा दुर्योधन पर टूट पड़े ।४१।

तान्द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन्युधि पाण्डवम् ॥४२॥
चण्डवातोद्धुतान्मेघान्गिरिमम्बुमुचो यथा ।

आचार्य द्रोण ने इन पाण्डववीरों के आक्रमण का इस तरह सामना किया, जैसे प्रचण्ड वायु से उमड़ा कर लाये हुए जल बरसाने वाले मेघ की झड़ी को पर्वत सह लेता है ॥४२॥

तत्र राजन्महानासीत्संग्रामो लोमहर्षणः ॥४३॥

पाण्डवानां महाबाहो तावकानां च संयुगे ।

रुद्रस्याऽऽक्रीडसदृशः संहारः सर्वदेहिनाम् ॥४४॥

हे महाबाहो ! राजन ! इस समय बड़ा लोमहर्षण युद्ध तुम्हारे पुत्र और पाण्डवों के मध्य में होने लगा । प्रलय में रुद्र के कोप से होने वाले संहार की भांति सारे वीरों का घोर विध्वंस हो रहा था ॥४३-४४॥

ततः शब्दो महानासीत्पुनर्येन धनञ्जयः ।

अतीव सर्वशब्देभ्यो लोमहर्षकरः प्रभो ॥४५॥

हे प्रभो ! अब उधर की ओर घोर ध्वनि सुनाई देने लगी-जिस ओर अर्जुन युद्ध कर रहा था । यह इतना लोमहर्षणकारी शब्द था, जिसने सारे शब्दों का अतिक्रमण कर रखा था ॥४५॥

अर्जुनस्य महाबाहो तावकानां च धन्विनाम् ।

मध्ये भारतसैन्यस्य माधवस्य महारणे ॥४६॥

हे महाबाहो ! इस महायुद्ध में यह सारी ध्वनि, तुम्हारे धनुर्धर वीर और अर्जुन तथा श्रीकृष्ण एवं कौरव सेना के मध्य में हो रहा थी ॥४६॥

द्रोणस्याऽपि परैः सार्धं व्यूहद्वारे महारणे।
एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते।
क्रुद्धेऽर्जुने तथा द्रोणे सात्वते च महारथे ॥४७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकि प्रवेशे संकुलेयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२४॥

हे पृथ्वीपते! द्रोणाचार्य का भी इस घोर युद्ध में अपने शकटव्यूह के द्वार पर पाण्डवों के साथ घोर युद्ध होने लगा, जिसमें भी इस ढंग का महान् संहार हो रहा था। यह सब कुछ अर्जुन, द्रोणाचार्य और सात्यकि के कुपित होने का परिणाम था।

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में सात्यकि प्रवेश और घोर युद्ध का एक सौ चौबीसवां अध्याय समाप्त हुआ

---

# एक सौ पच्चीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अपराह्णे महाराज संग्रामः सुमहानभूत्।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पुनर्द्रोणस्य सोमकैः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज! दोपहर दिन व्यतीत होने के अनन्तर फिर द्रोणाचार्य और सोमक वीरों में महान् संग्राम होने लगा। इस समय मेघगर्जना के तुल्य ध्वनि बढ़ती जा रही थी।

शोणाश्वं रथमास्थाय नरवीरः समाहितः ।
समरेऽभ्यद्रवत्पाण्डूञ्जवमास्थाय मध्यमम् ॥२॥

अब नरवीर, रणकुशल, द्रोणाचार्य, लाल अश्वों के रथ में बैठकर मध्यम वेग के साथ रण में पाण्डुसेना पर झपटे ॥२॥

तव प्रियहिते युक्तो महेष्वासो महाबलः ।
चित्रपुङ्खैः शितैर्बाणैः कलशोत्तमसम्भवः ॥३॥
वरान्वरान्हि योधानां विचिन्वन्निव भारत ।
आक्रीडत रणे राजन्भारद्वाजः प्रतापवान् ।

हे भरतवंशोद्भव ! राजन ! तुम्हारे हित में तत्पर, महाधनुर्धर, महाबली, कलशोत्पन्न, प्रतापी, भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य अपने विचित्र मूलधारी, तीक्ष्ण बाणों से उत्तम २ योद्धाओं को चुन २ कर मारने लगा ॥३-४॥

तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
भ्रातॄणां नृप पञ्चानां श्रेष्ठः समरकर्कशः ॥५॥

हे नृप ! केकय क्षत्रियों के महारथी, पांचों भाइयों में श्रेष्ठ, समर में दुर्जय, राजा बृहत्क्षत्र, आचार्य द्रोण के सन्मुख आगे बढ़ा ॥५॥

विमुञ्चन्विशिखांस्तीक्ष्णानाचार्यं भृशमार्दयत् ।
महामेघो यथा वर्षं विमुञ्चन्गन्धमादने ॥६॥

यह गन्धमादन पर्वत पर जल धारा की वर्षा की तरह तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करता हुआ आचार्य को अति पीड़ित करने लगा ।

तस्य द्रोणो महाराज स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान्दश पञ्च च ॥७॥

हे महाराज ! इस बृहत्क्षत्र के ऊपर द्रोणाचार्य ने क्रोध में भर कर सुवर्ण के मूल वाले शिला पर तीक्ष्ण किये हुए, पन्द्रह बाण छोड़े ॥७॥

तांस्तु द्रोणविनिर्मुक्तान्क्रुद्धाशीविषसन्निभान् ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्युधि चिच्छेद हृष्टवत् ॥८॥

क्रुद्ध हुए आशीविष सर्प के तुल्य, भीषण, द्रोणाचार्य के प्रत्येक बाण को रण में बड़ी प्रसन्नता के साथ राजा बृहत्क्षत्र ने काट गिराया ॥८॥

तदस्य लाघवं दृष्ट्वा प्रहस्य द्विजपुङ्गवः ।
प्रेषयामास विशिखानष्टौ सन्नतपर्वणः ॥९॥

इसकी इस प्रकार बाण चलाने की शीघ्रता देखकर द्विजश्रेष्ठ, द्रोणाचार्य ने कुछ हँसकर झुके पर्ववाले आठ बाण उस पर छोड़े ॥९॥

तान्दृष्ट्वा पततस्तूर्णं द्रोणचापच्युताञ्शरान् ।
अवारयच्छरैरेव तावद्भिर्निशितैर्मृधे ॥१०॥

द्रोणाचार्य के धनुष से छुटे हुए, शीघ्रता से आते हुए बाणों को देखकर राजा बृहत्क्षत्र ने भी उतने ही तीक्ष्ण बाण छोड़कर उनको रणभूमि में काट गिराया ॥१०॥

ततोऽभवन्महाराज तव सैन्यस्य विस्मयः ।

बृहत्क्षत्रेण तत्कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥११॥

हे महाराज ! इस प्रकार बाणों के काट गिराने और राजा बृहत्क्षत्र के इस दुष्कर कर्म को देखकर तुम्हारी सेना को बहुत ही विस्मय हुआ ॥११॥

ततो द्रोणो महाराज बृहत्क्षत्रं विशेषयन् ।

प्रादुश्चक्रे रणे दिव्यं ब्राह्ममस्त्रं सुदुर्जयम् ॥१२॥

हे महाराज ! अब द्रोणाचार्य ने राजा बृहत्क्षत्र को एक विशेष वीर जानकर उस पर रण में चलाने के लिए दिव्य, दुर्जय, ब्रह्मास्त्र का प्रादुर्भाव किया ॥१२॥

कैकेयोऽस्त्रं समालोक्य मुक्तं द्रोणेन संयुगे ।

ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ब्राह्ममस्त्रमशातयत् ॥१३॥

हे राजेन्द्र ! जब कैकयराज बृहत्क्षत्र ने रण में द्रोणाचार्य द्वारा प्रेरित किया हुआ ब्रह्मास्त्र देखा, तो उसने भी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया और इसने अपने ब्रह्मास्त्र द्वारा द्रोणाचार्य के ब्रह्मास्त्र को काट गिराया ॥१३॥

ततोऽस्त्रे निहते ब्राह्मे बृहत्क्षत्रस्तु भारत ।

विव्याध ब्राह्मणं षष्ठ्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः १४॥

हे भारत ! जब द्रोणाचार्य का ब्रह्मास्त्र कट गया, तो फिर राजा बृहत्क्षत्र ने शिला पर तीक्ष्ण किये हुए साठ बाण छोड़ कर द्विजराज द्रोण को क्षत-विक्षत कर दिया ॥१४॥

तं द्रोणो द्विपदां श्रेष्ठो नाराचेन समार्पयत् ।
स तस्य कवचं भित्त्वा प्राविशद्धरणीतलम् ॥१५॥

अब द्रोणाचार्य ने भी अपने बाण छोड़े-जो उसके कवच को छेदकर पृथ्वी में घुस गए ॥१५॥

कृष्णसर्पो यथा मुक्तो वल्मीकं नृपसत्तम ।
तथाऽत्यगान्महीं बाणो भित्त्वा कैकेयमाहवे ॥१६॥

हे नृपसत्तम ! कांचुली से हीन, काला सर्प, जैसे वल्मीक में घुस जाता है, उसी तरह रण में केकयराज बृहत्क्षत्र को बींध कर बाण पृथ्वी में घुस गया ॥१६॥

सोऽतिविद्धो महाराज कैकेया द्रोणसायकैः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो व्यावृत्य नयने शुभे ॥१७॥
द्रोणं विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
सारथिं चाऽस्य बाणेन भृशं मर्मस्वताडयत् ॥१८॥

हे महाराज ! द्रोणाचार्य के बाणों से आहत हुए केकयराज, बड़े भारी क्रोधमें भर गए-उसने अपनी आंखें बदलकर शिला पर तीक्ष्ण किए गए सुवर्ण पुङ्खधारी, सत्तर बाण छोड़कर द्रोणाचार्य को क्षत-विक्षत कर दिया और इसके सारथि के भी मर्मस्थान में बाण द्वारा बुरी तरह आघात किया ॥१७-१८॥

द्रोणस्तु बहुभिर्विद्धो बृहत्क्षत्रेण मारिष ।
असृजद्विशिखांस्तीक्ष्णान्कैकेयस्य रथं प्रति ॥१९॥

हे आर्य ! जब राजा बृहत्क्षत्र ने द्रोणाचार्य को बहुत ही बींध दिया-तो द्रोण ने भी कैकयराज के रथ पर बहुत से तीक्ष्ण बाण छोड़े ॥१९॥

व्याकुलीकृत्य तं द्रोणो बृहत्क्षत्रं महारथम् ।
अश्वांश्चतुर्भिर्न्यवधीच्चतुरोऽस्य पतत्रिभिः ॥२०॥

द्रोणाचार्य ने महारथी कैकयराज बृहत्क्षत्र को व्याकुल करके चार बाण ऐसे छोड़े, जिनसे उसके चारों अश्वों को मार गिराया ।

सूतं चैकेन बाणेन रथनीडादपातयत् ।
द्वाभ्यां ध्वजं च छत्रं च छित्त्वा भूमावपातयत् ॥

इसके अनन्तर आचार्य द्रोण ने एक बाण मार सारथि को रथ के नीचे गिरा दिया तथा दो बाण मार कर उसने ध्वजा और छत्र को छिन्नभिन्न करके भूमि में गिरा दिया ॥२१॥

ततः साधुविसृष्टेन नाराचेन द्विजर्षभः ।
हृद्यविध्यद् बृहत्क्षत्रं स च्छिन्नहृदयोऽपतत् ॥२२॥

अब द्विजश्रेष्ठ द्रोण ने बड़े अच्छे ढंग से धनुष पर बाण चढ़ाकर बृहत्क्षत्र के हृदय पर प्रहार किया-इससे इसका हृदय छिन्न-भिन्न हो गया ॥२२॥

बृहत्क्षत्रे हते राजन्केकयानां महारथे ।
शैशुपालिरभिक्रुद्धो यन्तारमिदमब्रवीत् ॥२३॥

हे राजन्! इस प्रकार महारथी केकयराज, राजा बृहत्क्षत्र के मारे जाने पर शिशुपालपुत्र धृष्टकेतु बड़ा ही क्रुद्ध होकर अपने सारथि से इस प्रकार कहने लगा ॥२३॥

सारथे याहि यत्रैष द्रोणस्तिष्ठति दंशितः।
विनिघ्नन्केकयान्सर्वान्पञ्चालानां च वाहिनीम् ॥२४॥

हे सारथे! अब तुम मेरे रथ को उधर आगे बढ़ाओ-जहां द्रोण बड़ी तैयारी से खड़ा है और जो पाञ्चालों की सेना तथा केकयवीरों का नाश कर रहा है ॥२४॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सारथी रथिनां वरम्।
द्रोणाय प्रापयामास काम्बोजैर्जवनैर्हयैः ॥२५॥

सारथि ने अपने रथिश्रेष्ठ, धृष्टकेतु के ये वचन सुनकर कम्बोजदेशोद्भव, वेगशाली अश्वों से उसे द्रोणाचार्य के सन्मुख ले जाकर खड़ा कर दिया ॥२५॥

धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः।
वधायाऽभ्यद्रवद् द्रोणं पतङ्ग इव पावकम् ॥२६॥

राजा धृष्टकेतु चेदिवंश में बड़ा ही प्रसिद्ध महारथी बलवान् वीर था। यह द्रोणाचार्य के वध के लिये इस तरह झपटा, जैसे दीपक के बुझाने के लिये पतङ्ग झपटता है ॥२६॥

सोऽविध्यत तदा द्रोणं षष्ट्या साश्वरथध्वजम्।
पुनश्चाऽन्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुप्तं व्याघ्रं तुदन्निव ॥

इसने द्रोणाचार्य के ऊपर साठ बाण छोड़कर अश्व, रथ और ध्वजा को काट गिराया तथा अन्य तीक्ष्ण बाण छोड़कर वन में सुप्त सिंह की तरह द्रोणाचार्य को कुपित कर दिया ॥२७॥

तस्य द्रोणो धनुर्मध्ये क्षुरप्रेण शितेन च ।
चकर्त गार्ध्रपत्रेण यतमानस्य शुष्मिणः ॥२८॥

अब द्रोणाचार्य ने क्षुर के समान तीक्ष्ण गृद्ध के पंख से सुशोभित बाण से उस पराक्रमशील तेजस्वी धृष्टकेतु का धनुष काट गिराया ॥२८॥

अथाऽन्यद्धनुरादाय शैशुपालिर्महारथः ।
विव्याध सायकैर्द्रोणं कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥२९॥

अब महारथी शिशुपाल-पुत्र धृष्टकेतु ने दूसरा धनुष उठाया और कङ्क तथा मयूर की पंखों से सुशोभित बाणों से द्रोणाचार्य को आहत कर दिया ॥२९॥

तस्य द्रोणो हयान्हत्वा चतुर्भिश्चतुरः शरैः ।
सारथेश्च शिरः कायाच्चकर्त प्रहसन्निव ॥३०॥
अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ।

अब द्रोणाचार्य ने चार बाण छोड़कर उसके चारों अश्व मार डाले और मुस्कुराते हुए सारथि के शिर को शरीर से पृथक् कर दिया एवं चेदिराज पर भी पच्चीस बाण छोड़े ॥३०॥

अवप्लुत्य रथाच्चैद्यो गदामादाय सत्वरः ॥३१॥
भारद्वाजाय चिक्षेप रुषितामिव पन्नगीम् ।

अब रथ से कूदकर चेदिराज धृष्टकेतु ने बड़ी शीघ्रता से गदा उठाई और रोष में भरी हुई सर्पिणी के तुल्य उस भीषण गदा को द्रोणाचार्य पर चलाया ॥३१॥

तामापतन्तीमालोक्य कालरात्रिमिवोद्यताम् ॥३२॥

अश्मसारमयीं गुर्वीं तपनीयविभूषिताम् ।

शरैरनेकसाहस्रैर्भारद्वाजोऽच्छिनच्छितैः ॥३३॥

कालरात्रि की भांति भीषण ऊपर गिरती हुई तपे हुए सुवर्ण से विभूषित, दृढ़ लोह द्वारा बनी हुई बड़ी भारी गदा को देखकर भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य ने कई सहस्र तीखे बाण छोड़कर उसे काट डाला ॥३२-३३॥

सा छिन्ना बहुभिर्बाणैर्भारद्वाजेन मारिष ।

गदा पपात कौरव्य नादयन्ती धरातलम् ॥३४॥

हे आर्य ! कुरुवंशश्रेष्ठ ! आचार्य द्रोण के अनेक बाणों से छिन्नभिन्न वह गदा धरातल को नादित करती हुई रणभूमि में गिर गई ॥३४॥

गदां विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टकेतुरमर्षणः ।

तोमरं व्यसृजद्वीरः शक्तिं च कनकोज्ज्वलाम् ॥३५॥

हे राजन् ! आवेश में भरे हुए वीर चेदिराज धृष्टकेतुने अपनी गदा को नष्ट हुई देखकर एक तोमर शस्त्र और दूसरी सुवर्ण से उज्ज्वल शक्ति का प्रहार किया ॥३५॥

तोमरं पञ्चभिर्भित्त्वा शक्तिं चिच्छेद पञ्चभिः ।
तौ जग्मतुर्महीं छिन्नौ सर्पाविव गरुत्मता ॥३६॥

द्रोणाचार्य ने पांच २ बाण छोड़कर उस तोमर और शक्ति को काटकर इस तरह गिरा दिया जैसे—गरुड़ द्वारा टुकड़े किये हुए दो सर्प पृथ्वी पर गिरे हों ॥३६॥

ततोऽस्य विशिखं तीक्ष्णं वधाय वधकांक्षिणः ।
प्रेषयामास समरे भारद्वाजः प्रतापवान् ॥३७॥
स तस्य कवचं भित्त्वा हृदयं चाऽमितौजसः ।
अभ्यगाद्धरणीं बाणो हंसः पद्मवनं यथा । ३८॥

अब प्रतापवान् द्रोणाचार्य ने उसके वध के निमित्त रण में एक भीषण बाण छोड़ा, जो उस अत्यन्त तेजस्वी के कवच और हृदय को चीर कर कमलवन में हंस की तरह भूमि में घुस गया।

पतङ्गं हि ग्रसेच्चाषो यथा क्षुद्रं बुभुक्षितः ।
तथा द्रोणोऽग्रसच्छूरो धृष्टकेतुं महाहवे ॥३९॥

जिस तरह भूखा नीलकण्ठ पक्षी छोटे २ कीड़े मकोड़ों को खा जाता है, उसी तरह शूरवीर द्रोणाचार्य, इस घोर युद्ध में राजा धृष्टकेतु को निगल गया ॥३९॥

निहते चेदिराजे तु तत्खण्डं पित्र्यमाविशत् ।
अमर्षवशमापन्नः पुत्रोऽस्य परमास्त्रवित् ॥४०॥

जब चेदिराज मारा गया-तो उसके स्थान पर अस्त्रविद्या में कुशल उसका पुत्र क्रोध में भरा हुआ अपने पिता की सेना में अधिकारी रूप से प्रविष्ट हुआ ॥४०॥

तमपि प्रहसन्द्रोणः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
महाव्याघ्रो महारण्ये मृगशावं यथा बली ॥४१॥

द्रोणाचार्य ने इसको भी इस तरह हंसते २ बाणों द्वारा यमराज के घर भेज दिया, जैसे महावन में महावली मृगराज, मृगशिशु को मार गिराता है ॥४१॥

तेषु प्रक्षीयमाणेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
जरासन्धसुतो वीरः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥४२॥

हे भारत ! अब पाण्डवों के इन महारथियों के विनाश को देखकर इस समय जरासन्ध का वीरपुत्र, राजा सहदेव, द्रोणाचार्य पर झपटा ॥४२॥

स तु द्रोणं महाबाहुः शरधाराभिराहवे ।
अदृश्यमकरोत्तूर्णं जलदो भास्करं यथा ॥४३॥

महाबाहु, सहदेव ने इस रण में घोर बाणवर्षा करके द्रोणाचार्य को इस तरह अदृश्य कर दिया जैसे-आकाश में सूर्य को मेघमाला ढक देती है ॥४३॥

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ।
व्यसृजत्सायकांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥४४॥

क्षत्रियों के मर्दन करने वाले द्रोण ने जब जरासन्धपुत्र सहदेव की इतनी स्फूर्ति (फुर्ती) देखी, तो उन्होंने भी बड़े वेग से सैकड़ों और सहस्रों बाण छोड़ना आरम्भ किया ॥४४॥

छादयित्वा रणे द्रोणो रथस्थं रथिनां वरम् ।
जारासन्धिं जघानाऽऽशु मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥४५॥

महारथियों में उत्तम रथ में स्थित, जरासन्धसुत इस सहदेव को अपने बाणों से आच्छादित करके सारे धनुर्धरों के देखते २ द्रोणाचार्यने क्षण भर में इसे मार गिराया ॥४५॥

यो यः स्म नीयते तत्र तं द्रोणो ह्यन्तकोपमः
आदत्त सर्वभूतानि प्राप्ते काले यथाऽन्तकः ॥४६॥

हे राजन्! इस प्रकार जो २ वीर, द्रोणाचार्य के सन्मुख पहुंचा, उसी को काल के तुल्य महाबली द्रोण ने इस तरह नष्ट कर दिया, जैसे समय आने पर मृत्यु सारे प्राणियों का वध कर देता है ॥४६॥

ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे ।
शरैरनेकसाहस्रैः पाण्डवेयान्समावृणोत् ॥४७॥

हे महाराज! इसके अनन्तर द्रोणाचार्य, इस घोर रण में अपना नाम सुना २ कर तथा कई सहस्र बाणों की झड़ी लगाकर पाण्डववीरों को आच्छादित करने लगा ॥४७॥

ते तु नामाङ्किता बाणा द्रोणेनाऽस्ताः शिलाशिताः ।
नरान्नागान्हयांश्चैव निजघ्नुः शतशो मृधे ॥४८॥

द्रोणाचार्य के नाम से अङ्कित, शिला पर तीक्ष्ण किये हुये तथा द्रोण द्वारा फैंके हुए बाण, इस रण में वीर, हाथी और अश्वों को सैंकड़ों की संख्या में मार २ कर बिछाने लगे ॥४८॥

ते वध्यमाना द्रोणेन शक्रेणेव महासुराः ।
समकम्पन्त पञ्चाला गावः शीतार्दिता इव ॥४९॥

इन्द्र द्वारा मारे हुए महा असुरों की भांति द्रोण द्वारा पञ्चाल वीर, मार २ कर बिछा दिए गए। इस समय पञ्चालवीर, इस तरह कांप रहे थे, जैसे—शीत से अर्दित गायें कांपने लगती हैं।

ततो निष्ठानको घोर पाण्डवानामजायत ।
द्रोणेन वध्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ॥५०॥

हे भरतर्षभ! द्रोणाचार्य द्वारा पाण्डवसेना का विध्वंस देख कर पाण्डवों की शेष सेना में बड़ा आर्तनाद होने लगा ॥५०॥

प्रताप्यमानाः सूर्येण हन्यमानाश्च सायकैः ।
अन्वपद्यन्त पञ्चालास्तदा सन्त्रस्तचेतसः ॥५१॥

हे भारत! सूर्य की धूप और बाणों से सन्तापित, पाञ्चाल वीर, इस समय बड़े ही व्याकुल और सन्त्रस्त हो गए ॥५१॥

मोहिता बाणजालेन भारद्वाजेन संयुगे ।
ऊरुग्राहगृहीतानां पञ्चालानां महारथाः ॥५२॥

भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य के बाणों द्वारा इस रण में पाञ्चालों की जंघाएं जकड़ी की जकड़ी रह गईं। वे इस समय बड़े ही किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए ॥५२॥

चेदयश्च महाराज सृञ्जयाः काशिकोसलाः ।
अभ्यद्रवन्त संहृष्टा भारद्वाजं युयुत्सया ॥५३॥

हे महाराज ! अब ये ही सृञ्जय, काशी और कोशलेश के वीर, बड़े उत्साह में भरकर युद्ध की अभिलाषा से भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य पर टूट पड़े ॥५३॥

ब्रुवन्तश्च रणेऽन्योन्यं चेदिपञ्चालसृञ्जयाः ।
हत द्रोणं हत द्रोणमिति ते द्रोणमभ्ययुः ॥५४॥

इस समय चेदि, पञ्चाल और सृञ्जयवीर, एक दूसरे से यही कहते हुए द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर रहे थे, कि शीघ्र द्रोण को मारो-जल्दी द्रोण का वध करो ॥५४॥

यतन्तः पुरुषव्याघ्राः सर्वशक्त्या महाद्युतिम् ।
निनीषन्तो रणे द्रोणं यमस्य सदनं प्रति ॥५५॥

ये सारे पुरुषप्रवीर, अपनी सारी शक्ति लगाकर, प्रयत्न कर रहे थे और महा तेजस्वी द्रोण को यमराज के घर पहुंचा देना चाहते थे ॥५५॥

यतमानांस्तु तान्वीरान्भारद्वाजः शिलीमुखैः ।
यमाय प्रेषयामास चेदिमुख्यान्विशेषतः ॥५६॥

जिस समय ये वीर, आचार्य द्रोण को मार देने का प्रयत्न कर रहे थे, उसी समय द्रोणाचार्य भी अपने बाणों से चेदि क्षत्रियों के विशेष २ वीरों को मार कर यमराज के घर पहुंचाने लगे ॥५६॥

तेषु प्रक्षीयमाणेषु चेदिमुख्येषु सर्वशः ।
पञ्चालाः समकम्पन्त द्रोणसायकपीडिताः ॥५७॥

हे राजन् ! एक ओर चेदिवीर, धीरे २ क्षीण होने लगे-तो दूसरी ओर द्रोणाचार्य के बाणों से पाञ्चालवीर कांप रहे थे ॥५७॥

प्राक्रोशन्भीमसेनं ते धृष्टद्युम्नं च भारत ।
दृष्ट्वा द्रोणस्य कर्माणि तथारूपाणि मारिष ॥५८॥

हे भारत ! अब ये वीर द्रोणाचार्य के इस भयङ्कर कर्म को देख कर भीमसेन और धृष्टद्युम्न को सहायता के निमित्त पुकारने लगे ॥५८॥

ब्राह्मणेन तपो नूनं चरितं दुश्चरं महत् ।
तथा हि युधि संक्रुद्धो दहति क्षत्रियर्षभान् ॥५९॥

इस ब्राह्मण ने निश्चय कोई महान् दुश्चर तप का आचरण किया है—जिससे युद्ध में क्रोधातुर होकर बड़े २ क्षत्रियवीरों को भस्म कर रहा है ॥५९॥

धर्मो युद्धं क्षत्रियस्य ब्राह्मणस्य परं तपः ।
तपस्वी कृतविद्यश्च प्रेक्षितेनाऽपि निर्दहेत् ॥६०॥

युद्ध करना तो क्षत्रिय का धर्म है और तप करना ब्राह्मण का धर्म माना गया है । यह ब्राह्मण, तपस्वी अस्त्रविद्या में कुशल है, जो देखने मात्र से भस्म कर सकता है ॥६०॥

द्रोणाग्निमस्त्रसंस्पर्शं प्रविष्टाः क्षत्रियर्षभाः ।
बहवो दुस्तरं घोरं यत्राऽदह्यन्त भारत ॥६१॥

हे भारत ! द्रोणाचार्य तो अग्नि और उसके शस्त्र उसका दाह थे। इस दुस्तर और ज्वाला में बहुत से क्षत्रियवीर प्रविष्ट होकर दग्ध हो गए ॥६१॥

यथाबलं यथोत्साहं यथासत्वं महाद्युतिः।

मोहयन्सर्वभूतानि द्रोणो हन्ति बलानि नः ॥६२॥

पाञ्चालवीर कह रहे थे, कि यह महातेजस्वी सारे वीरों को विस्मय उत्पन्न करके बल, उत्साह और पराक्रम द्वारा हमारी सारी सेनाओं को नष्ट कर रहा है ॥६२॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्षत्रधर्मा व्यवस्थितः।

अर्धचंद्रेण चिच्छेद क्षत्रधर्मा महाबलः ॥६३॥

क्रोधसंविग्नमनसो द्रोणस्य सशरं धनुः।

पाञ्चाल वीरों की इस प्रकार करुण वाणी सुनकर धृष्टद्युम्न पुत्र क्षत्रधर्मा आगे बढ़ा। महबली क्षत्रधर्मा ने क्रोध में भरकर अर्धचन्द्र संज्ञक बाण द्वारा द्रोणाचार्य के बाण सहित धनुष को काट गिराया ॥६३॥

स संरब्धतरो भूत्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥६४॥

अन्यत्कार्मुकमादाय भास्वरं वेगवत्तरम्।

तत्राऽऽधाय शरं तीक्ष्णं परानीकविशातनम् ॥६५॥

आकर्णपूर्णमाचार्यो बलवानभ्यवासृजत्।

स हत्वा क्षत्रधर्माणं जगाम धरणीतलम् ॥६६॥

क्षत्रियों का मर्दन करने वाले द्रोणाचार्य इस घटना से जल उठे। उन्होंने बड़े वेग वाला, चमकीला दूसरा धनुष उठाया। उस धनुष पर शत्रुसेनानाशक तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर और उसे कान तक खेंचकर बलवान आचार्य ने क्षत्रधर्मा पर छोड़ दिया। यह बाण क्षत्रधर्मा के प्राण लेकर पृथ्वी में घुस गया॥

स भिन्नहृदयो वाहान्न्यपतन्मेदिनीतले।
ततः सैन्यान्यकम्पन्त धृष्टद्युम्नसुते हते ॥६७॥

क्षत्रधर्मा का हृदय इस बाणसे छिन्नभिन्न हो गया। वह अपने रथ के नीचे गिर पड़ा। जब इस प्रकार धृष्टद्युम्न का पुत्र मारा गया-तो सारी पाण्डव सेना कांप उठी ॥६७॥

अथ द्रोणं समारोहच्चेकितानो महाबलः।
स द्रोणं दशभिर्विध्वा प्रत्यविद्धयत्स्तनान्तरे ॥६८॥
चतुर्भिः सारथिं चाऽस्य चतुर्भिश्चतुरो हयान्।

अब द्रोणाचार्य के सन्मुख महाबली राजा चेकितान पहुंचे। उसने दश बाण छोड़कर द्रोण को आहत किया और एक बाण द्रोण की छाती में मारा तथा चार बाणों से सारथि और चार बाणों से इसके चारों अश्वों को क्षतविक्षत कर दिया ॥६८॥

तमाचार्यस्त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥६९॥
ध्वजं सप्तभिरुन्मथ्य यन्तारमवधीत्त्रिभिः।

आचार्य द्रोण ने इसके बाहु और हृदय में बाण मारे तथा सात बाणों से ध्वजा को काटकर तीन बाणों से उसके सारथि को मार गिराया ॥६९॥

तस्य सूते हते तेऽश्वा रथमादाय विद्रुताः ॥७०॥
समरे शरसंवीता भारद्वाजेन मारिष ।

हे आर्य ! जब चेकितान का सारथि मारा गया, तो उसके अश्व, रथ लेकर रणभूमि से भाग निकले। ये अश्व, द्रोणाचार्य के बाणों से छिदे हुए थे ॥७०॥

चेकितानरथं दृष्ट्वा हताश्वं हतसारथिम् ॥७१॥
तान्समेतान्रणे शूरांश्चेदिपञ्चालसृञ्जयान् ।
समन्ताद् द्रावयन्द्रोणो बह्वशोभत मारिष ॥७२॥

द्रोणाचार्य, चेकितान के रथ को सारथि से हीन और आहत अश्वों से युक्त देखकर इकट्ठे ही चेदि, पञ्चाल और सृञ्जय वीरों को सब ओर से मारने लगा। हे आर्य ! द्रोणाचार्य, पाण्डवसेना को भगाता हुआ बड़ा ही सुशोभित हो रहा था ।७१-७२॥

आकर्णपलितश्यामो वयसाऽशीतिपञ्चकः ।
रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥७३॥

द्रोणाचार्य के कान तक के काले बाल श्वेत हो चुके थे। यद्यपि इसकी पिचासी वर्ष की आयु थी, तो भी यह रण में सोलह वर्ष के वीर की भांति भाग दौड़ रहा था ॥७३॥

अथ द्रोणं महाराज विचरन्तमभीतवत् ।
वज्रहस्तममन्यन्त शत्रवः शत्रुसूदनम् ॥७४॥

हे महाराज ! इस प्रकार द्रोणाचार्य को निर्भीकभाव से विचरते देखकर पाण्डववीर, वज्रधारी इन्द्र के समान, शत्रुनाशक द्रोण को मानने लगे ॥७४॥

ततो ब्रवीन्महाबाहुर्द्रुपदो बुद्धिमान्नृप ।
लुब्धोऽयं क्षत्रियान्हन्ति व्याघ्रः क्षुद्रमृगानिव ॥७५॥

हे नृप ! अब महाबाहु बुद्धिमान् राजा द्रुपद ने कहा—आज तो यह लुब्धब्राह्मण, क्षुद्र मृगों को सिंह की तरह क्षत्रियों को मार २ कर बिछा रहा है ॥७५॥

कृच्छ्रान्दुर्योधनो लोकान्पापः प्राप्स्यति दुर्मतिः ।
यस्य लोभाद्विनिहताः समरे क्षत्रियर्षभाः ॥७६॥

दुर्मति, पापी राजा दुर्योधन को दुर्लभ लोकों की प्राप्ति नहीं होती दिखाई देती है, जिसके राज्य लोभ के कारण इस प्रकार उत्तम २ क्षत्रियों का विध्वंस हो रहा है ॥७६॥

शतशः शेरते भूमौ निकृत्ता गोवृषा इव ।
रुधिरेण परीताङ्गाः श्वशृगालादनीकृताः ॥७७॥

इसने सैंकड़ों क्षत्रियवीर काट २ कर भूमि में सुला दिए; जो वृषभों की तरह पड़े हुए दिखाई दे रहे हैं। इनके सारे शरीर रक्त में भीगे हुए तथा उनको कुत्ते और गीदड़ चाब रहे हैं ॥७७॥

एवमुक्त्वा महाराज द्रुपदोऽक्षौहिणीपतिः ।
पुरस्कृत्य रणे पार्थान्द्रोणमभ्यद्रवद् द्रुतम् ॥७८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणपराक्रमे
पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥

हे महाराज ! एक अक्षौहिणी का स्वामी राजा द्रुपद ने इतना कहकर और पाण्डवों को आगे करके बड़े वेग से द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया ॥७८॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में द्रोण के पराक्रम दिखाने और केकयराज मगधराज के वध करने का एक सौ पचीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

---

# एक सौ छब्बीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

व्यूहेष्वालोड्यमानेषु पाण्डवानां ततस्ततः ।
सुदूरमन्वयुः पार्थाः पञ्चालाः सह सौमकैः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! द्रोणाचार्य के इस प्रकार पाण्डवों के व्यूह को इधर उधर से आलोडित करने पर पाण्डव, पाञ्चाल और सोमकवीर बहुत दूर निकल गए ॥१॥

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे लोमहर्षणे ।
संक्षये जगतस्तीव्रे युगान्त इव भारत ॥२॥

हे भारत ! यह भयानक लोमहर्षण युद्ध, प्रलयकालीन जगत का तीव्र विनाश सा उपस्थित हो रहा था ॥२॥

द्रोणे युधि पराक्रान्ते नर्दमाने मुहुर्मुहुः ।
पञ्चालेषु च क्षीणेषु वध्यमानेषु पाण्डुषु ॥३॥

नाऽपश्यच्छरणं किञ्चिद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
चिन्तयामास राजेन्द्र कथमेतद्भविष्यति ॥४॥

हे राजेन्द्र ! इस प्रकार द्रोणाचार्य के युद्ध में पराक्रम दिखाने और बार २ गर्जना करने तथा पाञ्चालवीरों के क्षीण होने और पाण्डवों के वीरों के मारे जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर को कोई रक्षक दिखाई नहीं दिया। वह विचारने लगा, कि न जाने अब क्या होगा ॥३-४॥

ततो वीक्ष्य दिशः सर्वाः सव्यसाचिदिदृक्षया ।
युधिष्ठिरो ददर्शाऽथ नैव पार्थं न माधवम् ॥५॥

अर्जुन के देखने की इच्छा से धर्मराज ने सारी दिशाओं की ओर दृष्टि दौड़ाई, परन्तु उनको अर्जुन या श्रीकृष्ण कोई भी दिखाई नहीं दिया ॥५॥

सोऽपश्यन्नरशार्दूलं वानरर्षभलक्षणम् ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषमशृण्वन्व्यथितेन्द्रियः ॥६॥

धर्मराज, नरश्रेष्ठ वानर के चिन्ह से युक्त ध्वजा वाले अर्जुन को न देखकर और उसके गाण्डीव धनुष की ध्वनि न सुनकर बड़े ही चिन्तित हुए ॥६॥

अपश्यन्सात्यकिं चापि वृष्णीनां प्रवरं रथम् ।
चिन्तयाऽभिपरीताङ्गो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥७॥

इस तरह वृष्णिवंशप्रवीर, महारथी सात्यकि को भी बहुत देखा, परन्तु जब वह भी दिखाई नहीं दिया, तो धर्मराज युधिष्ठिर चिन्ता से बड़ा ही व्याकुल हुआ ॥७॥

नाऽभ्यगच्छत्तदा शान्ति तावपश्यन्नरोत्तमौ ।

लोकोपक्रोशभीरुत्वाद्धर्मराजो महामनाः ॥८॥

जब महामनस्वी धर्मराज ने सात्यकि और अर्जुन को नहीं देखा तो लोक निन्दा के डर से वे बहुत चिन्तातुर हुए ॥८॥

अचिन्तयन्महाबाहुः शैनेयस्य रथं प्रति ।

पदवीं प्रेषितश्चैव फाल्गुनस्य मया रणे ॥९॥

शैनेयः सात्यकिः सत्यो मित्राणामभयङ्करः ।

महाबाहु, धर्मराज ने सात्यकि के रथ के विषय में सोचा, कि रण में मैंने ही उसे अर्जुन की सहायता में भेजा है। शिनिपौत्र सात्यकि, सत्यपराक्रमी और मित्रों को अभय करने वाला है ॥९॥

तदिदं ह्येकमेवाऽऽसीद् द्विधा जातं ममाऽद्य वै ॥१०॥

सात्यकिश्च हि विज्ञेयः पाण्डवश्च धनञ्जयः ।

अब मेरा यह एक हृदय इस दोनों अर्जुन और सात्यकि की चिन्ता से द्विधाभूत हो रहा है। सात्यकि और अर्जुन दोनों ही मेरे हृदय हैं ॥१०॥

सात्यकिं प्रेषयित्वा तु पाण्डवस्य पदानुगम् ॥११॥

सात्वतस्यापि कं युद्धे प्रेषयिष्ये पदानुगम् ।

अर्जुन की सहायता में सात्यकि को मैंने भेजा है। अब सात्वतवीर सात्यकि की सहायता में किस पृष्ठरक्षक वीर को भेजूँ ॥११॥

करिष्यामि प्रयत्नेन भ्रातुरन्वेषणं यदि ॥१२॥
युयुधानमनन्विष्य लोको मां गर्हयिष्यति ।
भ्रातुरन्वेषणं कृत्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥१३॥
परित्यजति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।

यदि मैं इस भीषण रण में अपने भाई अर्जुन की खोज करवाऊँ और सात्यकि को छोड़ दूं, तो संसार मेरी निन्दा करेगा, कि धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने भाई का तो अन्वेषण करा लिया और सत्यपराक्रमी वृष्णिवीर सात्यकि पर ध्यान न देकर उसे छोड़ दिया ॥१२-१३॥

लोकापवादभीरुत्वात्सोऽहं पार्थं वृकोदरम् ॥१४॥
पदवीं प्रेषयिष्यामि माधवस्य महात्मनः ।

संसार की निन्दा के डर से मैं वृकोदर भीमसेन को महात्मा श्रीकृष्ण आदि की खोज में भेजता हूं ॥१४॥

यथैव च मम प्रीतिरर्जुने शत्रुसूदने ॥१५॥
तथैव वृष्णिवीरेऽपि सात्वते युद्धदुर्मदे ।

जैसी मेरी प्रीति, शत्रुसूदन अर्जुन में है, वैसी ही युद्धदुर्मद सात्वतवीर सात्यकि में है ॥१५॥

अतिभारे नियुक्तश्च मया शैनेयनन्दनः ॥१६॥
स तु मित्रोपरोधेन गौरवात्तु महाबलः ।
प्रविष्टो भारतीं सेनां मकरः सागरं यथा ॥१७॥

मैंने महाबली शैनेयनन्दन सात्यकि को अत्यन्त भार पूर्ण कार्य में नियुक्त कर दिया। इसमें मेरे मित्रों का आग्रह और सात्यकि में पराक्रमी होने की मेरी श्रद्धा ही कारण है। यह कौरव सेना में इस तरह घुस गया जैसे समुद्र में मकर घुस जाता है॥

असौ हि श्रूयते शब्दः शूराणामनिवर्तिनाम्।
मिथः संयुध्यमानानां वृष्णिवीरेण धीमता॥१८॥

युद्ध से नहीं हटने वाले, कौरव वीरों का बुद्धिमान् वृष्णिवीर के साथ परस्पर युद्ध हो रहा है-यह उसका ही कोलाहल सुनाई दे रहा है॥१८॥

प्राप्तकालं सुबलवन्निश्चितं बहुधा हि मे।
तत्रैव पाण्डवेयस्य भीमसेनस्य धन्विनः॥१९॥
गमनं रोचते मह्यं यत्र यातौ महारथौ।

अब इस समय जो कर्तव्य है, उस पर मैंने अच्छी तरह विचार कर लिया है। अब तो धनुर्धर, पाण्डु-पुत्र भीमसेनका वहां भेजना उचित प्रतीत है-जहां ये दोनों महारथी अर्जुन और सात्यकि पहुंचे हुए हैं॥१९॥

न चाऽप्यसह्यं भीमस्य विद्यते भुवि किञ्चन॥२०॥
शक्तो ह्येष रणे यत्तः पृथिव्यां सर्वधन्विनाम्।
स्वबाहुबलमास्थाय प्रतिव्यूहितुमञ्जसा॥२१॥

पृथ्वी पर कोई भी भार भीमसेन को असह्य नहीं है। यह रणभूमि में सारे धनुर्धरों के आगे सावधानी से युद्ध करने में

समर्थ है। यह अपनी ही भुजाओं के बल पर शत्रुओं के साथ व्यूह बनाकर लड़ सकता है। ॥२०-२१॥

यस्य बाहुबलं सर्वे समाश्रित्य महात्मनः।
वनवासान्निवृत्ताः स्म न च युद्धेषु निर्जिताः ॥२२॥

इस महावीर के बल के सहारे से ही हम लोग वन में से निर्विघ्न लौट आए हैं और कोई भी हमें युद्धों में नहीं जीत सका ॥२२॥

इतो गते भीमसेने सात्वतं प्रति पाण्डवे।
सनाथौ भवितारौ हि युधि सात्वतफाल्गुनौ।

यहां से यदि पाण्डव भीमसेन, सात्वतवीर सात्यकि की सहायता में पहुंच गए, तो अर्जुन और सात्यकि अवश्य सनाथ हो जावेंगे ॥२३॥

कामं त्वशोचनीयौ तौ रणे सात्वतफाल्गुनौ।
रक्षितौ वासुदेवेन स्वयं शस्त्रविशारदौ ॥२४॥

यद्यपि रण में सात्यकि और अर्जुन की कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वे दोनों वीर शस्त्र विद्या में विशारद हैं और श्रीकृष्ण द्वारा सुरक्षित हैं ॥२४॥

अवश्यं तु मया कार्यमात्मनः शोकनाशनम्।
तस्माद्भीमं नियोक्ष्यामि सात्वतस्य पदानुगम् ॥२५॥
ततः प्रतिकृतं मन्ये विधानं सात्यकिं प्रति।

अब तो मुझे मेरे शोक नाश का उपाय अवश्य करना चाहिए, इसीलिए मुझे सात्वतवीर सात्यकि की सहायता में भीमसेन को पदानुचर बनाकर अवश्य भेजना चाहिए। मैं तो इसी विधान को सात्यकि की सहायता के लिए उपयोगी समझता हूं ॥२५॥

एवं निश्चित्य मनसा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥२६॥
यन्तारमब्रवीद्राजा भीमं प्रति नयस्व माम्।

धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रकार मन में निश्चित करके अपने सारथि से कहने लगे-कि अब तुम मुझे भीमसेन के पास ले चलो।

धर्मराजवचः श्रुत्वा सारथिर्हयकोविदः ॥२७॥
रथं हेमपरिष्कारं भीमान्तिकमुपानयत्।

अश्वविद्या में कुशल सारथि, धर्मराज युधिष्ठिर के वचन सुनकर सुवर्ण मण्डित रथ को भीमसेन के पास ले गया ॥२७॥

भीमसेनमनुज्ञाप्य प्राप्तकालमचिन्तयत् ॥२८॥
कश्मलं प्राविशद्राजा बहु तत्र समादिशत्।
स कश्मलसमाविष्टो भीममाहूय पार्थिवः ॥२९॥
अब्रवीद्वचनं राजन्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।

हे राजन्! राजा युधिष्ठिर, समय के अनुसार उपाय करने को भीमसेन के पास पहुंचे और उसे सब कुछ सूचित करके कुछ विचारने लगे। इस समय राजा युधिष्ठिर के चित्त पर बहुत

सी चिन्ता छा रही थी। कुन्ती-पुत्र धर्मराज ने भीमसेन को बुला कर यह वचन कहा ॥२८-२९॥

यः सदेवान्सगन्धर्वान्दैत्यांश्चैकरथोऽजयत् ॥३०॥

तस्य लक्ष्म न पश्यामि भीमसेनाऽनुजस्य ते।

हे भीमसेन! जिसने एक रथ के द्वारा ही देव, गन्धर्व और दैत्यों को जीत लिया, उस तुम्हारे छोटे भ्राता अर्जुन का इस युद्ध में कोई चिन्ह दिखाई नहीं दे रहा है ॥३०॥

ततोऽब्रवीद्धर्मराजं भीमसेनस्तथागतम् ॥३१॥

नैवाद्राक्षं न चाऽश्रौषं तव कश्मलमीदृशम्।

भीमसेन ने इस प्रकार की घबराहट से धर्मराज को देखकर कहा—हे कुरुवंशश्रेष्ठ! मैंने तो पूर्व में कभी आपको इस ढङ्ग की चिन्ता में फंसा हुआ नहीं देखा है ॥३१॥

पुराऽतिदुःखदीर्णानां भवान्गतिरभूद्धि नः ॥३२॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र शाधि किं करवाणि ते।

हे राजेन्द्र! जब कभी हम लोग इस तरह के कश्मल में उलझते थे और दुःख से विदीर्ण होते थे, तब आप ही हमको समझाकर हमारे आश्रय बनते थे। हे महानुभाव! उठो? उठो? आज्ञा करो-हम क्या कार्य करें ॥३२॥

नह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते मम मानद ॥३३॥

आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः।

हे मानद ! कोई भी ऐसा कार्य नहीं है, जिसके करने में मैं असमर्थ होऊं या मुझमें उसके करने की योग्यता न हो। हे कुरुश्रेष्ठ ! अब तुम आज्ञा करो-मन में कुछ चिन्ता न करो।

**तमब्रवीदश्रुपूर्णः कृष्णसर्प इव श्वसन् ॥३४॥**
**भीमसेनमिदं वाक्यं प्रम्लानवदनो नृपः।**

अब मलिन मुखधारी धर्मराज ने कृष्णसर्प की भांति श्वास लेते हुए अश्रु पूर्ण मुख होकर भीमसेन से यह वचन कहा ॥३४॥

**यथा शङ्खस्य निर्घोषः पाञ्चजन्यस्य श्रूयते ॥३५॥**
**पूरितो वासुदेवेन संरब्धेन यशस्विना।**

हे भीमसेन ! तुम सुन नहीं रहे हो-कि महायशस्वी आवेश में भरे हुए श्रीकृष्ण द्वारा पाञ्चजन्य नामक शंख बजाया जा रहा है ॥३५॥

**नूनमद्य हतः शेते तव भ्राता धनञ्जयः ॥३६॥**
**तस्मिन्विनिहते नूनं युध्यतेऽसौ जनार्दनः।**

आज तुम्हारा भ्राता अर्जुन मारा गया है, यह निश्चय प्रतीत हो रहा है। उसके मरने पर ही तो क्रोधातुर होकर जनार्दन कृष्ण युद्ध कर रहे हैं ॥३६॥

**यस्य सत्ववतो वीर्यं ह्युपजीवन्ति पाण्डवाः ॥३७॥**
**यं भयेष्वभिगच्छन्ति सहस्राचमिवाऽमराः।**

अत्यन्त बलशाली श्रीकृष्ण के पराक्रम का पाण्डवों को बहुत ही भरोसा है। जब २ पाण्डवों को भय खड़ा होता है-तभी ये

सहस्र नेत्रधारी इन्द्र का देवों की भांति श्रीकृष्ण का आश्रय लेते हैं ॥३७॥

स शूरः सैन्धवप्रेप्सुरन्वयाद्भारतीं चमूम् ॥३८॥
तस्य वै गमनं विद्मो भीम नाऽऽवर्तनं पुनः ।

हे भीम ! शूरवीर अर्जुन, सिन्धुराज के वध की अभिलाषा से कौरवसेना में घुस गया, परन्तु उसका वहां घुस जाना फिर लौटने के लिए प्रतीत नहीं होता है ॥३८॥

श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयो महारथः ॥३९॥
व्यूढोरस्को महाबाहुर्मत्तद्विरदविक्रमः ।
चकोरनेत्रस्ताम्रास्यो द्विषतां भयवर्धनः ॥४०॥

अर्जुन, श्याम वर्णधारी, युवा, सुन्दर महारथी था । इसकी विशाल छाती और बड़ी भुजाएँ थीं । यह मदोन्मत्त हाथी की तरह चलता था । इसकी चकोर की सी आंखें और लाल मुख था, जो शत्रुओं को भय बढ़ाने वाला था ॥३९-४०॥

तदिदं मम भद्रं ते शोकस्थानमरिन्दम ।
अर्जुनार्थं महाबाहो सात्वतस्य च कारणात् ॥४१॥

हे अरिमर्दन ! महाबाहो ! भीम ! मुझे इन सब बातों का स्मरण होता है और अर्जुन तथा सात्यकि के कारण मुझे बड़ी ही चिन्ता हो रही है ॥४१॥

वर्धते हविषेवाऽग्निरिध्यमानः पुनः पुनः ।
तस्य लक्ष्म न पश्यामि तेन विन्दामि कश्मलम् ॥

हे भीम ! मेरी यह शोकाग्नि घृत से प्रचण्ड अग्नि की भांति बढ़ रही है। मुझे अर्जुन का चिन्ह दिखाई नहीं देता—इससे यह शोक बढ़ रहा है ॥४२॥

तं विद्धि पुरुषव्याघ्रं सात्वतं च महारथम् ।
स तं महारथं पश्चादनुयातस्तवाऽनुजम् ॥४३॥

तुम पुरुष-प्रवीर सात्वतवंशश्रेष्ठ, सात्यकि का पता लगाओ । वह महारथी तेरे अनुज अर्जुन की सहायता में पीछे से गया है।

तमपश्यन्महाबाहुमहं विन्दामि कश्मलम् ।
पार्थे तस्मिन्हते चैव युध्यते नूनमग्रणीः ॥४४॥

मैं उस महाबाहु सात्यकि को भी युद्ध में न देखकर चिन्तित हूं। यह निश्चय है, कि अर्जुन और सात्यकि के मारे जाने पर वीर-श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण युद्ध कर रहे हैं ॥४४॥

सहायो नाऽस्य वै कश्चित्तेन विन्दामि कश्मलम् ।
तस्मिन्कृष्णो हते नूनं युध्यते युद्धकोविदः ॥४५॥

अर्जुन और सात्यकि की सहायता में कोई नहीं पहुंच सका-इससे ही मुझे यह दुःख है। अर्जुन के मारे जाने से ही युद्धकोविद श्रीकृष्ण यह युद्ध करते दिखाई दे रहे हैं ॥४५॥

न हि मे शुध्यते भावस्तयोरेव परन्तप ।
स तत्र गच्छ कौन्तेय यत्र यातो धनञ्जयः ॥४६॥
सात्यकिश्च महावीर्यः कर्तव्यं यदि मन्यसे ।
वचनं मम धर्मज्ञ भ्राता ज्येष्ठो भवामि ते ॥४७॥

हे परन्तप ! इन दोनों वीर सात्यकि और अर्जुन के विषय में मेरे हृदय में अवश्य धड़का है । हे कौन्तेय ! अब तुम वहां पहुंचो, जहां धनञ्जय (अर्जुन) और महाशक्तिशाली सात्यकि पहुंच गए हैं । तुम्हें अपने कर्तव्य को आप पहिचान लेना चाहिए, हे आर्य ! मैं तुम्हारा बड़ा भ्राता हूँ और तुम्हें वहां जाने की आज्ञा देता हूं ॥४६-४७॥

न तेऽर्जुनस्तथा ज्ञेयो ज्ञातव्यः सात्यकिर्यथा ।
चिकीर्षुर्मत्प्रियं पार्थ स यातः सव्यसाचिनः ॥४८॥
पदवीं दुर्गमां घोरामगम्यामकृतात्मभिः ।

हे पार्थ ! तुम अर्जुन का इतना ध्यान न करना, जितनी खोज तुम्हें सात्यकि की करनी है; क्योंकि वह मेरा प्रिय करनेके निमित्त सव्यसाची अर्जुन की सहायता में गया है । उस दुर्गम और घोर स्थान पर पहुंचने का साहस कोई साधारण वीर नहीं कर सकता था ॥४८॥

दृष्ट्वा कुशलिनौ कृष्णौ सात्वतं चैव सात्यकिम् ।
संविदं चैव कुर्यास्त्वं सिंहनादेन पाण्डव ॥४९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरचिन्तायां षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२६॥

हे पाण्डव ! यदि तुम श्रीकृष्ण, अर्जुन और सात्यकि को जीवित कुशलतापूर्वक देखो-तो सिंहनाद करके हमको इसकी सूचना कर देना ॥४६॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में राजा युधिष्ठिर की चिन्ता का एक सौ छब्बीसवां अध्याय समाप्त हुआ

# एक सौ सत्ताईसवां अध्याय

भीमसेन उवाच—

ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणानवहद्यः पुरा रथः ।
तमास्थाय गतौ कृष्णौ न तयोर्विद्यते भयम् ॥१॥
आज्ञां तु शिरसा बिभ्रदेष गच्छामि मा शुचः ।
समेत्य तान्नरव्याघ्रांस्तव दास्यामि संविदम् ॥२॥

भीमसेन ने कहा—हे राजन् ! ब्रह्मा, शिव, इन्द्र और वरुण ने जिस रथ पर प्रथम सवारी की थी, अर्जुन और श्रीकृष्ण उसी रथ को लेकर गए हैं-उनको कोई भय नहीं हो सकता है । मैं तुम्हारी आज्ञा को शिर पर धारण करके अभी जाता हूं, तुम चिन्ता न करो । मैं उनके समाचार लेकर अभी आता हूं ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

एतावदुक्त्वा प्रययौ परिदाय युधिष्ठिरम् ।
धृष्टद्युम्नाय बलवान्सुहृद्भ्यश्च पुनः पुनः ॥३॥
धृष्टद्युम्नं चेदमाह भीमसेनो महाबलः ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! इतना कहकर और राजा युधिष्ठिर के लिये धृष्टद्युम्न तथा अन्य मित्रमण्डल को सौंप कर बलवानों में श्रेष्ठ, महाबली भीमसेन, धृष्टद्युम्न से यह वचन बोला ॥३॥

विदितं ते महाबाहो यथा द्रोणो महारथः ॥४॥
ग्रहणे धर्मराजस्य सर्वोपायेन वर्त्तते ।

हे महाबाहो ! महारथी द्रोण, कितना अधिक बलवान् है-यह तुमको मालूम है । वह धर्मराज के पकड़ने की सब प्रकार से चेष्टा कर रहा है ॥४॥

न च मे गमने कृत्यं तादृक्पार्षत विद्यते ॥५॥
यादृशं रक्षणे राज्ञः कार्यमात्ययिकं हि नः ।

हे पार्षत ! मेरा अर्जुन के समीप जाना इतना आवश्यक कृत्य नहीं है, जितना राजा की रक्षा करना आवश्यक कार्य है ॥५॥

एवमुक्तोऽस्मि पार्थेन प्रतिवक्तुं न चोत्सहे ॥६॥
प्रयास्ये तत्र यत्राऽसौ मुमूर्षुः सैन्धवः स्थितः ।

अब मुझे अर्जुन् के समीप जाने की धर्मराज ने आज्ञा दी है, जिसको मैं लौटा नहीं सकता हूं । अब मैं भी उसी रणस्थल में जा रहा हूं-जहां पर मरणोन्मुख राजा जयद्रथ उपस्थित है ॥६॥

धर्मराजस्य वचने स्थातव्यमविशंकया ॥७॥
यास्यामि पदवीं भ्रातुः सात्वतस्य च धीमतः ।

मुझे तो विना कुछ शंका किए, राजा युधिष्ठिर के वचन में स्थित होना है। अब मैं अपने भाई अर्जुन और सात्वतवंशश्रेष्ठ सात्यकि के स्थान पर पहुंचता हूं ॥७॥

सोऽद्य यत्तो रणे पार्थं परिरक्ष युधिष्ठिरम् ॥८॥
एतद्धि सर्वकार्याणां परमं कृत्यमाहवे ।

अब तुम रण में सावधान रह कर राजा युधिष्ठिर की रक्षा करते रहना, क्योंकि रण में सबसे आवश्यक धर्मराज की रक्षा करना है ॥८॥

तमब्रवीन्महाराज धृष्टद्युम्नो वृकोदरम् ॥९॥
ईप्सितं ते करिष्यामि गच्छ पार्थाऽविचारयन् ।

हे महाराज ! इस समय भीमसेन से सेनापति धृष्टद्युम्न ने कहा—हे कौन्तेय ! तुम कुछ चिन्ता न करो-मैं तुम्हारे मनोरथ को पूरा करता रहूंगा ॥९॥

नाऽहत्वा समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नं कथञ्चन ॥१०॥
निग्रहं धर्मराजस्य प्रकरिष्यति संयुगे ।

इस युद्ध में प्रथम मुझ धृष्टद्युम्न के मारे विना द्रोणाचार्य, किसी प्रकार भी राजा युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सकेगा ॥१०॥

ततो निक्षिप्य राजानं धृष्टद्युम्ने च पाण्डवम् ॥११॥
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं प्रययौ येन फाल्गुनः ।

इसके अनन्तर पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर को धृष्टद्युम्न की देख रेख में छोड़कर अपने उन्हीं ज्येष्ठ भ्राता को प्रणाम करके भीमसेन भी उसी मार्ग से चल दिए ॥११॥

परिष्वक्तश्च कौन्तेयो धर्मराजेन भारत ॥१२॥
आघ्रातश्च तथा मूर्ध्नि श्रावितश्चाऽऽशिषः शुभाः।

हे भारत! धर्मराज ने कुन्ती-पुत्र भीमसेन का आलिङ्गन किया और उसका मस्तक सूंघा तथा उसको शुभ आशीसें प्रदान की ॥१२॥

कृत्वा प्रदक्षिणान्विप्रानर्चितांस्तुष्टमानसान् ॥१३॥
आलभ्य मङ्गलान्यष्टौ पीत्वा कैरातकं मधु।
द्विगुणद्रविणो वीरो मदरक्तान्तलोचनः ॥१४॥

ब्राह्मणों को दक्षिणा आदि पूजा से सन्तुष्ट करके उनकी प्रदक्षिणा की और जो, अग्नि आदि आठ मङ्गल वस्तुओं का स्पर्श करके कैरातक मधु का पान किया। अब इसके मद (नशे) से इसके नेत्र लाल हो गए और यह वीर भीमसेन, दुगुने उत्साह में भर गया ॥१३-१४॥

विप्रैः कृतस्वस्त्ययनो विजयोत्पादसूचितः।
पश्यन्नेवाऽऽत्मनो बुद्धिं विजयानन्दकारिणीम् ॥१५॥
अनुलोमानिलैश्चाऽऽशु प्रदर्शितजयोदयः।
भीमसेनो महाबाहुः कवची शुभकुण्डली ॥१६॥
साङ्गदी सतलत्राणः स रथी रथिनां वरः।

तस्य कार्ष्णायसं वर्म हेमचित्रं महर्धिमत् ॥१७॥
विबभौ सर्वतः श्लिष्टं सविद्युदिव तोयदः ।

विजयकी प्राप्ति के निमित्त ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करा कर और विजय के आनन्द के प्राप्त कराने वाली अपनी बुद्धि की आगे बढ़ने की प्रवृत्ति को जान कर कवच और कुण्डल धारी, महाबाहु अङ्गदों (भुजाबन्ध) से अलंकृत, रथियों में उत्तम, महारथी भीमसेन तलत्राण धारण किये हुए चल दिया। इसका काले लोह का कवच, सुवर्ण से अत्यन्त चमक रहा था। यह कवच सब ओर से इतना चमकीला था, जैसे-बिजली से बादल चमक रहे हों ॥१७॥

पीतरक्तासितसितैर्वासोभिश्च सुवेष्टितः ॥१८॥
कण्ठत्राणेन च बभौ सेन्द्रायुध इवाऽम्बुदः ।

भीमसेन ने पीले, लाल, श्वेत और काले वस्त्र पहिन रखे थे और इसके गले में सुवर्ण का कण्ठत्राण चमक रहा था, जिससे इन्द्रायुध के सहित बादलों के तुल्य उसकी शोभा हो रही थी ॥१८॥

प्रयाते भीमसेने तु तव सैन्यं युयुत्सया ॥१९॥
पाञ्चजन्यरवो घोरः पुनरासीद्विशाम्पते ।

हे विशाम्पते! तुम्हारी सेना में युद्ध की अभिलाषा से भीमसेन के प्रवेश करते ही फिर पाञ्चजन्य शंख की घोर ध्वनि सुनाई पड़ी ॥१९॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं त्रैलोक्यत्रासनं महत् ॥२०॥
पुनर्भीमं महाबाहुं धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत ।

त्रिलोकी में भय उत्पन्न कर देने वाले इस पाञ्चजन्य शंख की घोर ध्वनि सुन कर फिर महाबाहु भीमसेन से धर्मराज कहने लगे।

एष वृष्णिप्रवीरेण ध्मातः सलिलजो भृशम् ॥२१॥
पृथिवीं चाऽन्तरिक्षं च विनादयति शङ्खराट् ।

हे भीम ! वृष्णिवंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने फिर यह शङ्ख जोर से बजाया है, जिसके शब्द से पृथिवी और आकाश शब्दायमान हो उठे हैं ॥२१॥

नूनं व्यसनमापन्ने सुमहत्सव्यसाचिनि ॥२२॥
कुरुभिर्युध्यते सार्धं सर्वैश्चक्रगदाधरः ।

हे भीम ! मेरी सम्मति में सव्यसाची अर्जुन युद्ध में समाप्त हो चुके हैं, अब सारे कौरवों से स्वयं चक्रगदाधारी श्रीकृष्ण युद्ध करते हुए प्रतीत होते हैं ॥२२॥

आह कुन्ती नूनमार्या पापमद्य निदर्शनम् ॥२३॥
द्रौपदी च सुभद्रा च पश्यन्त्यौ सह बन्धुभिः ।

आज माता कुन्ती ने भी पापी निमित्तों की सूचना दी थी तथा द्रौपदी और सुभद्रा ने भी बन्धुओं के साथ अशुभ निमित्तों का दर्शन किया है ॥२३॥

स भीम त्वरया युक्तो याहि यत्र धनञ्जयः ॥२४॥
मुह्यन्तीव हि मे सर्वा धनञ्जयदिदृक्षया ।
दिशश्च प्रदिशः पार्थ सात्वतस्य च कारणात् ॥२५॥
गच्छ गच्छेति गुरुणा सोऽनुज्ञातो वृकोदरः ।

हे भीम ! तुम शीघ्रता से वहीं जाओ, जहां पर धनञ्जय अर्जुन पहुंचे हुए हैं। मेरी चेतना मोहित सी होती जा रही है और मैं अर्जुन के देखने को अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा हूं। हे पार्थ ! इसी तरह सात्वतवंशोद्भव सात्यकि के निमित्त मुझे सारी दिशा विदिशा सूनी सी दिखाई देती हैं। हे राजन् ! इस प्रकार बार बार अपने पूज्य भ्राता धर्मराज ने भीमसेन को आज्ञा दी ॥२४-२५॥

ततः पाण्डुसुतो राजन्भीमसेनः प्रतापवान् ॥२६॥
बद्धगोधांगुलित्राणः प्रगृहीतशरासनः।

हे राजेन्द्र ! इस प्रकार पूज्य भ्राता की आज्ञा के अनन्तर पाण्डु-पुत्र, महाप्रतापी भीमसेन ने गोधा के चर्म का अंगुलित्राण पहन लिया और धनुष बाण उठाया ॥२६॥

ज्येष्ठेन प्रहितो भ्रात्रा भ्राता भ्रातुः प्रियङ्करः ॥२७॥
आहत्य दुन्दुभिं भीमः शङ्खं प्रध्माप्य चाऽसकृत्।
विनद्य सिंहनादेन ज्यां विकर्षन्पुनः पुनः ॥२८॥
तेन शब्देन वीराणां पातयित्वा मनांस्युत।
दर्शयन्घोरमात्मानममित्रान्सहसाऽभ्ययात् ॥२९॥

अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्मराज से भेजा हुआ, भाई के हित में तत्पर भीमसेनने घोर दुन्दुभि बजाई और बार बार शंख बजाया। अब भीमसेन ने सिंहनाद के साथ गर्जना की और वह बार २ अपने धनुष की डोरी खैंचने लगा। इस घोर शब्द से उसने

वीरों के मन में भय उत्पन्न कर दिया। यह अपना बड़ा विकराल रूप दिखा कर शत्रुओं पर बुरी तरह झपटा ॥२७-२६॥

तमूहुर्जवना दान्ता विरुवन्तो हयोत्तमाः।
विशोकेनाऽभिसम्पन्ना मनोमारुतरंहसः ॥३०॥

इस समय भीमसेन के रथ में बड़े उदार वेगशील हिनहिनाते हुए अश्व जुड़े हुए थे। इन अश्वों का सारथि विशोक था। ये अश्व, मन और वायु के तुल्य वेग वाले थे ॥३०॥

आरुजन्विरुजन्पार्थो ज्यां विकर्षंश्च पाणिना।
सम्प्रकर्षन्विकर्षंश्च सेनाग्रं समलोडयत् ॥३१॥

इस समय भीमसेन अपने धनुष से काटता छेदता, धनुष पर डोरी चढ़ाता, अत्यन्त वेग से उसे खैंचता, सम्यक् प्रकार से प्रहार करता हुआ, सेना के अग्रभाग को आलोडित करने लगा।

तं प्रयान्तं महाबाहुं पञ्चालाः सहसोमकाः।
पृष्ठतोऽनुययुः शूरा मघवन्तमिवाऽमराः ॥३२॥

जब महाबाहु, भीमसेन आगे बढ़ा-तो सोमक वीरों के साथ २ पाञ्चाल वीर भी भीमसेन के साथ इस तरह आगे बढ़े-जैसे इन्द्र के साथ देवता आगे बढ़ते हैं ॥३२॥

तं समेत्य महाराज तावकाः पर्यवारयन्।
दुःशलश्चित्रसेनश्च कुण्डभेदी विविंशतिः ॥३३॥
दुर्मुखो दुःसहश्चैव विकर्णश्च शलस्तथा।
विन्दानुविन्दौ सुमुखो दीर्घबाहुः सुदर्शनः ॥३४॥

वृन्दारकः सुहस्तश्च सुषेणो दीर्घलोचनः।
अभयो रौद्रकर्मा च सुवर्मा दुर्विमोचनः ॥३५॥
शोभन्तो रथिनां श्रेष्ठाः सहसैन्यपदानुगाः।
संयत्ताः समरे वीरा भीमसेनमुपाद्रवन् ॥३६॥
तैः समन्तादवृतः शूरैः समरेषु महारथः।

हे महाराज! इस समय तुम्हारे महारथियों ने भीमसेन को घेर लिया। दुःशल, चित्रसेन, कुण्डभेदी, विविंशति, दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, शल, विन्द, अनुविन्द, सुमुख, दीर्घबाहु, सुदर्शन, वृन्दारक, सुहस्त, सुषेण, दीर्घलोचन, अभय, रौद्रकर्मा, सुकर्मा, दुर्विमोचन आदि महारथी, वीर अपनी २ सेना और पैदलों के साथ सुशोभित हुए बड़ी सावधानी से रण में भीमसेन पर झपटे। इन वीरों से घिरा हुआ रण में दुर्मद भीमसेन बड़ा ही सुशोभित हुआ ॥३३-३६॥

तान्समीक्ष्य तु कौन्तेयो भीमसेनः पराक्रमी।
अभ्यवर्तत वेगेन सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥३७॥

महापराक्रमी कुन्ती-पुत्र, भीमसेन, उन कौरववीरों को अपने ऊपर झपटते देखकर बड़े वेग से इस तरह लौटा-जैसे क्षुद्र मृगों पर सिंह झपटता है ॥३७॥

ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र वीरा अदर्शयन्।
छादयन्तः शरैर्भीमं मेघाः सूर्यमिवोदितम् ॥३८॥

उन कौरव वीरों ने अपने दिव्य अस्त्रों का इस ढंग से प्रयोग किया, उनसे निकले हुए बाणों से इस तरह भीमसेन आच्छादित हो गया-जैसे मेघों से सूर्य ढक गया हो ॥३८॥

स तानतीत्य वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
अग्रतश्च गजानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥३९॥

महारथी भीमसेन इन कौरववीरों को उलांघ कर द्रोण की सेना में खलबली डालने लगा। इसने सबसे आगे खड़ी गजसेना पर बाणवर्षा करके उसको पाट दिया ॥३९॥

सोऽचिरेणैव कालेन तद्गजानीकमाशुगैः ।
दिशः सर्वाः समभ्यस्य व्यधमत्पवनात्मजः ॥४०॥

पवन-पुत्र भीमसेन ने बहुत ही थोड़े समय में अपने बाणों से सब दिशाओं में आक्रमण करके उस गजसेना को कुचल डाला।

त्रासिताः शरभस्येव गर्जितेन वने मृगाः ।
प्राद्रवन्द्विरदाः सर्वे नदन्तो भैरवान्रवान् ॥४१॥

शरभ (हिंस्रजन्तु) की गर्जना सुनकर जैसे वन के मृग भाग निकलते हैं, वैसे ही चीत्कार करते हुए सारे हाथी भाग निकले।

पुनश्चाऽतीव वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
तमवारयदाचार्यो वेलोद्वृत्तमिवाऽर्णवम् ॥४२॥

हे राजन्! फिर अत्यन्त वेग के साथ आक्रमण करके भीमसेन ने द्रोणाचार्य की सेना पर आक्रमण किया। आचार्य द्रोण ने भी उछलते हुए समुद्र को वेला की तरह भीमसेन को रोक दिया ॥४२॥

ललाटेऽताडयच्चैनं नाराचेन स्मयन्निव ।
ऊर्ध्वरश्मिरिवाऽऽदित्यो विबभौ तेन पाण्डवः ॥४३॥

हे महीपते ! द्रोणाचार्य ने कुछ मुस्कुरा कर उसके ललाट में एक बाण मारा, उस बाण से पाण्डु-पुत्र भीमसेन ऊपर उठी हुई किरण वाले सूर्य की भांति सुशोभित दिखाई देने लगे ॥४३॥

स मन्यमानस्त्वाचार्यो ममाऽयं फाल्गुनो यथा ।
भीमः करिष्यति पूजामित्युवाच वृकोदरम् ॥४४॥

आचार्य द्रोण यह मानते थे, कि अर्जुन की भांति भीमसेन भी मेरा आदर प्रदर्शित करेंगे-यह सोचकर वे भीमसेन से बोले ।

भीमसेन न ते शक्या प्रवेष्टुमरिवाहिनी ।
मामनिर्जित्य समरे शत्रुमद्य महाबल ॥४५॥

हे महाबली ! भीमसेन ! रण में तुम मुझ शत्रु को बिना जीते शत्रु-सेना में आज नहीं घुस सकते हो ॥४५॥

यदि ते सोऽनुजः कृष्णः प्रविष्टोऽनुमते मम ।
अनीकं न तु शक्यं मे प्रवेष्टुमिह वै त्वया ॥४६॥

यद्यपि तुम्हारा भ्राता अर्जुन, मुझे बिना जीते ही मुझसे मुख मोड़कर सेना में घुस गया । यही मेरी अनुमति थी, कि मुझे जीत कर तुम सेना में नहीं घुस सकोगे, परन्तु तुम मुझे जीत कर सेना में घुसना चाहते हो-यह तुम भी नहीं कर सकोगे ॥४६॥

अथ भीमस्तु तच्छ्रुत्वा गुरोर्वाक्यमपेतभीः ।
क्रुद्धः प्रोवाच वै द्रोणं रक्तताम्रेक्षणस्त्वरन् ॥४७॥

इस प्रकार अपने पूज्य द्रोणाचार्य के वचन सुनकर निर्भीक वीर भीमसेन क्रोध से लाल आंखें करके बड़ी शीघ्रता से यह वचन बोला ॥४७॥

तवाऽर्जुनो नाऽनुमते ब्रह्मबन्धो रणाजिरम् ।

प्रविष्टः स हि दुर्धर्षः शक्रस्याऽपि विशेद्बलम् ॥४८॥

हे ब्राह्मणापसद ! तुम्हारे कथन को मानकर तुम्हारे बिना जीते मुख मोड़कर अर्जुन कौरवसेना में नहीं घुसा है, वह बड़ा दुर्धर्ष है, वह तो इन्द्र की सेना में भी बल-पूर्वक घुस सकता है ।

तेन वै परमां पूजां कुर्वता मानितो ह्यसि

नाऽर्जुनोऽहं घृणी द्रोण भीमसेनोऽस्मि ते रिपुः ॥

अर्जुन बड़ा विनीत है, उसने तुम्हारा मान और आदर किया है । हे द्रोण ! मैं अर्जुन नहीं हूं, मैं तुम से घृणा करने वाला तुम्हारा शत्रु भीमसेन हूं ॥४९॥

पिता नस्त्वं गुरुर्बन्धुस्तथा पुत्रास्तु ते वयम् ।

इति मन्यामहे सर्वे भवन्तं प्रणताः स्थिताः ॥५०॥

तुम हमारे पिता, गुरु और बन्धु हो तथा हम तुम्हारे पुत्र के तुल्य हैं । हम सब लोग यही मान कर झुकते रहते हैं ॥५०॥

अद्य तद्विपरीतं ते वदतोऽस्मासु दृश्यते ।

यदि त्वं शत्रुमात्मानं मन्यसे तत्तथाऽस्त्विह ॥५१॥

एष ते सदृशं शत्रोः कर्म भीमः करोम्यहम् ।

आज तुम स्वयं अपने पूज्य भाव को छोड़ कर अपने को हमारा शत्रु कह रहे हो। यदि तुम ही अपने को शत्रु मानते हो-तो हम भी तुमको शत्रु ही मानते हैं। यह लो ? मैं भीम, अभी तुम्हारे शत्रु के सदृश कर्म करके दिखाता हूं ॥५१॥

अथोद्भ्राम्य गदां भीमः कालदण्डमिवाऽन्तकः ॥
द्रोणाय व्यसृजद्राजन्स रथादवपुप्लुवे ।

इसके अनन्तर जिस तरह अन्तक, कालदण्ड उठाता है, उसी तरह भीम ने गदा उठाकर घुमाई और उसे द्रोणाचार्य पर फेंका। हे राजन्! इस समय द्रोणाचार्य कूद कर रथ से दूर जा खड़े हुए ॥५२॥

साश्वसूतध्वजं यानं द्रोणस्याऽपोथयत्तदा ॥५३॥
ग्रामृद्गाच्च बहून्योधान्वायुर्वृक्षानिवौजसा ।
तं पुनः परिवव्रुस्ते तव पुत्रा रथोत्तमम् ॥५४॥

हे राजन! उस गदा ने द्रोण के रथ को सारथि, अश्व और ध्वजा के साथ चकनाचूर कर दिया और वायु जैसे-वृक्षों को अपने वेग से उखाड़ फैंकता है, उसी तरह उस गदा ने बहुत से वीरों को कुचल डाला। इसके अनन्तर तुम्हारे पुत्रों ने महारथी भीमसेन को फिर घेर लिया ॥५३-५४॥

अन्यं तु रथमास्थाय द्रोणः प्रहरतां वरः ।
व्यूहद्वारं समासाद्य युद्धाय समुपस्थितः ॥५५॥

प्रहार कर्ताओं में श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य ने अब दूसरा रथ मंगवाया और वे अपनी सेना के व्यूह के द्वार पर जाकर उसकी रक्षा करने लगे ॥५५॥

ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः पराक्रमी ।
अग्रतः स्यन्दनानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥५६॥

हे महाराज ! महापराक्रमी भीमसेन कुपित हो रहे थे। अब वे अपने आगे खड़ी हुई रथों की सेना का बाणवर्षा से नाश करने लगे ॥५६॥

ते वध्यमानाः समरे तव पुत्रा महारथाः ।
भीमं भीमबला युद्धे योधयन्ति जयैषिणः ॥५७॥

हे विशाम्पते ! भीमसेन द्वारा आहत हुए तुम्हारे महारथी अत्यन्त बलशाली पुत्र युद्ध में विजय की अभिलाषा से युद्ध करने लगे ॥५७॥

ततो दुःशासनः क्रुद्धो रथशक्तिं समाक्षिपत् ।
सर्वपारसवीं तीक्ष्णां जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ॥५८॥

अब दुःशासन ने रथशक्ति नामक शस्त्र को क्रोध के साथ फैंका, जो सारी तीक्ष्ण लोहे से बनी हुई थी। वह इस शक्ति द्वारा भीमसेन का हनन कर देना चाहता था ॥५८॥

आपतन्तीं महाशक्तिं तव पुत्रप्रणोदिताम् ।
द्विधा चिच्छेद तां भीमस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥५९॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र की फेंकी हुई महाशक्ति को अपने ऊपर गिरती हुई देखकर भीमसेन ने उसके दो टुकड़े कर दिए-यह बड़ा ही अद्भुत हुआ ॥५६॥

अथाऽन्यैर्विशिखैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धः कुण्डभेदिनम् ।
सुषेणं दीर्घनेत्रं च त्रिभिस्त्रीनवधीद्बली ॥६०॥

इसके बाद क्रोध में भरे हुए भीमसेन ने अन्य तीन तीखे बाण छोड़कर कुण्डभेदी, सुषेण और दीर्घनेत्र, तुम्हारे तीन पुत्रों को मार डाला ॥६०॥

ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम् ।
पुत्राणां तव वीराणां युध्यतामवधीत्पुनः ॥६१॥

हे राजन् ! जब तुम्हारे वीर पुत्र युद्ध कर रहे थे, उसी समय कौरवों की कीर्ति के बढ़ाने वाले, वीर पुत्र वृन्दारक का भीमसेन ने वध कर डाला ॥६१॥

अभयं रौद्रकर्माणं दुर्विमोचनमेव च ।
त्रिभिस्त्रीनवधीद्भीमः पुनरेव सुतांस्तव ॥६२॥

हे महीपते ! इसके अनन्तर तीन बाण छोड़कर तुम्हारे तीन पुत्र अभय, रौद्रकर्मा और दुर्विमोचन को भीमसेन ने मार डाला ।

वध्यमाना महाराज पुत्रास्तव बलीयसा ।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं समन्तात्पर्यवारयन् ॥६३॥

हे महाराज ! जब महाबली भीमसेन ने तुम्हारे कई पुत्रों को मार गिराया-तो अन्य कौरववीरों ने प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ, भीम को सब ओर से घेर लिया ॥६३॥

ते शरैर्भीमकर्माणं ववर्षुः पाण्डवं युधि ।
मेघा इवाऽऽतपापाये धाराभिर्धरणीधरम् ॥६४॥

उन वीरों ने भीम कर्म करने वाले पाण्डु-पुत्र भीमसेन को रण में इस तरह पाट दिया जैसे-वर्षाकाल में मेघ अपनी धारा से पर्वत को आच्छादित कर देता है ॥६४॥

स तद्बाणमयं वर्षमश्मवर्षमिवाऽचलः ।
प्रतीच्छन्पाण्डुदायादो न प्राव्यथत शत्रुहा ॥६५॥

हे राजन् ! जिस तरह पर्वत, पत्थरों (ओलों) की बाणवर्षा को सहता रहता है, उसी तरह कौरवों की बाणवर्षा को सहता हुआ वह शत्रुतापी, पाण्डु-पुत्र भीम कुछ भी विचलित नहीं हुआ ।

विन्दानुविन्दौ सहितौ सुवर्माणं च ते सुतम् ।
प्रहसन्नेव कौन्तेयः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥६६॥

अब कुन्ती-पुत्र भीम ने विन्द और अनुविन्द नामक अवन्ती राजकुमारों के साथ तुम्हारे पुत्र सुवर्मा को अपने बाणों द्वारा यमराज के घर भेज दिया ॥६६॥

ततः सुदर्शनं वीरं पुत्रं ते भरतर्षभ ।
विव्याध समरे तूर्णं स पपात ममार च ॥६७॥

हे भरतर्षभ ! इसके अनन्तर भीमसेन ने तुम्हारे वीर पुत्र सुदर्शन को रण में बींध कर भूमि में गिरा दिया और मार डाला ।

सोऽचिरेणैव कालेन तद्रथानीकमाशुगैः ।
दिशः सर्वाः समालोक्य व्यधमत्पाण्डुनन्दनः ॥६८॥

हे महाराज ! इस प्रकार पाण्डु-पुत्र भीमसेन ने थोड़ी ही देर में उस रथसेना को अपने बाणों से सारी दिशाओं में देख २ कर छिन्न-भिन्न कर डाला ॥६८॥

ततो वै रथघोषेण गर्जितेन मृगा इव ।

भज्यमानाश्च समरे तव पुत्रा विशाम्पते ॥६९॥

प्राद्रवन्सहसा सर्वे भीमसेनभयार्दिताः ।

हे विशाम्पते ! अब भीमसेन के रथ की ध्वनि और गर्जना को सुनकर मृगों की तरह रण में तुम्हारे सारे पुत्र तितर बितर हो गए और वे भीमसेन के भय से व्याकुल होकर एकदम भाग खड़े हुए ॥६९॥

अनुयायाच्च-कौन्तेयः पुत्राणां ते महद्बलम् ॥७०॥

विव्याध समरे राजन्कौरवेयान्समन्ततः ।

हे राजन् ! अब भागती हुई तुम्हारी विशाल सेना के पीछे कुन्ती-पुत्र भीमसेन झपटा और वह सब ओर से शत्रु-सेना को बींधने लगा ॥७०॥

वध्यमाना महाराज भीमसेनेन तावकाः ॥७१॥

त्यक्त्वा भीमं रणाज्जग्मुश्चोदयन्तो हयोत्तमान् ।

हे महाराज ! इस प्रकार भीमसेन द्वारा मारे पीटे गए, तुम्हारे वीर, भीमसेन को छोड़कर अपने अश्वों को भगाते हुए रणभूमि से बाहर निकल गए ॥७१॥

तांस्तु निर्जित्य समरे भीमसेनो महाबलः ॥७२॥
सिंहनादरवं चक्रे बाहुशब्दं च पाण्डवः ।

महाबली पाण्डु-पुत्र भीमसेन उन सबको जीतकर सिंहनाद करने और अपनी भुजाओं को फटकारने लगा ॥७२॥

तलशब्दं च सुमहत्कृत्वा भीमो महाबलः ॥७३॥
भीषयित्वा रथानीकं हत्वा योधान्वरान्वरान् ।
व्यतीत्य रथिनश्चापि द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥७४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे भीमपराक्रमे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥

हे राजन् ! महाबली भीम अपनी तालों का महान् शब्द करके और उसके द्वारा रथसेना को भयभीत बना कर तथा चुने हुए उत्तम २ योद्धाओं को मार कर एवं उन रथियों को उलांघ कर द्रोणाचार्य की सेना में युद्ध करने लगा ॥७३-७४॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में भीमसेन के पराक्रम का एक सौ सत्ताईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

---

# एक सौ अट्ठाईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

समुत्तीर्णंरथानीकं पाण्डवं विहसन्रणे ।
विवारयिषुराचार्यः शरवर्षैरवाकिरत् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! रथसेना से पार हुए भीमसेन को देखकर उसके रोकने की इच्छा से आचार्य द्रोण हंसता २ रण में बाणवर्षा करने लगा ॥१॥

पिबन्निव शरौघांस्तान्द्रोणचापपरिच्युतान् ।
सोऽभ्यद्रवत सोदर्यान्मोहयन्बलमायया ॥२॥

भीमसेन, द्रोणाचार्य के धनुष से निकले हुए बाणसमूह को पीता हुआ (परवाह न करता हुआ) अपने बल के वेग से तुम्हारे पुत्रों को मोहित करके उन पर शीघ्रता से झपटा ॥२॥

तं मृधे वेगमास्थाय नृपाः परमधन्विनः ।
चोदितास्तव पुत्रैश्च सर्वतः पर्यवारयन् ॥३॥

इस युद्ध में बड़े २ धनुषधारी, तुम्हारे पुत्र के द्वारा उत्साहित किये हुए अनेक राजाओं ने बड़े वेग के साथ भीमसेन को सब ओर से घेर लिया ॥३॥

स तैस्तु संवृतो भीमः प्रहसन्निव भारत ।
उद्यच्छन्स गदां तेभ्यः सुघोरां सिंहवन्नदन् ॥४॥

हे भारत ! जब भीमसेन, उन राजाओं में घिर गया तो कुछ मुस्कुराया और उन पर गदा का प्रहार करने के निमित्त सिंह की भाँति गर्जना करने लगा ॥४॥

अवासृजच्च वेगेन शत्रुपक्षविनाशिनीम् ।
इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रविद्धा संहतात्मना ।
आमथ्नात्सा महाराज सैनिकांस्तव संयुगे ॥५॥
घोषेण महता राजन्पूरयन्तीव मेदिनीम् ।
ज्वलन्ती तेजसा भीमा त्रासयामास ते सुतान् ॥६॥

हे महाराज ! जिस प्रकार अपने को सावधान करके इन्द्र वज्र फेंकता है, उसी तरह शत्रु पक्ष को नाश करने वाली गदा को भीमसेन ने वेग के साथ फेंका। हे राजन् ! उस गदा ने रण में तुम्हारे सैनिकों का चूर्ण कर दिया, जिसके घोष से सारी पृथ्वी भर सी गई। वह अपने तेज से इतनी प्रकाशित हो रही थी, कि जिससे तुम्हारे पुत्रों को त्रास खड़ा हो गया॥५-६॥

तां पतन्तीं महावेगां दृष्ट्वा तेजोभिसंवृताम् ।
प्राद्रवंस्तावकाः सर्वे नदन्तो भैरवान्रवान् ॥७॥

इस महावेगवती, तेज से व्याप्त, गदा को देखकर तुम्हारे पक्ष के सारे वीर भय से आर्तवाणी बोलते हुए भाग निकले ॥७॥

तं च शब्दमसह्यं वै तस्याः संलक्ष्य मारिष ।
प्रापतन्मनुजास्तत्र रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥८॥

हे महाभाग ! उस गदा के असह्य घोष को सुनकर अनेक रथी वीर मनुष्य रथों से नीचे गिर गए ॥८॥

ते हन्यमाना भीमेन गदाहस्तेन तावकाः ।
प्राद्रवन्त रणे भीता व्याघ्रघ्राता मृगा इव ॥९॥

हे राजन् ! जिस तरह व्याघ्र की झपट से भयभीत हुए मृग चौकड़ी भर के भागते हैं, उसी गदाधारी भीमसेन के आघातों से भयभीत होकर तुम्हारे वीर भाग निकले ॥९॥

स तान्विद्राव्य कौन्तेयः संख्येऽमित्रान्दुरासदान् ।
सुपर्ण इव वेगेन पक्षिराडत्यगाच्चमूम् ॥१०॥

कुन्ती-पुत्र भीमसेन उन दुरासद शत्रुओं को भगा कर पक्षिराट् गरुड़ की भांति वेग से कौरवसेना में घुस गया ॥१०॥

तथा तु विप्रकुर्वाणं रथयूथपयूथपम् ।
भारद्वाजो महाराज भीमसेनं समभ्ययात् ॥११॥

हे महाराज ! इस प्रकार उपद्रव मचाते हुए, रथ और यूथपतियों के यूथपति, भीमसेन को देखकर भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य ने उस पर आक्रमण किया ॥११॥

भीमं तु समरे द्रोणो वारयित्वा शरोर्मिभिः ।
अकरोत्सहसा नादं पाण्डूनां भयमादधत् ॥१२॥

इस रण में द्रोणाचार्य ने अपने बाणों की पंक्तियों से भीमसेन को रोक कर अचानक बड़ी गर्जना की, जिससे पाण्डवसेना में आतङ्क छा गया ॥१२॥

तद्युद्धमासीत्सुमहद्धोरं देवासुरोपमम् ।
द्रोणस्य च महाराज भीमस्य च महात्मनः ॥१३॥

हे महाराज ! इस समय द्रोणाचार्य और महावीर भीमसेन में देवासुर संग्राम के समान महाभीषण युद्ध होने लगा ॥१३॥

यदा तु विशिखैस्तीक्ष्णैर्द्रोणचापविनिःसृतैः ।
वध्यन्ते समरे वीराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१४॥
ततो रथादवप्लुत्य वेगमास्थाय पाण्डवः ।
निमील्य नयने राजन्पदातिर्द्रोणमभ्ययात् ॥१५॥
अंसे शिरो भीमसेनः करौ कृत्वोरसि स्थिरौ ।
वेगमास्थाय बलवान्मनोऽनिलगरुत्मताम् ॥१६॥

जब इस प्रकार द्रोणाचार्य के धनुष से निकले हुए तीखे बाणों से रण में सैंकड़ों हजारों पाण्डववीर मर २ कर गिरने लगे-तो पाण्डु-पुत्र भीमसेन रथ से कूद कर और बड़ा भारी वेग धारण करके पैदल ही द्रोण पर बुरी तरह झपटा । इस समय भीमसेन ने दोनों आंखें बन्द कर लीं और अपने शिर को कंधे पर झुका कर छाती में दोनों दृढ़ हाथों को बांध लिया । अब बलवान् भीमने मन, वायु और गरुड़ के समान वेग धारण किया ॥१४-१६॥

यथा हि गोवृषो वर्षं प्रतिगृह्णाति लीलया ।
तथा भीमो नरव्याघ्रः शरवर्षं समग्रहीत् ॥१७॥

हे राजन् ! जिस प्रकार सांड, साधारण रीति से वर्षा को सह लेता है, नरव्याघ्र भीमसेन भी द्रोणाचार्य की बाणवर्षा को इसी तरह सह रहा था ॥१७॥

स वध्यमानः समरे रथं द्रोणस्य मारिष ।
ईषायां पाणिना गृह्य प्रचिक्षेप महाबलः ॥१८॥

हे महाभाग ! जब द्रोणाचार्य के बाणों से भीमसेन, अत्यन्त व्याकुल हो उठा-तो रण में महाबली भीमने रथ के ईषा (आगे के भाग) को हाथ से पकड़ कर द्रोणाचार्य के रथ को फैंक दिया ॥१८॥

द्रोणस्तु त्वरो राजन्क्षिप्तो भीमेन संयुगे ।
रथमन्यं समारुह्य व्यूहद्वारं ययौ पुनः ॥१९॥

हे राजन ! जब भीम ने रण में रथ को फैंका-तो द्रोणाचार्य बड़ी शीघ्रता से उससे कूद पड़े और दूसरे रथ में बैठकर अपने दुर्ग के द्वार पर फिर चले गए ॥१९॥

तमायान्तं तथा दृष्ट्वा भग्नोत्साहं गुरुं तदा ।
गत्वा वेगात्पुनर्भीमो धुरं गृह्य रथस्य तु ॥२०॥
तमप्यतिरथं भीमश्चिक्षेप भृशरोषितः ।

इसके बाद उत्साहहीन हुए द्रोणाचार्य फिर लौट रहे थे, कि उनको देखकर भीमसेन ने वेग से जाकर उनके रथ की धुरी पकड़ ली और अत्यन्त रोष में भर कर भीम ने अतिरथी द्रोणाचार्य को फिर फैंक दिया ॥२०॥

एवमष्टौ रथाः क्षिप्ता भीमसेनेन लीलया ॥२१॥
व्यदृश्यत निमेषेण पुनः स्वरथमास्थितः ।
दृश्यते तावकैर्योधैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनैः ॥२२॥

हे राजन् ! इस प्रकार भीमसेन ने द्रोणाचार्य के आठ रथ, साधारण रीति से फैंक दिए, परन्तु द्रोणाचार्य क्षण भर में अपने दूसरे रथ में बैठा दिखाई देता था, जिसको देखकर तुम्हारे योद्धाओं की आंखें अचम्भे के साथ खिल जाती थी ॥२२॥

तस्मिन्क्षणे तस्य यन्ता तूर्णमश्वानचोदयत् ।
भीमसेनस्य कौरव्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥२३॥

हे कौरव ! इस समय भीमसेन के सारथि ने भी अपने रथ को बड़े वेग से बढ़ाया, जिसको भी लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा ॥२३॥

ततः स्वरथमास्थाय भीमसेनो महाबलः ।
अभ्यद्रवत वेगेन तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥२४॥

अब महाबली भीमसेन, अपने रथ में बैठकर तुम्हारे पुत्रों की सेना पर वेग से झपटा ॥२४॥

स मृद्नन्क्षत्रियानाजौ वातो वृक्षानिवोद्धतः ।
आगच्छद्दारयन्सेनां सिन्धुवेगो नगानिव ॥२५॥

हे भारत ! जैसे उद्धत वायु वृक्षों को उखाड़ फैंकती हैं, उसी तरह यह रण में क्षत्रियवीरों को नष्ट कर रहा था। जिस तरह समुद्र का वेग पर्वतों को फाड़ देता है, इसी तरह भीमसेन भी तुम्हारी सेना को चीरता हुआ आगे बढ़ा ॥२५॥

भोजानीकं समासाद्य हार्दिक्येनाऽभिरक्षितम् ।
प्रमथ्य तरसा वीरस्तदप्यतिबलोऽभ्ययात् ॥२६॥

अब भीमसेन भोज क्षत्रियों की सेना में पहुंचे, जो कृतवर्मा द्वारा सुरक्षित थीं। इस वीर ने उसे भी मथ डाला और यह महाबली वहां से भी आगे निकल गया ॥२६॥

सन्त्रासयन्ननीकानि तलशब्देन पाण्डवः ।
अजयत्सर्वसैन्यानि शार्दूल इव गोवृषान् ॥२७॥

पाण्डु-पुत्र भीम ने अपने तल शब्द से कौरवसेना को वित्रासित कर दिया और जिस तरह शार्दूल सारे बैलों को जीत लेता है, उसी तरह इसने भी सारी सेनाएँ जीत डाली ॥२७॥

भोजनीकमनिक्रम्य दरदानां च वाहिनीम् ।
तथा म्लेच्छगणानन्यान्बहून्युद्धविशारदान् ॥२८॥
सात्यकिं चैव सम्प्रेक्ष्य युध्यमानं महारथम् ।
रथेन यत्तः कौन्तेयो वेगेन प्रययौ तदा २६॥
भामसेनो महाराज द्रष्टुकामो धनञ्जयम् ।

भीमसेन, भोज, दरद और म्लेच्छ गणों की बहुत सी युद्ध-विशारद सेनाओं का उल्लंघन करके तथा महारथी सात्यकि को युद्ध करता देखकर बड़ी सावधानी से अपने रथ के द्वारा वेग से आगे बढ़ा। हे महाराज ! भीमसेन इस समय अर्जुन से मिलना चाहता था ॥२६॥

अतीत्य समरे योधांस्तावकान्पाण्डुनन्दनः ॥३०॥
सोऽपश्यदर्जुनं तत्र युध्यमानं महारथम् ।
सैन्धवस्य वधार्थं हि पराक्रान्तं पराक्रमी ॥३१॥

हे राजन् ! पाण्डु-नन्दन, भीमसेन तुम्हारे पक्ष के सारे योद्धाओं को रण में उलांघ कर वहां पहुंचा; जहां पर महारथी अर्जुन युद्ध करता हुआ दिखाई दे रहा था । यह महापराक्रमी, पराक्रमसम्पन्न राजा जयद्रथ के वध के लिए घोर युद्ध कर रहा था ॥३०-३१॥

तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रश्चुक्रोश महतो रवान् ।
प्रावृट्काले महाराज नर्दन्निव बलाहकः ॥३२॥

हे महाराज ! यह पुरुषव्याघ्र भीमसेन, अर्जुन को देखकर जोर से गर्जना करने लगा जैसे-वर्षाकाल में मेघ गर्जता हो ॥३२॥

तं तस्य निनदं घोरं पार्थः शुश्राव नर्दतः ।
वासुदेवश्च कौरव्य भीमसेनस्य संयुगे ॥३३॥

हे कौरव ! अब गर्जते हुए भीमसेन की घोर गर्जना को रण में अर्जुन और श्रीकृष्ण ने सुना ॥३३॥

तौ श्रुत्वा युगपद्वीरौ निनदं तस्यः शुष्मिणः ।
पुनः पुनः प्राणदतां दिदृक्षन्तौ वृकोदरम् ॥३४॥

इस तेजस्वी भीमसेन की गर्जना सुनकर वे दोनों वीर, भीमसेन के देखने की इच्छा से एकदम गर्जना करने लगे ॥३४॥

ततः पार्थो महानादं मुञ्चन्वै माधवश्च ह ।
अभ्ययातां महाराज नर्दन्तौ गोवृषाविव ॥३५॥

हे महाराज ! अब अर्जुन और श्रीकृष्ण, महान सिंहनाद करते हुए दो सांडों की तरह गर्जते हुए आगे बढ़े ॥३५॥

भीमसेनरवं श्रुत्वा फाल्गुनस्य च धन्विनः ।
अप्रीयत महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥३६॥

हे महाराज ! भीमसेन और धनुर्धर अर्जुन की गर्जना सुनकर धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर बड़ा प्रसन्न हुआ ॥३६॥

विशोकश्चाऽभवद्राजा श्रुत्वा तं निनदं तयोः ।
धनञ्जयस्य समरे जयमाशास्तवान्विभुः ॥३७॥

भीमसेन और अर्जुन, इन दोनों की गर्जना सुनकर राजा युधिष्ठिर शोक रहित हो गया और रण में अर्जुन के विजय की आशा करने लगा ॥३७॥

तथा तु नर्दमाने वै भीमसेने मदोत्कटे ।
स्मितं कृत्वा महाबाहुर्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥३८॥
हृद्गतं मनसा प्राह ध्यात्वा धर्मभृतां वरः ।

जब मदोत्कट भीमसेन ने गर्जना की, तो धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, महाबाहु, धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर, कुछ मुस्कुरा कर अपने हृदय के अभिप्राय को मन में सोचने लगे ॥३८॥

दत्ता भीम त्वया संवित्कृतं गुरुवचस्तथा ॥३९॥
नहि तेषां जयो युद्धे येषां द्वेष्टाऽसि पाण्डव ।
दिष्ट्या जीवति संग्रामे सव्यसाची धनञ्जयः ॥४०॥
दिष्ट्या च कुशली वीर सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
दिष्ट्या शृणोमि गर्जन्तौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥४१॥

येन शक्रं रणे जित्वा तर्पितो हव्यवाहनः ।
स हन्ता द्विषतां संख्ये दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥

हे भीम ! तुमने समाचार दे दिए और गुरु आज्ञा को पूरा किया। हे पाण्डव ! भीम ! जिनके तुम जैसे-शत्रु हैं, उनकी रण में विजय नहीं हो सकती है। यह बड़े हर्ष की बात है, कि संग्राम में सव्यसाची अर्जुन जीवित है और सत्यपराक्रमी वीर सात्यकि कुशलतापूर्वक हैं। श्रीकृष्ण और अर्जुन की जो गर्जना सुन रहा हूं, इसका मुझे बड़ा आनन्द है। यह वैसा ही आनन्द है, जैसा इन्द्र को जीत कर अर्जुन ने अग्नि को खाण्डव वन में सन्तुष्ट करते हुए प्रदान किया था। यह अर्जुन अवश्य रण में शत्रुओं का मारने वाला होगा। अर्जुन अभी जीवित है, यह बड़े ही शुभ समाचार हैं ॥३६-४२॥

यस्य बाहुबलं सर्वे वयमाश्रित्य जीविताः ।
स हन्ता रिपुसैन्यानां दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥

जिस अर्जुन के बाहुबल का आश्रय लेकर हम सब जीवित हैं, वह अर्जुन सारी रिपु सेना को जीत लेगा। यह बड़ा आनन्द है, कि अर्जुन के जीवित होने की सूचना मुझे मिल गई ॥४३॥

निवातकवचा येन देवैरपि सुदुर्जयाः ।
निर्जिता धनुषैकेन दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥४४॥

देवों से भी दुर्जय निवातकवच नामक राक्षस, इस अकेले ने ही जीत लिए थे। यह बड़े हर्ष की बात है, कि वह अर्जुन अभी आनन्द में है ॥४४॥

कौरवान्सहितान्सर्वान्गोग्रहार्थे समागतान् ।
योऽजयन्मत्स्यनगरे दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥४५॥

जब गोहरण के समय सारे इकट्ठे ही कौरवों को जिसने विराटनगर में जीत लिया था, वह अर्जुन जीवित है-यह बड़ी उत्तम सूचना है ॥४५॥

कालकेयसहस्राणि चतुर्दश महारणे ।
योऽवधीद्भुजवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥४६॥

जिसने महाघोर संग्राम में कालकेय असुरों को अपने भुजाओं के पराक्रम से जीत डाला । बड़े हर्ष का समाचार है, कि वह अर्जुन कुशल से है ॥४६॥

गन्धर्वराजं बलिनं दुर्योधनकृते च वै ।
जितवान्योऽस्त्रवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥४७॥

जिस अर्जुन ने दुर्योधन के छुड़ाने के लिए गन्धर्वराज को भी अपने अस्त्र बल से जीता, वह अर्जुन जीवित है-यह बड़ी अच्छी बात है ॥४७॥

किरीटमाली बलवाञ्श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
मम प्रियश्च सततं दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥४८॥

मुकुट धारी, बलवान, श्वेताश्वों से संयुक्त, कृष्ण को सारथि बनाये हुए-अर्जुन सदा मेरे प्रिय में तत्पर है । मेरा यह अहो-भाग्य है-जो वह जीवित है ॥४८॥

पुत्रशोकाभिसन्तप्तश्चिकीर्षन्कर्म दुष्करम् ।
जयद्रथवधान्वेषी प्रतिज्ञां कृतवान्हि यः ॥४९॥

अपने पुत्र अभिमन्यु के वध से कुपित अर्जुन दुष्कर कर्म करना चाहता है। इसने जयद्रथ के वध के निमित्त आज भीषण प्रतिज्ञा कर रखी है ॥४९॥

कच्चित्स सैन्धवं संख्ये हनिष्यति धनञ्जयः ।
कच्चित्तीर्णप्रतिज्ञं हि वासुदेवेन रक्षितम् ॥५०॥
अनस्तमित आदित्ये समेष्याम्यहमर्जुनम् ।

हे परमात्मन ! क्या अर्जुन, आज रण में सिन्धुराज को मार लेगा ? क्या अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करके श्रीकृष्ण से सुरक्षित सूर्य छुपने से पूर्व आये हुए अर्जुन से मैं मिल सकूंगा ॥५०॥

कच्चित्सैन्धवको राजा दुर्योधनहिते रतः ॥५१॥
नन्दयिष्यत्यमित्रान्हि फाल्गुनेन निपातितः ।

राजा दुर्योधन के हित में तत्पर राजा जयद्रथ, अर्जुन द्वारा मारा जाकर क्या हम शत्रुओं को आनन्दित कर सकेंगे ॥५१॥

कच्चिद्दुर्योधनो राजा फाल्गुनेन निपातितम् ॥५२॥
दृष्ट्वा सैन्धवकं संख्ये शममस्मासु धास्यति ।

क्या राजा दुर्योधन, सिन्धुराज जयद्रथके अर्जुन द्वारा मारे जाने पर और रण में उसको पड़ा देखकर हमसे सन्धि कर लेगा ?॥५२॥

दृष्ट्वा विनिहतान्भ्रातॄन्भीमसेनेन संयुगे ।
कच्चिद्दुर्योधनो मन्दः शममस्मासु धास्यति ॥५३॥

हे भगवन् ! भीमसेन द्वारा रण में मारे हुए अपने कई भाइयों को देखकर मूर्ख दुर्योधन क्या हमसे सन्धि करने को तत्पर हो जावेंगे ॥५३॥

दृष्ट्वा चाऽन्यान्महायोधान्पातितान्धरणीतले ।
कच्चिद्दुर्योधनो मन्दः पश्चात्तापं गमिष्यति ॥५४॥

इसी तरह अन्य अनेक कौरववीरों को रणभूमि में सदा के लिये सोता देख कर मूर्ख दुर्योधन पश्चात्ताप करेगा ॥५४॥

कच्चिद्भीष्मेण नो वैरं शममेकेन यास्यति ।
शेषस्य रक्षणार्थं च सन्धास्यति सुयोधनः ॥५५॥

क्या एक भीष्म के वध से ही हमारे वैर की शान्ति हो जावेगी ? क्या अन्य कौरव वीरों की रक्षा करने में समर्थ होकर सुयोधन हमसे सन्धि कर लेगा ॥५५॥

एवं बहुविधं तस्य राज्ञश्चिन्तयतस्तदा ।
कृपयाऽभिपरीतस्य घोरं युद्धमवर्तत ॥५६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे युधिष्ठिरहर्षेऽष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२८॥

हे राजन् ! इस प्रकार राजा करुणा से व्याप्त होकर अनेक प्रकार से विचार कर रहा था, कि दूसरी ओर घोर युद्ध होने लगा।

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में भीमसेन के प्रवेश का एक सौ अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त हुआ।

# एक सौ उन्तीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

निनदन्तं तथा तं तु भीमसेनं महाबलम् ।
मेघस्तनितनिर्घोषं के वीराः पर्यवारयन् ॥१॥

धृतराष्ट्र कहने लगे—हे सञ्जय ! जब महाबली भीमसेन ने मेघ के समान गर्जना की-तो उस समय उसको कौरव वीरों में किसने रोका ॥१॥

न हि पश्याम्यहं तं वै त्रिषु लोकेषु कश्चन ।
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य यस्तिष्ठेदग्रतो रणे ॥१॥

मैं तो तीनों लोक में किसी भी ऐसे वीर को नहीं देख रहा हूं, जो क्रोधातुर भीमसेन के सामने रण में ठहर सके ॥२॥

गदां युयुत्समानस्य कालस्येवेह सञ्जय ।
न हि पश्याम्यहं युद्धे यस्तिष्ठेग्रतः पुमान् ॥३॥

हे सञ्जय ! जब काल के तुल्य कुपित होकर भीषण कालदण्ड तुल्य गदा को फैंक कर भीमसेन युद्ध करना चाहता है, तो मैं किसी भी ऐसे वीर को नहीं देखता; जो उससे युद्ध कर सके ॥३॥

रथं रथेन यो हन्यात्कुञ्जरं कुञ्जरेण च ।
कस्तस्य समरे स्थाता साक्षादपि पुरन्दरः ॥४॥

जो अपने रथ से उसके रथ और अपने हाथी से उसके हाथी को नष्ट करके युद्ध में सन्मुख स्थित हो सके, ऐसा तो मैं अब इन्द्र को भी नहीं समझता ॥४॥

क्रुद्धस्य भीमसेनस्य मम पुत्राञ्जिघांसतः ।
दुर्योधनहिते युक्ताः समतिष्ठन्त केऽग्रतः ॥५॥

भीमसेन मेरे पुत्रों के विनाश के निमित्त बड़े क्रोध में भर गया है। इस समय दुर्योधन के हित में तत्पर कौन से वीर हैं, जो आगे स्थित रह सकें ॥५॥

भीमसेनदवाग्नेस्तु मम पुत्रांस्तृणोपमान् ।
प्रधक्ष्यतो रणमुखे केऽतिष्ठन्नग्रतो नराः ॥६॥

भीमसेन तो दावाग्नि के सदृश है और मेरे पुत्र तृणोपम हो रहे हैं। जब इनको वह दग्ध करने लगा, तो कौन से नरवीर उसके सन्मुख उपस्थित रह सके ॥६॥

काल्यमानांस्तु पुत्रान्मे दृष्ट्वा भीमेन संयुगे ।
कालेनेव प्रजाः सर्वाः के भीमं पर्यवारयन् ॥७॥

हे सञ्जय ! जब भीमने रण में मेरे पुत्रों को इस तरह ललकारा जैसे काल सारी प्रजा को ललकार रहा हो, तो इस समय किन वीरों ने उसे घेरा ॥७॥

न मेऽर्जुनाद्भयं तादृक्कृष्णान्नापि च सात्वतात् ।
हुतभुग्जन्मनो नैव यादृग्भीमाद्भयं मम ॥८॥

हे सूत ! मुझे न तो इतना भय अर्जुन से है और न कृष्ण तथा सात्यकि और अग्नि-पुत्र धृष्टद्युम्न से है, जितना भय इस भीम से हो रहा है ॥८॥

भीमवह्नेः प्रदीप्तस्य मम पुत्रान्दिधक्षतः ।

के शूराः पर्यवर्तन्त तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥६॥

हे सञ्जय ! मेरे पुत्रों के जलने की इच्छा से प्रदीप्त, भीमसेन रूपी अग्नि को किन शूरवीरों ने घेरा-यह मुझे सुनाओ ॥६॥

सञ्जय उवाच—

तथा तु नर्दमानं तं भीमसेनं महाबलम् ।

तुमुलेनैव शब्देन कर्णोऽप्यभ्यद्रवद्बली ॥१०॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार महाबली भीमसेन के गर्जना करने और उनका विपुल कोलाहल सुनने पर बलवान् कर्ण भी वहां बड़े वेग से दौड़कर आया ॥१०॥

व्याक्षिपन्सुमहच्चापमतिमात्रममर्षणः ।

कर्णः सुयुद्धमाकांक्षन्दर्शयिष्यन्बलं मृधे ॥११॥

रुरोध मार्गं भीमस्य वातस्येव महीरुहः ।

कर्ण आवेश में भरा हुआ अपने विशाल धनुष को बड़े जोर से खैंच रहा था। वह रण में अपना बल दिखाने के लिए युद्ध की अभिलाषा कर रहा था। इसने वायु के वेग को वृक्ष की भांति भीम के मार्ग को रोका ॥११॥

भीमोऽपि दृष्ट्वा सावेगं पुरो वैकर्तनं स्थितम् ॥१२॥

चुकोप बलवद्वीरश्चिक्षेपाऽस्य शिलाशितान् ।

तान्प्रत्यगृह्णात्कर्णोऽपि प्रतीपं प्रापयच्छरान् ॥१३॥

जब भीम ने सूर्यपुत्र कर्ण को आवेग में भरा हुआ देखा-तो यह वीरवर भीम अत्यन्त कुपित हो उठा और शिला पर तीक्ष्ण किये हुए बाणों को फैंकने लगा। कर्णने भी भीम के तीक्ष्ण बाणों के उत्तर में अपने तीक्ष्ण बाण छोड़े॥१२-१३॥

ततस्तु सर्वयोधानां यततां प्रेक्षतां तदा।
प्रावेपन्निव गात्राणि कर्णभीमसमागमे॥१४॥
रथिनां सादिनां चैव तयोः श्रुत्वा तलस्वनम्।
भीमसेनस्य निनदं श्रुत्वा घोरं रणाजिरे॥१५॥
खं च भूमिं च संरुद्धां मेनिरे क्षत्रियर्षभाः।

अब सारे योधाओं को प्रयत्न करते हुए देखकर रथी और अश्वारोहियों के शरीर, इस कर्ण और भीम के युद्ध में कांपने लगे। क्षत्रियवीरों ने रणाङ्गण में इन दोनों के तल शब्द और भीमसेन की घोर गर्जना सुनकर आकाश और भूमि को भरी हुई सी समझा १४-१५॥

पुनर्घोरेण नादेन पाण्डवस्य महात्मनः॥१६॥
समरे सर्वयोधानां धनूंष्यभ्यपतन्क्षितौ।
शस्त्राणि न्यपतन्दोर्भ्यः केषांचिच्चाऽसवोऽद्रवन्॥
वित्रस्तानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः।
वाहनानि च सर्वाणि बभूवुर्विमनांसि च॥१८॥

महावीर पाण्डुपुत्र भीम के फिर महाघोर सिंहनाद से सारे योद्धाओं के धनुष रणभूमि में हाथ से छूटकर गिरने लगे। बहुत

से मनुष्यों की भुजाओं से शस्त्र गिर गए और बहुतों के प्राण ही निकल कर चल दिये। इस समय सारे वाहन व्याकुल और अचेत से होकर घबराते हुए मलमूत्र करने लगे ॥१६-१८॥

प्रादुरासन्निमित्तानि घोराणि सुबहून्युत ।
गृध्रकङ्कबलैश्चाऽऽसीदन्तरिक्षं समावृतम् ॥१६॥
तस्मिन्सुतुमुले राजन्कर्णभीमसमागमे ।

इस समय बड़े घोर शकुन होने लगे तथा गीध, कङ्क और बल नामक पक्षियों से आकाश भर गया। हे राजन्! इस भीम और कर्ण के इस घोर युद्ध में यह सब घोर परिस्थिति उपस्थित हो गई ॥१६॥

ततः कर्णस्तु विंशत्या शराणां भीममार्दयत् ॥२०॥
विव्याध चाऽस्य त्वरितः सूतं पञ्चभिराशुगैः ।

अब कर्ण ने बीस बाण मारकर भीम को व्याकुल कर दिया। भीम ने भी सूतपुत्र कर्ण को पांच आशुगामी बाणों से आहत किया ॥२०॥

प्रहस्य भीमसेनोऽपि कर्णं प्रत्याद्रवद्रणे ॥२१॥
सायकानां चतुःषष्ट्या क्षिप्रकारी महायशाः ।

भीमसेन ने हँसकर रण में कर्ण पर आक्रमण किया और महायशस्वी, शीघ्रताकारी, भीम ने उस पर चौंसठ बाण छोड़े ॥

तस्य कर्णो महेष्वासः सायकांश्चतुरोऽक्षिपत् ॥२२॥
असम्प्राप्तांश्च तान्भीमः सायकैर्नतपर्वणः ।
चिच्छेद बहुधा राजन्दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥२३॥

हे राजन्! महाधनुर्धर कर्ण ने भी उस पर चार बाण छोड़े, परन्तु वे भीमसेन के पास पहुंचे तक नहीं थे, कि उसने अपने नतपर्वधारी बाणों से उन्हें काट गिराया और इस तरह अपने हाथ का लाघव (सफाई) प्रकट किया ॥२२-२३॥

तं कर्णश्छादयामास शरव्रातैरनेकशः ।
सञ्छाद्यमानः कर्णेन बहुधा पाण्डुनन्दनः ॥२४॥
चिच्छेद चापं कर्णस्य मुष्टिदेशे महारथः ।
विव्याध चैनं बहुभिः सायकैर्नतपर्वभिः ॥२५॥

कर्ण ने भी अपने अनेक बाणों से भीमसेन को आच्छादित कर दिया। इस प्रकार कर्ण द्वारा आच्छादित किये हुए पाण्डु-नन्दन महारथी भीमसेन ने कर्ण के धनुष को मुष्टि स्थान से काट डाला और बहुत से नतपर्ववाले बाण छोड़कर उसको बींध दिया।

अथाऽन्यद्धनुरादाय सज्यं कृत्वा च सूतजः ।
विव्याध समरे भीमं भीमकर्मा महारथः ॥२६॥

भीम कर्म करने वाले महारथी, सूत-पुत्र कर्ण ने भी दूसरा धनुष उठाकर उसे डोरी पर चढ़ाया और उससे रण में भीमसेन को क्षत-विक्षत कर दिया ॥२६॥

तस्य भीमो भृशं क्रुद्धस्त्रींश्शरान्नतपर्वणः ।
निचखानोरसि क्रुद्धः सूतपुत्रस्य वेगतः ॥२७॥

उसकी इस बाणवर्षा से भीमसेन अत्यन्त कुपित हो उठा और उसने तीन नतपर्ववाले बाण वेग से छोड़कर क्रोध-पूर्वक सूत-पुत्र कर्ण के वक्षस्थल में गाड़ दिए ॥२७॥

तैः कर्णोऽराजत शरैरुरोमध्यगतैस्तदा ।
महीधर इवोदग्रस्त्रिशृङ्गो भरतर्षभ ॥२८॥

हे भरतर्षभ ! इन छाती में गड़े हुए तीनों बाणों से कर्ण इस तरह सुशोभित होने लगा जैसे तीन शृङ्गधारी ऊंचा पर्वत दिखाई देता है ॥२८॥

सुस्राव चाऽस्य रुधिरं विद्धस्य परमेषुभिः
धातुप्रस्यन्दिनः शैलाद्यथा गैरिकधातवः ॥२९॥

अत्यन्त तीखे बाणों से बिंधे हुए कर्ण के शरीर से रुधिर की धारा बह निकली, जैसे धातु बहाने वाले पर्वत से गैरिक आदि धातु बह निकलते हैं ॥२९॥

किञ्चिद्विचलितः कर्णः सुप्रहाराभिपीडितः ।
आकर्णपूर्णमाकृष्य भीमं विव्याध सायकैः ॥३०॥
चिक्षेप च पुनर्बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ।

इन तीखे प्रहारों से पीड़ित कर्ण, कुछ विचलित हुआ और उसने कान तक धनुष खैंचकर भीमसेन की छाती को बाणों से

बींध डाला और इस प्रकार उसने सैकड़ों सहस्रों बाण उस पर छोड़े ॥२०॥

स शरैरर्दितस्तेन कर्णेन दृढधन्विना ।
धनुर्ज्यामच्छिनत्तूर्णं भीमस्तस्य क्षुरेण ह ॥२१॥

इस प्रकार दृढ़ धनुषधारी कर्ण ने अपने बाणों से भीम को आतुर कर दिया तो भीमसेन ने अपने क्षुरोपम बाण से उसके धनुष की डोरी काट डाली ॥२१॥

सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ।
वाहांश्च चतुरस्तस्य व्यसूंश्चक्रे महारथः ॥२२॥

अब महारथी भीम ने एक बाण मारा, जिससे उसके सारथि को रथ की बैठक पर से नीचे गिरा दिया और उसके चारों अश्वों को भी बाण मार २ कर प्राणरहित कर दिया ॥२२॥

हताश्वात्तु रथात्कर्णः समाप्लुत्य विशाम्पते ।
स्यन्दनं वृषसेनस्य तूर्णमापुप्लुवे भयात् ॥२३॥

हे विशाम्पते ! अपने मृत अश्व वाले रथ से कर्ण बड़े वेग से कूद पड़ा और कुछ भयभीत होकर झटपट राजा वृषसेन के रथ पर जा चढ़ा ॥२३॥

निर्जित्य तु रणे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ।
ननाद बलवन्नादं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥२४॥

प्रतापशाली भीमसेन, इस तरह कर्ण को भी रण में जीत कर मेघ की गर्जना के तुल्य बड़े जोर से सिंहनाद करने लगा ॥२४॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा प्रहृष्टोऽभूद्युधिष्ठिरः ।
कर्णं पराजितं मत्वा भीमसेनेन संयुगे ॥३५॥

भीमसेन की इस घोर गर्जना को सुनकर राजा युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने समझ लिया, कि भीमसेन ने रण में कर्ण को भी पराजित कर लिया है ॥३५॥

समन्ताच्छङ्खनिनदं पाण्डुसेनाऽकरोत्तदा ।
शत्रुसेनाध्वनिं श्रुत्वा तावका ह्यनदन्भृशम् ॥३६॥

हे राजन्! अब सब ओर से पाण्डु-सेना शङ्खध्वनि करने लगी। शत्रु की सेना की गर्जना सुनकर तुम्हारी सेना भी अत्यन्त वेग से गजने लगी ॥३६॥

स शङ्खबाणनिनदैर्हर्षाद्राजा स्ववाहिनीम् ।
चक्रे युधिष्ठिरः संख्ये हर्षनादैश्च संकुलाम् ॥३७॥
गाण्डीवं व्याक्षिपत्पार्थः कृष्णोऽप्यब्जमवादयत् ।

राजा युधिष्ठिर ने हर्ष में भरकर बड़े भारी शङ्ख बाण आदि के शब्द किये, जिससे रणभूमि हर्ष ध्वनि से भरती चली गई। अर्जुन गाण्डीव धनुष की ध्वनि करने और श्रीकृष्ण अपने पाञ्चजन्य शंख को बजाने लगे ॥३७॥

तमन्तर्धाय निनदं भीमस्य नदतो ध्वनिः ।
अश्रूयत तदा राजन्सर्वसैन्येषु दारुणः ॥३८॥

हे राजन्! इस समय भीमसेन की गर्जना की इतनी तीव्र ध्वनि थी, कि उसने इन सारी ध्वनियों को दबा सा रखा था और

रणभूमि में वही दारुण भीमसेन की ध्वनि मात्र सुनाई दे रही थी ॥३८॥

ततो व्यायच्छतामस्त्रैः पृथक्पृथगजिह्मगैः ।
मृदुपूर्वं तु राधेयो दृढपूर्वं तु पाण्डवः ॥३९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमप्रवेशे कर्णपराजये एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

अब भी अपने सीधे जाने वाले बाणों से दोनों वीर प्रहार कर रहे थे, परन्तु राधा-पुत्र कर्ण के बाण हल्के पड़ते थे और पाण्डु-पुत्र भीम के बाण दृढ़ता से गिरते थे ॥३९॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में भीमसेन के रण में प्रवेश का एक सौ उनतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

# एक सौ तीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तस्मिन्विलुलिते सैन्ये सैन्धवायाऽर्जुने गते ।
सात्वते भीमसेने च पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! सिन्धुराज जयद्रथ के वध के निमित्त अर्जुन के तुम्हारी सेना में घुसने और बड़ा भारी विध्वंस उड़ा देने तथा सात्वतश्रेष्ठ सात्यकि और भीमसेन के सेना के नाश करने पर तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन द्रोणाचार्य के समीप पहुंचे ॥१॥

त्वरन्नेकरथेनैव बहु कृत्यं विचिन्तयन् ।
स रथस्तव पुत्रस्य त्वरया परयाऽयुतः ॥२॥
तूर्णमभ्यद्रवद् द्रोणं मनोमारुतवेगवान् ।
उवाच चैनं पुत्रस्ते संरम्भाद्रक्तलोचनः ॥३॥
ससम्भ्रममिदं वाक्यमब्रवीत्कुरुनन्दनः ।

राजा दुर्योधन को बड़ी शीघ्रता थी, वह एक रथ से अकेला ही चल दिया। इसके मन में अपने कार्य की सिद्धि के निमित्त अनेक विचार उठ रहे थे। हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र के रथ का वेग बहुत ही तीव्र था। राजा दुर्योधन मन और मारुत के वेग को धारण करके शीघ्रता के साथ द्रोण के समीप पहुंचे। इस समय

दुर्योधन की आंखें क्रोध से लाल हो रही थी। कुरुवंशश्रेष्ठ, राजा दुर्योधन ने वहां पहुंच कर बड़ी घबराहट में यह वचन कहा।

अर्जुनो भीमसेनश्च सात्यकिश्चाऽपराजितः ॥४॥
विजित्य सर्वसैन्यानि सुमहान्ति महारथाः ।
सम्प्राप्ता सिन्धुराजस्य समीपमनिवारिताः ॥५॥
व्यायच्छन्ति च तत्रापि सर्व एवाऽपराजिताः ।
यदि तावद्रणे पार्थो व्यतिक्रान्तो महारथः ॥६॥
कथं सात्यकिभीमाभ्यां व्यतिक्रान्तोऽसि मानद ।
आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन्समुद्रस्येव शोषणम् ॥७॥
निर्जयस्तव विप्राग्र्य सात्वतेनाऽर्जुनेन च ।
तथैव भीमसेनेन लोकः संवदते भृशम् ॥८॥
कथं द्रोणो जितः संख्ये धनुर्वेदस्य पारगः ।
इत्येवं ब्रुवते योधा अश्रद्धेयमिदं तव ॥९॥

हे महाभाग ! अर्जुन, भीमसेन और पराजित नहीं होने वाला सात्यकि-ये तीनों महारथी, सारी विशाल कौरवसेना को जीतकर सिन्धुराजके समीप पहुंच चुके हैं और इनको कोई नहीं रोक सका। वहां पर पहुंचकर भी ये सारे विजयी गाढ़ा युद्ध कर रहे हैं। हे मानद ! यदि रणमें अर्जुनने तुम्हारा अतिक्रमण कर दिया, तो कोई बात नहीं, परन्तु सात्यकि और भीमसेन तुम्हें कैसे अतिक्रमण कर गए। हे ब्रह्मश्रेष्ठ ! लोकमें यह समुद्र सुखा देनेकी तरह बड़े आश्चर्य की घटना मानी जा रही है, जो अर्जुन, सात्यकि और भीमसेन

द्वारा तुम्हारा विजय कर लिया गया। इसकी मनुष्य परस्पर बड़ी ही चर्चा कर रहे हैं। योद्धा लोग कहते हैं, कि धनुर्वेद का पारगामी द्रोणाचार्य कैसे जीता जा सकता है, उनके जीत लेने की बात में श्रद्धा नहीं की जा सकती ॥४-६॥

नाश एव तु मे नूनं मन्दभाग्यस्य संयुगे ।

यत्र त्वां पुरुषव्याघ्रं व्यतिक्रान्तास्त्रयो रथाः ॥१०॥

हे भगवन ! अब मुझे प्रतीत हो गया, कि इस युद्ध में मुझ मन्दभाग्य का नाश होकर रहेगा, जो ये तीनों महारथी तुम जैसे पुरुषप्रवीर का अतिक्रमण करके आगे निकल गए ॥१०॥

एवङ्गते तु कृत्येऽस्मिन्ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ।

यद्गतं गतमेवेदं शेषं चिन्तय मानद ॥११॥

हे मान देने वाले ! महाभाग ! इस दशा में अब तुम कर्तव्य बताओ, कि तुम क्या कहना या करना चाहते हो। जो जा चुका सो गया, अब तो आगे की चिन्ता करो ॥११॥

यत्कृत्यं सिन्धुराजस्य प्राप्तकालमनन्तरम् ।

तत्संविधीयतां क्षिप्रं साधु संचिन्त्य नो द्विज ॥१२॥

हे द्विजराज ! अब तो शीघ्रता से इस बात पर अच्छी तरह विचार करो, कि सिन्धुराज जयद्रथ के विषय में क्या किया जावे। उनके विषय में विचार करने का बहुत ही समीप समय आ गया है। उसकी रक्षा का शीघ्र कोई उपाय होना चाहिए ॥१२॥

द्रोण उवाच—

चिन्त्यं बहुविधं तात यत्कृत्यं तच्छृणुष्व मे ।
त्रयो हि समतिक्रान्ताः पाण्डवानां महारथाः ॥१३॥
यावत्तेषां भयं पश्चात्तावदेषां पुरःसरम् ।
तद्गरीयस्तरं मन्ये यत्र कृष्णधनञ्जयौ ॥१४॥

द्रोणाचार्य ने कहा—हे तात! इस विषय में बहुत कुछ विचारणीय बात हैं, परन्तु अब तो तुम जो कर्तव्य है-वह सुनो; पाण्डवों के तीनों महारथी, अतिक्रमण करके सेना के भीतर पहुंच चुके हैं। जितना पाण्डवों का पीछे से आक्रमण का भय है, उतना ही इन तीनों महारथियों के कारण आगे भी भय हो गया। मैं तो इन दोनों में यही भारी भय मानता हूं, जहां श्रीकृष्ण और अर्जुन पहुंचे हुए हैं ॥१३-१४॥

सा पुरस्ताच्च पश्चाच्च गृहीता भारती चमूः ।
तत्र कृत्यमहं मन्ये सैन्धवस्याऽभिरक्षणम् ॥१५॥

इस प्रकार कौरवसेना आगे और पीछे दोनों ओर से घिर गई है। इस समय तो मैं सिन्धुराज की रक्षा कर लेना ही सर्वश्रेष्ठ समझता हूं ॥१५॥

स नो रक्ष्यतमस्तात क्रुद्धाद्भीतो धनञ्जयात् ।
गतौ च सैन्धवं भीमौ युयुधानवृकोदरौ ॥१६॥
सम्प्राप्तं तदिदं द्यूतं यत्तच्छकुनिबुद्धिजम् ।

न सभायां जयो वृत्तो नापि तत्र पराजयः ॥१७॥
इह नो ग्लहमानानामद्य तावज्जयाजयौ ।

हे तात ! राजा जयद्रथ क्रोध में भरे हुए अर्जुन से डर सा गया है और सिन्धुराज के वध के निमित्त ही सात्यकि और भीमसेन भी जा पहुंचे । अब तो शकुनि की बुद्धि से उत्पन्न किया हुआ सच्चा रणद्यूत उत्पन्न हो गया है । उस समय द्यूत सभा में तो न जय था और न पराजय था । आज का यह खेल अद्भुत है, जिसमें जय पराजय प्रत्यक्ष खड़े हैं ॥१६-१७॥

यान्स्म तान्ग्लहते घोराञ्छकुनिः कुरुसंसदि ॥१८॥
अक्षान्स मन्यमानः प्राक्शरास्ते हि दुरासदाः ।

शकुनि ने कुरुसभा में जिन घोर पाशों को फैंका, उसने वे कोरे पासे ही समझे थे, परन्तु वे तो निरे तीखे बाण निकले ।

यत्र ते बहवस्तात कौरवेया व्यवस्थिताः ॥१९॥
सेनां दुरोदरं विद्धि शरानक्षान्विशाम्पते ।
ग्लहं च सैन्धवं राजंस्तत्र द्यूतस्य निश्चयः ॥२०॥
सैन्धवे तु महद्द्यूतं समासक्तं परैः सह ।

हे तात ! उस समय सभा में बहुत से कौरव बैठे थे और आज भी कौरवसेना विद्यमान है । हे विशाम्पते ! इसे तुम द्यूत सभा समझो और ये बाण पांसे हैं । हे राजन् ! आजका दाव सिन्धुराज है और इसी के आश्रय यह द्यूत हो रहा है । यह जो शत्रुओं

के साथ गुप्त हो रहा है, इसमें सिन्धुराज पर ही जय पराजय का महान् अवलम्ब है ॥१९-२०॥

अत्र सर्वे महाराज त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥२१॥
सैन्धवस्य रणे रक्षां विधिवत्कर्तुमर्हथ ।

हे महाराज! आज तुम सारे महारथी वीरों को अपने जीवन को त्याग कर विधिपूर्वक सिन्धुराज जयद्रथ की रण में रक्षा करनी चाहिये ॥२१॥

तत्र नो ग्लहमानानां ध्रुवो जयपराजयौ ॥२२॥
यत्र ते परमेष्वासा यत्ता रक्षन्ति सैन्धवम् ।

आज तो वहां पर इस युद्धरूपी द्यूत में जय पराजय है, जहां पर बड़े २ धनुर्धर सावधानी से इस जुआ को खेलते हुए राजा जयद्रथ की रक्षा कर रहे हैं ॥२२॥

तत्र गच्छ स्वयं शीघ्रं तांश्च रक्षस्व रक्षिणः ॥२३॥
इहैव त्वहमासिष्ये प्रेषयिष्यामि चाऽपरान् ।
निरोत्स्यामि च पञ्चालान्सहितान्पाण्डुसृञ्जयैः ॥२४॥

अब तुम भी वहीं शीघ्र जाओ और उन रक्षकों की रक्षा करो। यहां तो मैं स्थित हूं और यहां से अन्य वीरों को भी तुम्हारी रक्षा में भेजूंगा तथा पाण्डव और सृञ्जयों के साथ पाञ्चालों को मैं यहीं रोके रहूंगा ॥२३-२४॥

ततो दुर्योधनोऽगच्छत्तूर्णमाचार्यशासनात् ।
उद्यम्याऽऽत्मानमुग्राय कर्मणे सपदानुगः ॥२५॥

द्रोणाचार्य की आज्ञा से राजा दुर्योधन सेना सहित झटपट वहां से चल दिया। इसने भी अपने को इस भीम-कर्म में व्यासक्त कर दिया ॥२५।

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
बाह्येन सेनामभ्येत्य जग्मतुः सव्यसाचिनम् ॥२६॥
यौ तु पूर्वं महाराज वारितौ कृतवर्मणा ।
प्रविष्टे त्वर्जुने राजंस्तव सैन्यं युयुत्सया ॥२७॥
पार्श्वे भित्वा चमूं वीरौ प्रविष्टौ तव वाहिनीम् ।
पार्श्वेन सैन्यमायान्तौ कुरुराजो ददर्श ह ॥१८॥
ताभ्यां दुर्योधनः सार्धमकरोत्संख्यमुत्तमम् ।
त्वरितस्त्वरमाणाभ्यां भ्रातृभ्यां भारतो बली ॥२९॥
तावेनमभ्यद्रवतामुभावुद्यतकार्मुकौ ।
महारथसमाख्यातौ क्षत्रियप्रवरौ युधि ॥३०॥

अर्जुन के चक्ररक्षक पाञ्चालवीर युधामन्यु और उत्तमौजा थे। हे महाराज! वे भी बाहर की ओर से अर्जुन के साथ तुम्हारी सेना में घुस जाना चाहते थे, परन्तु उनको कृतवर्मा ने रोक दिया था। हे राजन्! युद्ध की उत्कट अभिलाषा से जब अर्जुन तुम्हारी सेना में घुस गए-तो वे दोनों वीर तुम्हारी सेना को चीरकर उसमें प्रविष्ट हो गए। एक ओर से अपनी सेना में उन दोनों वीरों को आते हुए देखकर कुरुराज दुर्योधन उनके साथ भीषण युद्ध करने लगा। इस समय ये दोनों भाई युधामन्यु और उत्तमौजा बड़े वेग में भरे हुए थे। महाबली कुरुराज भी बड़े वेग से इन पर

झपटा। उन दोनों ने भी अपने धनुष उठा रखे थे, वे दोनों वीर बड़े वेग से राजा दुर्योधन पर रण में टूट पड़े। ये बड़े प्रसिद्ध महारथी क्षत्रिय वीर थे ॥२६-३०॥

तमविध्यद्युधामन्युस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ।
विंशत्या सारथिं चाऽस्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥३१॥

अब युधामन्यु ने तीस कङ्कपत्र युक्त बाण लेकर राजा दुर्योधन पर प्रहार किया तथा बीस बाणों से इसके सारथि और चार बाणों से इसके अश्वों को बींध डाला ॥३१॥

दुर्योधनो युधामन्योर्ध्वजमेकेषुणाऽच्छिनत् ।
एकेन कार्मुकं चाऽस्य चकर्त तनयस्तव ॥३२॥

राजा दुर्योधन ने भी एक बाण छोड़कर युधामन्यु की ध्वजा को काट डाला। हे राजन्! इसी तरह दूसरे बाण से तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने उसका धनुष काट गिराया ॥३२॥

सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपाहरत् ।
ततोऽविध्यच्छरैस्तीक्ष्णैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥३३॥

इसके अनन्तर राजा दुर्योधन ने एक तीक्ष्ण बाण और छोड़ा, जिससे उसके सारथि को मार कर रथ के ऊपर से नीचे गिरा दिया और फिर चार तीक्ष्ण बाण छोड़े, जिससे युधामन्यु के चारों अश्व बींध डाले ॥३३॥

युधामन्युश्च संक्रुद्धः शरांस्त्रिंशतमाहवे ।
व्यसृजत्तव पुत्रस्य त्वरमाणः स्तनान्तरे ॥३४॥

अब युधामन्यु भी क्रोध में भर गया। इसने भी तीस बाण उठाये और रण में बड़ी शीघ्रता के साथ तुम्हारे पुत्र की छाती में मारे ॥३४॥

तथोत्तमौजाः संक्रुद्धः शरैर्हेमविभूषितैः।
अविध्यत्सारथिं चाऽस्य प्राहिणोद्यमसादनम् ॥३५॥

हे राजन! दूसरी ओर उत्तमौजा भी क्रोधातुर हो रहा था, उसने भी सुवर्ण से विभूषित बाणों से राजा दुर्योधन के सारथि को बींध कर यमराज के लोक को भेज दिया ॥३५॥

दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्योत्तमौजसः।
जघान चतुरोऽस्याऽश्वानुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ॥३६॥

हे राजेन्द्र! राजा दुर्योधन ने भी पाञ्चालवीर उत्तमौजा के चारों अश्व और पार्ष्णिरक्षक तथा सारथि को मार गिराया ॥३६॥

उत्तमौजा हताश्वस्तु हतसूतश्च संयुगे।
आरुरोह रथं भ्रातुर्युधामन्योरभित्वरन् ॥३७॥

जब उत्तमौजा के अश्व और सारथि रण में मारे गए तो वह बड़े वेग से अपने भाई युधामन्यु के रथ पर जा चढ़ा ॥३७॥

स रथं प्राप्य तं भ्रातुर्दुर्योधनहयाञ्शरैः।
बहुभिस्ताडयामास ते हताः प्रापतन्भुवि ॥३८॥

इस प्रकार उत्तमौजा अपने भाई युधामन्यु के रथ पर पहुंच कर बहुत से बाण छोड़ने लगा, जिससे राजा दुर्योधन के अश्व क्षत विक्षत होकर और भूमि में गिर कर मर गए ॥३८॥

हयेषु पतितेष्वस्य चिच्छेद परमेषुणा ।
युधामन्युर्धनुः शीघ्रं शरावापं च संयुगे ॥३९॥

जब राजा दुर्योधन के अश्व गिर गए-तो युधामन्यु ने एक बड़ा उत्तम बाण चलाया, जिससे कुरुराज के धनुष और कवच को उसने रण में काट गिराया ॥३९॥

हताश्वसूतात्स रथादवतीर्य नराधिपः ।
गदामादाय ते पुत्रः पाञ्चाल्यावभ्यधावत ॥४०॥

हे राजन् ! अब तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन मरे हुए सारथि और अश्व वाले रथ से कूद पड़ा और गदा लेकर उन दोनों पाञ्चालवीर युधामन्यु और उत्तमौजा पर बुरी तरह झपटा ॥४०॥

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य क्रुद्धं कुरुपतिं तदा ।
अवप्लुतौ रथोपस्थाद्युधामन्यूत्तमौजसौ ॥४१॥

क्रोधातुर कुरुराज को गदा लेकर आक्रमण करते देखकर युधामन्यु और उत्तमौजा अपने रथ से नीचे कूद पड़े ॥४१॥

ततः स हेमचित्रं तं गदया स्यन्दनं गदी ।
संक्रुद्धः पोथयामास साश्वसूतध्वजं नृप ॥४२॥

हे राजन् ! गदाधारी दुर्योधन ने अपनी गदा से सुवर्ण चित्रित उनके रथ पर ऐसा प्रहार किया, कि जिससे अश्व, सारथि और ध्वजा के साथ सारा रथ चकनाचूर कर दिया ॥४२॥

भंक्त्वा रथं स पुत्रस्ते हताश्वो हतसारथिः ।
मद्रराजरथं तूर्णमारुरोह परन्तपः ॥४३॥

हे राजन्! शत्रुतापी तुम्हारा पुत्र दुर्योधन, इस प्रकार उनके रथ को भी तोड़ ताड़कर बड़ी शीघ्रता से मद्रराज शल्य के रथ पर जा चढ़ा, क्योंकि इनके रथ के तो अश्व और सारथि मारे जा चुके थे ॥४३॥

पञ्चालानां ततो मुख्यौ राजपुत्रौ महारथौ।
रथावन्यौ समारुह्य बीभत्सुमभिजग्मतुः ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनयुद्धे त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥

अब ये दोनों पाञ्चालवीर राजपुत्र, महारथी युधामन्यु और उत्तमौजा भी अन्य रथ पर चढ़कर अर्जुन की ओर चल दिए ॥

इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में दुर्योधन के युद्ध का एक सौ तीसवां अध्याय समाप्त हुआ



# एक सौ इकतीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

वर्तमाने महाराज संग्रामे लोमहर्षणे।
व्याकुलेषु च सर्वेषु पीड्यमानेषु सर्वशः ॥१॥
राधेयो भीममानर्च्छद्युद्धाय भरतर्षभ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमभिद्रवन् ॥२॥

सञ्जय बोले—हे महाराज! जब यह लोमहर्षण महान् संग्राम हो रहा था और सब ओर वीर लोग व्याकुल हो रहे थे। हे भरतर्षभ! इस समय राधा-पुत्र कर्ण ने युद्ध के निमित्त भीम पर इस तरह आक्रमण किया, जैसे मदोन्मत्त हाथी दूसरे मदोन्मत्त हाथी पर आक्रमण करता है ॥१-२॥

धृतराष्ट्र उवाच—

यौ तौ कर्णश्च भीमश्च संप्रयुद्धौ महाबलौ ।
अर्जुनस्य रथोपान्ते कीदृशः सोऽभवद्रणः ॥३॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! ये जो दोनों वीर, महाबली कर्ण और भीम, घोर युद्ध के लिए अर्जुन के रथ के पास पहुंच चुके थे, उनका कैसा संग्राम हुआ-यह मुझे सुनाओ ॥३॥

पूर्वं हि निर्जितः कर्णो भीमसेनेन संयुगे ।
कथं भूयः स राधेयो भीममागान्महारथः ॥४॥
भीमो वा सूततनयं प्रत्युद्यातः कथं रणे ।
महारथं समाख्यातं पृथिव्यां प्रवरं रथम् ॥५॥

कर्ण को तो भीमसेन ने पूर्व में ही जीत लिया था, फिर महारथी कर्ण, भीमसेन के सन्मुख कैसे आ गया अथवा यह बताओ, कि भीमसेन ही सूतपुत्र कर्ण के सन्मुख कैसे हुआ। कर्ण तो पृथिवी पर महारथी और योद्धाओं में सर्व-श्रेष्ठ योधा माना जाता है ॥४-५॥

भीष्मद्रोणावतिक्रम्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
नाऽन्यतो भयमादत्त विना कर्णान्महारथात् ॥६॥

धर्मराज युधिष्ठिर, भीष्म और द्रोण को छोड़कर तीसरे महारथी कर्ण का ही भय मानते हैं। इनके सिवा उनको अन्य किसी का भय नहीं है ॥६॥

भयाद्यस्य महाबाहो न शेते बहुलाः समाः ।
चिन्तयन्नित्यशो वीर्यं राधेयस्य महात्मनः ।
तं कथं सूतपुत्रं तु भीमोऽयोधयताऽऽहवे ॥७॥

हे महाबाहो ! राजा युधिष्ठिर तो राधा-पुत्र महावीर कर्ण के पराक्रम को सोचता हुआ उसके भय से बहुत वर्ष तक अच्छी तरह नित्य सो भी नहीं सका है। उसी सूतपुत्र से रण में भीमसेन कैसे युद्ध कर सका ॥७॥

ब्रह्मण्यं वीर्यसम्पन्नं समरेष्वनिवर्तिनम् ।
कथं कर्णं युधां श्रेष्ठं योधयामास पाण्डवः ॥८॥

कर्ण बड़ा ब्राह्मण भक्त, पराक्रमशाली, और युद्ध से नहीं लौटने वाला है। उसी योधाओं में श्रेष्ठ कर्ण से पाण्डुपुत्र भीमसेन कैसे युद्ध करने में समर्थ हो सका ॥८॥

यौ तौ समीयतुर्वीरौ वैकर्तनवृकोदरौ ।
कथं तावत्र युध्येतां महाबलपराक्रमौ ॥९॥

सूर्यपुत्र कर्ण और वृकोदर भीमसेन, कैसे एक दूसरे के सन्मुख हुए और ये दोनों ही महाबली और महापराक्रमी किस प्रकार से युद्ध करने में प्रवृत्त हुए ॥९॥

भ्रातृत्वं दर्शितं पूर्वं घृणी चापि स सूतजः ।
कथं भीमेन युयुधे कुन्त्या वाक्यमनुस्मरन् ॥१०॥

कुन्ती ने पाण्डव और कर्ण का भ्रातृत्व प्रदर्शित कर दिया था और कर्ण दयालु भी बहुत अधिक है, फिर वह अपनी माता कुन्ती के वाक्यों का स्मरण करके भी कैसे युद्ध में प्रवृत्त रहा ॥१०॥

भीमो वा सूतपुत्रेण स्मरन्वैरं पुराकृतम् ।
अयुध्यत कथं शूरः कर्णेन सह संयुगे ॥११॥

शूरवीर भीमसेन भी अपने पूर्व वैर का स्मरण करके सूतपुत्र कर्ण के साथ युद्ध में कैसी वीरता से लड़ा ॥१२॥

आशास्ते च सदा सूत पुत्रो दुर्योधनो मम ।
कर्णो जेष्यति संग्रामे समस्तान्पाण्डवानिति ॥१२॥

हे सूत ! मेरा पुत्र दुर्योधन तो सदा यही आशा लगाये रहता है, कि समस्त पाण्डवों को एक दिन कर्ण जीत कर रहेगा ॥१२॥

जयाशा यत्र पुत्रस्य मम मन्दस्य संयुगे ।
स कथं भीमकर्माणं भीमसेनमयोधयत् ॥१३॥

जिस कर्ण में मेरे मूर्ख पुत्र की जय की आशालता नित्य लहलहाती है, वह कर्ण रण में भीम कर्म करने वाले भीमसेन से किस प्रकार लड़ा ॥१३॥

यं समासाद्य पुत्रैर्मे कृतं वैरं महारथैः ।
तं सूततनयं तात कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥१४॥

हे तात ! जिसके बल का आश्रय लेकर मेरे महारथी पुत्रों ने पाण्डवों से वैर किया है, उस सूत-पुत्र कर्ण से भीम ने कैसे युद्ध किया ॥१४॥

अनेकान्विप्रकारांश्च सूतपुत्रसमुद्भवान् ।

स्मरमाणः कथं भीमो युयुधे सूतसूनुना ॥१५॥

हे तात ! सूतपुत्र कर्ण के किये हुये अनेक अपकारों का स्मरण करके भीमसेन ने कर्ण के साथ किस प्रकार घोर युद्ध किया ॥१५॥

योऽजयत्पृथिवीं सर्वां रथेनैकेन वीर्यवान् ।

तं सूततनयं युद्धे कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥१६॥

हे सञ्जय ! जिस महापराक्रमी कर्ण ने अकेले ही सारी पृथ्वी को जीत लिया, उस सूतपुत्र कर्ण से भीमसेन ने कैसे युद्ध किया ॥१६॥

यो जातः कुण्डलाभ्यां च कवचेन सहैव च ।

तं सूतपुत्रं समरे भीमः कथमयोधयत् ॥१७॥

जो कर्ण उत्पत्ति के समय ही कवच और कुण्डलों के साथ उत्पन्न हुआ, उस सूतपुत्र से युद्ध करने में रण में भीमसेन कैसे समर्थ हुआ ॥१७॥

यथा तयोर्युद्धमभूद्यश्चाऽऽसीद्विजयी तयोः ।

तन्ममाऽऽचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥१८॥

हे सञ्जय ! जैसे उनमें युद्ध हुआ और जैसे उनमें जो विजयी हुआ-यह सारा वृत्तान्त मुझे ठीक २ सुनाओ । तुम यह सब कुछ सुनाने में कुशल हो ॥१८॥

सञ्जय उवाच—

भीमसेनस्तु राधेयमुत्सृज्य रथिनां वरम् ।
इयेष गन्तुं यत्राऽऽस्तां वीरौ कृष्णधनञ्जयौ ॥१९॥
तं प्रयान्तमभिद्रुत्य राधेयः कङ्कपत्रिभिः ।
अभ्यवर्षन्महाराज मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥२०॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! जब भीमसेन, रथियों में श्रेष्ठ राधा-पुत्र कर्ण को छोड़कर वहां जाने लगा, जहां पर वीर-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्ध कर रहे थे, तो राधापुत्र कर्ण भी अपने कङ्कपत्नी के पंखों से सुशोभित बाणों के साथ उसके पीछे २ चल दिया और वहां पर इस प्रकार बाणवर्षा करने लगा-जैसे पर्वत पर मेघ वर्षा करता है ॥२०॥

फुल्लता पङ्कजेनेव वक्त्रेण विहसन्बली ।
आजुहाव रणे यान्तं भीममाधिरथिस्तदा ॥२१॥

महावली अधिरथ-पुत्र कर्ण, विकसित कमल की भांति मुंह से मुस्कुराता हुआ रण में आगे बढ़ते हुए भीम पर वेग से झपटा ॥२१॥

कर्ण उवाच—

भीमाऽहितैस्तव रणः स्वप्नेऽपि न विभावितः ।
तद्दर्शयसि कस्मान्मे पृष्ठं पार्थदिदृक्षया ॥२२॥

कर्ण ने कहा—हे भीम ! तुम्हारे शत्रुओं द्वारा कभी स्वप्न में भी यह नहीं समझा गया था, कि तुम रण में अर्जुन के देखने की लालसा से पीठ दिखाओगे-आज तुम मुझे कैसे पीठ दिखा रहे हो।

कुन्त्याः पुत्रस्य सदृशं नेदं पाण्डवनन्दन ।
तेन मामभितः स्थित्वा शरवर्षैरवाकिर ॥२३॥

हे पाण्डवनन्दन ! तुम कुन्ती के पुत्र हो, तुम्हारे सदृश यह कार्य नहीं है । अब तुम ठहर कर चारों ओर से बाणवर्षा करो ॥२३॥

भीमसेनस्तदाह्वानं कर्णान्नामर्षयद्युधि ।
अर्धमण्डलमावृत्य सूतपुत्रमयोधयत् ॥२४॥

हे राजन् ! कर्ण की इस ललकार को भीमसेन नहीं सह सका, वह रण में अर्धमण्डल बांध कर सूत-पुत्र से युद्ध करने लगा ।

अवक्रगामिभिर्बाणैरभ्यवर्षन्महायशाः ।
दंशितं द्वैरथे यत्तं सर्वशस्त्रविशारदम् ॥२५॥

महायशस्वी भीमसेन, समस्त युद्ध शास्त्र के विशारद, संग्राम के लिए सन्नद्ध, सावधान कर्ण को देखकर सीधे जाने वाले बाणों से उस पर वर्षा करने लगा ॥२५॥

विधित्सुः कलहस्याऽन्तं जिघांसुः कर्णमक्षिणोत् ।
हत्वा तस्याऽनुगांस्तं च हन्तुकामो महाबलः ॥२६॥

भीमसेन, इस युद्ध का अन्त ही करना चाहते थे, वे कर्ण को मारने का अभिलाषी उस पर प्रहार करने लगा । महाबली भीम, उसके साथियों को मार कर कर्ण को भी मार देना चाहता था ।

तस्मै व्यसृजदुग्राणि विविधानि परन्तपः ।
अमर्षात्पाण्डवः क्रुद्धः शरवर्षाणि मारिष ॥२७॥

हे आर्य ! परन्तप ! पाण्डु-पुत्र भीम ने क्रोध में भर कर आवेग के साथ बड़े २ उग्र बाण छोड़ना आरम्भ किया ॥२७॥

तस्य तानीषुवर्षाणि मत्तद्विरदगामिनः ।
सूतपुत्रोऽस्त्रमायाभिरग्रसत्परमास्त्रवित् ॥२८॥

मदोन्मत्त हाथी की तरह गति वाले, भीम की इस बाणवर्षा को उत्तम २ अस्त्रों का ज्ञाता, सूत-पुत्र, कर्ण अपने अस्त्रबल से रोकने लगा ॥२८॥

स यथावन्महाबाहुर्विद्यया वै सुपूजितः ।
आचार्यवन्महेष्वासः कर्णः पर्यचरद्बली ॥२६॥

महाबाहु, बलवान् कर्ण युद्ध में बड़ा ही कुशल था, अतएव वह धनुषधारी, आचार्य (द्रोण) की तरह मण्डल बांध कर युद्ध करने लगा ॥२६॥

युध्यमानं तु संरम्भाद्भीमसेनं हसन्निव ।
अभ्यपद्यत कौन्तेयं कर्णो राजन्वृकोदरम् ॥३०॥

हे राजन् ! भीमसेन बड़े आवेश में भर कर युद्ध कर रहे थे। इस समय हंसते २ कर्ण ने कुन्ती-पुत्र वृकोदर भीम पर आक्रमण किया ॥३०॥

तन्नाऽमृष्यत कौन्तेयः कर्णस्य स्मितमाहवे ।
युध्यमानेषु वीरेषु पश्यत्सु च समन्ततः ॥३१॥

हे राजन् ! सब ओर से वीर युद्ध करते २ कर्ण के इस उपहास को देख रहे थे। भीम से उसकी यह हँसी सही नहीं गई।

तं भीमसेनः सम्प्राप्तं वत्सदन्तैः स्तनान्तरे ।
विव्याध बलवान्क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥३२॥

भीमसेन ने सन्मुख आये हुए कर्ण को देखकर उसकी छाती में वत्सदन्त नामक बाणों से प्रहार किया । वह बलवान् क्रोध में भर कर तोत्र शस्त्र से महागज की भांति कर्ण को पीड़ित करने लगा ॥३२॥

पुनश्च सूतपुत्रं तु स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
सुमुक्तैश्चित्रवर्माणं निर्बिभेद त्रिसप्तभिः ॥३३॥

सूत-पुत्र कर्ण ने विचित्र कवच पहिन रखा था । भीमसेन ने सुवर्ण से चित्रित मूल वाले शिला पर तीक्ष्ण किये हुए और कुशलता के साथ छोड़े हुए इक्कीस बाणों से कर्ण को आहत कर दिया ॥३३॥

कर्णो जाम्बूनदैर्जालैः सञ्छन्नान्वातरंहसः ।
हयान्विव्याध भीमस्य पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥३४॥

कर्ण ने भी सुवर्ण मय जाल से व्याप्त, वायु के समान वेग वाले, भीमसेन के अश्वों को पांच २ बाण मार कर बींध डाला ।

ततो बाणमयं जालं भीमसेनरथं प्रति ।
कर्णेन विहितं राजन्निमेषार्धाद्दृश्यत ॥३५॥

हे राजन् ! यह कर्ण का छोड़ा हुआ बाण मय जाल भीमसेन के रथ के पास क्षण भर में फैल गया ॥३५॥

सरथः सध्वजस्तत्र ससूतः पाण्डवस्तदा ।
प्राच्छादयत महाराज कर्णचापच्युतैः शरैः ॥३६॥

हे महाराज! इस कर्ण के छोड़े हुए बाण समूह से ध्वजा, रथ और सारथि के सहित पाण्डु-पुत्र भीमसेन अदृश्य हो गया ॥३६॥

तस्य कर्णश्चतुःषष्ट्या व्यधमत्कवचं दृढम् ।
क्रुद्धश्चाऽप्यहनत्पार्थं नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥३७॥

अब कर्ण ने चौसठ बाण छोड़कर भीमसेन के कवच को काट डाला और क्रोध में भर कर मर्म भेदी बाणों से कुन्ती-पुत्र भीमसेन को भी आहत कर दिया ॥३७॥

ततोऽचिन्त्य महाबाहुः कर्णकार्मुकनिःसृतान् ।
समाश्लिष्यदसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥३८॥

महाबाहु भीमसेन ने भी कर्ण के छोड़े हुए बाणों की कुछ परवाह नहीं की और बिना किसी घबराहट के वृकोदर भीमसेन, कर्ण के जा लिपटे ॥३८॥

स कर्णचापप्रभवानिषूनाशीविषोपमान् ।
बिभ्रद्भीमो महाराज न जगाम व्यथां रणे ॥३९॥

हे महाराज! आशीविष सर्प के सदृश, कर्ण के धनुष से निकले हुए बाणों को भीम ने अच्छी तरह सह लिया। उनके उन बाणों से रण में कोई पीड़ा नहीं हुई ॥३९॥

ततो द्वात्रिंशता भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ।
विव्याध समरे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ॥४०॥

अब प्रतापी भीमसेन ने बड़ी तीखी धार वाले, बत्तीस बाणों से रण में कर्ण को बींध डाला ॥४०॥

अयत्नेनैव तं कर्णः शरैर्भृशमवाकिरत् ।
भीमसेनं महाबाहुं सैन्धवस्य वधैषिणम् ॥४१॥

सिन्धुराज के वध की अभिलाषा में तत्पर महाबाहु भीमसेन को कर्ण ने बिना किसी परिश्रम के बाणवर्षा से अत्यन्त आच्छादित कर दिया ॥४१॥

मृदुपूर्वं तु राधेयो भीममाजावयोधयत् ।
क्रोधपूर्वं तथा भीमः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥४२॥

राधा-पुत्र कर्ण तो भीमसेन से कोमल प्रकृति के साथ युद्ध करते थे, परन्तु भीमसेन, अपने पूर्व वैर का स्मरण करके कठोरता से लड़ रहे थे ॥४२॥

तं भीमसेनो नाऽमृष्यदवमानममर्षणः ।
स तस्मै व्यसृजत्तूर्णं शरवर्षममित्रहा ॥४३॥

महा आवेश वाले भीमसेन ने कर्ण के इस अपमान के भाव को उचित नहीं समझा, अतएव शत्रुविजयी भीम बड़ी शीघ्रता से उस पर बाणवर्षा करने लगा ॥४३॥

ते शराः प्रेषितास्तेन भीमसेनेन संयुगे ।
निपेतुः सर्वतो वीरे कूजन्त इव पक्षिणः ॥४४॥

हे राजन् ! इस घोर रण में भीमसेन द्वारा फैंके हुए बाण, सब ओर वीरों पर इस तरह सनसनाते गिरते थे, जैसे कूजते हुए पक्षी गिर रहे हों ॥४४॥

हेमपुङ्खाः प्रसन्नाग्रा भीमसेनधनुश्च्युताः ।
प्राच्छादयंस्ते राधेयं शलभा इव पावकम् ॥४५॥

भीमसेन के धनुष से निकले हुए, सुवर्ण की मूल से विभूषित, चमकती नोक वाले, बाणों ने राधा-पुत्र कर्ण को इस प्रकार

आच्छादित कर दिया-जैसे शलभ (पतङ्गे) अग्नि को आच्छादित कर देते हैं ॥४५॥

कर्णस्तु रथिनां श्रेष्ठश्छाद्यमानः समन्ततः ।
राजन् व्यसृजदुग्राणि शरवर्षाणि भारत ॥४६॥

हे राजन ! महारथियों में श्रेष्ठ, कर्ण, सब ओर से बाणों से पट गया। हे भारत ! अब वह भी बड़ी तीखी बाणों की वर्षा करने लगा ॥४६॥

तस्य तानशनिप्रख्यानिषून्समरशोभिनः ।
चिच्छेद बहुभिर्भल्लैरसम्प्राप्तान्वृकोदरः ॥४७॥

वज्र के तुल्य, युद्ध में शोभित, कर्ण के अनेक बाणों को वृकोदर भीम ने अपने बहुत से बाणों से बीच में ही काट गिराया ॥४६॥

पुनश्च शरवर्षेण च्छादयामास भारत ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे भीमसेनमरिन्दमः ॥४८॥

हे भारत ! अब फिर अरिन्दम, सूर्य-पुत्र कर्ण ने रण में भीमसेन को अपनी बाण वर्षा से आच्छादित कर दिया ॥४८॥

तत्र भारत भीमं तु दृष्टवन्तः स्म सायकैः ।
समाचिततनुं संख्ये श्वाविधं शललैरिव ॥४९॥

हे भारत ! अब युद्ध में वीरों ने भीमसेन को बाणों से इस प्रकार व्याप्त देखा, जैसे सेह जन्तु का शरीर अपने कांटों से व्याप्त होता है ॥४६॥

हेमपुङ्खाञ्छिलाधौतान्कर्णचापच्युताञ्छरान् ।
दधार समरे वीरः स्वरश्मीनिव रश्मिमान् ॥५०॥

सुवर्ण मूल वाले, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए, कर्ण के चाप से छोड़े हुए, बाणों को रणभूमि में वीर भीमसेन ने इस तरह धारण किया, जैसे-अपनी किरणों को सूर्य धारण किये हुए होता है ॥५०॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो भीमसेनो व्यराजत ।
समृद्धकुसुमापीडो वसन्तेऽशोकवृक्षवत् ॥५१॥

इस समय भीमसेन के सारे शरीर से रुधिरधारा निकल रही थी । उससे भीगा हुआ, भीमसेन इस तरह सुशोभित हुआ, जैसे चढ़े हुए अनेक पुष्पों से वसन्त में अशोक वृक्ष सुशोभित होता है ॥५१॥

तत्तु भीमो महाबाहोः कर्णस्य चरितं रणे ।
नाऽमृष्यत महाबाहुः क्रोधादुद्वृत्तलोचनः ॥५२॥
स कर्णं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
महीधरमिव श्वेतं गूढपादैर्विषोल्बणैः ॥५३॥

महाबाहु कर्ण की इन चेष्टाओं को भीमसेन नहीं सह सका, इससे महाबाहु भीम की भी क्रोध से आंखें ऊपर की ओर चढ़ गईं । भीमसेन ने पचीस बाण इस तरह छोड़े जैसे विष से भरे हुए सर्प श्वेत पर्वत पर रेंगते हों ॥५२-५३॥

पुनरेव च विव्याध षड्भिरष्टाभिरेव च ।
मर्मस्वमरविक्रान्तः सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥५४॥

देवों के तुल्य पराक्रमी भीमसेन ने छः और फिर आठ बाण छोड़ कर शरीर की परवाह नहीं करने वाले सूत-पुत्र, कर्ण के मर्मों में प्रहार किया ॥५४॥

पुनरन्येन बाणेन भीमसेनः प्रतापवान् ।
चिच्छेद कार्मुकः तूर्णं कर्णस्य प्रहसन्निव ॥५५॥

प्रतापी भीमसेन ने फिर दूसरा बाण उठाया और उससे हँसते हंसते कर्ण का धनुप बड़ी शीघ्रता से काट गिराया ॥५५॥

जघान चतुरश्वाऽश्वान्सूतं च त्वरितः शरैः ।
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्णं विव्याथ चोरसि ॥५६॥

भीमसेन ने सूर्य किरण के तुल्य चमकीले बाण छोड़ कर बड़ी शीघ्रता से कर्ण के चारों अश्व और सारथि को मार गिराया तथा कर्ण की छाती में भी बुरी तरह प्रहार किया ॥५६॥

ते जग्मुर्धरणीमाशु कर्णं निर्भिद्य पत्रिणः ।
यथा जलधरं भित्त्वा दिवाकरमरीचयः ॥५७॥

ये बाण कर्ण को बींध कर पृथ्वी में घुस गए, जैसे बादलों को बींध कर सूर्य की किरणें पार निकल जाती हैं ॥५७॥

स वैक्लव्यं महत्प्राप्य च्छिन्नधन्वा शराहतः ।
तथा पुरुषमानी स प्रत्यपायाद्रथान्तरम् ॥५८॥

इति श्रीमहा० द्रोण० जयद्रथ० कर्णपराजये
एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥

इस समय कर्ण बड़ी घबराहट में पड़ गया, इसका धनुप कट गया और यह बाण से आहत हो गया। बड़े भारी पराक्रम का अभिमान रखने वाला कर्ण भी अन्त में दूसरे रथ पर जा बैठा।
इति श्रीमहाभारत द्रोणपर्वान्तर्गत जयद्रथवधपर्व में कर्ण पराजय का एक सौ इकतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।